सहयात्रा

रक्षा शर्मा

सहयात्रा

रक्षा शर्मा

सहयात्रा

रक्षा शर्मा

प्रथम संस्करण : 2008
मूल्य : 250/-

प्रकाशक :
वासु प्रकाशन
पी-24, गाँधी नगर, जम्मू।

टाईपसैटिंग-शिवा कम्प्यूग्राफिक्स, जम्मू।
डिज़ाईनिंग -ऐस.के. कपूर, जालन्धर।
फोन-94171-99696

रक्षा शर्मा

जन्म : 24-10-1934

राहों (पंजाब)

जिन पत्र-पत्रिकाओं तथा लेखकों द्वारा लिखी गई
विभिन्न डोगरी पुस्तकों से उद्धरण
लिये गये हैं, उन सब की
मैं आभारी हूँ।

पत्तझड़ का मौसम

जेहलम नदी के बंड पर बायें से दायें
श्री वेद गोस्वामी, श्री यश शर्मा
तथा श्री राम नाथ शास्त्री जी।
(1952)

"दो शब्द"

कहा जाता है कि, कवि अपने आप में सजीव कविता होता है। उसकी कृति को तो उसकी सजीवता का शब्द मात्र ही कहा जा सकता है। वह, रहता तो एक संसार में है, पर उसके अन्तर में कई संसार रचे बसे होते हैं।

इन सब को समझने, पहचानने का पूर्ण रूपेण दावा तो हो ही नहीं सकता।

इसी सोच में जीवन यात्रा के सात दशक बीतते - न बीतते थकी साँध्य बेला झुक आई। बहुत बार मन में आता रहा कि, कवि यश शर्मा की अनुभूति प्रधान रचनाओं एवम् प्राणगीतों के चिन्तक स्वरूप के लिये, जो कुछ जाना, समझा, वैसा कुछ कहा जाये।

पर-एक झिझक सी रोके रहती कि, कहीं यह सब प्रशंसा मात्र ही हो कर न रह जाये, य फिर कोई अपना अहं य दंभ। कुछ समय पहले एक पुस्तक देखने में आई। इस पुस्तक का नाम है "जगदियाँ जोतां" इस पुस्तक की लिपि उर्दू होने के कारण संभवत् बहुत कम लोगों को इस की जानकारी रही होगी।

उसी से एक प्रेरणा एक मनोबल मिला, इस कवि, गीतकार के लिये कुछ कहने का। इस पुस्तक के लेखक हैं आज के फिल्म उद्योग से जुड़े तथा प्रबुद्ध साहित्यकार श्री वेद राही जी।

आधी सदी से भी अधिक चलती आ रही इस यात्रा में बहुधा उबड़ खाबड़ राहें, धूप छाँव की आँख मिचौली, सुख-दुःख भरी डगर इन सब को जोड़ती-बहती बीच में करूण रस धारा य फिर चट्टानी कगारों को तहस नहस करती उफनती, उद्धाम वेग वति फेनिल लहरें। पर किसी भी कलाकार का अपना जीवन भी तो किसी उपन्यास, कथा, कहानी के काल्पनिक पात्रों के उलझते, टूटते, जुड़ते

सूत्र न हो कर कहीं तो एक यथार्थ के धरातल पर टिका होता है। उसी यथार्थ का हल्का सा चित्रण भी इस सहयात्रा में हो सका होगा तो मेरे लिये यही बहुत है।

एक बात और सन् 1951-52 में रेडियो कश्मीर श्रीनगर में कार्यरत श्री मुज़तर हाशिमी जी की कही बात मुझे हमेशा याद रही कि, बेटी !

"श्रीनगर का यह रेडियो स्टेशन स्थानीय तथा भारत भर से आने बाले बुद्धिजीवियों का गढ़ है। "यश" की अपनी एक खास जगह है "इस निर्मल नाज़ुक मोती की आब बरकरार रहे" हाश्मी साहिव जहाँदीदा आदमी थे। उन्हीं की बात को समझते हुए आजतक आँखों के ऊपर, संबंधों के ऊपर, भावना एवम् संवेदनाओं के ऊपर कभी कोई संशय की परत नहीं जम पाई।

सहयात्रा में चलते चलते इस कथन पर प्रश्न चिन्ह लग सकता है कि, डोगरी भाषा को अधिक समृद्ध करने में प्रयत्नशील लेखकों के विशाल काफिले में से "दीप, मधुकर और यश का ही ज़िक्र अधिकतर क्यों ? इसके लिये यही कहा जा सकता है कि "प्रकाश और अंधेरा" य फिर "सत्य और धोखे" की खींच तान में इस युवा (त्रिमूर्त्ति) साधकों के हिस्से में आया था सिर्फ धोखा, अविश्वास। चाहे इस सब के लिये कोई परिस्थिति जन्य अलग कारण भी क्यों न रहे हों।

जहाँ तक अपनी समझ है - तो यही कि, मधुकर तो थे दबंग, निडर कुछ हद तक उच्छृंखल, ज्येष्ट आषाढ़ की धूप से प्रखर। जब कि दीप और यश दोनो के दोनों वासन्ती वन व्यार से सहज, सरल, कोमल। और फिर वर्षो तक अपने पति के साथ साथ चलते कुछ ऐसा भी लगता रहा कि, जम्मू में यश शर्मा की साहित्यिक यात्रा विरोधों, विषमताओं का ही एक इतिहास रहा है। कोई अप्रत्याशित य अप्रिय घटना से मन की संवेदनाओं पर गहरी दरारें ही पड़ती रही हैं।

यह सब मेरे अपने ही मन-का भाव है जिसे मैंने वर्षों तक चुपचाप झेला है, उद्धेश्य है तो सिर्फ इतना कि भावी पीढ़ियों को यह जानकारी रहे कि किस प्रकार साहित्य के वटवृक्ष अपने साये तले छोटे पौधों को पनपने देना नहीं चाहते थे। इसे साहित्यिक भ्रष्टाचार का परोक्ष पर सुसंकृत रूप भी कहा जा सकता है।

इस गीतकार के साथ आधी सदी से भी अधिक चलने पर साक्षी भाव से जो देखां तथा सुना अन्त में वही पक्ष प्रवल हो उठा है। यहाँ जो भी लिखा गया है "दावा" नहीं कि मान्य ही हो, अमान्य भी हो सकता है। फिर भी इस से न्याय की शक्ति को थोड़ा सा भी वल मिलेगा तो यही बड़ी बात होगी मेरे लिये क्योंकि "शब्द ईमानदार होते हैं।"

इस रचना में "श्यामला खजूरीया', 'शैलजा मोहन' दोनो बेटियों का सहयोग बराबर मिलता रहा है। पर विशेषतया दौहित्र आदित्यजय खजूरीया का अपूर्व योगदान निरन्तर मेरे साथ रहा जिस से उत्साह, ऊर्जा गतिमान रही। प्रकाशन व्यवस्था का श्रेय, कवि, लेखक नरेन्द्र सिंह चिब को है। इन सब की आभारी हूँ।

.... रक्षा शर्मा

"जगदियां जोतां"

इस शीर्षक, से प्रबुद्ध लेखक श्री वेद राही जी ने सन् 1957 में डुग्गर प्रदेश के आधुनिक काल के नवीन (नौं) डोगरी कवियों (कृतित्त्व तथा व्यक्तित्त्व) पर उर्दू भाषा में एक लघु पुस्तक लिखी थी। यह पुस्तक समीक्षात्मक है। उर्दू में एक जायज़ा-इसे उन्हीं दिनों डोगरी संस्था ने प्रकाशित किया था। गीतकार "यश शर्मा" के सम्बन्ध में जो विचार तथा भावनाऐं उन् दिनों (1957) उन्होंने अभिव्यक्त की थीं वही अक्षरक्षः पाठकगण भी पढ़लें।

जगदियाँ जोतां-पृष्ठ संख्या/113

यश शर्मा

"यश शर्मा पहले हिन्दी में कविता करता था। वह उस हुस्ने फितरत (प्रकृति सौन्दर्य) और हुस्ने नस्वानियत (नारी सौन्दर्य) का दिलदादा (प्रेमी) था जो टैगोर के गीतों का खासा (विशेषता) है।

हिन्दी के शायरों में "हरिवंश राय" उसका महबूव शायर रहा है। बच्चन की 'मधुबाला' और मधुशाला का वह मतवाला था।

अंग्रेज़ी शायरों में से 'कीट्स' की शायरी ने भी उस पर अपना असर डाला, लेकिन बहुत जल्द उसकी तबज्जो (रूचि) डुग्गर के लोक गीतों ने अपनी तरफ खेंच ली। वह-जम्मू के उस इलाके का रहने वाला है जहाँ की सरसव्ज़ (हरी भरी) पहाड़ियों ने आज से दो तीन सौ बरस पहिले अपनी गोद में ऐसे-ऐसे मुसब्बर (चित्रकार) पैदा किये जिन की फन्नी तख़लीकात (कलाकृतियां) एक आलम से अपना लोहा मनबाती हैं।

सरसब्ज पहाड़ियों पर बसा हुआ बसोहली का गाँओं, जिस के एक तरफ ठाठें मारता हुआ दरिया-ए रावी और दूसरी तरफ शिवालिक पर्वतों के दिल फरेव (मनोहारी) सिलसिले हैं। यश शर्मा काफी देर वहाँ रहा। वहाँ के लोक गीतों में फितरत (प्रकृति) का तमाम हुस्न खिंच कर चला आया है। उस पर इन गीतों ने बहुत ज्यादा असर किया। यह 1947 के बाद की बात है, जब डोगरों के देश नें बेदारी (जागरण) की अंगड़ाई ली। उसे अपनी

पुरानी अज़मत (बैभव) का एहसास हुआ।

आलम गीर जंगों में (महायुद्धों में) तो डोगरा नौजुआन सारी दुनियां पर अपनी बहादुरी का सिक्का जमा चुका हैं। अब अपने कल्चर की तरफ मुत्त्बज्जो (ध्यान) देने की तहरीक (आंदोलन) ने जन्म लिया। इस तहरीक ने नौजुआन शायर "यश शर्मा" को कायल (आकृष्ट) किया और जब उस ने सरगर्मी (तन्मयता) से हिस्सा लेना शुरू किया तो, इस तहरीक का एक हिस्सा बन कर रह गया। इस के वगैर कोई भी तहरीक नामुकम्मल (अधूरी) रहती।

मुझे अब तक 1951 का बसन्त उत्सव याद है-डोगरी संस्था की तरफ से डोगरा आर्ट की एक नुमाइश और डोगरी मुशायरे (कवि सम्मेलन) का भारी एहतमाम (आयोजन) था।

लेकिन दो दिन पहिले ही सब को मुशायरे में एक ख़ला (शून्य) का एहसास (अनुभव) होने लगा। एक कमी सी महसूस होने लगी। अवाम (जनता) का चहेता गीतकार "यश शर्मा" उस समय बसोहली में था। तार पर तार दिये जाने लगे। मुशायरे का एलान (घोषणा) हो चुका था।

ऐन वक्त पर यश शर्मा पहुँचा और जब उसने अपनी नज़्म "बंजारा" सुनाई तो एक कयामत (प्रलय) बरपा हो गई।

एक-एक बन्द कई-कई बार सुना गया और पूरी नज़्म की बार-बार फरमाईश हुई। अक्ल पर सहर-ए-हलाल (मन्त्रमुग्ध) काम कर गया।

नज़्म "बंजारा, यश शर्मा की इश्किया शायरी के अहम अनासर की हामिल (महत्त्व पूर्ण तत्त्वों को समेट कर) नज़्म है। उसकी इश्किया शायरी की नुमाइन्दा (प्रतिनिधित्व) नज़्म कहा जाये तो बेजा (गैर मुनासिव) नहीं होगा।

मूसीकी की रवानी (संगीत का प्रवाह) जज़्वात (भावना) का ठाठें मारता हुआ बहाव, हकीकत ब्यानी (स्पष्टवादिता) इश्क की घुटन के साथ-साथ एक वालेहाना (अत्यधिक भावपूर्ण जज़्वा) काफिये से किसी हद तक बग़ावत (विद्रोह) इस नज़्म की अहम (विशेष) खसूसियात (विशेषतायें) हैं।

ज़रा सुनिये (बंजारा)

अगर मैं बंजारा बन कर घूमता फिरता, तुम्हारे गाँव आ निकला तो

क्या, तुम चूड़ियाँ चढ़ाने के बहाने मेरे पास आओगी ?

मेरे पास सुर्ख़ चूड़ियाँ, खूवसूरत हार और काँटे होंगे। लेकिन, मैं ज़्यादा देर नहीं ठहर सकूंगा। आज यहाँ कल वहाँ परसों शहर, तरसों किसी और गाँव में। बस इसी तरह घूमना फिरना मेरा काम होगा। छोटे बड़े-सब मेरा नाम जानते होंगे। क्या तू भी भूले से मेरा नाम लेगी ?

चूड़ियाँ चढ़ाने के बहाने मेरे पास आयेगी ? मेरी महबूव! आ-जुदा होने से पहिले एक साथ, उन दिनों को पीछे मुड़ कर देख लें, जिन की छाँओं में बैठ कर हम एक साथ हंसे खेले और रोये हैं।

शाम को सहेलियों के साथ तेरा पानी भरने को जाना और कदम-कदम पर यह सोचना कि, यहीं कहीं मेरे सजन होंगे और अगर कहीं दूर कोई नज़र आया तो बस्स-सहेलियों के हाथ एक नया खेल आ गया। किसी ने कोहनियों से टहोके दिये-कोई इशारों-इशारों में पूछती है कि, वह तुम्हारे क्या लगते हैं?

लेकिन तुम क्या कहतीं, किस किस को मना करती। वह छेड़ और उस छेड़ छाड़ पर तुम्हारा शरमाना मुझे अब तक याद है।

तुम्हारे गाँव जब बन्जारा बन कर आँऊगा-तो तुम सोचोगी कि, मैं वही हूँ, जिसके साथ तुंम गुड्डे गुड़िया का व्याह रचाया करती थीं। जिसके साथ बचपन के अनगिनत खेल-खेल कर तुम जवानी की दहलीज पर आ कर खड़ी हुई और जिसके साथ तुमने कसम खा कर कहा था कि मैं तुम्हारी राधा हूँ और तुम मेरे सलोने शाम हो।

मेरी आवाज़ सुन कर तुम बिना अपनी सास को पूछे चुपचाप डयोड़ी के बाहर आ कर खड़ी हो जाओगी।

चूड़ियाँ चढ़ाने की बात तो दूर रही- उस वक्त क्या इतना भी नहीं पूछोगी ? कि परदेसी तुम्हारा क्या हाल है ? इस नज़्म के पसमंजर (बैक ग्राउंड) में एक बहुत बड़ी ट्रेजिडी साफ नज़र आ रही है। लेकिन इस ट्रेजिड़ी का इस कदर कामयाबो से नज़्म का रूप धारण कर लेना-दरअसल एक अलहदा (अलग) बैक ग्रॉउड रखता है।

डोगरी गीतों में एक शदीद (तीक्ष्ण) किस्म की यासीयत (ग़म उदासी) और घुटन है। महबूव की जुदाई में तड़प-तड़प कर मर जाना वेशतर (अधिकतर) लोक गीतों का नफ़्से मज़मून (विषय) है। यह कोई

रिवायती शै (पारम्परिक बिषय बस्तु) नहीं एक हकीकत (सचाई) है।

डोगरा पहाड़ी नौजवानों का एक ज़माने से रोजी रोटी कमाने के लिये मैदानों में आना पड़ता है। खौफ़नाक जंगलों में अपने आपको झुलसा देना पड़ता है। लेकिन उन के पीछे उनकी महबूवाओं (प्रेमिकाओं) का क्या हाल होता है। उसके जबाव में एक पहाड़ी टप्पा सुनिये।

(चन्न म्हाड़ा चढ़ेया-उप्पर रियासिया
थोड़ा थोड़ा ताप चन्ना मती गै दुआसिया)

"अर्थात् चाँद रियासी के पहाडों पर नमूदार (धीरे-धीरे प्रकट) हो रहा है ऐ मेरे चाँद मुझे थोड़ा-थोड़ा ताप होन लगा है और उदासी बेहद बढ़ गई है"।

इसी लिये मैंने कहा कि, जुदाई में मर जाना पहाड़ों की रिवायत (परम्परा) नही हकीकते-हाल (सच्चाई) है। यश शर्मा ने "बंजारा" नज़्म में बंधे टिके जज़्बात का इज़हार नहीं किया है, वह तो सही मायनों (अर्थों में शायेर हैं)। उसका काम देखना, महसूस करना और बयान करना है। बकौल शरव्से फनकार (कलाकार) कभी सोचता भी है तो ग़ैर इरादी (स्वतः) तौर पर राय भी देता है तो ज़िमनी (ऐसे ही) किसी चीज़ को जानने और समझने की कोशिश भी करता है तो दफ्तन (सहसा)

उसकी तमाम ज़िन्दगी का मकसद (उद्धेश्य) दो पर है वह देखे और महसूस करे। यह मकाला (उक्ति) यश शर्मा पर सौ फीसदी (शत प्रतिशत) सही उतरता है। वह जब किसी फ़नपारे (कलाकृति) को तख़लीक (रचना) करने लगता है और जब उसका दिमाग़ रंगीनियों और सरमस्तिओं में शराबोर (ओतप्रोत) होता है तो मतानत (संजीदगी) के दामन को हर्गिज़ नहीं छोड़ता। पढ़ने वालों के सामने बहिश्ती मंजर (स्वर्गिक दृश्य) भी ले आता है।

लेकिन बातों बातों में ऐसी बात भी कह जाता है कि ग़ोया (जैसे) कोई आसमान पर उड़ता हुआ यकदम (एकाएक) ज़मीन पर आ रहे। लेकिन एक धचके के साथ नहीं, वल्कि इस तरह कि, मालुम भी न हो। इस बात के सबूत में उसकी नज़्म मेले से दो बन्द सुनिये :-

कुसे चूड़ियें दी पेदी, कुसे गज्जरें दा चाऽ
कोई शीशा कंघी साबनैं दा पुच्छदी ऐ भाऽ
कोई आखदी ऐ भाई, एह्दे पैसे घट्ट लाऽ
कोई दूरा दा गै दिक्खी दिक्खी भरे ठंडे साह् ।

अर्थात किसी को चूड़ियों की पड़ी है, किसी को गजरों की तमन्ना है । कोई शीशा कंघी साबुन का भाव पूछ रही है । कोई दुकान-दार से कीमत कम करने की ज़िद कर रही है और कोई इन सब से अलग बैठी यह सब कुछ देख कर ठंडे साँस भर रही है । यश शर्मा रूखसारों गेसू (कपोल और अलकों) से परे हट कर भी खूबसूरती तलाश कर लेता है । उसकी नज़र सिर्फ फूलों पर ही नहीं पड़ती-काँटों में भी उसे तीखे हुस्न का एहसास होता है । शहरों से दूर मेलों ठेलों में आये देहातियों की सादगी, अल्हड़पन और मासूमियत से उसे इश्क है । लेकिन जैसा कि, मैने उपर कहा है कि, उनकी ग़रीबी का दर्दनाक पहलू भी उसकी नज़रों से बच नहीं पाता । अपनी तरफ से वह गैर इरादी तौर पर इसका ज़िकर करता है । लेकिन मेरे ख्याल में यही हकीकत बयानी उसकी शायरी का सब से खूबसूरत पहलू है । इसी नज़्म का दूसरा बन्द है ।

हत्थें शामें आली डांग-सिरैं बन्ने दे मनासे
कुतैं भांगड़े दा जोर-कुतैं हासे ते गड़ाके
कुसे खादी दी ऐ रूट्टी-कोई चले दा ऐ फाके
अज्ज कोदी ऐ मजाल-जेह्ड़ा नच्चने शा ठाके
मेले आई दी ऐ, मेले दी बहार दिक्खी लै ।

अर्थात : हाथों में कीलों जड़ी मजबूत लट्ठे हैं । सरों पर बड़े बड़े साफे बंधे हैं । कहीं भाँगड़ा नाच जोरों पर है, कहीं हंसी और कहकहों की बहार हैं । किसी को रोटी नसीब हुई है, कोई ख़ाली पेट है, लेकिन आज किस में इतनी हिम्मत है जो इन में से किसी को भी नाचने से रोक सके ।

यश को अपने डोगरे देस से बेहद प्यार है । यहाँ के पहाड़ों, नदियों, नालों, सब्ज़ाजारों और उन बंजर इलाकों से भी जहाँ लोग पानी की बून्द बून्द को तरसते हैं ।

एक और तवील (लम्बी) नज़्म में वह कहता है।

उच्चड़ियें धारें, ढाबें खेतरें च लंघदे,
जिन्नियाँ नुहारां मेरी अक्खीं अग्गें औन्दियां,
अपना गै देस मिगी लभदा ऐ इन्दे बिच,
दनां भर आखो तां पराईयां निं बझोन्दिया।

अर्थात्-ऊंची पहाड़ियों, ढलानों और खेतों से गुज़रते हुए जितने लोग मुझे दिखाई देते हैं, उन सब में मुझे अपने देश की झलक मिलती है। उनकी सूरतें ज़रा भर भी मुझे बेगानी मालुम नहीं होती।

यश का कलम उसके अजीज़ बतन की खूबसूरती बयान करने में पूरा साथ देती है।
जैसे -

छैह् छैह् करदे जे बगदे न नाडू कुतै,
बड़ी छैल लगदी ऐ, खेतरें दी सैलतन,
बड़ा गै सुहाना समां होई जन्दा जित्त वेल्लै,
रूक्खें दीयें टीसीयें दे पिच्छे चढ़ी पौन्दा चन्न।

अर्थात् :- इस धरती पर कहीं शां-शां करते हुऐ चश्में और कहीं खेतों की हरियाली मन मोह लेती है। जब जंगलों के पीछे से चान्द नमूदार होता है तो एक समय बंध जाता है।

यश शर्मा, हर वक्त शायरी नहीं करता वह ज्यादा समय लिखने और देखने में सर्फ (व्यतीत) करता है। वह जब तक नफ्से मज़मून (वर्ण्य विषय) को अपनी अना से हमआंहग (आत्मसात) नहीं कर लेता वह कुछ नहीं कहता, सिर्फ गुनगुनाता है। और फिर गुनगुनाहट आहिस्ता-आहिस्ता गीत में बदल जाती है। फिर गीत उस के मुंह से निकल कर ज़द्दे आम (जनता की ज़ुवान) हो जाता है। और साथ ही उसका नाम भी।

यश शर्मा पैदाइशी गीत कार है। वह जब गीत तख़लीक (संरचना) करने के लिये गुनगुनाना शुरू करता है, तब वह उस धरती पर नहीं होता है। उस वक्त गीतकार और गीत दो चीज़ें नहीं, वल्कि एक ही चीज़ के दो नाम होते हैं।

वह डोगरी तहज़ीव (सम्यता, संस्कृति) को अपने गीतों में समो

लेना चाहता है। वह डोगरा लोगों के दिलों की तमाम धड़कनें, अपने गीतों में बसा लेना चाहता है। उसे डुग्गर से बेहद प्यार है। तभी तो उसने कहा है कि,

होर कोई लालसा नेईं,
होर कोई इच्छेया नेईं,
बस मेरा देस
मेरी अक्खीं च समाई जा।

अर्थात : मेरी और कोई आरज़ू नहीं-कोई तमन्ना नहीं। बस मेरा देस, मेरी आँखों में समा जाये।।

। प्रकाशन समय 1957 । पैहली बार (1000)
कीमत (2 रूपये) पीपल्स प्रिंटिंग प्रेस जम्मू।

"बनजारा"

1951 का वसन्तोत्सब
बनजारा का रचनाकार
तरूण कवि यश

बनियै बनजारा जेकर आमां तेरे ग्रां
तां तूं इक्क गल्ल अज्ज मिगी दस्सी छोड़ हां।
कदें चूड़ियां चढ़ाने ब्हान्नै औगी मेरे कोल ?
कदें भुल्ल-भलेखे तु'म्मी नां लैगी मेरा बोल ?
सूह्इयां, सूह्इयां बंगां हार कांटे मेरे कोल।
मैं बनजारा मिगी जाने दी गै पेदी रौंह्दी तौल।
अज्ज इत्थें कल उत्थें अतरूं शैह्र चौथ ग्रां।

निक्के ञ्याने बड्डे बुड्ढे सब्बै जानन मेरा नां।
कदें भुल्ल भलेखे तु'म्मी नां लैगी मेरा बोल
कदें चूड़ियां चढ़ाने ब्हान्नै औगी मेरे कोल ?

बनियै बनजारा...........

आ जानें कोला पैह्लें दमैं जने बिन्द-भर
उनें दिनें गी तां
पिच्छै मुड़ी भलेआं दिक्खी लैचै।
जिन्दी छामां हेठ अस, हस्से-खेडे लड़े रोऐ।
संझा स्हेलियां दे कन्ने तेरा पानियै गी जाना।
कुत्थें होङन सज्जन साढ़े, इय्यै लानें लान्दे जाना।
जेकर स्हेलियें नैं जन्दे, दूरा लब्भी पेआ कोई।
तां तूं उस्सै बेल्लै उन्दे जोगी नर्मी खेड होई
कुसै आरकां कराई,
कुसै सारतां कराई,
कुसै पिछों दा गै बल्लें जाते तुगी ठेह् कराई,
गल्ल इय्यै पुच्छी,

बोल, तेरे ओ लगदे के ?
तूं के दस्सें-तू के आखैं
कन्नैं कुसी-कुसी ठाकैं
मिगी चेता-उन्दी छेड, कन्नै तेरा ओ शरमानां
संझा स्हेलियें दे कन्नै तेरा ......
पानियें गी जाना ।

परदेसी बनजारा आया । चूड़ियां चढ़ाओ आओ ।
लैंसां फीते हार कांटे, तीलियां बी लेई जाओ ।
सुनियै आवाज़ मेरी, सोचगी तूं है ते उऐ,
जिदे कन्नें गुड्डियां-पटोले कदें खेडदी ही,
राजा रानीं, छू छोआई, उच्चक-नीम खेडी-खेडी,
जिदे कन्नें बचपना गुजारेया, जोआनी आई,
खादियां सुघंदां, जिदे नां दियां आखेआ हा-
मैं तेरी राधा, तुस राधका दे शाम कन्हाई ।
कम्म-काज छोड़ी बिना सस्सू जी दे पुच्छे दे गै,
चुपचाप जाई खड़ोगी, ड्योढिये दे बाह्र जाई,

चूड़ियां चढ़ाने आली गल्ल बड़ी दूर -
कदें लंघदे परदेसियें दी पुच्छी लैगी डोल ?
कदें चूड़ियां चढ़ाने ब्हान्नै औगी मेरे कोल् ?
बनियै बनजाना जेकर आमां तेरे ग्रां ।

इस के अतिरिक्त :-

गीतकार यश शर्मा के लिये और जानकारी मिलने का स्त्रोत, "जागो डुग्गर" नाम की वह पत्रिका है, जिसका प्रकाशन समय 1950 है । डोगरी कविताओं का यह पैहला संग्रैह है, जिसे डोगरी संस्था द्वारा प्रकाशित किया गया है ।

इस संग्रैह में चौदह (14) कवियों की रचनाऐं जीवन परिचय सहित संकलित हैं । यहाँ यह कहना अप्रसांगिक न होगा कि, वर्त्तमान समय

तक पहुँचते-पहुँचते उस पुस्तक के कवियों के प्रारम्भिक काफिले में से 1914 में जन्मे श्री राम नाथ शास्त्री तथा 1929 में जन्मे श्री यश शर्मा को ही 22 दिसम्बर 2002 में भारतीय भाषाओं की आठवीं अनुसूचि में डोगरी भाषा का मान्यता प्राप्ति का महत् दिवस देख पाने का सौभाग्य मिला।

जागो डुग्गर पत्रिका के इस अंक में यश शर्मा की चार रचनायें प्रकाशित हैं।

डुग्गर देस बचाना। करसान। साड़े सौने गी शिड़का ते चौक पेदे। संझा दे दिये।

इसी पत्रिका की सम्पादकीय टिप्पणी।

"पृष्ट संख्या आठ (8), में सम्पादक महोदय ने 1950 में दो कवियों के सम्वन्ध में अपने विचार इस प्रकार प्रस्तुत किये हैं,

"दीप और यश" कालिज के विद्यार्थी हैं, पर इन नन्हीं आत्माओं में कवि का पूरा बल और कल्पना की पूरी चंचलता भरी है।

इसी जागो डुग्गर पत्रिका (पृष्ठ संख्या 75) में यश शर्मा के जीवन परिचय में दिये गये शब्दों के अनुसार :-

"सुरीले गले से कवीन्द्र रवीन्द्र के गीतों के हिन्दी रूपान्तरों को गुनगुनाते हुऐ यश को जिन्होंने देखा है, उन्हे लगा कि, यह लड़का सौदाई है। यह गुनगुनाना उसके दिल की उस बेकरारी का प्रतीक था, जिस में अपनी बात कह सुनाने की लालसा भरी रहती है। यश ने रबीन्द्र और शरत् को बड़े चाव से पढ़ा है। पर उसकी हिन्दी कविताओं में जो एक सामाजिक क्रान्ति है, झुंझलाहट है, वह तो उसकी अपनी ही है। यश की कविता शैली पर हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि श्री बच्चन जी का विशेष प्रभाव है। उनकी कविता "संझा दे दीप" में यह प्रभाव बड़ा स्पष्ट है। उपरोक्त धारणाओं को सशक्त करने में सक्षम एक और टिप्पणी :-

मग धूलि-पृष्ट संख्या (4) सम्पादक स्वर्गीय श्री शम्भुनाथ शर्मा। गीत कार यश के गीतों पर उनके अपने विचार।

"अपने गीतों में आप धनिष्ट व्यक्तिगत अथवा परिवारिक समस्याओं का निरूपण करते हैं, और गेयता के गुण से युक्त-यही घनिष्ठता इन्हें डोगरी काव्य में एक आकर्षक" वैशिष्ट्य प्रदान करती है।

"आधुनिक डोगरी साहित्य : एक परिचय
लेखक-नीलाम्बर देव शर्मा, अनुबादक-सुभाष भारद्वाज।
पृष्ठ संख्या 117

(जब आप अंत्यत बेदनामय विषयों पर लिखते हैं, तब आप के चित्रण में ऐसा गुण आ जाता है जो पीड़ा को भी सम्मोहनीय बस्तु बना देता है)।

जम्मू-कश्मीर कला संस्कृति और भाषा एकेडमी के अभिनव थियेटर में 15 नवम्वर 2002 को साहित्य से जुड़ी कई हस्तिओं के सम्मुख अपने जीवन तथा रचनाओं के विषय में (कवि यश का) अपना कहना था कि, गीत आत्मा है तथा जब कुंडलिनी जागृत होती है, तभी सही रचना बन पाती है, अन्यथा सब कुछ इधर-उधर से माँगा हुआ सा लगता है। प्रकृति ही सब से बड़ी कलाकार है। हम सभी इस से कुछ न कुछ माँगते रहते हैं। इसी समारोह की अध्यक्षता, (जिसका आयोजन कल्चर एकेडमी ने अभिनव थियेटर में किया था) करते हुए श्री रामनाथ शास्त्री जी ने यह शब्द कहे कि, "डोगरी को इस मुकाम तक पहुँचाने में केहरि सिँह, मधुकर, वेदपाल दीप और यश शर्मा का विशेष योगदान रहा। जब डोगरी में लिखने की मुहिम शुरू हुई तो सिर्फ यश शर्मा ही श्रृंगार में लिखते थे। यश शर्मा को डोगरी गीतों में योगदान के लिये उन दिनों गीतों का राजकुमार कहते थे। उनके साहित्य में विभिन्न रंग और आयाभ हैं"।

काश्मीर टाइमज़ पत्रिका के मुख्य सम्पादक श्री वेद भसीन जी उस समारोह के मुख्य अतिथि थे। उन्होंने मंच पर आकर कहा कि,

"मधुकर, दीप और यश कालिज के प्रांरभिक दिनों से ही, हिन्दी साहित्य में तीन हस्ताक्षर बन कर उभरे थे। डोगरी साहित्य की ओर मुड़ने पर यह तीनों स्तम्भ-त्रिमूर्ति के नाम से प्रख्यात हो चुके थे। डोगरी में इन्हें तिकड़ी नाम दिया गया था।"

"जो तेरे मन चित्त लग्गी जा" शीर्षक पुस्तक को पुरस्कृत किया गया तो साहित्य एकेडमी-डोगरी इकाई के संयोजक कर्नल शिव नाथ ने "इंडियन लिट्रेचर मैगज़ीन" में अंग्रेजी में समीक्षा करते हुए लिखा कि,

"पिछले चालीस वर्ष से यश शर्मा डोगरी गीत लिखते तथा काव्य पाठ करते आ रहे हैं। उनकी संगीतमयी आवाज़ में अपने गीतों की प्रस्तुति करने का उनका अपना अंदाज़ है, जिसका आज तक कोई अनुकरण नहीं

कर पाया है । इसलिये वह सर्वदा कवि गोष्टिओं में आकर्षण का मुख्य केन्द्र बनते आ रहे हैं । अपनी इस पैहली पुस्तक में श्रृंगार, मौसमों, त्योहारों आदि के कोमल, मुलायम शिल्प भरे गीतों को स्वयं तथा अन्यकलाकारों, विशेषतथा उनकी पुत्री "सीमा अनिल सहगल, द्वारा गाये गए गीत हमेशा प्रभावित करते रहे हैं, तथा आज भी सुनने वालों को हमेशा करते आ रहे हैं" ।

कालान्तर में दैनिक कश्मीर टाइम्स में शुक्रवार 25 अगस्त 2002 को मधुकर के निधन पर सम्पादकीय टिप्पणी इस प्रकार थी कि, "मधुकर, दीप, यश ने अपने अपने तरीके से डोगरी काव्य साहित्य को समृद्ध किया । उसे नई दिशायें दीं । उसे नये आयाम बख्शे । यश शर्मा ने नई रचनाएं रचीं । दीप ने नये बौद्धिक अंश डाले । मधुकर ने भाषा से सजी हुई ख्यालों और भावनाओं की नई उड़ान भरी । इस प्रकार यह जो साहित्यिक त्रिकोण बना इनका इस भाषा को न भुलाया जाने बाला योगदान है" ।

किसी भी लेखक के लेखन में दो पक्ष होते हैं । भावपक्ष, कलापक्ष, पर जीवन के साथ दो पक्ष और भी जुड़े होते हैं, कृतित्व एवम् व्यक्तित्त्व जिनके दपर्ण में उसके समूचे जीवन का निरूपण होता है ।

यश शर्मा के कृतित्त्व के लिये तो विशिष्ट गुणी जनो और पारखियों द्वारा उनकी अपनी सम्मतियों का उल्लेख संक्षिप्त सारगर्भित शब्दों में हो ही चुका है, इसलिये व्यक्तित्त्व के विषय में जो कुछ सुनने में तथा जो कुछ देखने में आया उसी के लिये मेरा यह एक प्रयास है । क्योंकि किसी के जीवन को आन्तरिक गहराई से देख पाना संभव नहीं,

फिर किसी भी कवि को जीवन यात्रा सहज, सरल, सुगम ढर्रे पर नहीं चलती । बहुधा ऊबड़खाबड राहें, धूप छाँव की आँख मिचौली और कभी कभी तो प्राणपण से परिश्रम करने पर भी फल खण्डित ही मिलता है ।

....“स्मृतियों के झरोखे से”

“लोक रसी गीतकार”

कवि यश शर्मा, मुख्यतया गीत कार हैं । उनके गीत लोक रंग-लोक रस की चाशनी में पगे होते हैं । गीत की अपनी ही एक विधा होती है । गीत जन्म से ही वन्य कण्ठों में पलता है । गीत की गति, लय, ताल और शब्दों में वही संस्कार विद्यमान रहते हैं । कवि मन में अनायास ही कोई भाव-कोई बात घर कर जाती है, जो चिन्तन की हल्की-हल्की आँच में परिपक्व हो कर पहले तो किसी एक पंक्ति के रूप में ढलती है, फिर इसी भाव से संबंध रखने वाले अपने आस-पास के वातावरण, परिस्थितियों तथा मन की मूल अनुभूति द्वारा शब्दों में व्यक्त हो कर पूरा गीत बन जाता है ।

संभवतः किसी भी गीत रचना प्रक्रिया का यही इतिहास रहता आया होगा । बात विलकुल सत्य और स्पष्ट है कि, कोई भी कलाकार जब तक अपनी धरती अपने परिवेष अपनी आस-पास की परिस्थितिओं से एकाकार नहीं हो जाता तब तक अच्छा गीत, अच्छी कविता, अच्छा चित्र बन ही नहीं सकता ।

यही कारण रहा होगा कि, गीत कार यश शर्मा के मन में अपनी धरती अपने लोगों के प्यार का पुष्पित पौधा बसोहली और उसके आस पास के पहाड़ी क्षेत्र की बनस्थलियों, नदियों, जंगल, बेल्ले, अनुपम पहाड़ी चित्रकला, लोक जीवन शैली और लोक संगीत से ही अंकुरित हो उठा होगा ।

आगे चल कर उनकी रचनाओं में अपनी धरती के इसी प्यार के इन्द्रधनुषी फूल खिल उठे, जिस से डुग्गर का साहित्य महक उठा । उनके अपने कथनानुसार, बचपन मे लोक मानस से जुड़ने का श्रेय प्रुंगल गाँव से आये उस बाँको नाम के नौकर को जाता है, जो बसोहली में नाना के घर का काम करते करते आनन्दपूर्वक पहाड़ी गीत गुनगुनाता रहता था ।

बसोहली में ननिहाल था, जब कि कवि का जन्म 9 फरवरी 1929 को फूलों फलों की घाटी काश्मीर में हुआ था । श्रीनगर के मध्य में धीमी गति से बहने वाली जेहलम नदी पर बना अमीरा कदल का पुल । इसी पुल

को पार करके जेहलम नदी के बाँयें किनारे पर स्थित पंचमुखी हनुमान जी का प्रसिद्ध मन्दिर है। इसी हनुमान मन्दिर के गेट के ठीक सामने के क्वाटरस, जिन में लकड़ी की नक्काशी का बेहतरीन काम था, बज़ीर लछमन की मलकीयत थी। इन्ही क्वार्टरों में एक में बसोहली वालों के घर के बड़े बेटे का जन्म हुआ था।

फरवरी, यानि मध्य माघ का महीना। वर्फवारी का मौसम, अभी टला नहीं था। पहले पुत्र का नाम रखा गया "यशपाल"। घर में पाल ही कहा जाता था। इसी छोटे नाम पाल से ही सभी रिश्तों का संबोधन जुड़ गया जैसे पाल की भाबी (माँ दुर्गा देवी) पाल के बावू जी (पिता हरदयाल शर्मा) तथा घर के अन्य लोग। ठीक इसी के चलते मुझे भी रक्षा कहने के बजाये कच्ची छावनी के सारे गली मुहल्ले वाले तथा घर के लोग और सगे संबधी पाल की लाड़ी ही कहते थे।

हमारे बावू जी (ससुर) उन दिनों श्रीनगर में रैविन्यू विभाग में काम करते थे। कवि का जन्म तो काश्मीर में हुआ था परन्तु बचपन कला नगरी बसोहली, अपनी ननिहाल में बीता था।

शैशव काल-गीली मिट्टी सा कच्चा मन। आस-पास जो भी देखने सुनने में आता उसी की छाप मानस पटल पर अंकित हो कर रह जाती। कला के प्रति रूझान की देन में प्रतिवर्ष नवरात्रों में मनाई जाने वाली रामलीला का बहुत योगदान रहा। पहले बसोहली राम लीला फिर जम्मू में दीवान मन्दिर और विल्लु मन्दिर की राम लीला।

इनका अपना ही कहना था कि, "जब मैं चौथी क्लास में पढ़ता था तो बानर सेना में शामिल हुआ, वह भी अपने मामा अमीर चन्द पुरोहित की बहुत खुशामदें करके - एक प्रकार से ज़िद करके ही। बसोहली राम लीला का आयोजन दोपहर को होता था। जब की रात को गैस के लैम्प की रोशनी में हिन्दी नाटक कृष्ण सुदामा, विल्वमंगल, रूकमणिहरण, श्रवण कुमार जैसे धार्मिक नाटक खेले जाते। मामा बाँसुरी बजाने में बहुत दक्ष थे। बाँसुरी ले कर कृष्ण की भूमिका में उतरते।

यही से अभिनय का रूझान भी शुरू हुआ था पर पूरा मंच मिला कालिज के दिनों में। आगा हश्र काश्मीरी का लिखा नाटक "यहूदी की लड़की" कालिज में खेला जाना था। उसमें "शहज़ादा मार्क्स" का रोल

इन्होंने यानि यश शर्मा ने बख़ूबी निभाया था। इस नाटक में यह रोल इन्हें कैसे मिला। अपने हलके फुल्के मूड में इस रोचक प्रसंग का ज़िक्र इनके अपने शब्दों में आगे चल कर ही किया जायेगा।

अभी तो बात चल रही थी बसोहली की। उसी बसोहली की जो जीवन भर कवि के साथ साथ परछाँई की तरह चली आ रही है। जिसकी स्मृतियाँ कवि प्राणों में धड़कन की तरह रची बसी हैं।

बसोहली की राम लीला उस सारे इलाके में प्रसिद्ध थी। दूर दूर से उपर के पहाड़ी गाँवों से उतर कर लोग बाग राम लीला देखने जुटते। रावी पार के इलाके को उन दिनों अंग्रेजी इलाका कहा जाता था। रावी नदी को किश्ती द्वारा उस पार के लोग इस पार आते। उन दिनों कहीं भी किसी होटल रेस्टोरेंट या ढावे के चलन का नाम निशान तक नही होता था। इस इतिहासिक नगरी में खुले मन से सैकड़ों नही हज़ारों की तादाद में राम लीला के दर्शकों के रहने ख़ाने पीने का प्रबन्ध स्थानीय लोगों द्वारा ही किया जाता था। नवरात्रों के दिनों में लंगर लगाने वाले लोग इसे अपना अहोभाग्य मान कर चलते थे। कुछ परिवार जिन पर लक्ष्मी की विशेष कृपा थी उनमें भी उपाध्याय (पाधा) घराने का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इन सीधे साधे सरल अतिथियों का स्वागत सत्कार उत्साह तथा श्रद्धा से धर्म यज्ञ की महान आस्था का पूरक समझा जाता था।

इस अवसर पर इस नगरी का कोई भी व्यक्ति, चाहे भारत के किसी भी कोने में क्यों न रह रहा होता, दशहरे के दिनों में घर जरूर आता और बढ़-चढ़ कर इस उत्सव में भाग लेता।

बैसे ही जैसे दुर्गा पूजा में बंगाल का आकर्षण बंगालियों की आस्था से जुड़ा होता है।

रामलीला के मंच का आयोजन बसोहली के प्रसिद्ध खुले चौगान में किया जाता था। रात के समय धार्मिक नाटकों का आयोजन मंडुये में होता था। मंडुया घने वट वृक्ष की छाया तले होता था। मंडुए के एक ओर नीलकंठ का प्राचीन मन्दिर शोभायमान था तो ठीक पीछे शीश महलों के खंडहर। उन्हीं के साथ लगता एक स्वच्छ सरोवर जिसमें लाल सफेद कमल खिले रहते, स्थानीय भाषा में (तलाऽ) कहलाता था।

तो इसी प्रसिद्ध चौगान की यश शर्मा के बचपन के दिनों तक भी

अपनी ही एक पहचान थी, एक बैभव था, एक सत्ता थी। पर इस वर्त्तमान तक पहुँच कर यही चौगान :-

1 एह चुगान कैसा सुंगड़ेया, राम रहे न उन्दी लीला।
न मंडुए दे कृष्ण सुदामा, न विल्वॉमगल सतभामां।
और फिर आधुनिकता की अंधी दौड़ में सिसकता वर्त्तमान :-

2 हुन कुत्थैं ओह मैहल मनारे, हसमुख चेहरे प्यारे-प्यारे
हिस्ली गेइयां जगदियां जोता, पिच्छे रेही गे सोचां झूरे।

अर्थात् :-

1. इस समय बसोहली रामलीला का वह खुला चौगान यहाँ हज़ारों की संख्या में दर्शक रामलीला के साथ-साथ दूसरे धार्मिक नाटक देखने का भी आनन्द लेते थे (अब सरकारी इमारतों, दफतरों, चौतरफा दुकानों, रेहड़ियों फड़ियों बालों का जमघट तथा सस्ती पंजाबी कैसेटों की धुनों के शोर का फैलता प्रदूषण) इन सब के कारण इस समय सिकुड़ कर एक बिन्दु सा रह गया है।
2. वह महल मनारे नहीं रहे। वह चेहरे, जिन पर अपनत्व की आभा झलकती थी, उन्हे समय ने लील लिया है। अब उस बसोहली के पुराने वैभव की स्मृतियाँ ही शेष हैं जो आगे चल कर संभवत् काव्य की एक निधि बन कर ही रह गई हैं।

पर फिर भी कवि का मन-निराश नहीं, पुराने वैभव की पुनः चाह रखते हुए नये युग की पदचाप का स्वागत करते हुए उसका कहना है कि,

कोई दुःख सन्ताप निं रौंह्ना -
कोई पश्चाताप निं रौंहना -
सब घाटे पूरे होई जाने -
रावी पर जे पुल पेई जा तां
विश्व स्थली बसोह्ली ऐ माँ।।

अर्थात् : रावी पर पुल बनने से बहुत सी कठिन समस्याओं का स्वयं ही समाधान हो जायेगा। पुल ही तो हैं जो प्रदेशों को जोड़ते हैं, दिलों

को जोड़ते हैं। पंजाव और हिमाचल के साथ सुगमता से व्यवसाय का आदान प्रदान होने से खुशहाली आयेगी।

आज से साठ-सत्तर वर्ष पहिले की बसोहली की परछाईयाँ कवि मन में उर्मियों की तरह तरंगित होती हैं और विलीन हो जाती हैं।

अब कहाँ बसोहली के पाँच खण्डों बाले शीश महलों की वह भव्यता, जिसके लिये 1930 में जे सी फ्रेंच ने जब वह बसोहली के चित्रकारों द्वारा बनाये अनुपम चित्रों की तलाश में बसोहली आया था तो यहाँ के प्राकृतिक सौन्दर्य को देख कर रोमांचित हो उठा था। यहाँ के कलात्मक राजमहलों के कारण ही उत्तरी भारत के अजूबों में से सिरमौर थे यह राजमहल।

अब सब कुछ ध्वंस हो चुका है। अब उन पुरानी स्मृतियों की दुःखद चुभन ही शेष है।

तो क्या यही मान कर चला जाये कि शक्ति काल की ही होती है, मनुष्य की नहीं। पर फिर भी मनुष्य का भावना प्रवण हृदय कालजयी होने का जतन करता ही आ रहा है। बिश्वप्रसिद्ध बसोहली चित्रकला तथा उनके चितेरे स्येऊ के पुत्र माणकू और नैनसुख तथा उन चित्रों की प्रेरक रानी मालनी, जिसने राधा कृष्ण के प्रेम प्रसंग पर बसोहली लोक शैली पर अनेकों चित्र बनवाये क्या वह सब अतीत का पुनः पुनः वर्त्तमान बन काल को विजित करने का सफल जतन नहीं है?

"बेड़ी पत्तन सन्झ मलाह" पुस्तक के उत्तरार्ध में "बसोहली वैभव" विराट सागर की एक लघुतम बून्द सदृश जतंन है कवि का।

विश्व प्रसिद्ध बसोहली चित्रकला, रंगों के जादूगर माणकू नैन सुख, अप्रतिम सौन्दर्य प्रतिमा, कृष्ण भक्त रानी मालिनी, निर्मल संयमित स्नेह मूर्त्ति सूरतो, यह सभी शब्दों की रेखाओं में बंध कर चित्रित हो उठे हैं। शब्दों के शिल्पी यश शर्मा के समीप पहुँच कर यहाँ चित्र नही, चरित्र जीवन्त हो उठे हैं।

इसी पुस्तक की अंतिम लम्वी एक कविता है "हुन मैं उत्थैं नेई रौह्न्दा" अर्थात् अब मैं वहाँ नहीं रहता। उन्होंने स्पष्ट कहा है कि, "पर चेतें दी बारादरिया च/हर चीज उस्से चाली मजूद है/जिआं अज्जे कोला सट्ठ (60) संह्त्तर (70) वरेह् पैहले हीं" अर्थात् यादों की बारादरी में हर चीज़

उसी तरह मौजूद है जैसे साठ, सत्तर वर्ष पहिले थी। इसमें बसोहली के बिषय में इतिहासिक घटनाओं के साथ बसोहली जन जीवन में प्रचलित कुछ दन्त कथाओं का इस प्रकार भी समावेश है जैसे फूलों में सुगन्धि। इसी "विश्वस्थली, बसोहली ऐ माँ" के उष्मा भरे स्नेह से यश शर्मा सात जन्म तक भी मुक्ति नहीं चाहते। रानी मालनी और चितेरे मानकू के दर्शन पाने के लिये कल्पों तक प्रतीक्षा के लिये भी प्रस्तुत है कवि आत्मा। उसे इस संसार से मुक्ति नहीं चाहिये।

हिन्दुत्व मान्यताओं में पुर्नजन्म की धारणा को स्वीकारते हुए राधा कृष्ण की छवि और उनके चितेरों के संभवत् कहीं दर्शन हो जायें।

इसी बसोहली में गीतकार यश का बचपन बीता था। संभवत् इसी लिये प्रकृति के सहज सरल रूप के साथ रहने में, उसे देखने में, उससे बातें करने में एक विशेष आत्मीय आनन्द का अनुभव करने का बीजमंत्र अनजाने में ही, नाना के घर का काम काज करते बाँको ठाकुर द्वारा बालक यश के सरल भोले मन में बो दिया गया था।

गर्मिओं में साँझ के सुहाने समय जब सूरज का लाल गोला धीरे-धीरे रावी नदी के जल में विलीन होने को होता तो घर के काम काज से छुट्टी पाकर बाँको नदी में नहाने जाता।

गौड़ पुरोहितों का यह लाडला दोहता (दौहित्र) घर बालों के लाख मना करने के बावजूद उस के साथ जाने की ज़िद करता।

बालक का हाथ थामें, धीरे धीरे ढक्की की ढलवान ढ़लते हुऐ बाँकों खुशी से भर उठता। वह बहुत सी आर पार की बातें करता, जिस में शायद मनघड़न्त लुभावनी बातें ज्यादा ही होती होंगी।

पर इस सुन्दर विश्व को आँख खोल कर देखने की जिज्ञासा और उसकी पहिचान करवाने वाला एक मात्र वह प्रौढ़ ठाकुर ही था। उसी ने पहाड़ी पेड़ पौधे, तुनु, कभीला, द्यम्मन, खैर, गरने की झाड़ियाँ फकबाडे, गंढीला, थोह्र, बसूहटियाँ, इल्लुवाँ, व्रह्मीबूटी बिल्वपत्र तथा दरेक और नीम की कोमल पत्तियों का बारीक सा अन्तर इन सब की पह्चान करवाई थी।

जंगली पशु-पक्षियों और उनकी बोलियों से भी वह खूव परिचित था। खास कर सुग्गे और कोयल की कूक की पूरी पूरी नकल सहज में ही

उतार लेता था।

"आज जीवन यात्रा पथ पर इतना आगे बढ़ जाने पर भी यश शर्मा दोनों हाथों से घुग्घु बजा कर अपने नाती-पोतों को बहलाते हैं तो अन्तर के किसी कोने में वही गुरू बाँको झाँक उठता है।

बसोहली बिलावर, भडडू , चम्बा के राजाओं के आपसी बैर बिरोध तथा राजमहलों के खंडहर होने की भी बहुत सी सुनी सुनाई कहानियाँ उसे ज़ुवानी याद थीं।

बाँको उस समय गुरू की भूमिका निवाहता और बारह तेरह वर्षीय पाल एक शिष्य की तरह मुँह बाँये पूरी निष्ठा के साथ बाँको ठाकुर जी के इस गुरू ज्ञान को सुनता रहता तथा चकित हो कर उल्टे सीधे प्रश्न करता रहता।

क़भी कभी नदी किनारे उस शान्त एकान्त बातावरण में बांको खूव खुले गले से लोक गीत गाता। जिनके सुर अबोध बालक के मन को झकझोर जाते, चाहे यह सब समझने बूझने की उम्र उस समय बिलकुल भी नहीं थी। फिर भी स्वतः नाद सुख के आँसू बन्द आँखों की कोरों से टपक पड़ते जिन्हें सलज्ज भाव से चुपचाप छिपा लेना जरूरी था।

राबी किनारे के दो पत्तन थे। बेड़तन और खड़ात्तन। इन्हीं पत्तनों परे दरिया के ठंडे पानी से जमने वाली खोये मलाई बाली वर्फ खाने का प्रलोभन भी क़म नहीं था। पैसों की बसूली शाह नाना से की जाती थी। बड़े नाना मीठी हंसी हंसते हुऐ आँख सिकोड़ कर पैसों की अदायगी करते, यह जानते हुये भी कि इस में किसका कितना हिस्सा है।

"अब यह दोनों पत्तन रणजीत सागर डैम में जल स्माधि ले चुके हैं" सर्द रातों को नाना, मामा लोग ग्याने (अलाव) के इर्द-गिर्द बैठ जाते और भी आस पड़ोस के बडे-वूढ़े भी घरों से खा पी कर, लोई पट्टू ओढे हाथ में गुडगुड़ियाँ लिये परम निश्चिंतता से उस रात्रिकालीन महफिल में आ जुटते। घर का बना मसालेदार गुड, मुंगफलियाँ, भुने चने खाने को मिलते। शुरू हो जाता किस्से कहानियों का सिलसिला।

अतीत में घटी घटनाऐं ऐसे बयान की जातीं जैसे वह सब उनका आँखों देखा ही हो। बसोहली के अन्तिम राजा कल्याणपाल का वफादार सेना पति, मियां लाज्जा, जिसकी मृत्यु एक षड्यन्त्र के तहत हुई थी।

वही मियां लाज्जा, आधी रात के समय सफेद घोड़े पर सवार राजमहलों से उतर कर काड़ काड़ करता हुआ गलियों से गुजर कर नगरी के मुख्य द्वार पर बनी अपनी हवेली की ओर जाता जिसे देखने का दावा कोई कोई इस महफिल में वड़े रहस्य भरे संकेतिक लहजे में करता। यानि (मियां लाज्जा का प्रत्यक्ष भूत) स्वयं तो नहीं पर उनकी पहली से पहली पीढ़ी द्वारा देखा गया था।

राजाओं के समय की इसी बसोहली नगरी का मुख्य द्वार पहले सिंह द्वार, फिर सिंग परोली और अब सेरी शब्द में सिमट कर रह गया है। अपने आप में अद्भुत हैं, यह शब्द यात्रा भी। यहाँ के निवासियों में भी, पाठक, पाड़क/उपाध्याय,/पाधा/मिश्र, मिस्सर/घवन, धम्म/ एवम विश्व स्थली, बसोहली/ बन चुकी है।

साँझ समय पूजा घर में दीपक की मद्धिम शीतल रोशनी में माँ और मासियाँ मीठे सुरों में भजन आरतियाँ गाती। घर का यह बालक भी सुरों में सुर मिला कर गाया करता, जब कि दूसरे हम उम्र बच्चे गली चौगान में खेलते दौड़ते।

मासियों का ससुराल राजदरवार से सबंधित था। बसोहली के पाधा खानदान द्वारा भेट स्वरूप दिया गया "नलदमयन्ती" का चित्र आज भी जम्मू के अमर महल की शोभा बढ़ा रहा है।

शायद यहाँ यह उल्लेख करना भी जरूरी है कि, यश शर्मा की दिनचर्या में आने वाले वर्षों में सिग्रेट के जो कश 35-36 वर्ष लगातार चलते रहे, उनका आदि गुरू भी यही बाँको ठाकुर ही था।

एक विशेष प्रकार की-मिट्टी से बनी चिलम जिसे लम्मी टोपी कहा जाता था। गीले कपड़े के एक छोटे से टुकड़े से लपेटी जाती। इस कपड़े के टुकड़े का नाम साफी होता। (शायद इस पतले सूती कपड़े का नाम साफी इसलिये रखा गया होगा कि साफी समेत चिलम का कश लगाने पर धुआं साफ हो कर अन्दर तक जाता होगा) उसी चिलम में तम्बाकू भरा जाता जिसे गुरू के साथ उसका छोटा सा चेला भी एक दो कश जरूर लगाता। नदी किनारे के पेड़ों की घनी छाया में यह खेल चलता। बाँकों के मना करने पर दो एक कश मार ही लिये जाते।

यह तो हुआ पर उस सरस, संवेदन शील ठाकुर की सब से बड़ी

देन थी कि लोक गीतों का जादू अवोध कवि अन्तर में अनजाने ही जगने लगा था।

अनजाने ही उस धरोहर में, चारों ओर फैली हरीतिमा बनस्पतियाँ, जंगली फल फूलों एवम् कलकल वहते नदी-नालों, झरनों का मद्धिम संगीत, बाँसों के झुरमुटों में से सीटियाँ बजाती गुजरने बाली हवा ‹.. झोंकों का मौन सन्देश, कोयल की मीठी तान-झींगुरों की आवाज़ की पहचान चिड़ियों की चहचहाहट की सौगातें उसी में शामिल होने लगी थीं।

प्रकृति का यही उज्जवल रूप कालांन्तर में यश शर्मा के गीतों का आधार बना। फागुन की सुहानी रूत्त अपने आनें का पता जताती है।

बन्झे (बाँस) दे जाड़ें च ब्हा ओ (हवा)
गीत सुनान्दी लंगी जा ओ
सुनेयो-कुतैं जरूर-सुहानी रूत्त आई ऐ।
(गीत, रूत्त सुहानी, पृष्ठ संख्या-ll)

अर्थात : बांसावलियो में से गुज़रने वाली हवा, गीत (सीटियाँ) सुनाती हुई पास से गुज़र जाती है। अरे ओ! तुम भी जरूर सुनना। (सुन सको तो)

नदी के जल में सिन्दूर लुटाती लालिमा, धीरे-धीरे उतरती श्यामल साँझ की उदासीनता की मौन भाषा का सन्देश अब स्वयं ही प्रकृति देने में तत्पर थी, इस कोमल मना बालक को। संभवत् वह नितान्त अनपढ़ प्रौढ़ बाँको-स्वयं भी नहीं जानता होगा कि, उसकी कही हर बात इस अबोध श्रोता बालक के जीवन में किस भविष्य की नींव का सूत्रपात कर रही है। किसे पता था कि आगे चल कर प्रकृति सौन्दर्य के चितेरे गीत कार यश के मन में साँझ अपने बिविध रूपों में इस प्रकार जीवन्त एवम् मुखरित हो उठेगी, कि समय पा कर यश शर्मा को सांध्य कवि (संझदाकवि) ही कहा जाने लगेगा।

जनता द्वारा "गीतों का राजकुमार" के साथ अलबेला लोक रसी गीतकार की उपाधि भी स्वतः आन जुड़ेगी।

सांझ के कुछ एक चित्र :- रचयिता की दृष्टि में -

तूं नेई दिक्खी ढलदी सन्झ ?
बल्लें बल्लें घलदी सन्झ
हासें नैं पत्यानी तूं
रंगें कन्नें छलदी सन्झ ।

अर्थात :- क्या तूने ढलती साँझ को नहीं देखा ? जो धीरे-धीरे अपनी ही लालिमा में विलीन होती जाती है। (अरी) तुम भी तो अपने मधुर हास से मेरे मन को बहलाती हो। और मायावी रंगों से मुझे छल जाती हो।

संध्या का एक और चित्र
लाल घड़ोलू चुक्की ऐ-
ढलदी जन्दी ढक्की सन्झ।

अर्थात :- लगती है मुझे संध्या ऐसे, जैसे कोई ग्रामीण बाला लाल रंग का घड़ा उठाये जलाशय से जल भरने को ढलवान से (ढक्की) उतर कर जा रही हो।

कुसे ठगूरे ठग्गी लेई -
भोली भाली झल्ली सन्झ।

अर्थात :- कौन है वह ठग ? जिसने इस भोली भाली सरल मना, पगली सी संध्या को दो मीठी बातें करके ठग लिया है।

हैरानी की बात है कि, कवि की जीवन यात्रा के साथ-साथ यह संध्या आज दिन तक बराबर साथ निभाती चली आ रही है।

उर्वशी की तरह अनन्य यौवना संध्या, कवि के बदलते दृष्टिकोण के साथ विविध रूपों में परिवर्तित होती चली गई है।

कालिज की छुट्टियाँ होते ही यही प्रकृति सम्मोहन ही पहाड़ी प्रदेशों में घूमने का प्रेरण स्रोत बन जाता। काँगड़ा, पालमपुर, धर्म शाला आदि स्थानों में तथा रावी के पार चबाड़ी, चम्बा, फंगोता, दरकुअ धारबंगला, बकलोह जैसे पहाड़ी क्षेत्रों को निकट से देखने समझने का अवसर खूव मिलता था।

इन पहाड़ी ग्रामीण क्षेत्रों के निवासियों के रहन सहन के तौर तरीके, रंग रूप, दुःख सुख, भोले भाले गद्धी जाति के चरवाहों के जीवन के

अभावों को मन की गहराई से महसूस किया।

"मेरा देस" एवम् "चाह" जैसी कविताओं की रचना में यही मनोभूमि रही होगी। यह विशेष अवसर मिला था बसोहली के श्री जी. डी. अबरोल द्वारा। जो बड़े भाई जैसे होने पर भी मित्र अधिक थे।

जी. डी. अबरोल पंचायत अफसर थे। उनका आग्रह भरा पत्र मिला कि वह बसोहली के उपर के पर्वतीय क्षेत्रों की पंचायतों का निरीक्षण करने जा रहे हैं अतः वह मुझे भी साथ ले जाने को उत्सुक है। ताकि, मैं इन पिछड़े पहाड़ी क्षेत्रों को तथ उनकी लोक संस्कृति को निकटता से देखूं, समझ सकूं।

यहां कवि का अपना कहना था कि, क्या मनुष्य के अपने ही विचार उसके कर्म को केन्द्रित करते हैं ?

पर इससे पहिले, जी.डी. अबरोल का कुछ परिचय ऐसे है :-

जी.डी. अबरोल मेरे (यश के) बचपन से ही मित्र थे। जम्मू में पंजतीर्थी मुहल्ले के बिल्लू मन्दिर तथा **सर्दारों** के मन्दिर में शाम के समय हम कुछ साथी मिल कर भजन तथा भेटें गाया करते थे। इन साथिओं में भाना गनेश, नन्दू, जगदीश तथा शिवनाथ और शंभु इस कीर्त्तन मंडली में भाग लेते थे।

भक्ति भाव से अधिक मन्दिर मे आसानी से सुलभ हारमोनियम ढोलक मंजीरे छेनियाँ आदि का आर्कषण अधिक था। अबरोल हारमोनियम बहुत मीठा बजाता था। कंठ भी उसका सुरीला था। कुछ साथी ढोलक पर थाप देने में माहिर थे।

अबरोल हम सब साथिओं से बड़े थे और मैट्रिक पास पर चुके थे जब कि हम सभी छठी-सातवीं च कोई कोई आठवीं क्लास में ही पढता थ। उस कीर्त्तन मंडली में तो बिन्दु जी महाराज के भजन गाये जाते य फिर डोगरी कवि हरदत्त जी की प्रसिद्ध रचना,

कृष्ण गोबिन्द गोपाल गाते चलो -
मन को विषयों के विष से बचाते चलो।

य फिर भज गोविन्दम, भज गोविन्दम, गोविन्दम भजमूढ़मते।।

यह सब भजन गाने के लिये ही गाये जाते थे। अर्थ क्या है? य

फिर मन किस चिड़िया का नाम है, ख़ाक भी पता नहीं था।

हाँ सिर्फ कृष्ण, गोविन्द, गोपाल से जरूर कुछ वास्ता था। मन्दिर की सुन्दर संगमर्मर की मूर्त्तियाँ, सुन्दर वस्त्राभूषाणों से सुसज्जित य फिर बाज़ारों में विकने बाले कैलेडरों की मार्फत। य फिर मेले में बिकती मिट्टी की रंग विरंगी देवी देवताओं की मूर्त्तिओं के माध्यम से ही यह परिचय था। चलो जो भी हो। अबरोल की इस कीर्त्तन मण्डली के हम सब अनुयायी थे। किसी विशेष पर्व उत्सव पर अधिक भक्तजनों को इकट्ठा देख कर जिनमे महिलाओं की संख्या ही अधिक होती थी - वहीं हमारे मुहल्ले बाज़ार के दुकानदार तथा बृद्ध निहाल शाह, जगत राम पंसारी पद्‌म नाभ अर्क वाले, हरि गरी खोपा, छज्जू बज़ीर तथा परस राम तन्दूरिया वगैरा भी होते थे। तब आँखें मूंद कर खूब जोर शोर से पंजाबी में भज़न गाये जाते। मुख्य रूप से

झूठ बो बोलना ऐं, घट्ट बी तोलना ऐं

नाले कैहन्ना राम नूं मिलां

अर्थात् : झूठ भी बोलते हो - घट्ट (कम) भी तौलते हो। फिर भी कहते हो राम के दर्शन मिलें। कीर्त्तन के माध्यम से हम उनके कारनामें ही उन्हें जतलाते तो वह हमारे इस व्यंग्यके पुट वाले कीर्त्तन को सुन कर मन्द-मन्द मुस्कराते। कुछ एक तो इनमें से एक आँख सिकोड़ कर गर्दन खुजाना शुरू कर देते।

पर कीर्त्तन की लय और भी मधुर और सजीव हो उठती जब मुहल्ले की किशोरियाँ आस-पास मंडराने लगती। इन्हीं जी.डी. अबरोल के साथ समानी के रास्ते महानपुर धार के ज़ैलदार के घर हम मेहमान बन कर ठहरे। इसी बीच, बांकों के प्रति भी कवि का भाबुक मन अकृतज्ञ नहीं था। जब उसके गाँव पहुँचे तो बाँकों बूढ़ा हो चुका था। जो भी बन पड़ा उसको बड़े आदर से अर्पित करके मन को बेहद राहत महसूस हुई।

तब तक ननिहाल का बैभव भी कुछ एक वुज़र्गों के न रहने से जीर्ण-शीर्ण हो चुक था।

बहुत सी धारों पहाड़ों पर घूमना हुआ। वाँझले दी धार, सरथल, जौड़े माता (शीतला माँ) के दर्शन किये।

यहीं पर बहुत से लोगों से मिले, डोगरी, पहाड़ी, कश्मीरी, साँझी

बोली बोलने बालों से भी बात चीत हुई ।

यहाँ पर भी दुःख सुख भरे गीत सुनने को मिलते । लोक प्रचलित, असंभव सी राजाओं-रानियों बज़ीरो, पशु-पक्षियों की कथा कहानियों के साथ अजीवो गरीव भूतों परियों के किस्से भी जरूर जुड़े होते ।

कभी-कभी तो अलौकिक चमत्कारों के प्रति इन लोगों की श्रद्धा और विश्वास का अपना ही माप दंड होता । यहाँ आ कर लेखक को ऐसा महसूस हो रहा था कि, एक युग से दूसरे युंग में चली आने वाली इन पहाड़ी लोक परम्पराओं और लोक संस्कृति के जीवित तत्त्व तो इन्हीं भोले भाले अशिक्षित लोगों के पास ही सुरक्षित हैं ।

और भी एक कठिन सच्चाई सामने आई कि नारी जीवन की करूण धारा का अजस्त्र प्रवाह सभी जगह मौजूद था । अधिकांश लोक गीत तो जैसे इस पर्वतीय क्षेत्र के समाज मे गरीबी और श्रम की पीड़ा से ही निसृत हुए थे ।

एक बहुत बड़ा कड़वा और दुःखद सत्य भी दीख पड़ा कि, इन लोक गीतों में य लोक कथाओं में नारी उत्पीड़न का इतिहास ही अधिक संचित है । दूर दराज़ के कई गाँव तो ऐसे थे, जिनक पिछड़ा पन देख कर मन लज्जित होने के साथ साथ दुःख और मायूसी से भर उठता ।

रोजी रोटी कमाने का कोई स्थायी तथा निकट साधन न होने के कारण नितान्त अभाबों की मार झेल रही थी यहाँ की जनता । साथ ही साथ न तो कोई शिक्षा का साधन-न ही कोई स्वास्थ्य की सुविधा इन तक पहुँच पाई थी ।

यहाँ का युवा वर्ग नीचे के मैदानी इलाकों में मेहनत मज़दूरी करने को बिवश था तो जम्मू के आस-पास के कंडी क्षेत्र में भी कोई उद्योग धंधा न के बराबर था । कंडी के इस क्षेत्र में धरती तो प्यासी रहती ही थी वर्षा के कम य न होने पर जन जीवन भी बुरी तरह प्रभावित होता था । धरती जल से सिंचित हो तो वनस्पतिओं में रस संचार होता है ।

दूर पहाड़ों की अपनी समस्याऐं थीं तो कण्डी क्षेत्र की बंजर धरती की वेदना का अपना रूप था पर एक चीज़ अभाव-भाव दोनो जगह समान था । इस डुग्गर प्रदेश के प्रकृति पुत्र समान रूप से दुःख तकलीफों, रोगों तथा अन्याय एवम् शोषण से जूझते तथ क्षुब्ध दिखाई दे रहे थे ।

इन सभी स्थितिओं ने जैसे कवि मन को, प्रकृति और मानव के जीवन को एक दूसरे के विलकुल आमने सामने ला कर खड़ा कर दिया था। उस समय सम्वेदना की हार्दिक पीड़ा और परिताप को शान्त करने की एक चाह ने यश के अन्तःकरण को झकझोर डाला था।

इस चाहत में शब्दों द्वारा आशा का एक दीप जला कर अनेकों रंगों के सपने तो बुने जा सकते थे जब कि कार्य रूप में परिणित तो कुछ भी नहीं किया जा सकता था।

कवि, न तो नेता है न कोई धर्म गुरू और नही किसी सत्ता का प्रतीक। उसके पास तो होती है केवल शब्दों की सांत्तवना और सत्य की एक ज्योति, जिसकी लौ में यथार्थ को देखा-परखा जा सकता था।

"चाह्"

संझ सवेरे इक्के चाह् -
मेरी कॅंडिया बी कोई बद्धल
ठंडे मिट्ठे नीर बरा।
पत्तर पत्तर कमलाये दा, बूटा-बूटा धरयाये दा
जलथल कर 'बर इन्ना' बर तूं- सब किश हरा भरा होई जा
संझ सवेरे इक्कै चाह।

अर्थातः (प्रभात और सांध्य बेला, प्रार्थना के पुनीत क्षण)

सुवह और शाम मेरे जीवन की तो बस एक ही चाहत है एक ही उत्कट इच्छा है कि मेरी बीरान और बंजर धरा (कंडी क्षेत्र) पर कोई शीतल मीठे जल से भरा बादल जी भर बरसे। धरती के पेड़ पौधे, तृण-तृण, पत्तर पल्लव सब प्यासे हैं। "हे घनश्याम" बादल बन कर यहाँ इतना बरसो कि, यह सारी मरू धरा-जल थल हो जाये जिससे सर्वत्र हरियाली ही हरियाली छा जाये, यही चाह है।

2. मेरे प्हाड़ें बी कोई सूरज-खिड़ खिड़ हसदी धुप्प चढ़ाऽ
कोई सीतो सीते दी मारी, करैं नि ठुर ठुर कुतै बचारी
गद्धी-गुज्जर रस्सन बस्सन, चीड़ें दा बन चंवर झुलाऽ।।

संझ सवेरे इक्कै चाह् ।।

अर्थात : मेरे इन पहाड़ों पर सूरज की खिलखिलाती हंसी जैसी धूप खिल उठे ताकि सीता नाम की कोई लड़की शीत से ठिठुरती काँपती कहीं भी न देखने में आये ।

गद्धी और गुज्जर (पहाड़ों के स्थानीय निवासी) आपस में प्यार मुहब्बत से रसते बसते रहें। चीड़ों से भरे विशाल जंगल अपनी स्वच्छ प्राणदायिनी वायु से इन लोगों पर चंवर झुलाते रहें (जिससे यहां के निवासी सदा निरोग रहें) यही चाह है ।

3. मेरी भुञ्जां बी कोई लछमी-पक्के पैरें बस्सी जा
मेरे माह्नू रिजकैं मारे-घर छोड़ी निं जान बचारे -
दर्द बछोड़े, जालो खाले, भुक्ख गरीबी संभी जा ।।

अर्थात् : मेरी इस धरती पर कोई लक्ष्मी स्थायी तौर पर निवास करे - ताकि यहाँ के बसनीक रोजी रोटी की तलाश में घर बार छोड़ कर बाहर न जायें। विछोड़े की दर्द पीड़ा वैर विरोध-भूख गरीबी, सब का अन्त हो जाये । यही चाहत रहती है सुवह शाम।

अन्तिम बन्द में कवि का निवेदन है कि -
कोई कवि मेरी धरती गी गीतैं नैं शंगारी जा
गीत लिखे धारें ब्हारें दे, बन पर्वत नदियें नालें दे
सोह्ल छलैपें दे केसें च अपने हत्थें फुल्ल सजाऽ

अर्थात : कोई कवि, कोई गीतकार, अपने गीतों से इस धरती का श्रृंगार करे । वह गीत लिखे, हरी भरी धारों के, सुन्दर बहारों के, बन पर्वत मालाओं के, कलकल नाद करते नदी नालों के और इस प्रकृति सुन्दरी के कोमल स्निग्ध केशों में अपनी रचनाओं के शब्दों से विविध रंग के पुष्पगुच्छ सजा दे ।

इस कविता में कंडी तथा पहाड़ी क्षेत्र के निवासियों के साथ जैसे एकाकार हो गया है कवि का अपना जीवन भी ।

आज भी याद है, इस गीत को सुन कर श्री विजय पुरी, जो उन दिनों पंत एग्रीकल्चर यूनिवर्सिटी के विद्यार्थी थे, उन्होंने इस गीत को आत्म सात किया था और खूब सराहना भरा पत्र लिखा था ।

बाद में डा. विजय पुरी वाल साहित्य के प्रसिद्ध लेखक तथा व्यंग्यकार के रूप में डोगरी साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान बना पाने में सफल हुए हैं।

इन्ही पहाड़ों पर घूमने फिरने से लोक-साहित्य की जिस समृद्ध परम्परा से परिचय हुआ, उस से कलाकार का हृदय उन अनाम रचनाकारों के प्रति असीम श्रद्धा तथा विशेष प्रकार के गर्व से भर उठा।

यह लोकगीत प्रायः बसोहली, बनी, भद्रवाह तथा रावी के पार हिमाचल के चम्वा क्षेत्र तक मामूली से भाषाई फेर बदल के साथ समान भाव से गाये जाते थे।

कुछ लोक गीत ऐसे थे जो पैहली बार महान पुर की धार में करीमी और चमोड़ी नाम की दो पर्वत कन्याओं से सुनने को मिले थे।

वह गीत वैसे के वैसे ही पिता यश ने अपनी पुत्री सीमा को बचपन में ही कंठस्थ करवा दिये थे।

1982-83 में इन्हीं गीतों को लोक धुनों का सफल प्रयोग जम्मू रेडियो स्टेशन के सुयोग्य म्यूज़िक कम्पोज़र सरदार प्रीतम सिंह जी ने सीमा के स्वरों में किया।

यह लोक गीत, अपनी धरती के लोक-मानस के मनोभावों की सहज, सरल, स्वच्छन्द अभिव्यक्ति के साथ साथ इनमें अनजाने ही संगीत तत्त्व का होना इन का विशिष्ट गुण तथ स्वभाव रहता आया है।

गीतकार यश की आत्मा में जन्म-जात संगीत था। इस लिये उनकी प्रथम गुरू तो पर्वतीय प्रकृति तथा डुग्गर प्रदेश के वह लोक गीत ही माने जा सकते हैं जिनको जीवन में आगे चल कर गहराई में डूव कर सुनने समझने परखने का उत्तरोत्तर अवसर मिलता ही रहा।

यश शर्मा की रचनाओं में जो शब्द सिद्धि है वह भी इन पर्वतों की ही देन है। कुछ एक लोक गीत तो कवि की आत्मा में नाद बन कर ही समा गये, उनमें से एक दो लोक गीतों का रंग देखिये।

जिन्दे कैन्त गे पीरा प्रार -
सो किआं जीन्दियाँ, मेरी जान
अत्थरूं पीन्दियां मेरी जान।

ओ जम्मू देया राजेया
इन्हें नौकरें घर भेज, इन्हें चाकरें घर भेज -
गोरी जिऊड़ा डोलेया मेरी जान।

अर्थात :- कैसे जीवित रहती है, उन की पत्नियां जिन सिपाहियों को पीर पंचाल पार युद्ध लड़ने के लिये भेज दिया गया है। इन नौकरों को (सिपाहियों) वापिस घर भेज दो, उन की पत्नियां, आंसू पी कर जी रही हैं और मन भय से डोल उठे हैं। (हे जम्मू के राजा, इन को वापिस भेज दो) अगले बन्द को घ्यान से परखने की विशेष आवश्यकता है।

माला तेरी पंज लड़ी, ओ जम्मू देया राजेया।
साढ़ा किल्लिया टंगोया हार।

अर्थात् : तुम्हारे तो पाँच मालायें है, अर्थात् तुम्हारी तो पाँच रानियां है। हमारे पास तो एक ही हार अर्थात् हमारा एकमात्र सर्वस्व तो हमारा पति ही है, जिसे तुमने सूली (किल्लिया) पर चढ़ा रखने की तैयारी की है, ओ जम्मू के राजा जी।

ओ सब्ज पखेरूआ :
इने पखेरूयें गी नेंई मार -
असां जीवणां दिन चार -
मुड़ी नेंई आवण मेरी जान।।

अर्थात :- अरे ओ! सब्ज रंग के पक्षी। (बाज रूपी राजा) इन निरीह पक्षियों (सिपाहियों) पर इतना अत्याचार मत कर। अपनी राज सत्ता की आकांक्षायों की पूर्त्ति के लिये इनको युद्ध की ज्वाला में मत झोंक। हमारे मन में भी इनके साथ चार दिन सुख से जीने की अभिलाषा है। जानें - पुर्नजन्म मिले न मिले। नारीमन का ऐसा करूण आर्त्तनाद शायद ही किसी विश्वके लोकगीत में सुनने को मिले। नारी मन की यह विश्व व्यापी सुकोमल भावना आज भी सर्वत्र विद्यमान है कि कहीं भी युद्ध न हो - पर पुरूष प्रकृति का दंभ जाने कहाँ और कब शान्त होगा। प्रस्तुत लोक गीत का यह तो ठहरा भाव पक्ष अब ज़रा कला पक्ष का भी अवलोकन करें। पंजलड़ी (पांच रानियाँ)। किल्लिया (युद्ध की विभीषका)। हार (पति) सब्ज पखेरूआ (बाज पक्षी रूपी राजा)। पखेरू (निरीह जनता)। अत्थरू पीन्दियाँ (विबशता) और फिर जीवणां दिन चार (चिरन्तन सत्य) मुहावरे के साथ पंजाबी भाषा

की उपशाखा पोठोहारी शब्द का जीवणां (जीना) का प्रयोग-क्या प्रौढ़ काव्य शिल्प का साक्षी नहीं है ? डुग्गर मे वोली जाने वाली बोलियों का समन्वित रूप नही है ? लगता है यह लोकगीत उस समय का है जब जम्मू-कश्मीर रियासत के बानी महाराजा गुलाव सिंह का बहादुर जरनैल जोरावर सिंह डोगरा सिपाहियों के साथ हिमालय के उच्च श्रृंगों और देश से गुजर कर लेह लद्दाख, तिब्बत तक जा पहुँचा था। उन भोले लोगों के लिये पीर पंजाल की एक श्रृंखला ही सारा हिमालय थी। सिपाही जाते तो थे पर वापिस बहुत कम आते थे लगता है इस लोकगीत के जन्म का यही कारण रहा होगा। विद्वानों का भी यही मत है।

सदियों पहले डोगरी भाषा के ऐसे लोकगीत तो सारे बिश्व के लोक साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। एक और लोकगीत :-

कंगन घड़ाई तेरे मापेयां भेजे -
उप्पर रोक रूपईया
दीये दीआ लोई गोरी पैहनन लगीऐ
नैण होये मतवाले।
तुस की रोन्दे ओ, चरजियो नैणों
खूनियो नैणो
राँझन छैल पराया।।

इस गीत का भाव कुछ इस प्रकार है कि :-

मायके से अपनी लाडली बेटी के लिये मातो पिता ने कंगनों की जोड़ी घडवा (बनवा) कर भेजी है। साथ में शगुन का रूपया भी है।

रात्रि के समय दीपक की रोशनी में वह गौरवर्णा नववधू कंगनों को पहिनने लगी है। पर यह क्या ?

उसके नयन क्यों मतवाले हो उठे हैं अर्थात् आँसुओं से भर उठे हैं। तत्पश्चात दर्पण में अपने लावण्यमय यौबन को निहार कर अपने ही नयनों से पूछती है कि, तुम क्यों रो रहे हो ? और रोने से खून (रक्ताभ) की तरह लाल हो उठे हो।

क्या इस आश्चर्य से चकित हो कि (चरजिओ नैणों) जो तुम्हारा छैल राँझन (सुंदरपति) है वह इस निःस्तवध रात्रि के एकान्त में तुम्हारे

सन्निध्य में न रह कर किसी अन्य के प्रेम में रमा है। इस लोक गीत की गहराई की थोड़ी सी जानकारी लेने से पहले, इस सत्य को जान लेना बड़ा जरूरी है कि, कोई भी युग कोई भी वर्ग क्यों न रहा हो, पति द्वारा उपेक्षित नारी की मर्मान्तक बेदना सब कालों में एक सी ही रही है।

इस पीड़ा की तीव्रता, तीक्षणता सदैव ही अश्रु विन्दुओं के माध्यम से निसृत होती रहती आई है।

इस गीत में समाज का वर्ग भेद भी स्पष्ट देखने में आता है। यह गीत किसी श्रमजीवी वर्ग की नारी का तो हो ही नहीं सकता। किसी सामन्ती युगीन समय का भी चित्र नहीं है। यह गीत तो किसी मध्यमवर्गीय परिवार की नववधु के संस्कार शील मन की वेदना का प्रतिनिधित्व करता है।

दीये की लो (रोशनी मे) विरहिणी के रात्रि समय कंगन पहनने का क्या प्रयोजन रहा होगा, गीत के सृष्टा के मन में। जब कि आभूषण आदि धारण करने का उपयुक्त समय तो स्नानादि के पश्चात दिन में ही होता है।

दिन में सूरज का उजाला उन्मुक्त उल्लास का परिचायक है। उस उजाले में परिवारिक-सामाजिक एवम् वैयक्तिक पराजय का कोई भी रहस्य गोपनीय नहीं रखा जा सकता, परन्तु रात्रि कालीन दीपक की रोशनी के एकान्त में लोक मर्यादा की रक्षा भली प्रकार की जा सकती है।

अपने पति को प्रेम पाश में बाँधने में विफल रहने की लज्जा से लज्जित नारी के मन का यह शब्द चित्र है।

बाहरवीं शताब्दी में संस्कृत कवि जयदेव रचित गीत गोबिन्द पर आधारित बसोहली लोक शैली में जो विश्व प्रसिद्ध चित्र बने उन विरह जनित चित्रों से इस गीत को किसी प्रकार भी कम करके नहीं आँका जा सकता।

नारी अन्तर की वेदना को अभिव्यक्त करते, इन लोक गीतों ने कवि अन्तर को कुछ इस प्रकार आलोड़ित किया, अकृत्रिमता से र्स्पश किया कि उनकी अधिकांश रचनायें नारी की मूक वेदना के चित्रण का ही पयार्य बन गई। नारी और धरती की समान रूप से सहन करने की शक्ति को पहिचानने की दृष्टि और शक्ति इन लोक गीतों के माध्यम से ही गीतकार की आत्मा ने ग्रहन की थी।

अन्य भी असंख्य कालजयी लोक रचनाऐं जाने-किन अनाम रचनाकारों ने कब, कहाँ और किन परिस्थितियों में रची होगी। उन रचनाकारों में निश्चय ही एक प्रबुद्ध मनोबल रहा होगा। किसी भी यश मान, बड़ाई, नामं की लिप्सा से एक दम परे। इसी लिये कहीं भी कोई नाम चिन्ह उपलब्ध नहीं है किसी भी रचनाकार का। जब कि, इन लोक गीतों में समाजिक समस्याओं की गहन और समृद्ध अनुभूतियां अद्भुत संगीत सौन्दर्य द्वारा अंकित की गई है। यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि यह डुग्गर का लोक साहित्य, विश्व के किसी भी शिष्ट साहित्य की रचनाओं के समकक्ष मूल्यवान और समर्थवान है।

अतीत की स्मृतियाँ धूमिल हो जाती हैं। आश्चर्य की बात है कि जब यह (मेरे पति) अपने अतीत के पृष्ठ दर पृष्ठ खोलते चले जाते हैं तो लगता है कि, वह सब बीते दशकों की बातें नहीं निकट कल की हैं।

बाँको ठाकुर नहीं भूला तो वह गुणी जन कैसे भूल सकते हैं जो आज भी मन के किसी कोने में सुरक्षित जमें बैठे हैं।

कच्ची छावनी की टाँगे बाली गली यह नाम आज भी वैसा ही है जो बरसों पहिले था। यह गली कच्ची छावनी चौक से बायें तरफ अन्दर को मुड़ती थी।

यहीं, तो वह लोग रहते थे, जो फिर प्रवासी पक्षियों की तरह जाने कहाँ किस ओर अदृश्य हो गये थे। यहीं तोषाखाना भी था

सन् 1947 से पहिले का समय - जहाँ इस समय नटरंग की छोटी सी नाटय शाला है। वहाँ तब कुछ कच्चे घर हुआ करते थे। एक छोटा सा नाला भी बहता था। उन कच्चे घरों में बसने बाले लोगों को बजन्तरी कहा जाता था।

मुबारिक मंडी की बड़ी ढयोड़ी पर बने बुखारचे में प्रातः समय नगाड़ा तथा शहनाई बादन नियत समय पर बजता था। इन बजन्तरी कलाकारों के पूर्वज, पुराने डोगरा राजा महाराजाओं के जमाने में बाहरी प्रदेशों से बुलाये गये थे। उन्हीं की यह सन्तानें इस समय तक पूरी तरह से डोगरी ज़ुबान और डोगरे रहन सहन में रच बस चुकी थीं।

यह लोग कोई अभिजात्य वर्ग के नहीं थे। पर निर्धन होते हुए भी आचार विचार तथा अपनी साधना के प्रति बेहद आस्थावान थे।

शहनाई और नगाड़ा उनकी रोजी रोटी का साधन था, पर उसके साथ-साथ यह अपढ़ कलाकार झंझोटी, ठुमरी, विश्नपते, झूले तथा कजरी चेती, होली तथा अन्य राग रागिनियों की उस्तादी बन्दिशें मीठे स्बरों में गाया बजाया करते थे। उनकी आत्मा में रस था। स्कूल से छुट्टी के दिन य जब भी शाम का समय मिलता, हम कुछ लड़के जिनमें मनसा राम, उमा पंडित तथा स्वयं यश इन सभी की बैठकें बजन्तरियों के कच्चे आंगन में दरेक़ के साये में फटी चटाइयों पर जम जातीं

उन आधे अधूरे खंडित पर सरल चित्त, सीधे साधे बजन्तरियों के पास वंश परम्परागत बन्दिशें खूब थीं, चाहे उनमें सम्पूर्णता की कमी होती होगी पर जो कुछ भी था उसमें गति, लय और ताल का अभाव नही था।

शायद उस गली में उन कलाकारों को किसी ने कभी याद भी नहीं किया होगा क़हने का अर्थ है कि, उन की सत्ता का किसी को भान तक भी नहीं था।

इन्हीं लोगों का एक लड़का था मुकन्दा, जो इन सब के साथ ही रणबीर हाई स्कूल में पढ़ता था। साँवले रंग का सूखा सा लम्बा कद, घुंघराले बाल, चमकीली आँखें।

सातवीं मे दो बार फेल हो कर पढ़ाई छोड़ चुका था। स्वाभिमानी, शान्त स्वभाव का मालिक, बहुत कम बोलता, पर उसी उमर में ढोलक नफीरी बजाने में खूब माहिर। इसी मुकुन्दा को गली मुहल्ले के बच्चे ढोलकू कह कर चिढ़ाते। बसोहली बालों का यही लड़का पाल उसे सीधा ढोलकू ही कहता तो भी वह मीठी हंसी हंसता रहता जो मन को बहुत अच्छी लगती थी। यहाँ इनका अपना कहना था कि, मेरी माँ भी मुकुन्दा को बहुत प्यार करती थी। उन लोगों की सोहबत से मुझे मना नहीं करती - अलवत्ता बावू जी जरूर मेरी इन गतिविधियों से नाखुश रहते।

शाम को खेलने के बहाने घर से निकलता तो अपने हिस्से की सूखी खुवानियाँ अखरोट वादाम की गिरियाँ निकर की जेव में रख लेता, ढीली लम्बी कमीज़ निकर से बाहर रखता, माँ चुपके से मुट्ठी दो मुट्ठी गिरियाँ और दे देती यह जानते हुए भी कि मुझे इन सूखे मेवों की बजाये रसीले फल सेव वग्गू गोशे त्रेलें अधिक पसन्द है। ज़ाहिर था कि यह सूखे मेवे मुकुन्दे के लिये ही होते थे।

घर से निकल कर सीधा जा पहुँचता था मुकुन्दा के घर । समय गुज़रता रहा । गाना बजाना सुनते रहे । मुकुन्दे से दोस्ती बनी रही । लखनऊ बनारस से उनके घर आने वाले रिश्तेदार भी संगीत के ही जानकार होते । हम भी कालिज पहुँच चुके थे । 1947 के विभाजन के दंगे फसाद के महीने डेढ़ महीने बाद श्रीनगर से जम्मू पहुँचने पर पाया कि वह संगीत का घोंसला उजड़ चुका था । राज सत्ता के साथ-साथ शहनाई नगाड़ों के स्वरों ने भी दम तोड़ दिया था, ढोल नगाड़े मौन हो चुके थे ।

उन लोगों के पूर्वज न जाने कहाँ से आये होंगे । पुरूष धोती कुरता पहिनते तथा औरतों का लिवास साड़ी होता । बच्चे तो सभी जगह एक जैसे ही होते हैं ।

हो सकता है कि उन में से कोई नामी गरामी कलाकार उभर कर देश विदेश में अपनी कला के झंडे गाड़ रहा हो ।

बीते दिनों की यादों में रचे बसे और भी कुछ लोग । स्कूल के दिनों के मुहल्ला अफगाना के सहपाठी । गली में दाखिल होते ही सामने वाली डयोढ़ी, यह घर था ज्हूरे (ज़हूरूद्दीन) का । इसी मुहल्ले में जीजा और तीफा दो भाई रहते थे । एक और साथी था छाना (मुहम्मद सुलतान) तीफा गुलेल चलाने में बहुत सिद्ध हस्त था । उसका निशाना अचूक होता । उड़ते पक्षियों पर भी निशाना साधता । संस्कार गत स्वभाव के कारण यह हमें अच्छा नहीं लगता था । हमारे ही एक साथी पूरण भल्ला ने उसे मना किया तो दोनों में खूब झगड़ा हुआ । जिसमें पलड़ा उन दोनों भाइयों का ही भारी रहा ।

फिर भी वह लोग मन के बहुत भले थे । मुहल्ले में य स्कूल में वह दोनों पठान भाई जिसके भी साथी बन जाते पूरे वफादार रहते । चाहे दूसरों के लिये मार ही क्यों न खानी पड़े । नवरात्रों के दिनों में, दीवान मन्दिर में रामलीला होती, हम सब साथी दल बाँध कर इकट्ठे होकर जा पहुँचते रामलीला देखने । तीफा छाती ठोक कर कहता (कदे लछमन दा पार्ट मैनू मिल जावे, तां बेखदे लछमन दा जोश ते कड़ाके पर नेई न मिल सकदा) अर्थात्: कभी लक्ष्मण का पार्ट मुझे मिल जाये तो फिर देखते कि जोश और कड़क क्या होती, पर यह कभी नहीं हो सकता ना । याद आता है कि, वह कितने ध्यान से वह सब अभिनय देखता होगा । अपने स्वभाव के अनुकूल उसे सारी रामलीला में लक्ष्मण का ही पार्ट अधिक भाता था । लक्ष्मण

परशुराम संवाद उसे ज़ुबानी याद थे।

उन दिनों कोई और खेल तो होता नहीं था, पक्का डंगा, मुहल्ला मस्तगढ़, पक्की ढक्की, काली जन्नी, तलाव खटीकां के लड़कों की अपनी अपनी कबड्डी की टोलियाँ थीं। जो अक्सर परेड ग्रांऊड में मैच खेला करती थीं। हम सभी छोटे थे इस लिये दर्शक बन कर मैच देखने का मज़ा लूटते।

एक दफा रणवीर हाई स्कूल और इस्लामिया स्कूल के फुटवाल मैच के दौरान आपस मे मैं-मैं, तू-तू के बाद नौबत मार-पीट तक जा पहुँची। रणवीर हाई स्कूल का खिलाड़ी अशरफ खान जो पास ही उस्ताद मुहल्ले में रहता था। खूव गोरा चिटट्ा, लम्बे कद का चुस्त फुर्तीला और धाकड़ था, उसने इस्लामिया स्कूल के एक लड़के को इतना मारा कि, बात उनके परिवारों तक जा पहुँची। जब अशरफ ख़ान से पूछा गया कि, तुमने अपने ज़ात भाई को इतना क्यों मारा?

अशरफ ने अकड़ का उत्तर दिया - बात स्कूल की इज्ज़त की है। यह ज़ात भाई क्या होता है? जो (रोल) पायेगा वह सज़ा पायेगा। उसे छोड़ेंगे नहीं। स्कूल में साथ पढ़ते थे सलीम दुरानी, सादिक बट। दोनों जज बने। योगेश्वर चोपड़ा सुना था कही कलकत्ता में काम करता है।

यादों में कौंधते हैं, उस्ताद मुहल्ले के लालो लुहार-लतीफ पेन्टर उन सब के साथ और भी अनगिनत चेहरे। उन सब को याद करते हुए कवि का कहना है कि, राम जाने वह सब कहाँ खो गये, कहीं हैं भी य नहीं, हो सकता है वह भी हमें, इन जम्मू के गली मुहल्लों को अपने रणवीर हाई स्कूल को, हमारी ही तरह कहीं याद करते होंगे।

बचपन की यादें तो जीवन के हर मोड़ पर दस्तक देती हैं। स्कूल के साथिओं में से पीछे रह गये थे महमूद अहमद महमूद। खादिम साहिव का सब से छोटा बेटा। खादिम साहिव भी शायर थे। उनकी लिखी पंजाबी नज़्म 'सुबहे कश्मीर' खूव सराही जाती थी। 1921 मे जब अलामा इकवाल काश्मीर आये थे तो उन्होंने भी इस पंजाबी नज़्म की खूब तारीफ की थी। खादिम साहिव के ही बेटे बशीर अहमद बशीर की पंजाबी कविता आबेज़े (वुन्दे) ने भी खूव वाह-वाही पाई थी।

महमूद अहमद महमूद तो रेडियो कश्मीर जम्मू से अबकाश प्राप्ति

तक यश शर्मा के साथ ही काम करते रहे थे। महमूद साहिव का लिखा पंजाबी फीचर "नूरदीन" बहुत लोक प्रिय हुआ था। इस पंजाबी फीचर में अपने अभिनय का जौहर दिखाने बाले थे दो कलाकार। श्री बलदेव चन्द और श्री कृष्ण दत्त। पंजाबी फीचर जालिम खां में पाकिस्तानी थानेदार जो अपने ही लोगों पर कहर बन कर बरसता है, और मनमाने जुल्म करता है। इसका अभिनय करते थे कृष्ण दत्त और उनके नायव का अभिनय करते थे बलदेव चन्द।

रेडियो के उस युग में डोगरी और पंजाबी भाषा में यही दो कलाकार भोले भाले लोगों को ठगने वाले वावा सज्जू के रूप में रेडियो के माध्यम से अपने अभिनय की अमिट छाप छोड गये जनता के दिलों में। देहाती डोगरी पर उनकी इतनी पकड़ थी कि "गोगो लच्छू दी मलाटी" में अपने सशक्त अभिनय से घर-घर में बच्चों का मन मोह लिया था।

इस प्रोग्राम की प्रशंसा में उत्तरी भारत के कोने कोने से पत्र प्राप्त होते थे रेडियो कश्मीर जम्मू स्टेशन को।

इन प्रतिभाशाली चेहरों का समय से पहिले ही अदृश्य हो जाना रेडियो जम्मू के लिये बहुत बड़ी त्रासदी थी। यह सब लोग जा चुके हैं। जिनका ज़िक्र उपर किया जा चुका है। 55-56 वर्ष बीत जाने पर भी उनकी यादें शेष हैं, ज्यों की त्यों ही।

यही कारण हो सकता है कि यश शर्मा के लेखन और व्यक्तित्त्व में कहीं भी कोई संकीर्णता नहीं। बाँटा तो सब को प्यार, गले लगाया तो स्नेह से।

कच्ची छावनी की इसी टाँगे वाली गली में उन दिनों बहुत संभ्रान्त खानदानी लोगों के घर थे। जैसे जज गंगाराम का आलीशान मकान, गली महता सुखदयाल। इसी मुहल्ले की बाँयी तरफ थी वज़ीर आसू की पुरानी भव्य हवेली।

वज़ीर आसू की इसी हवेली में रहता था सागरा सिंह जी का परिवार जो शायद महाराजा प्रताप सिंह के एहलकार य डयोढ़ी अफसर थे। इन के तीन पुत्र थे। सब से बडे थे, होशनाक सिंह। हमारी नौजुआन पीढ़ी के यही होशनाक सिंह नायक थे हमारे मुहल्ले में।

घर में माँ न होने से होशनाक सिंह ही पूरे घर की जिम्मेदारी

संभालते थे चाहे उस समय वह स्वयं भी कालिज में ही पढ़ते थे। तब हम रणवीर हाई स्कूल में थे।

इन्हीं सागरा सिंह के बच्चों को श्री रामनाथ शास्त्री टयूशन पढ़ाने आया करते थे। उन दिनों शास्त्री जी भी राजपूत मैमोरियल स्कूल में पढ़ाते थे। लम्बा कद, तेजस्वी ललाट तथा दृढ़ निश्चयी चेहरा, देखने वालों को प्रभावित करने में सक्षम। उन दिनों को याद करते हुए मुझे बताया जा रहा था कि, जब मैंने कालिज में दाखिला लिया तो उन्हीं दिनों रामनाथ शास्त्री जी भी कालिज में प्रोफेसर नियुक्त हुए थे।

होशनाक सिंह का बिवाह भी इसी हवेली में हुआ था। माता-पिता तो थे नहीं। घर उनकी बूढ़ी दादी संभालती थी जो बहुत ही बुद्धिमान दूरदर्शी तथा सुन्दर महिला थीं।

डोगरी बेषभूषा में दिपदिपाती वह देखने में अंग्रेज महिला सी जान पड़ती थीं। होशनाक सिंह मुझे भी अपने छोटे भाइयों जैसा ही मानते थे। मेरी माँ से उनकी दादी जी काम काज में सलाह मशविरा लेती थी।

होशनाक सिंह का बिवाह अखनूर के कलीठ किले में रहने बाले कर्नल शिवराम की बेटी सन्तोष से जब हुआ तो सन्तोष के भाई पदमदेव सिंह तब पाँच साढ़े पाँच बर्ष के रहे होंगे। यही भाई आगे चल कर डुग्गर के प्रसिद्ध कवि, गीतकार, गजलगो शायर के रूप में पदमदेव सिंह "निर्दोष" बन कर उभरे। अखनूर के चिनाव दरिया से उन्हें बेहद प्यार था। चिनाव दरिया पर उन्होंने उत्कृष्ट गीत लिखे हैं। अपनी दूसरी पुस्तक *बेड़ी पत्तन संझ मलाह* में चिनाव के स्वर "चन्हां दा सुर" नाम की कविता में निर्दोष की मधुर स्मृतिओं को संजोया गया है। कर्नल होशनाक सिंह, भाभी, सन्तोष, पदमदेव सिंह निर्दोष अपनी माँ, इन में से कोई भी तो नहीं है आज।

स्कूल के दिनों के दो और सहपाठी, मित्र जो दरवार मूव के साथ जम्मू तथा श्रीनगर में एक साथ ही पढ़ते रहे थे, वह हैं "श्री बाल कृष्ण अरोड़ा" तथा "देवकी नंदन मैंगी"। कंचे खेलने की उमर से लेकर आज तक भी मित्रता के गाढ़े रंग से रंगे यह मित्र इस अस्सी के दशक तक भी उसी मुहब्बत से आते जाते हैं।

श्री बाल कृष्ण अरोड़ा ने बताया था कि मैं और यश भी स्कूल में पढ़ने में बहुत अच्छे थे। 1943 मे हम दोनों ने फर्स्ट डिवीजन में मैट्रिक

पास की थी परन्तु देवकी नंदन क्लास में तथा वाद में भी हमेशा फर्स्ट पोजीशन हासिल करता था। बाल कृष्ण अरोड़ा जो आर्मी अफसर थे रिटायर होने पर जम्मू में ही समाज सेवा का कार्य पूरे मनोयोग और उत्साह से कर रहे हैं। अपनी माँ स्वर्गीय रामप्यारी के नाम के ट्रस्ट द्वारा अनाथ तथा अपंग बच्चों को उनके जीवन की पूरी-पूरी पहिचान करवाने में सराहनीय योगदान देनें में प्रयत्नशील हैं।

दूसरे मित्र देवकी नंदन मैंगी डाइरैक्टर सैरी कलचर पद से रिटायर हैं। सर्विस के दौरान दो तीन बार इटली गये थे तथा बहुत अच्छी इटैलियन बोलते हैं।

उनकी जनूनी से होने की बात यदा-कदा अपने ही घर में सुनने को मिली कि श्रीनगर में केदार शर्मा (कारी भाई) के साथ दुर्गानाग के कुण्ड से जल भरा घड़ा लेकर हर सोमवार के दिन शंकराचार्य का मन्दिर, जो डेढ़ दो किलोमीटर उंची पहाड़ी पर स्थित है, जल चढ़ाने जाते थे।

बाद में यही देवकी नंदन के बजाये अब्दुल लतीफ बन गये। मैंगी आज भी हर विधा में पूरे चाक चौवन्द। बहुत ही नेक पर गाँठ के एक दम पक्के। जब कि बाल कृष्ण उतने ही सरल तथा दरिया दिल। देवकी नंदन मैंगी आज भी अपने फकीराना अन्दाज़ में अपने मित्र के लिये गाली गलौज बकते हमारे घर महीने में एक दो वार अवश्य पधारते हैं।

यहाँ इस बात का जिक्र करना ही पड़ेगा कि, यह दोनों जब भी इकठे हो कर हमारे इस P-24 बाले घर में आ कर बैठते हैं तो घंटों बचपन की यादों को ताजा करते हुए कहकहों से खुशनुमा तरोताज़ा माहौल बनने में देर नही लगती। श्रीनगर में फलों की चोरी, मालियों की गालियाँ, उसके बाद पंडित केदार नाथ, नन्दलाल मत्तु तथा शैवेज़्मि के ज्ञाता लक्ष्मण जू तथा साथ ही साथ भविष्यदृष्टा सनकुकरू जैसे महान पंडित का ज़िकर अवश्य चलता है।

श्रीनगर में कंचे खेलने वाली उमर से पुनः आने जाने मिलने मे चाहे 35-40 वर्ष का अन्तराल भले ही हुआ होगा। बीच में कभी एक दो बार चाहे कहीं मिलने मिलाने का मौका मिला भी होगा पर अब-इस इतनी लम्बी यात्रा के गुजरे समय को कहीं परे हटा कर, वही छुटपन का पुनः जीवन्त हो उठना बहुत बड़ी बात है, फिर इस वर्त्तमान समय के दौर में, जब

कि यांत्रिकता मनुष्य पर इतनी हावी हो गई है कि जज़्बात से कोई सरोकार ही नहीं रह गया है - किसी का किसी से ।

रणवीर हाई स्कूल में पढ़ने के उन दिनों प्रायः हर शनिवार को स्कूल में आधा दिन पढ़ाई तथा आधा दिन सांस्कृतिक गति-विधियाँ चलती थीं । वहाँ साथी होते थे पृथ्वीनंदन कपूर तथा सितार निवाज़ इन्द्रगोयल के छोटे भाई कृष्ण गोयल । यह दोनों स्कूल में अच्छे गाने वालों में से थे । पृथ्वीनंदन सिंह तथा कृष्ण गोयल को महीने में एकाध बार महाराजा हरि सिंह के राजभवन में गाने के लिये आंमत्रित किया जाता था । किंचित खुशी से ही उस समय की बात मुझे सुनने को मिली थी कि, हम सभी लड़के उन दोनों को बड़ी आश्चर्य भरी निगाहों से देखते थे । बहुत ही उत्सुकता से पूछते कि, राजमहल कैसा होता है, वहाँ क्या-क्या नज़ारे होते हैं, क्योंकि हमारी कल्पना में कोई राजमहल किसी इन्द्रलोक का स्वर्ग य किस्से कहानियों के परी देश जैसा ही होता था ।

बड़ी उत्सुकता से पूछते कि वहाँ क्या कुछ गाते हैं आप लोग । महाराजा साहिव आप का गाना सुन कर झूम-झूम उठते होंगें ? यह सभी जानकारियाँ बड़े नाजो नखरे के साथ वह दोनों भी खूव बढ़ा-चढ़ा कर सुनाने में कोई कोर कसर नहीं छोड़ते थे ।

हम सोचते रहते कि, यह लोग देवताओं की नगरी से धरती पर आये हैं । कृष्ण गोयल बाद में बाम्वे चले गये फिल्मों में काम करने के लिये ।

पृथ्वी नंदन कपूर आर्मी में चले गये और कर्नल के पद से रिटायर हुए थे ।

यहाँ पर मैं यह भी कहना चाहूँगी कि स्कूल के दिनों के इन मित्र पृथ्वीनंदन सिंह से मेरी भेंट भी 1980 में लखनऊ में अप्रत्याशित रूप से हुई थी । लखनऊ संगीत एकेडमी द्वारा सीमा को लखनऊ फैस्टिवल में आंमत्रित किया गया था । प्रसिद्ध नर्त्तक बिरजु महाराज के भाई लच्छू महाराज ने सीमा का स्वर सुन कर बहुत सा आर्शीवाद दिया था । उस समारोह में जम्मू की गायिका सीमा का परिचय देने में जम्मू रेडियो स्टेशन में कार्यरत यश शर्मा का नाम सुनने पर ही पृथ्वी नंदन सिंह तथा उनकी सुकोमल पत्नि आशा जी से मेरी पहली भेंट हुई थी ।

आशा का विवाह पृथ्वी नंदन कपूर से, भारत के भूतपूर्व राष्ट्रपति स्वर्गीय फखरूद्दीन अली अहमद ने स्वयं आशा के पिता की भूमिका निवाहते हुअे संपन्न करवाया था। पृथ्वी नंदन कपूर फौजी अफसर होने के साथ-साथ प्रकृति-प्रदत्त गायक थे तो आशा भी असमिया लोक गीतों को मुध ुर स्वरों में गुनगुनाती थी। आशा को असमिया गीत-लोकगीत वहाँ के बातावरण से बेपनाह मुहब्बत थी। उनका बचपन वहीं बीता था।

फिर तो जव भी जम्मू आना-जाना होता रहा तो हमेशा मिलना जुलना और संगीत की महफिल जमती रही। दुर्भाग्य वश वह दोनो कलाकार पति पत्नि कैंसर जैसे असाध्य रोग से पीड़ित हो कर दुनिया से विदा हो गये।

"बनना तो चाहता था गायक, बन गया गीतकार"

अग्नि शिखा नीचे नही झुकती-आत्मा में संगीत था। वचपन के दिनों से ही गाने के कोई गत जन्म के संस्कार जागृत होने लगे थे।

इस संसार में सभी के कुछ व्यक्तिगत गंतव्य होते हैं। उसकी पूर्णता के लिये कल्पना में उज्जवल चित्र कभी उभरते हैं तो कभी पुंछते हैं पर फिर नये मौसम में नये फूल की तरह नई राहें स्वाग्तार्थ प्रस्तुत होने लगती हैं, ठीक कुछ ऐसा ही गीतकार यश के साथ भी घटा :

उनके अपने ही कथनानुसार, शुरू से ही गाने का पागल पन की हद तक शौक था। स्कूल में अच्छा गाने बालों में मैं भी शामिल था। परन्तु स्कूल में भजन तथा हिन्दी फिल्मों के गीत गाते थे। बहुधा हम कुन्दन लाल सहगल, जो कभी हमारे रणवीर हाई स्कूल में पढ़ते थे। उन्ही के गाये गीत मैं भी गाने की कोशिश करता। के.एल.सहगल के बारे में हमें स्कूल के बूढे मास्टर पृथ्वी सिंह बहुत सी बातें बताया करते थे।

जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है कि, कच्वी छावनी के बजन्तरियों के लड़के मुकुन्दा के साथ ढ़ोलकी की मद्धम थाप पर धीमे-धीमे गुनगुनाया करता था। मुहल्ले में अपने पूरे ठीक स्वर के साथ गाने का साहस ही नहीं होता था। मन में तीव्र उत्कंठा थी कि, कहीं से अच्छा संगीत सिखाने बाले गुरू से संगीत सीखूं

उस ऊपर वाले की अपार कृपा से कण्ठ तो सुरीला था ही जो भी गाता लोग बाग स्तव्ध हो कर सुनते रह जाते। पर संगीत की विधिवत्

शिक्षा कहां से ग्रहण करूं। उन दिनों जम्मू में राग रागनियों की छोटी-छोटी बन्दिशें सिखाने बाले दो ही उस्ताद थे। अखनूर निवासी श्री जिया लाल बसन्त तथा रियासी वाले सितार नवाज़ पंडित मोती राम जी।

परन्तु इन उस्तादों से पार पाना तथा उन्हें संगीत सिखाने के लिये रज़ामन्द करना आसान काम नहीं था। जम्मू के बड़े-बड़े घरानों में यह लोग वायलिन सितार एवम् संगीत सिखाते थे। इनका सान्निध्य तो मिला। घर से जो भी जेब खर्च मिलता, इनकी नजर किया नतीजा वही "ढाक के तीन पात"। कोई हल्का फुल्का गीत य बन्दिश सिखाना शुरू करते तो महीनों लगा देते- अक्सर निराशा ही हाथ लगती।

तब तक तबले पर एकाध ताल बजा लेता था। फिर घर में भी कोई नहीं चाहता था कि संगीत सीख कर मीरासी बनूं। संगीत के लिये दीवाना मन अजीव सी उलझन और बेचैनी से भरा रहता।

श्रीनगर के लाल चौक का पलेडियम सिनेमा। उसके साथ लगती राम जी चौरसिया "पनवाड़ी" की पहली ही दुकान थी। वह मुझे तथा मेरी संगीत सीखने की ख़्वाहिश को खूब अच्छी तरह समझते थे। उन्होंने मुझे आलोक नाथ कपूर से मिलवाया, जो बहुत अच्छी सितार बजाते थे। पर अब समस्या थी सितार खरीदने की। जम्मू में मुहल्ला अफगाना में मस्जिद के पास बावू नाम के मीरासी थे, जो इस समय बहुत बूढ़े हो चुके थे। पता चला कि, उनके पास एक बढ़िया सितार है जो लाहौर की एक खास दुकान पर वनाई जाती थी।

मेरा बड़ा लिहाज़ करते हुए मुझे संगीत का पूरा हकदार समझ कर 50 रूपये में सितार देने को राजी हो गये। अब समस्या 50 रूपयों की थी, कहाँ से जुगाड़ करूं क्योंकि सितार खरीदने के नाम पर घर से तो पैसे मिलने से रहे।

आखिर कुछ पैसे मेरे पास थे, जो एडबान्स में उन्हें थमा दिये, कुछ पैसे ननिहाल बसोहली जा कर मामी से लिये। श्रीनगर से जम्मू तथा फिर बसोहली का चक्कर, तब कहीं जाकर सितार खरीद पाया। सितार को घर में लाने की हिम्मत न होने से किसी मित्र के घर में रखनी पड़ी। सितार लेकर श्रीनगर पहुँचा। आलोक नाथ जी से सीखना शुरू किया। यहाँ भी सेठ किशोरी लाल जैसे घनोढ्य लोग उनको शिकारे पर सैर करवाते बढ़िया खाने

खिलवाते, खातिरदारी करते, हम चार पाँच उनके शर्गिद थे, इन्तज़ार में बैठे ही रह जाते।

मोती राम जी उन दिनों पाँच रूपये सिखाने की फीस लिया करते थे। यहाँ भी झख मारने के बराबर था, हाथ कुछ भी नहीं आता था। जम्मू पोस्ट आफिस में बाहर से एक क्लर्क बाम देव जी आये थे। वह तानपूरे पर बहुत अच्छा गाते थे। उनके पास भी बैठता रहा। उनके सन्निध्य में राग रागनियों को सुन-सुन कर थोड़ी बहुत पहिचान तो हुई, पर कुछ स्वंय भी गा सकूं ऐसा सुयोग न मिल सका। बास्तव में कुछ सिखाने के मूड में वह भी नही थे। मेरा मीठा स्वर सुन कर अनायास ही उनकी आँखों में एक चमक तो ज़रूर कौंध जाती, पर कुछ देने के लिये हृदय को विशाल न कर सके। और फिर पाँच सात रूपये से अधिक मैं उनको दे भी नहीं सकता था, जो शायद उनके हिसाव से काफी कम होते होंगे।

प्रिन्स आफ बेल्ज़ कालिज में कुछ सीनियर संगीत प्रेमी विद्यार्थी थे। कुछ लड़के लाहौर से एम.ए, एम.एस.सी करके जम्मू लौट आये थे। उन्होंने मिल कर लाहौर रेडियो स्टेशन के वायलिन बादक सर्दार खाँ को लाहौर से जम्मू आमंत्रित किया था। उनके बारे में प्रसिद्ध था कि वह रात रात भर वायलिन का रियाज़ करते रहते हैं। फिर अगली सुबह एकदम तरो ताज़ा लाहौर रेडियो स्टेशन अपनी डयूटी पर जाने के लिये तैयार हो जाते थे। सच में ही उनकी कला में सम्मोहन था।

घर में माँ से मनघड़न्त बातें गढ़ कर कुछ पैसे हासिल किये, फिर एक दिन उन्ही सर्दार खाँ का पीछा करते लाहौर जा पहुँचा। एक रात उनके घर रहने का तथा रात को वायलिन सुनने का अवसर मिला। मैं उनका रियाज़ और मेहनत देखकर दंग रह गया।

मुझे लगा कि संगीत साधना तो ध्यान में उतरने की समाधि है, यह तो जैसे मोक्ष का रास्ता है। वह भी मेरा स्वर सुन का मुझे अपनी शार्गिदी में लेने को तैयार हो गये।

परन्तु मजबूरी-सारी की सारी मेरी अपनी थी, उनके घर में कैसे रहता। आर्थिक मजबूरी ने बाहर रहने की रोक लगा दी थी। उनके घर में रहने में संस्कार आड़े आ रहे थे। हालाँकि उनके परिवार के लोग बहुत भले और खुले विचारों के थे। काफी हद तक स्नेह और सौजन्यता से भरपूर।

आज भी सोचता हूँ कि कैसे थे वह लोग, कैसी थी उनकी विशालता कहाँ चले गये ऐसे कलाकार।

एक और बात का ज़िक्र बिना किसी संकोच या झिझक के किया जा सकता है, इसी संदर्भ में। जम्मू का लखदाता बाज़ार जो उर्दू बाजार का ही एक हिस्सा था, मुझे पता चला कि पटियाला घराने के आशिक हुसैन ख़ान जयपुर से वहाँ आये हुए हैं।

जब मैं वहाँ पहुँचा तो वह चारखाने खेस बिछी चार पाई, लेटे हुए भी ठुमरी पीलू गुनगुना रहे थे। मेज़बान पूरी तरह से मेहमान का आतिथ्य सत्कार कर रही थीं। शायद एकाध राग रागिनी य मीठा मिसरी बोल उस्ताद जी इनायत कर दें। वहाँ थोड़ी देर ही ठहर कर मैं उस सुर को सुन कर आत्म विस्मृतं सा हो गया।

वापिस घर आते आते सोचता रहा, हे भगवान-कीचड़ में कमल। हालाकि सुल्फा गाँजा पीने के बावजूद भी उस्ताद जी के गले का सोज़ भरा सुर जादू का सा असर रखता था। उन्होंने मुझ से भी बात-चीत की। मेरी ख़्वाहिश जान कर, मेरा स्वर सुन कर मुझे प्रोत्साहित भी किया।

पर यहाँ भी आँख मूंद कर इस दुनियाँ में छलांग लगाने का साहस मैं ही न जुटा पाया छलांग-बस एक छलांग। शायद जीवन की कोई निश्चित धारा य नियति को ही मान कर आखिर में मनुष्य को सन्तोष कर लेना पड़ता है।

कैसी बिडम्बना थी, जिनके पास कुछ नहीं था, वह बहुत कुछ होने का अभिनय करके पकड़ाई नहीं देते थे जिन के पास बहुत कुछ था। उनको पकड़ पाने की सामर्थ्य मेरी पास नहीं थी।

संगीत सीखने के लिये अच्छे गुरू की तलाश में भटकता रहा-पर कब तक। भटकन की इस व्यर्थता का बोध धीरे-धीरे सत्य बन कर कोई नई राह तलाशने का बल दे रहा था। जाने कौन सा नियति का निर्देश था जो स्पष्ट नहीं हो पा रहा था।

एक बार कालिज के सीनियर स्टूडेंटस तथा गण्यमान्य शहरदारों नें विद्यानाथ सेठ को रणवीर हाई स्कूल के हाल में गायन के लिये आमंत्रित किया।

वह भी हल्का फ ल्का संगीत ही गाया करते थे, उनका गाया

भजन *"मन भूला-भूला फिरे जगत में कैसा नाता रे"* बहुत ही लोकप्रिय था। इसके पश्चात दूसरे गीतों के अन्त में उन्होंने गीत गाया था *"वह दिन भी कैसे सुन्दर थे, जब इस जीवन में बचपन था"* इस सब के अन्त में उस सभा में स्कूल की तरफ से सिर्फ मुझे ही गाने का अवसर मिला। बर्मन जी का गीत था "पिया मिलन को जाना" मैंने पूरे मनोयोग से गाया।

गीत समाप्त होने पर मंच से उतरते ही उन्होंने मुझे गले से लगा कर आर्शीवाद दिया कि, आगे चल कर तुम अच्छा गा सकोगे। पर कहाँ लाख प्रयत्न करने पर भी मैं गायक न बन सका। विद्यानाथ सेठ बहुत ही सरल और बिशाल हृदय व्यक्ति थे। नहीं तो अपने प्रोग्राम में किसी दूसरे को तालियां बटोरते देखना, फिर सच्वें मन से तारीफ करना, किसी निर्मल आत्मा का ही परिचायक हो सकता है। विद्यानाथ सेठ जी को भी कोई गुरू नही मिला था, इसलिये हल्के फुल्के संगीत से उन्होंने काफी यश, मान, ख्याति अर्जित की थी।

श्रीनगर में मघर मल बाग के रानी मन्दिर में शाम के समय संगीत की महफिल जुटती थी। मन्दिर के आस-पास अधिकतर दरवार मूव के साथ गर्मिओं में आने बाले डोगरा परिवार रहते थे।

घरों की औरतें सुबह-सवेरे मन्दिर में पूजा अर्चना करतीं जब कि, सांझ के समय दफतरों के कामकाजी लोग निश्चित हो कर इस संगीत सभा में इकट्ठे हो जाते थे। हम लोग भी इसी मुहल्ले में रहते थे, अपने चाचा के साथ। मैं भी वहाँ जा बैठने का सौभाग्य पाता, चाचा हारमोनियम सुर में बजाते थे।

मन्दिर के महन्त बाबा रूक्मणी दास थे। छोटे कद के साँवले बाबा रूक्मणि दास, लम्बी चोटी माथे पर रामानन्दी तिलक, मन के बेहद उदार।

मन्दिर होने के कारण वहां भज़न ही गाये जाते थे। सांझ का समय, गुनगुना सुहावना मौसम, धूप दीप से महकता वातावरण। मन्दिर के गायक थे श्री शिव राम। अधेड़ उमर के शिव राम जी का बहुत मीठा स्वर था। सुच्चे सोने की तरह पहाड़ी में गाते थे "उठ कुड़िये राधकां भ्यागड़ी होई" (हे राधा जागो, प्रभात का समय हो रहा है। य फिर "हरिया मैं किआं करी जपां तेरे नामें" हे हरि मैं कैसे जपूं आप का नाम।

उनका स्वर स्वच्छ निर्मल जल प्रपात सा था, कलकल छलछल

ध्वनि से गुंजरित। शिव राम जी गाने के साथ स्वयं ही घड़ा बजाते थे। उनके रहने खाने की व्यवस्था रूक्मणिदास जी स्वयं करते थे। उनको मन्दिर में विशेष सम्मान प्राप्त था। घड़ा बजाते बजाते शिव राम इतनें तल्लीन हो जाते कि, अन्त में घड़ा ही फूट जाता। वह महफिल समाप्ति का संकेत होता।

बाबा रूकमणिदास तथा शिवराम जी से मेरा सर्म्पक खूव गाढ़ा था। मन्दिर के प्रसाद के अतिरिक्त भगवान के भोग के मिष्ठान्न में भी मैं हिस्सेदार था पर मेरा उद्धेश्य तो पहाड़ी राग का सूक्ष्म सच्चा स्वरूप आत्म सात करना था। जिसका उस कलाकार को तनिक भी आभास नहीं था।

जम्मू आने पर पुनः रणवीर हाई स्कूल में पढ़ते। इसी स्कूल में मेरे साथ पढ़ता था कृष्ण कुमार कायस्थ। उन के घर में अच्छा रेडियो था। घर में पढ़ने का बहाना बना कर रेडियो पर प्रसारित होने बाले गीत सुनने चला जाता उन के घर।

जब घर में इस बात का भेद खुला तो श्रीनगर से आते समय एक अच्छा ग्रामोफोन चाचा मेरे लिये लेते आये। साथ में मेरी पसन्दीदा अच्छे रिकार्ड भी लाये थे। पंकज मलिक, कानन बाला, के.एल. सहगल, ज़ोहरा बाई अम्बाले बाली, तलत महमूद आदि के गाये गाने मुझे बहुत पसन्द थे।

हालांकि मेरे घर वालों को मेरे गाने सुनने पर बड़ा एतराज़ था परन्तु घर से गायव रहने से रोकने के लिये यह कदम उठाया गया था।

आज सोचता हूँ कि कितनी ही प्रतिभायें अनुकूल मिट्टी पानी हवा न मिलने से मुरझा जाती है, समाप्त हो जाती हैं जो खिल कर गुलो-गुलज़ार बन सकती थीं।

20 फरवरी सन् 1993 :- फ्री प्रेस जरनल में साहित्य एकैडमी पुरस्कार प्राप्त करने के तुरन्त बाद बाम्बे से एक आर्टिकल छपा था।

जीवन और कला (लाईफ एंड आर्ट)

"असफल गायक, पुरस्कार बिजेता कवि। संगीत में चाहे निराशा ही हाथ लगी, पर हार कभी कबूल नहीं की। यश ने अपने अन्दर की छिपी कला की सूक्ष्म अभिव्यक्ति कविता के माध्यम से की। उसने अपने इस क्षेत्र में अपनी पहिचान बना ली और श्रेय प्राप्त किया"।

"प्रेस ट्रस्ट आफ इंडिया" के हवाले से रिपोर्ट में कहा गया कि, मानव हृदय एक चश्मा है प्यार और शान्ति का। यश शर्मा की समस्त कविता का मुख्य विषय यही रहा है। उनकी कविता की जड़ें अपनी धरती से जुड़ी होने के कारण लोक मानस की विरासत हैं। भाषा की सादगी, धरती की सुगन्ध और संगीत में पगे होना, उनकी कविता का बिशिष्ट गुण है। वह एक तथ्य है कि उनकी प्रत्येक रचना गेयता (संगीत) से युक्त हैं। रिर्पोट

स्वयं तो चाहे संगीत में असफलता ही हाथ आई थी, पर कालान्तर में अपनी चार वर्षीय पुत्री सीमा के कण्ठ स्बर में अपनी इच्छित कामना पूर्ति के फलीभूत होने के स्पष्ट संकेत मिलने पर पुनः आश्वास्ति भाव से उत्साहित हो उठना एक पिता के लिये सुखद अनुभूति थी। अवोध पुत्री को झुलोत, दुलारते, न्यू थियेटर की किसी पुरानी फिल्म के गीत की पंक्ति तन्मय हो कर गुनगुनाते।

। मेरी बगिया में बोले कोयलिया, बावरी वसन्त आई रे।

सच में ही, विवाह के सात-आठ वर्षों वाद प्रार्थनाओं और मन्नतें माँगने के फलस्वरूप घर में इस बेटी का जन्म हुआ था। ठीक वासन्ती वयार जैसा ही घर आँगन और मन महक उठा था।

और फिर कुछ वर्ष बीतते न वीतते वह धटना :-

गाँधी नगर जम्मू का लक्ष्मी नारायण मन्दिर, मन्दिर के प्रांगण में भजन संध्या का आयोजन था। सीमा ने पहली बार मंच पर मीरा का भजन गाया था।

"आली मोरे नैणां बाण परी" रेडियों जम्मू के प्रसिद्ध लोक संगीत गायक श्री प्रकाश शर्मा ने ही गाने के लिये प्रोत्साहित करते हुए चम्मच से ताल दिया था।

मन्दिर में आये किसी बाहरी प्रदेश के बयोवृद्ध सौम्य साधु बाबा ने आर्शीवाद स्वरूप सीमा (सीमा अनिल सहगल) को 50 पैसे (अठन्नी) का सिक्का इनाम दिया था। वह अमूल्य सिक्का आज भी सीमा अनिल सहगल के लिये किसी घरोहर से कम नहीं।

साधु बाबा का दिया आर्शीवाद दो तीन दिन बाद ही चमत्कारिक रूप से फलित हुआ था। कच्ची छावनी के किन्ही राजपूत धराने से पिता

पुत्री दोनों को निमंत्रित किया गया था। गाड़ी लेकर ड्राईवर आया था रेडियो स्टेशन में।

बच्ची के साथ जब उस पुरानी भव्य हवेली में दोनों पहुँचे तो स्वागत कर्त्री थी एक प्रौढ़ महिला। उनके पास अपने स्वर्गीय पति की एक धरोहर थी, जिसे उन्होंने बड़े जतन से अपने पूजा घर में संभाल कर रखा था। वह धरोहर थी एक तानपूरा।

उस संभ्रान्त महिला के कथनानुसार "उनके पति जब राजस्थान में कार्य रत थे तो ग्वालियर घराने के किसी संगीतकार से संगीत सीखने हेतु बड़े शौक से यह तानपूरा खरीदा गया था परन्तु उन्हें गाने बजाने की ज़िन्दगी नै मोहलत नहीं दी। तब से उन्होंने इस तानपूरे को किसी योग्य सत्पात्र को समर्पित करने की सोच रखी थी। ताकि इस का सदुपयोग हो सके।

जिस दिन मन्दिर में सीमा ने भजन गाया था उस दिन संजोग बश वह भी वहां उपस्थित थीं। सीमा के पिता जी ने कुछ तो "देना पावना" का बहुत जतन किया परन्तु उन्होंने वह भी सीमा को ही दे कर संतोष ज़ाहिर किया।

जाने किस अदृश्य सत्ता के संकेत से वह तानपूरा सीमा के पास आया था। बहुत वर्षों वाद मुम्बई में आये भूकम्प से सागर किनारे स्थित बार्सोवा में सीमा के फलैट में गिर कर वह तानपूरा चकनाचूर हो गया।

क्या-यही मान लिया जाये कि, पाने और खोने का यह खेल किसी अदृश्य शक्ति द्वारा ही संचालित होता है। य फिर जीवन और अवसर की कोई अस्थिर उपलध्धि।

जीवन भर की साध, संगीत समर्पित स्नेह स्रोत-पुत्री के रूप में प्रस्फुटित हो उठना कही गहरे आत्म सन्तोष से भरपूर कर गया एक पिता को।

यह भी सच है कि, गीतकार यश शर्मा गीत लिखते रहे गुनगुनाते रहे, गाते रह पर परिस्थितिओं वश शास्त्रीय गायन न सीख सके, अपितु लोक संगीत में ही रमें रहे। परन्तु सीमा को प्रारम्भ में जो भी त्राल, लय, बन्दिशे पिता के पास थीं लोक धुनों गीतों सहित अनायास ही मिल गई थीं।

गायन विद्या तो एक अथाह सागर है उसके कुछ कण ही भाग्य से

मिल पाते हैं। परन्तु उन कण बिन्दुओं की प्राप्ति की राह भी कोई सहज सरल नहीं रहती- कितने अवरोध, कितनी जटिलतायें, पर फिर भी संसार के सौन्दर्य में कोई एक पंखुड़ी खिल जाये- कहीं एक स्वरों की सोधी सुगंध का हल्का सा झोंका, कवि मन प्राणों को विभोर कर जाये, इस सब के लिये किये गये अपने पिता के प्रयासों को सीमा सतत इमानदारी से इन शब्दों में स्वीकारती है।

। दैनिक जागरण जम्मू 21 अगस्त 2005।

"मेरा संगीत मानवता की शान्ति के लिये, शीर्षक से छपा यह लेख-15 अगस्त 2005 को जम्मू युनिर्बीसटी के राजिन्द्र सिंह सभागार में अलामा इकवाल पर पैहली बार आयोजित कार्न्सट के संदर्भ में प्रस्तुत है :- सीमा के ही शब्दों में। लोक संगीत तथा संगीत से जुड़ने की प्रेरणा, सीमा अनिल सहगल को अपने पिता यश शर्मा से मिली थी। विरासत में अपने पिता से मिले संगीत के शौक को सीमा ने अपनी पूरी लगन से सूझबूझ से एक नई दिशा दी। रिर्पोटर।

थोड़ा और आगे चल कर सीमा का अपना कहना है कि, "संगीत मेरी आत्मा है तो उस आत्मा के प्राण मेरे पिता जी हैं। मैं जब भी आँखें मून्दे संगीत के स्वरों में मगन होती हूँ तो सब से पहले मेरे पिता जी का चेहरा मेरी आँखों में घूमता है। इस प्रकार यश शर्मा के संगीत स्वपन की पूर्त्ति पुत्री में साकार हुई।

"हुन ते इक्कै रंग रंगोई, धुप्प चाननी छाया"

यह कविता की पंक्ति "जो तेरे मन चित्त लग्गी जा" कवि की प्रथम पुस्तक से ली गई हैं। यश शर्मा की कविता की एक पंक्ति।

अपनी इस लम्बी जीवन यात्रा में बहुत से उत्थान पराजय, हानि-लाभ, स्वार्थ परमार्थ की स्थितिओं को समझने जानने के पश्चात कवि मन इस एक निश्चय पर पहुँच पाया है कि, जीवन का हर रंग चाहे वह धूप हो य छाया, य फिर चाँदनी ही क्यों न हो-एक समय ऐसा भी आता है जब जीवन के सब रंग "एक" ही रंग में रंग जाते हैं।

उसी एक की छाया अमृत भी है और मृत्यु भी। परम सत्य तो वही एक है जिसके निकट पहुँच कर सारी उलझने मिट जाती हैं। सारे द्वंद सारी विच्छिन्नतायें एकाकार हो जाती हैं।

पर इस समय बात की जा रही है सन् 1943 की। यानि फर्स्ट डिवीजन में यश शर्मा के रणवीर हाई स्कूल से मैट्रिक पास करने के बाद की।

किशोर वय और यौवन का संधिस्थल, सोलह सत्तरह वर्ष की आयु-कालिज स्टूडेण्ट। खुले गगन के विस्तार में उड़ने की उत्सुकता-कल्पना में नित्त नये आयाम। बंधन मुक्त वर्त्तमान-भविष्य की चिन्ताओं से एकदम बेख़वर। फिर उसमें कहीं कवि मन की चाशनी भी मिल जाये तो फिर कहना ही क्या। कालिज में घर वालों ने अपनी इच्छानुसार सब्जेक्ट मुझ पर थोप दिये। आर्टस में रूचि होने के बावजूद जब सांइस विषय ले दिये गये तो यह थोप देना ही तो था।

कहाँ तो ललित कलाओं का रूझान-कहाँ विज्ञान के विषय। दोनो ध्रुवों की खींचातानी में पढ़ाई से ही मन उचटने लगा। विज्ञान के विषय ख़ाक पल्ले नहीं पड़ते थे। बावू जी चाहते थे कि पढ़ लिख कर उनके नक्शे कदम पर चल कर तहसीलदार बनूं जब कि, चाचा मेरे डाक्टर बनने के स्वपन पाल रहे थे, रहा मैं, सो मेरी मनस्थिति उस समय बेहद उलझन भरी थी। एकाकी चौराहे पर खड़े होने जैसी।

स्कूल के दिनों से ही गाने का पागलपन की हदतक का शौक था।

कालिज में दाखिल होने पर भी अपने सहपाठियों को के.एल. सहगल के फिल्मी गीत सुनाता। यहाँ तक कि कुछ एक रसिक प्रोफेसर भी मुझे अपने पास बिठा कर गीत सुनते।

बड़ी तमन्ना थी किं विधिवत् गाना सीखूं। उन्हीं दिनों कालिज में मुझ से सीनियर दो विद्यार्थी थे। एक कां नाम था सुरेन्द्र बक्शु। उसका कंठ बड़ा सुन्दर भावपूर्ण था। हारमोनियम भी बड़ा मीठा बजाता था। शायद लाहौर से आया था, प्रिन्स आव वेल्ज कालिज में पढ़ने। दूसरा लड़का था मनसा राम जो पक्की-ढक्की निवासी मशहूर ज्योतिषाचार्य तथा तांत्रिक श्री मनसा राम जी कहलाये। मुझे अब कोई भी राह नहीं सूझ रही थी। बचपन से गाने का शौक था तो पढ़ने का भी बहुत शौक था।

पर अब-पढ़ाई से मन उखड़ा तो दूसरे लड़कों को जो भी करते देखता वही बनने की धुन सवार हो जाती। खेल के मैदान मे लड़कों को क्रिकेट, हाकी, फुटबाल खेलते देखता तो खिलाड़ी बनने के ही स्वपन मन

में पलने शुरू हो जाते।

कालिज के उन दिनों हम से कुछ सीनियर विद्यार्थी थे, जिनकी कालिज में बहुत धाक थी। उनमें विश्वनाथ पोप, बलवन्त सैहगल, प्राणनाथ मैहल, शिव नाथ, होशनाक सिंह, गिरधारी सिंह, जनक सिंह जैसे नाम थे। इनमें शिव नाथ तथा विश्वनाथ पढ़ाई में बहुत ही योग्य विद्यार्थी थे। यही शिवनाथ आई. ए. ऐस करने के वाद कर्नल शिव नाथ के नाम से जाने जाते हैं, जिन्होंने डोगरी भाषा को साहित्य एकेडमी में मान्यता दिलवाने में विशेष योगदान दिया है।

उस समय कालिज के प्रसिद्ध सीनियर खिलाड़ियों में थे सूरत सिंह, गौतम सिंह, भगत सिंह तथा क्रिकेट मे लाहौर से आया खालिद था जिसे ख़ालो कहते थे। अजीज़ दब्बड, बहाव खान, कपिल पूर्ण टिक्कू खूब प्रसिद्ध थे।

जाने यह सब लोग आज कहाँ है, उनमें कितने हैं भी य नहीं कितने-कितने ही लोग महाशून्य में विलीन हो गये, जो बचे रहते हैं उनके मन के क्षितिज पर स्मृतिओं के जुगनु टिमटिमाते हैं जलते बुझते रहते हैं।

क्रिकेट के मैदान में लड़को को अच्छे प्रदर्शन पर तालियां बटोरते देखता तो बस खिलाड़ी बनने का भूत सिर पर सवार हो गया।

सफेद पैंट कमीज़, धारी-दार सफेद स्वैटर, बूट बगैरह सभी खरीद लिये गये। खिलाड़ियों के साथ यारी दोस्ती भी गाँठ ली। जहाँ भी खिलाड़ियों की टीम जाती, ख़ास कर हाकी की टीम, वहां विदाऊट टिकट मैं भी उनके साथ होता। स्याल कोट की टिकट तो कभी ली ही नहीं थी। साथी भी ऐसे ही मिल गये थे जो खिलाड़ी, गायक, चित्रकार और हंस-मुख थे। अपनी इस कालिज के खिलाड़ियों की टीम के साथ वेटिंग प्लेयर के नाते उनके साथ हो लेता था। उन सब को भी मेरा साथ होना खूव भाता था। पर खिलाड़ी बनने की संभावना का तो कहीं दूर दूर तक अता-पता नहीं दिख पा रहा था।

जब कुछ नहीं बन सका तो अचानक मन में इस सोच ने जन्म लिया कि, मैं वह बनूंगा, जिसके लिये किसी के पास जाने, सीखने की जरूरत ही न पड़े।

बचपन से ही गाने का शौक था तो पढ़ने में भी बहुत रूचि थी।

हिन्दी साहित्याकाश के देदीप्यमान नक्षत्र प्रसाद, पंत, निराला, महादेवी वर्मा, माखनलाल चर्तुबेदी आदि को दसवीं तक पहुँचते-पहुँचते खूव पढ़ चुका था। इन के विषय में खूव जानकारी थी, वहीं अंग्रेजी के नावल चाहे आधे-अधूरे ही समझ में आते थे, तो भी बातचीत और बहस में हिस्सा लेने के लिये काफी होते थे।

उर्दू चाहे पाँचवीं तक ही पढ़ी थी पर अभ्यास वश उर्दू की कथा कहानियां भी खूव पढी थीं।

सौभाग्य वश साहित्य प्रेमी मित्रों के सान्निध्य में जैसे कि होशनाक सिंह की निजि लाइब्रेरी में बंगला साहित्य के रविन्द्रनाथ के साथ-साथ सम्पूर्ण शरत साहित्य को खूव पढा और समझा।

घर में समझा जाता था कि मैं पढ़ाई में खूव व्यस्त रहता हूँ पर सच्च तो यह था कि, पढ़ाई के नाम पर कोर्स की कितावें न तो समझ आती थीं न समझने की कोशिश ही की जाती थी।

उन दिनों साहित्य के साथ-साथ जन साधारण में भी हरिवंश राय बच्चन द्वारा रचित मधुवाला, मधुशाला एकान्त संगीत का बहुत चर्चा था।

उन्हीं गीतों को गाते गाते उन जैसी शैली में ही मन के उद्‌गार, बेतरतीव उल्टी सीधी शब्दावलि, अनघड़ भाव इस प्रकार अपनी सोच में ही बच्चन जी को गुरू मान लिया था तथा हिन्दी गीत लिखने लगा था। अपने लिखे गीतों को स्वयं ही गाता था पर सभी की एक ही धुन।

मैं पीपल का पेड़ एकाकी, खड़ा युगों से गंगा तट पर।
मैंने देखा है पथिकों को
गंगा के उस पार उतरते।
दूर देस जाने वालों हित
दो आँखें चुपचाप बरसते।
मेरी ही छाया, दुःख-सुख बन, लहराती चंचल लहरों पर।
मैं पीपल " " " " "
उस दिन ही तो माँग भरी थी
ओ चन्दा सी सुन्दर ललना।
मिल न सका तुझ को हाय

छोटे से जीवन में हसना ।
मैंने देखा है वसन्त, और देखा है जर्जर पतझर ।
मैं पीपल " " " " "
दुःख सुख के ताने बाने से
निर्मित होता है यह जीवन ।
फिर सहसा हंसते हंसते ही -
क्यों रो उठता है मानव मन ।
स्वयं बना कर स्वयं बिगाड़े बह भी है कितना निष्ठुर ।

यद्यपि अभी तक बच्चन जी को देखा तक नहीं था । कुछ समय पश्चात् पहली भेंट उन से धर्मशाला में अपने मित्र सोम प्रदीप के साथ हुई थी जब कि बच्चन जी धर्म शाला कवि सम्मेलन में भाग लेने आये थे ।

बच्चन जी सस्वर ध्यानमग्न बैठ कर कविता पाठ करते थे जो श्रोताओं को भाव विभोर कर जाता था । उनका स्वर भी बहुत मीठा था । इस परिचय के वाद तो जब भी मैं उन्हें कोई अपनी नई रचना भेजता, वह हमेशा मेरा उत्साह बढ़ाते थे । अब तो मैंने काव्यपाठ का ढंग भी उन्हीं जैसा अपना लिया था ।

1953 में श्री नगर में उनसे भेंट हुई थी वह सपरिवार आये थे । मेरी पत्नी भी तब मेरे साथ थी और फिर तीसरी बार जब जम्मू रेडियो स्टेशन से 1955 में कवि मधुकर के साथ हमारे कॉंट्रैकट टर्मिनेट कर दिये तो दिल्ली में उनके पास चला गया था । उसके पश्चात कही भी निकट कवि सम्मेलन होता तो उनसे मिलने अक्सर उनके पास पहुँच जाया करता था । तब से लेकर आकाशवाणी से अपनी रिटायरमेंट्ट तथा आज की पेंशन भोगी स्थिति तक (बच्चन जी के संसार से विदा होने पर भी) हम उनके किस प्रकार आभारी हैं, इस के लिये तो बिस्तृत चर्चा अपेक्षित है ।

अभी तो बात चल रही थी प्रिन्स आव वेल्ज कालिज में दाखिल होने की । उस समय जम्मू में हिन्दी के लेखक थे, शंकर शर्मा पिपासु, सुश्री शकुन्तला सेठ, गंगा दत्त विनोद, राम कृष्ण शास्त्री, दुर्गादत्त शास्त्री जब कि पंजाबी में बशीर अहमद बशीर, चमन लाल जोश-देशराज दानिश, तिलक चंद तिलक भीम सेन सेवक तथा चूनी लाल कमला आदि । उर्दू में लिखने वालों में प्रसिद्ध थे, ठाकुर पुन्छी, इन्द्रजीत लुत्फ, मोहन यावर, ज़ैड सैमी,

साकी, शौक तथा कैलाश नाथ कौल "मयकश"।

"बहता पानी जिधर चल देता है, उधर ही राह बना लेता है।" यही कालिज में उन दिनों हुआ था यश के साथ। कालिज के युवा कवियों को अपनी रचनायें सुनने सुनाने के लिये न सही कोई मंच य कोई अन्य तामझाम, प्रिन्स आव वेल्ज़ कालिज की पुली ही सही। जहाँ मधुकर नर्त्तकी, दीप शल्या तथा चन्द्रकान्त जोशी (मैंने प्यार किया पछताया, सब कुछ दे डालूंगा पर मैं पहला प्यार नहीं बेचूंगा) की दुहाई देते, वहीं यश (बाह-रे-वाह, करूणा के सागर) कह कर भगवान की सत्ता को ज़ोर-शोर से नकारनें में कोई कोर कसर नहीं छोड़ना चाहते थे।

बेतहाशा दाद देती विद्यार्थिओं की मंडली, जिनमें कक्षा की कैद से छुटकारा पाने वाले ज्यादा होते, कुछ एक साहित्य मैं रूचि रखने वाले तथा पढ़ाई से कन्नी काटने वाले भी थे। बहुधा ऐसे होते जो यह भी नहीं जानते थे कि कविता य साहित्य किस चिड़िया का नाम है। परन्तु दूसरों की देखादेखी दाद देने में सब से आगे।

उनमें बहाव और एहसान जिनका अदव से दूर का भी वास्ता नहीं था तथा सन्तोष सिंह सलारिया यह सभी जोर शोर से दाद देते थे, कुछ भी न समझने पर। नये नये कालिज स्टूडेण्ट, मधुकर, दीप, यश विद्यार्थियों में त्रिमूर्ति के नाम से जाने जाते थे।

वह उस समय का सम्मोहन भरा बातावरण। हम से भी सीनियर विद्यार्थिओं ने कालिज की सहपाठिनों के नाम बिल्लो, कबूतरी धुग्धी, चिड़ि, बुलबुल, गटारी, लौंग और न जाने कितने ही नाम दे रखे थे। दूसरी ओर भी कोई कमी नहीं थी। मिडडू, किरला, बैडा, गैंडा, चित्तरा, सुकड़ा द्विपक्षीय उपाधियाँ निःस्संकोच खुले दिल से दी जातीं। मज़े की बात तो यह थी कि जिनके लिये इन उपाधियों का वितरण होता दोनों पक्ष इस से भली भांति परिचित होते।

जब कभी किसी कारण वश कालिज में यह मीठे प्रहार न चलते तो लगता, वातावरण में कोई नीरसता दूर-दूर तक कोई शून्य सा पसर गया है। सहज, सरल, स्वच्छ जीवन रस धारा से छलछलाता एक और किस्सा।

कालिज में सहपाठिनों की संख्या उन दिनों काफी हुआ करती थी। सभी के नाम के पहले अक्षरों को जोड़ कर एक माला सी पिरो ली गई थी।

उन दिनो एक फिल्मी गीत की पंक्ति बड़ी प्रसिद्ध थी। (ऐ दुनिया बता-हमने बिगाड़ा है क्या तेरा) इस पंक्ति में से दुनिया शब्द के स्थान पर उस माला के मोतियों से चुन-चुन कर नाम जोड़ दिये जाते। आगे की कड़ी जोड़ने के मुजरिम कौन हो सकते थे ? जाहिर है कि कोई महाकवि य फिर कोई मियाँ तानसेन ही होते होंगे।

उन्हीं दिनों लाहौर से आई एक और लड़की ने कालिज में दाखिला लिया। नाम न जाने क्या था, पर कोमल, मासूम सा चेहरा होने पर सभी इसे नन्हों ही कहते थे। सीधे लाहौर से आई इस आधुनिका नन्हों का हर कोई दीवाना था। हर विद्यार्थी उसे अपने अपने ढंग से यानि अपने गुणों से, शक्ल, सरूत, कला से इस लड़की को अपनी ओर आकर्षित करने का जतन करता। पढ़ाकू जीनियस कितावों के आदान-प्रदान का सहारा लेकर परिचय को प्रगाढ़ करने से न चूकते।

फिर भला दीप और यश अपने होने की ख़बर-अपनी कविता द्वारा देने में पीछे कैसे रहते भला। क्योंकि इन दोनों का मोरचा साँझा था।

क्लास लगने से पहिले ही सुबह सवेरे क्लास रूम के ब्लैक बोर्ड पर यह दोनों कवि अपने अपने उद्‌गारों की अभिव्यक्ति बारी बारी चाक से लिख कर करते थे। यदि पहिले दिन एक कवि इस नन्हों के संबंध में लिखता :-

यह घडी तुम्हारी नन्ही सी
नन्हों क्यों जल्दी चलती है।
जल्दी चलने पर हमें नहीं -
पगली तुझ को ही छलती है।

दूसरे दिन दूसरा कवि लिख देता :-

इस घड़ी तुम्हारी की टिक टिक
मेरे दिल की ही धड़कन है।
तेरे उर आशा मुस्काती
पर तम छाया मेरे मन है।

यह क्रम इसी प्रकार चलता रहता पर एक दिन पकड़े गये, शिकायत हुई। कुछ ने तो इसे बड़ा सीरियस मामला बना डाला।

किन्तु जब दीप ने नन्हों से कहा कि, हमें हानि पहुँचा कर आपको क्या मिलेगा जी। एक दो वर्षों का तो साथ है, फिर जाने कौन कहाँ होगा।

दीप के कहने का ढंग इतना मासूमियत भरा था कि नन्हों ने अपनी शिकायत वापिस ले ली।

नन्हों दिलेर, भले मन की पंजाबी लड़की थी। हम दोनों मुजरिमों ने राहत की सांस ली।

कालिज के दिनों की कुछ छिट-पुट, कुछ चटपटी घटने वाली घटनाओं के साथ "काले खा" टाँगे वाले को भी ज़रूर याद किया जाता। कच्ची छावनी में टांगे वाली गली के इसी टांगे के अडडे पर काले खां का टांगा उन दिनों बड़ा प्रसिद्ध था।

उसी के साथ मुहल्ले के कुछ साथियों सहित घर से कालिज के लिये निकलने पर जा पहुँचते विदाऊट टिकट स्यालकोट। य फिर कालिज से खिसक कर होस्टल के लड़कों के साथ नहर पर स्थित आम संतरे के बाग से दिन दहाड़े फलों की चोरी करना।

आज तो गाँधी मैंमोरियल सांईस कालिज के चारों तरफ कंकरीट का जंगल उगा दीखता है। पर उस समय जाने खूंव से हरे भरे बागीचे होते होंगे। मुझे तो इन्ही से (अपने पति) सब सुनने पर पता चला कि हमारे साथी कभी-कभार ही कालिज की क्लासें अटैण्ड करते थे। पढ़ाई में बिलकुल ही मन नहीं लगता था। जब कि हमारे साथ के बिद्यार्थी इसी कालिज से पढ़ कर वर्षो वाद नामी गिरामी हस्तिओं में गिने गये थे।

यही सव देख कर, सुन-सुना कर मेरे बावू जी ने मुझे पटवारी का काम सीखने के लिये रैविन्यू महकमें में रखवा दिया (20-1-35) बीस-एक पैंतीस का ग्रेड। वहां मेरे साथ और भी दो लड़के भर्त्ती हुअे थे। बावू जी इन्हीं दिनों रिटायर हो गये थें। बावू जी ने सोचा कि खूव पढ़ लिख कर एक ऊँचे ओहदे वाला अफसर बनूगा।

कभी अतीत को कुरेदते हैं तो यश शर्मा स्वयं ही कहते हैं कि उन परिस्थितिओं का मन ही मन विश्लेषण करता हूँ तो कहीं अपने को ही कसूरवार पाता हूँ।

मेरे लिये कैसे कैसे स्वपन देखे थे मेरे बावू जी ने।

सन् 1944-45 एकाध वर्ष आगे पीछे केहरि सिंह मधुकर, वेद पाल दीप, यश शर्मा, चन्द्रकान्त जोशी आदि सभी उस समय के प्रिन्स ऑफ वेल्ज कालिज के छात्र थे। यहां पर दाखिला लेने से पहिले इन सब का आपस में कोई बिशेष परिचय नहीं था परन्तु कविता के माध्यम से ही यह सब आपस में जुडने लगे थे। केवल मधुकर से ही श्रीनगर के स्कूल टाईम से थोड़ा बहुत परिचय था। वह मुझ से जूनियर था।

सर्व विदित है कि कालिज के उन दिनों में सब का लेखन हिन्दी में ही था। उन्हीं दिनों आज के वरिष्ट पत्रकार "दैनिक कश्मीर जम्मू" श्री वेद भसीन जी भी कालिज की साहित्यिक गति-विधियों से जुड़ गये थे।

कवि न होने पर भी गद्य तथा अन्य विधाओं का नेतृत्त्व संभालने की विशिष्ट योग्यता रखते थे। यह सभी लोग उदार वादी थे। मानव और मानवता के प्रति सम्यक दृष्टिकोण था सब का, किसी भी संकीर्णता की हदबन्दी से एक दम परे।

डोगरी कविताओं का पैहला संग्रैह "जागो डुग्गर" 1950 में प्रकाशित हुआ था। इसी जागो डुग्गर की संपादकीय टिप्पणी के पृष्ठ संख्या । 8 । की अन्तिम पंक्तियों में दो कवियों के नाम हैं। सम्पादक महोदय ने अपने विचार इस प्रकार प्रस्तुत किये हैं।

"दीप और यश कालिज के विद्यार्थी हैं। पर इन नन्हीं आत्माओं में कवि का पूरा बल है और कल्पना की चंचलता भरी है। उस समय के इस जागो डुग्गर में मधुकर का नाम न होने से लगता है कि संभवत् वह वाद में आये होंगे क्योंकि इस जागो डुग्गर से उनका संपर्क जुड़ा नहीं दिखता य क्या कारण रहा होगा, कुछ कहा नहीं जा सकता।

पर यह तो सर्व मान्य है कि, कालिज के दिनों से ही अन्य उत्कृष्ठ हिन्दी कवियों के साथ यह तीनों भी अपनी हिन्दी कविताओं के माध्यम से हिन्दी जगत में पूर्णतया स्थापित हो चुके थे। 1947 में देश विभाजन की त्रासदी झेलने के पश्चात साहित्यिक गतिविधियों के साथ साथ सामाजिक समस्याओं के स्वर भी सभी के लेखन में मुखरित होने लगे थे।

कोशिश यही थी कि बंटवारे से पीड़ित मनुष्यता के घावों पर सहायता और सहानुभूति के फाहे रखे जायें। 30 जनवरी 1948 में जब गाँधी जी बिड़ला हाऊस में "हे राम" कहते हुए शहीद हो गये तो समूचा देश

उस दुःख से उस पीड़ा से विचलित हो उठा था। उस समय जम्मू के परेड ग्राऊडं में जो शोक-सभायें आयोजित की गई थीं, वहां अन्य कवियों के साथ साथ कालिज में पढ़ने वाले इन दो कवियों ने भी अपने श्रद्धा सुमन अर्पित किये थे। दीप ने बापू के "संघी कपूत" कविता लिखी और पढ़ी थी जब की यश ने "बापू हम मूरख दीवाने पागलपन आवेश में आ कर कर्म किये मनमाने" लिख कर अपनी श्रद्धांजली दी थी। चाहे इस कविता में लेखन की प्रौढ़ता न भी रही हो पर भाव प्रवणता का अभाव नहीं था।

उन्हीं दिनों कालेज स्टूडेण्ट यूनियन द्वारा एक प्रस्ताव पारित किया गया था। इस इतिहासिक निर्णय के अनुसार जम्मू प्रदेश के एक मात्र कालिज "प्रिन्स आव वेल्ज" का नाम बदल कर "गांधी मैमोरियल कालेज" नाम की सहमती बनी थी।

विद्यार्थी परिषद के मुख्य सचिव श्री वेद भसीन जी के कथनानुसारः

"उन दिनों जम्मू काश्मीर के वजीर-ए-आजम, श्री शेख मुहम्मद अब्दुल्ला अमेरिका में थे। उनकी अनुपस्थिती में कार्यवाही मंत्री थे श्री बख्शी गुलाम मुहम्मद। वेद भसीन 4 । जून। 1948 को कालेज का नाम बदलने का प्रस्ताव लेकर उनके पास गये थे। कुछ सोच विचार करने के पश्चात बख्शी साहिव द्वारा सहर्ष स्वीकृति मिल गई थी।

कालिज के मुख्य गेट से आगे चल कर वह पुली जो कालिज के युवा कवियों और श्रोताओं के लिये इतिहासिक पुली बन चुकी थी उसके पास एक खुले स्थान पर बहुत बड़ा पंडाल सजाया गया। वहाँ विद्यार्थिओं और शहर के गण्यमान्य व्यक्ति और वुद्धिजीवियों का अपार जन समूह एकत्रित हुआ था। सभी के समक्ष कालिज के पहले नाम को तिलांजली दे कर नया नाम दिया गया 'गाँधी मैमोरियल सांइस कालिज'। महात्मा गाँधी के वलिदान की स्मृति में शायद यह भारत भर में सर्व प्रथम कालिज था जिसका नाम देश की स्वतंत्रता के पश्चात गाँधी मैमोरियल सांइस कालिज रखा गया था।

वेद भसीन जी के कथनानुसार उस समारोह में यश ने एक हिन्दी कविता पढ़ी थी, "आज प्रिन्स आव वेल्ज़", को इस कालिज से छुट्टी दे दो"। उस शाम इस कविता की बेहद सराहना हुई थी और बहुत समय तक इस कविता की प्रशंसा होती रही थी।

पर बहुत जतन करने पर भी भसीन साहिव को आगे की इस कविता की कोई भी पंक्ति याद नही आई स्वयं कवि से तो क्या अपेक्षा की जा सकती थी।

इसी कालिज में पढ़ते समय मंच पर अभिनय करने का पहिला अवसर प्राप्त हुआ था 1945 में। बसोहली राम लीला में बानर सेना से जो शौक शुरू हुआ था उसा के लिये पूरा मंच मिला, आगा हश्र काश्मीरी का लिखा नाटक "यहूदी की लड़की" में।

इस नाटक में शहज़ादा मार्क्स का रोल इन्हें कैसे मिला था - अपने हल्के-फुल्के स्वाभाविक मूड में स्वयं ही इस रोचक घटना का ज़िक्र इनके अपने ही शब्दों में।

शायद '1945' का समय रहा होगा, इस नाटक में शहज़ादा मार्क्स का रोल जो लड़का कर रहा था उस का नाम था स्वराज मित्र। उन दिनों लड़के ही लड़कियों का अभिनय किया करते थे। हीरोइन के रोल में थे कृष्ण गोयल, दूसरी हीरोइन का रोल कर रहे थे शौकत शेख जो 1947 में पाकिस्तान चले गये थे। इस नाटक की रिहर्सल जब की जाती तो हम कुछ लड़के बड़े मनोयोग से वह सब देखा करते थे।

उन्ही दिनों मद्रास स्थित जैमिनी फिल्म कम्पनी की ओर से एक फिल्म में किसी रोल के लिये स्वराज मित्र को निमंत्रण मिला। बस फिर क्या था, वह तो सब छोड़ छाड़ कर मद्रास चले गये, इस प्रकार शहज़ादा मार्कस का रोल मुझे दे दिया गया। कविता के शौक के कारण पहिले ही पढ़ाई में कम ध्यान दिया जाता था अब ऊपर से अभिनय का शौक और आन जुड़ा। अब तो सभी सीनियर स्टूडेण्टस से भी अच्छी खासी जान पहिचान हो गई थी। इस नाटक के डारैक्टर थे श्री धर्मपाल त्रिक्खा उनके ही कारण अन्य प्रोफेसरज़ से भी मान सम्मान मिलने लगा था। जम्मू में उर्दू लिखने वालों में उस समय ठाकुर पुन्छी मोहन यावर ज़ैड सैमी, मयकश आदि का बहुत नाम था। स्वर्गीय ठाकुर पुन्छी तथा स्वर्गीय मोहन यावर से चाहे उस समय, उमर में बहुत छोटे ही थे यश, पर जब तक वह दोनों जीवित रहे रेडियो स्टेशन जम्मू में य फिर काश्मीर टाइमज़ के दफतर में जब भी मिल जाते तो अनायास खुले हंसी ठहाकों से उस दृश्य की याद हो आती जब चप्पलें हाथ में पकड़े भाग खड़े हुए थे।

वह सब इस प्रकार हुआ था, कि ठाकुर पुन्छी और मोहन यावर अक्सर शाम के समय रघुनाथ पुरा मुहल्ले की ओर जाया करते थे। सत्तरह, अठारह वर्षीय यश से वह उम्र में तो बड़े थे ही, उर्दू कहानी के लेखकों में भी उनका नाम था। इनका अपना कहना था कि उर्दू की चाँद पत्रिका में हम तीनों ही छपते थे।

एक दिन उत्सुकता वश जानना चाहा कि, आप कहाँ जाया करते हो ? तो एक दिन वह दोनों इनको भी अपने साथ यह कह कर ले गये कि, चलो बहाँ बहुत अच्छे लोग हैं जिन्हें गीत सुनना बेहद पसन्द है। आगे का हाल इनकी अपनी ज़ुवानी :-

"ठाकुर पुन्छी और मोहन यावर के साथ एक बड़े से हवेली नुमा घर में हम तीनों दाखिल हुए। वहाँ हर तरफ अंधेरा सा था केवल एक ही कमरे में लैम्प की रोशनी थी। वहाँ एक जैण्टलमैन व्यक्ति जो काफी अमीर सा दिख रहा था, पहिले से ही बिराजमान था।

वहाँ एक रेशमी कपड़े पहने अजीव सी सुन्दर औरत बैठी थी। उस औरत का इतना रूप लावण्य देख कर मैं तो अभिभूत सा ही हो गया। उन सब की आपसी बातचीत से ऐसा लगा कि यह सभी आपस में बहुत अच्छे परिचित हैं। बोल चाल में वह गुलाबों नाम की औरत कोई पहाड़िन सी लग रही थी। मैं तो उन दिनों कुछ गीत लिखता तथा फिल्म के गीत, भज़न गा लेता था उसी के चलते ही वहाँ गया था।

गुलाबों नाम की उस औरत ने पहले तो सब के साथ सिग्रेट सुलगाई, जब उसे मैंने व्हिसकी के गिलास को मुँह लगाते देखा तो अचानक एक ऐसी भय और घृणा की लहर सर्बांग में कौंध गई कि अपनी दोनो चप्पलें हाथ में उठा कर वहाँ से भाग खड़ाहुआ। उस लावण्यमयी औरत की हंसी दूर तक पीछा करती सुनाई दे रही थी। ठाकुर पुन्छी तो थोड़ी दूर तक ही मेरे पीछे आये जब कि मोहन याबर तो रघुनाथ मन्दिर तक मेरे पीछे-पीछे आये परन्तु मैंने तो पलट कर भी नहीं देखा, सीधे घर आ कर ही दम लिया।

वाद मे वह दोनो जब भी मिलते य दोनों में कोई एक भी कहीं मिल जाता तो उस घटना को याद करके खूव हंसते कि मैं कैसे चप्पलें उठा कर नंगे पांव ही भागा था।

उन दिनों मैं खूव सफेद झक कपड़े और अंगूठे वाली कीमती चप्पल पहना करता था और शरत्चन्द्र की फिल्म देवदास से अपने आप को किसी भी तरह कम करके नहीं आंका करता था।

पारो तो नहीं मिली, मिली तो सीधे ही चन्द्रमुखी। पर कैसी चन्द्रमुखी, गुलावी चमकीला मुखड़ा, बड़े-बड़े मदमाते नयन, सुलगती सिग्रेट के कश तथा हाथ में ब्हिसकी का गिलास लिये हुए।

दरअसल किसी सुन्दर स्त्री का ऐसा रूप तो मेरी कल्पना के घेरे से बिलकुल परे की बात थी मैंने तो जम्मू की गली मुहल्ले की उन औरतों को देखा था जो सुबह सवेरे पूजा का कंरूडु थामे (फूल धूप नैवेध की छोटी डलिया) मन्दिर जाया करती थीं। ऊँचे नीचे पत्थरों वाली गली में बहुत सी औरतें तो हाथ के पानी भरे लोटे से पत्थरों पर पानी छिड़क कर संभल-संभल कर पैर रखा करती थीं। य फिर पुराने डाकखाने के पास श्री हरदत्त शास्त्री कथा वाचक की कथा सुनने वाली महिलायें थीं, जहाँ अन्य लोगों के साथ मैं भी वहाँ जाया करता था। शायद उसका भी गहरा प्रभाव कहीं मन पर रहा होगा।

मोहन यावर न तो सिग्रेट पीते थे न ही शराव, फिर उनके भी पूर्वज बसोहली नगर के ही निवासी थे, इस से भी मेरी उनकी निकटता थी।

उन्हीं से सुना था कि वह गुलाबो, बाम्वे के किसी घनाढय सेठ की सेठानी बन कर चली गई थी। कुछ वशा वाद वह अपने अधेड़ थुल-थुल सेठ के साथ लम्बी डाज गाड़ी में जम्मू आई थी तो उसने ठाकुर पुन्छी से चप्पले उठा कर भागने वाले लड़के से मिलना चाहा था। इन लोगों के बहुत इसरार करने पर भी मैंने तौबा कर ली वहाँ दुबारा जाने की।

अपनी रिटायरमेंट के वाद बावू जी ने तो मेरे लिये अपनी सोच-समझ से ही मेरे लिये उपयुक्त रास्ता चुना था कि इसी बज़ीर वजारत के आफिस में मैं एक दिन बहुत बड़ा अफसर बनूंगा, ऊँचा ओहदा हासिल करूंगा। स्कूल में पढ़ते समय गर्मीओं की छुट्टियाँ होती तो मुझे याद है कि, बावू जी राजौरी थन्नामंडी, तत्तापानी सुन्दर बनी, काला कोट आदि स्थानों पर काम के सिलसिले में जाते तो मुझे भी बड़े चाव से अपने साथ ले जाया करते थे। वहाँ के सीधे-साधे सरल स्वच्छ अन्तः करण वाले लोगों की याद हमेशा आती है, जिनके लिये अपनी तहसील के अन्दर तहसीलदार साहिव का दौरा

किसी गर्वनर के दौरे से किसी सूरत में भी कम न होता था।

तहसीलदार साहिव के अमले फैले में दो एक घुड़सवार, गिरदावर, मुहर्रिर तथा तीन-तीन अर्दली होते थे। बावू जी मजबूत कद काठी के स्वयं बहुत वढ़िया घुडसवार थे। जिन गाँवों में ज़मीनों के इन्तकाल चढ़ाने के लिये जाना होता था। वहीं के स्थानीय नम्बरदार तथा ज़ैलदार को दौरे की दस्ती सूचना पहुँचा दी जाती। रजौरी के गाँव रश्वाह के बख्शी जगत राम की भी खूव याद है। बड़े खानदानी और मेहमान-नवाज़ व्यक्ति थे। पूर्ण सिंह जैलदार की हवेली में हम कितने ही दिन मेहमान बन कर ठहरते थे। वैसे हमारे ठहरने का स्थायी प्रवंध तो राजौरी दरिया के किनारे स्थित, पहाड़ियों से घिरी छोटी सी घाटी की ढलान पर एक प्राचीन किला था। जिसमें तहसील भी थी और तहसीलदार का कर्वाटर भी था।

बावू जी तथा दूसरे लोगों के लिये भले ही मुर्गा-मछली तथा मसाले भरे बटेरों का प्रवंध होता परन्तु तहसीलदार साहिव का बेटा ठहरा बैष्णव। मेरे लिये घरों सें भिन्न-भिन्न पकवान जैसे घीयूर, मीठे चावल, वादाम किशमिश गरी छुहारे का मीठा मंदरा बनता।

राजपूत घराने के बाँके लड़के मेरे ही हम उम्र थे। उनके साथ शिकार पर जाता तो था पर शिकार हुए लहूलुहान तीतर, बटेर, कलमुंहों को देख कर मन काँप जाता।

जब दरिया स्थित राजौरी किले मे लौटते तो मेरी जेवें रूपये पैसों के सिक्कों से भरी होती थीं। उपहार स्वरूप मिले सूखे मेवे-पिस्ता वादाम अखरोट को संभालने की पूरी-पूरी जिम्मेदारी सुखदेव और शफी मुहम्मद चपरासियों पर रहती। जो बावू जी के मंजूरे नज़र थे। मुझे सब जगह छोटे तहसीलदार साहिव कहा जाता।

बावू जी मेरा रूप रंग, मिलन सार स्वभाव और मसें फूटती देख कर फूले नहीं समाते थे। पहाड़ी गीत सुनने का भी वहाँ खूव अवसर मिलता जो अधिकतर पहाड़ी और गोजरी मिश्रित होते थे। तब मुझे भी कहाँ पता था कि यही गीत आगे चल कर कभी कविता के शब्द बन कर गति, लय, ताल द्वारा पुनः गीतों में ढल जायेंगे।

उन दिनों डी.सी. के स्थान पर बज़ीर बजारत ही हुआ करते थे। जम्मू के इसी दफतर में मैं भी पटवारी का काम सीखने लगा। वहाँ पर

पटवारी, वज़ीफा ख़ार, मुहर्रिर आदि से काम करवाने के लिये आसामियों से चार आने, आठ आने, रूपया दो रूपये रिश्वत के रूप में ऐंठे जाते थे। जो उस समय के लिहाज़ से बहुत बड़ी रकम समझी जाती थी।

उस दफतर में एक बुजुर्ग लाला जी थे जिन्हें सब मुंशी जी कहते थे जो, रिटायरमेंट के करीव थे। मेरे साथ और भी दो लड़के थे जो काम सीख कर पटवारी बनने पर मालामाल होने की कल्पनायें किया करते थे। उनकी इस बात-चीत में मेरा कोई दखल नहीं था।

उन दिनों भी मैं सिग्रेट पिया करता था। उस दिन भी खिड़की के पास बैठा सिग्रेट ही पी रहा था, जिस दिन वह घटना घटी थी जिसने मैहकमा माल की अफसरी की सारी संभावनाओं को एक झटके में समाप्त कर दिया था।

खूव सर्दी का मौसम था। पुरानी सी मैली लोई ओढ़े एक नौजवान गुज्जर ने मुंशी जी के पास आकर सलाम करते हुए बिना मांगे ही तय-शुदा चवन्नी की दस्तूरी मुंशी जी की टेवल पर रख दी। जाने उसे कौन सा कागज़ चाहिये था य और क्या काम था। जिस के लिये मुंशी जी चार आने की और मांग कर रहे थे। वह गुज्जर कसमें खा रहा था, गिड़गिड़ा रहा था कि उसके पास और पैसे हैं ही नहीं यहाँ तक तो ठीक था, एसे दृश्य मैं जब से यहाँ आया था, रोज ही देखता रहता था।

पर उस दिन अजीव वाकेया हुआ। मुंशी ने गुस्से से उसकी लोई झटके से खींची तो उसके शरीर पर मैली कुचैली परतनी (छोटी लुंगी) तथा तार-तार बास्कट के सिवाये और कुछ नहीं था। उसी लुंगी के एक छोर पर एक आना गाँठ में बंधा था। लाला जी ने उसे झूठा बेइमान, वाहियात करार देते हुए वह आना भी हथिया लिया। इस पर वह गुज्जर फूट-फूट कर रो पड़ा कि, यह पैसे मेरे बच्चों ने दिये हैं कि शहर से बाजी (बताशे) लाना।

यह सब देख कर जहां दूसरे दोनो लड़के खूव हंस रहे थे, वहाँ मुझ से यह सब सहन न हो सका। मैंने उठ कर दोनों हाथों से उसके कंधे झकझोरते हुए कहा कि, बेईमान और कमीनें तो आप हैं। किस कानून के तैहत आप पैसे लेकर काम नहीं कर रहे हैं।

बस फिर क्या था, पूरे दफतर में शोर मच गया कि तहसीलदार साहिव के लड़के ने मुंशी जी को मारा है। मेरे बावू जी बड़ा रोव रूआव

रखते थे। शिकायत उन तक भी पहुँची। साथ के दोनों लड़कों ने नौकरी जाने के डर से सफेद झूठी गवाही दी कि, इसने मुंशी जी को मारा भी है और हमारे सामने गालियां भी दी हैं। मैं अपनी सारी सच्ची बात दुहराता रहा पर वहाँ कोई सुनने समझने को तैयार ही नही था।

सुना और समझा मेरे बावू जी ने होगा मेरे सिर पर हाथ रखते हुए कहा कि, चलो यहाँ से, यह काम तुम्हारे लिये नहीं है। बजीर वज़ारत श्री बलदेव चन्द जी ने सौजन्यता पूर्वक हल्के से मेरी पीठ थपथपा दी थी। बावू जी की उस दृष्टि मे अवसाद का भाव अधिक था य विस्मय का य फिर मेरे भविष्य की चिन्ता का, जिसे मैं कभी समझ नहीं पाया। नौकरी छूटने का फिर उन्होंने कभी कोई ज़िक्र नही किया।

हाँ उन दिनो जब मैं कहीं कविता पढ़ता था और बात घर तक पहुँचती तो बावू जी, माँ से कहते कि, इसे कहो न कि, हमें भी अपनी कविता सुनाये। पर मैं झिझक के मारे उनके सामने पड़ने से ही बचता रहता था। जब तहसीलदार ही नहीं बन पाया था तो अब कविता क्या सुनाता। यह सव वर्षों बाद इन्ही से सुनने पर भी मुझे कोई विशेष आर्श्चय नही हुआ था। शायद सामाजिक अन्याय, शोषण, भ्रष्टाचार के विरूद्ध खड़े होने की, लड़ने की यह अनजाने में ही शुरूआत रही होगी।

संभवत् 1935 में प्रेम चन्द जी के युग में प्रगति-शीलता की जो लहर चली थी आगे चल कर इसी लहर नें इस अहिन्दी भाषी डुग्गर प्रदेश के युवा क़वियों की अन्तरात्मा को स्पर्श किया था।

कालान्तर में कवि यश को उनके निकट से जानने वाले, परखने वाले, बुद्धि जीवियों का भी यही मानना रहा है कि, "यश ने कभी अपना स्वभाव नहीं बदला, कोई कृत्रिमता नहीं ओढ़ी, किसी भी अन्याय के आगे न झुकने वाला व्यक्तित्व हैं", सच भी यही है कि, किसी भी प्रकार की कृत्रिमता का न होना - मानव प्रकृति को कभी दूषित नहीं होने देता। यही कारण है कि उनके चिंतन में कृत्रिमता लेशमात्र भी नहीं है। इसी लिये तो उनकी रचनाओं में मानव-मात्र के प्रति स्नेह, संवेदना, करूणा की धारा स्वतः पनप पायी है। यह तो पहिले ही कहा जा चुका है कि हाई स्कूल पास करने से लेकर उस समय तक जीवन यात्रा पर अग्रसर होने के लिये कोई भी स्पष्ट दिशा नहीं सूझ रही थी। जो भी रास्ता सामने दिख जाता उसी पर

चलने की ललक मन में जाग उठती।

उन्हीं दिनों की और एक घटना य हादसा भी कहा जा सकता है, जिसकी चुभन कोमल मना कवि को उम्र भर सालती रही, लहूलुहान करती रही, विदीर्ण करती रही, जव कि उसमें कहीं से किसी भी प्रकार का उनका अपना कोई योगदान नहीं था और न ही रंचमात्र भी कोई सीधा संबध ही था।

सब से बड़ी बात थी, कि इस क्रूर परिहास को साधारण सी मानवीय नियति मान कर भुला दिया गया था। यह सव जानकारी मिलने पर एक ही बात मेरे मन में भी बार बार आती रही कि, आदमी से ज्यादा जानवर की कद्र की जाये तो ठीक है।

यह सब जिन्होंने देखा था उनमें से एक तो हैं एस.पी. रिटार्यड जो राष्ट्रीय राज मार्ग पर के एक गाँव में अपने जीवन के अंतिम दिन गुज़ार रह हैं। दूसरे स्वयं मेरे पति। कभी-कभार इन दोनों की टेलिफोन य फिर कहीं एक दूसरे के घर जा कर मिलना हो जाता है। इन दोनों का जब भी कभी मिलना होता है तो उस हृदय विदारक घटना का अवसाद काली छाया सी बन कर आँखों मे तैर जाता है। यहाँ जो सुना :-

कालिज के प्रांरभिक दिनों में खेले गये नाटक आगाहश्र काश्मीरी कृत यहूदी की लड़की में हीरो का पार्ट सफलता पूर्वक निभाने क़े वाद कालिज के सीनियर स्टूडेण्टस में भी अच्छी खासी पहिचान हो गई थी। इसी नाटक के निर्देशक त्रिक्खा जी के साथ पंजतीर्थी मुहल्ले के बहुत ऊँचे रईस खानदान के एक लड़के के साथ दोस्ती थी। और भी बड़े घरों के कुछ लड़के थे। जब कि मैं इन सब लड़कों से काफी छोटा था और कौतूहलवश ही इनके साथ शामिल होता था। पर किसे पता था कि इस सब का दुःष्परिणाम सिर्फ मेरे ही हिस्से आने वाला था। यह सभी लोग अपने क़ो क्रान्तिकारी तसब्बुर करते थे।

उन दिनों भगत सिंह, राजगुरू, सुखदेव बनने की धुन प्रायः नौजबानों के सिर पर सवार रहती थी। वफादार रहने के लिये खून से हस्ताक्षर करवाये गये। शपथ ग्रहन की गई। परीक्षा का दिन भी निश्चित किया गया। परन्तु इस सब से एक दो दिन पहले ही वह अजीव सी घटना घटी थी।

योजना बम बनाने की थी, हालांकि बम कैसे बनता है, बम किस चिड़िया का नाम है। इसकी किसी को भी खबर तक नहीं थी, सब कुछ कागज़ी कार्रवाई। बम में इस्तेमाल होने वाले कुछ एक रसायनों की जानकारी थी तो सिर्फ उसी सांईस स्टूडेण्ट को य फिर दूसरे कुछ एक उसके साथिओं के पास। जो कोर्स की किताब के रटे रटाये रसायनों के नाम से आगे कुछ भी नहीं था। हाँ एक भक्तसिंह के भगोड़े साथी को उस मंडली में जरूर देखा था। उनका नाम शायद प्रेम वर्मा य कुछ और होगा पर वह वर्मा जी के नाम से ही वहाँ जाने जाते थे। उस समय भी वह मेरे चाचा की आयु के थे। सफेद धोती कुर्त्ता, लम्बा कद, गोरा रंग चौडे माथे पर लाल चन्दन का टीका, बस हमें प्रभावित करने के लिये इतना ही काफी था। अधिक जानकारी हासिल करने के लिये एक भोले भाले गोरखा सिपाही को देशप्रेम, देश सेवा का झाँसा देकर सिर्फ देखने भर के लिये उससे बन्दूक माँग ली गई थी।

बन्दूक लेकर वह रईस ज़ादे भैया ऐसे चम्पत हुए कि, हम सभी हक्के-वक्के रह गये। उसे सीधे-साधे गोरखे सिपाही को उसके घर जा जा कर लाख गिड़गिडाने पर भी अपनी बन्दूक न मिल सकी। बन्दूक सरकारी थी। बन्दूक न मिलने पर डर के मारे वह गोरखा युवक रात के समय चुपचाप रस्सी से झूल गया था।

एक निरीह नौजवान के साथ इतना बड़ा धोखा, इतना बड़ा विश्वास-धात। उसी क्रान्तिकारी टोले में से यही दो व्यक्ति आज भी उस घटना को याद करते हुए सिहर उठते हैं।

दूसरी सुवह, इनका कहना था कि, धौंथली वाज़ार जो विलकुल हमारे घर के पास ही था, सुवह-सवेरे ही निकला तो दो-दो, चार-चार, दस-दस लोगों के टोले, सब की जुवान पर एक ही चर्चा कि, "जाने कहाँ का वह विचारा गोरखा सिपाही, जो रात को फंदे से लटक गया था, उसकी सरकारी बन्दूक चोरी हो गई थी"।

उस के वाद बस इतना ही आज भी याद है कि, इस ख़वर से एक कंपकपी एक सनसनाहट से पूरा शरीर भर उठा था, कैसे वापिस घर पहुँचा, कौन लाया, क्या हुआ कुछ पता नहीं। तेज़ बुखार बुरी तरह बीमार, चार पाँच दिन कोमा में पड़ा रहा।

डाक्टर मोदी तथा डाक्टर रोशन लाल जबाव दे गये कि इस बीमार लड़के का बचना मुशकिल है। घर में भी सभी को विश्वास हो चला था कि, अब मैं कुछ ही दिनों का मेहमान हूँ। कौन आया कौन गया किसने क्या कहा, कुछं भी पता नहीं।

आखिर मे बावू जी प्रसिद्ध हकीम परसराम नागर को लाये, जिन्होंने सन्निपात ज्वर का उपचार तो शुरू किया पर साथ में यह भी कहा कि भगवान के सिवाये इस लड़के को कोई नहीं बचा सकता। वेदपाल दीप कहीं वाहर गया था। वीमार सुन कर आया, मुझे बेहोश पड़ा देख कर वहीं बैठे-बैठे एक कविता लिख कर मेरे सिरहाने छोड़ गया। माँ ने वह कविता परसराम नागर जी को दी तो उन्होनें उस कविता को पढ़कर उस का भाबार्थ मेरे घर वालों को समझाया था। नागर जी को दीप की कविता बहुत अच्छी लगी थी, उन्होंने दीप से मिलना चाहा था। आज वह कविता सारी तो नहीं पर उसकी कुछ पंक्तियां ही दिमाग में सुरक्षित हैं :-

यह समय नहीं है जाने का -
यह समय है तेरे गाने का,
यह रैन गुजर ही जाये गी,
फिर चमकीला दिन आये गा,
फिर गीत सुनाये गी नदिया,
फिर नाच उठे गी यह वसुधा,
फिर से तुम जीवन पाओगे,
मृदुहास लिये नव शिशु का सा........।   ....."दीप"

फिर से उठ कर बैठने लायक होने में दो ढाई महीने का समय लगा था। अच्छे से होश में आने पर माँ ने माथा सहलाते हुए धीरे से पूछने का जतन किया था कि, मुझे सच सच बता क्या हुआ था उस वक्त जब तू बेहोश हुआ था ?

माँ की ओर देख कर मैंने सफेद झूठ बोला था कि, मुझे कुछ मालुम नहीं कि, वह सब क्योंकर हुआ।

यह झूठ मैंने किसके लिये कहा था ? अपने बचाव के लिये य माँ की ममता के लिये ? य फिर उस अभागे निर्दोष गोरखे की मौत पर झूठ का सफेद कफ़न ओढ़ा कर उस अध्याय को समाप्त करना चाहा था। पर

क्या वह सच में ही सव उस समय समाप्त हो गया था? न-न, ऐसा होता तो फिर इस समय यह सारी कहानी नये सिरे से क्यों कहनी पड़ती फिर इतने वर्षों वाद जब कि, माँ-बावू जी वह डाक्टर लोग, परसराम हकीम, आधे से भी अधिक परिवार के प्रियजन, अपनी क्रान्तिकारी मंडली के साथ पंजतीर्थी का वह रईसज़ादा, वह अभागा गोरखा तथा अपनों से भी वढ़कर वेदपाल दीप सब जा चुके हैं। दीप! मेरे मित्र दीप! तुम सच में ही दीप थे दूसरों को रोशनी देने बाले, पर-तुम्हारे अपने हिस्से क्या आया था ?

अब आगे जो और सुनने को मिल रहा था :-

हकीम परसराम जी की दवाई तथा दीप की स्नेह भरी कविता तथा नितान्त अपनों की प्रार्थनाओं से शुभकामनाओं से पुनः स्वस्थ हो उठा था। दीप दुबारा मुझे देखने आये तो परस राम जी भी वहाँ मौजूद थे। उन्हे दीप से मिल कर एक अजीव सी खुशी का अहसास हुआ। उन्होंने हम दोनों से वायदा किया कि जब हम उनके निवास स्थान पर उनसे मिलने आयेंगे तो वह हमें उन पत्रों को दिखायेंगे जो "राम" से संवोधित करके प्रसिद्ध पार्श्व गायक कुन्दन लाल सहगल ने उन्हें लिखे हैं।

मेरी बीमारी के दौरान दीप ने उन्हें बताया था कि, यश सहगल के गाये गीतों का दीवाना है तथा बहुत अच्छी तरह से उन गीतों की कापी भी कर लेता है।

दरअसल बात यह थी कि, दीबान मन्दिर की स्टेज पर नवरात्रों में होने वाली रामलीला मे हकीम परसराम नागर, राम की भूमिका में उतरते थे। उनके साथ सीता बन कर मंच पर अभिनय करते थे श्री के.एल. सहगल।

यद्यपि दीप अपने रूझान के कारण उन दिनों संगीत-बीत के चक्कर की अपेक्षा प्रगतिशील कामरेड लोगो के अधिक निकट थे। परन्तु सीता रूपी कुन्दर लाल सहगल के पत्रों को देखने के लिये दीप मेरे साथ नागर जी के घर जाने लगा। नागर जी हारमोनियम लेकर अपने पूजा कक्ष में बैठ कर बिन्दु जी महाराज तथा मीरा के भज़न अवश्य सुनाते रहे। उनके यहाँ कई वार जाने पर भी जब उन्होंने अपनी सीता के लिखे पत्र नही दिखाये तो वेदपाल दीप भज़नों का रसिया तो था नहीं भले ही वह मीरा कबीर के बारे में हम से भी ज्यादा जानता था अतः वह ऊव गया।

संगीत से अधिक उसे उन पत्रों को देखने की तथा पढ़ने की आरजू थी। इसके वाद उसने नागर जी के पास एक दम जाना छोड़ दिया, फिर वह उसका रास्ता भी तो नहीं था।

1947 में देश का विभाजन हुआ तो सितम्बर में यश शर्मा अपने परिवार के साथ श्री नगर में ही थे। यह वही समय था जब हज़ारों की संख्या में कवायलियों ने काश्मीर की सुन्दर घाटी पर कब्जा जमाने के लिये आक्रमण कर दिया था। महाराजा तथा उनके बड़े बड़े अधिकारी, मन्त्री सगे सम्बन्धी कश्मीर छोड़ कर जम्मू रवाना हो चुके थे।

उस अफरा-तफरी के माहौल में जम्मू आने का किराया प्रति सवारी (500) पाँच सौ य इससे भी अधिक बसूला जा रहा था। एक बेचारा क्लर्क जिसका वेतन ही (75) पचहत्तर य (100) सौ रूपये हो। वह अपनी गृहस्थी के सभी सदस्यों के साथ कैसे जम्मू पहुँच सकता था।

कवायली श्री नगर के हवाई अड्डे बरज़ला तक पहुँच चुके थे। शहर कोई पाँच सात मील की दूरी पर ही रह गया था। मृत्यु यकीनी थी। उस समय काश्मीर वामियों के भाई चारे का एक अद्‌भुत दृश्य देखने में आया, जो शायद फिर कभी न दिखा और न निकट भविष्य में फिर कभी दिखने की संभावना है। पर भविष्य की कौन जाने।

बावू जी 1943 में ही रिटायर हो चुके थे। अपने कुछ सलाह कार दोस्तों के परामर्श पर उन्हीं की भागीदारी में "युनिवर्सल ट्रैडरज़ कम्पनी" के नाम से फत्तु के चौगान में फरनीचर बनाने का काम बड़े पैमाने पर शुरू किया।

परन्तु सारी उम्र तो नौकरी के पेशे में रहे थे। अनुभव की नितान्त कमी होने के कारण यह विज़नेस कहाँ चल सकता था। दो एक काम और भी शुरू किये, जैसे कश्मीर से फल मेवे मंगवा कर उन का आढ़तियों के माध्यम से बितरण करना।

इनका कहना था कि, उगाही के लिये मुझे भेजा जाता-भला मेरी दिलचस्पी कहाँ थी इस धंधे में। उधमपुर, रियासी, कटरा आदि स्थानों पर से मैं खाली हाथ वापिस लौट आता। वह व्यापारी खातिरदारी करके बातों के ही झाँसे देते कि रकम बाबू जी तक स्वयं ही पहुँचा दी जायेगी। कहने का यही अर्थ है कि जो भी काम बावू जी ने शुरू किया, उसका फल वही

होता ढाक के तीन पात, सहज बिश्वासी मेरे बावू जी ने सब जगह धोखा ही खाया था।

अन्त में बची खुची सम्पत्ति के साथ मालविभाग के एक उच्चाधि ाकारी के साथ स्यालकोट शहर में काम शुरू किया, नाम था उनका अब्दुलरशीद। उनके साथ चार आने की भागीदारी में फौजी बर्दियां सिलने का काम शुरू किया। दोनों ही महकमा माल से अवकाश प्राप्त अधिकारी थे। अब के काम ठीक-ठाक चलना शुरू हो गया।

सिलाई की (100) सौ सिंगर मशीने खरीदी गई, दर्जी रखे गये। बिदेशी बढ़िया खाकी गर्म सर्ज की फौजी बर्दिया सिलनी शुरू हो गईं, जो खूब पसन्द की गई। आर्डर पर आर्डर मिलने लगे।

पर बटवारे के कारण सब कुछ वहीं का वहीं धरा रह गया। सर्ज के थानों से भरे कमरे वहीं रह गये। बड़ी मुशकिल से जान बचा कर बावू जी घर पहुँचे। हमने भगवान का लाख शुकर किया कि सही सलामत बावू जी घर आये थे। फिर भी यहाँ तक बन पड़ा शेख अब्दुल रशीद ने बावू जी को जम्मू पहुँचाने में तन, मन, धन से मदद की थी।

कालिज के दिनों से ही हिन्दी साहित्य मंडल की गोष्टियाँ हुआ करती थी। सभी प्रबुद्ध तथा उभरते कबियों का हिन्दी में ही उत्कृष्ठ लेखन हो रहा था। 1947-48 में जम्मू रेडियो स्टेशन की स्थापना हो चुकी थी। महाराजा हरि सिंह जी की आज्ञा से रणवीर हाई स्कूल के कुछ कमरे रेडियो स्टेशन बनाने के लिये मिल गये थे। 1947 से कालिज की पढ़ाई लगभग छूट ही चुकी थी, जम्मू शहर ही क्या प्रायः देश भर के स्कूल कालिज बन्द हो चुके थे।

जीवन समय के प्रवाह के साथ ही आगे वढ़ता जाता है। चाहे कवि यश का जीवन के प्रति अपना ही दृष्टि-कोण था। स्वभाव गत, प्रसन्न मना ही कहा जा सकता है परन्तु कभी ऐसा भी तो होता है कि सामने कोई मंज़िल ही न हो जहाँ पहुँचने की जल्दी हो। इन्होंने मुझे वताया कि, ऐसे ही एक दिन घूमते-घूमते जा निकले अपने पुराने रणवीर हाई स्कूल में। उन दो कमरों को देखा, जिनमें मैं छटी क्लास में पढ़ता था। उनमें से एक कमरा काज़ी कमरूद्दीन का था जो हमें ड्रांइग सिखाते थे। वहाँ काम चलाऊ स्टूडियों बन कर तैयार हो रहा था और दूसरे कमरे में छोटा मोटा ट्रान्समीटर

लग गया था।

कभी सोचा भी नहीं था कि, अपने दो चार साथियों समेत थोड़े दिनों वाद यहाँ पहले पहले काम करने बाले हमीं लोग होंगे। मेरे बचपन के साथी श्री शम्भु नाथ गौड़ और कृष्णा भसीन यहाँ पहिले अनांउसर थे। फिर बोध राज शर्मा, राजेन्द्र गुप्ता, जितेन्द्र शर्मा तथा कुछ बक्फे के वाद और साथी भी सम्मिलित होते गये। बाद में कैलाश नाथ कौल मयकश, उर्दू स्क्रिप्ट राईटर नियुक्त हुऐ।

इन का कहना था कि, मैंने डोगरी के देहाती प्रोग्राम में हिस्सा लेना शुरू कर दिया था। उस समय क़वायली हमला हो चुका था। आतताइयों को खवरदार करते हुए प्रसिद्ध हास्य व्यंग्यकार बलवन्त चाचू के सांथ में काम करने लगा थ। उनका नाम भी शायद आज रेडियो में किसी को याद तक न होगा। बलतन्त चाचू लिखते थे, "इनें गी मारना ईयां, ओ भिड्डूं मारदे जियां।" अर्थात इन कवायलियों को हम भेड़ों की तरह मार देंगे।

रेडियों में संभवत मेरी पहली डोगरी कविता थी "इक्क होये-इक्कीयें पर भारू, इक्कनिं जीन्दा जान देयो। "जय बोलो भारत माता दी, हसदे हसदे प्राणदेयो" अर्थात् हमारा एक-एक बहादुर सिपाही, दुश्मन के इक्कीस सिपाहियों पर भी भारा है। इसलिये एक शत्रु को भी जीवित मत जाने देना। भारत माता की जय बोलते हुए, हंसते हंसते प्राणों को न्योछावर कर दो।

ऐसी उलटी सीधी तुकबन्दियां ही तब कविता में की जाती थीं। शायद इन नये कलाकारों में एक मैं ही कवि रहा हूंगा।

यहाँ यह बात भी उल्लेखनीय है कि, कालिज के दिनों से ही जो हिन्दी कवि के रूप में अपना साहित्यिक त्रिकोण बनाते थे 1946 तक पहुँचते पहुँचते डोगरी साहित्य को समृद्ध बनाने के लिये अपने अपने ढंग से डोगरी भाषा को अपने लिखने का माध्यम बना लिया था।

कुछ देर वाद जब मधुकर भी रेडियो में आये तो उस वक्त हम दोनों का अच्छा सामंजस्य बना य ऐसे भी कहा जा सकता है कि, डोगरी में तुकबन्दियाँ ही सही, पर अच्छा लिखने लग गये थे। 1947 के पश्चात तो डोगरी कवि सम्मेलनों में भी भाग लेना शुरू कर दिया था। डोगरी साहित्य के अभ्युदय काल की कुछ चर्चा से पहिले एक और सत्य "का मनोविज्ञान":-

सत्य को सत्य कहना भी कवि धर्म का निर्वाह ही कहा जाना

चाहिये। शायद इसी लिये कभी कोई किसी की प्रशस्ति लिखना य भाटपुना स्वभाव में ही नहीं रहा इस कवि के। और तो और भगवान की स्तुति प्रार्थना में भी अपने अन्तर की भावना और बाहरी परिस्थितियों के सच्चे चित्रण को ही मान्यता देने में कभी पीछे नही हटे।

1947 की त्रासदी से 1948 तक भी सारा देश उभर नहीं पाया था। पर भगवान को तो हर परिस्थिति में स्मरण करना, हमारी पहिचान है, धर्म है, परंम्परा है। किसी पर्व पर शहर में एक धार्मिक सम्मेलन का आयोजन किया गया था। जिसमें हिन्दी के वरिष्ठ लेखकों के साथ यश शर्मा को भी कविता पाठ के लिये आमंत्रित किया गया था। विषय था "श्री कृष्ण"।

उन दिनों कच्ची छावनी में ही इनका सारा परिवार रहता था। उस धार्मिक सम्मेलन में पूरा पंडाल खचा-खच भरा था। ऐसे समारोह भी यदा कदा ही किसी विशेष पर्व उत्सव पर मनाये जाते थे। शहर के गण्यमान्य नागरिक तथा धार्मिक बिचारों वाले अतिथि गण विशेष रूप से आमंत्रित थे। मंच पर सस्वर गीत पढ़ना शुरू किया :-

जाग ओ राधा के मतवाले।
एक द्रौपदी थी, तब तुमने थानों पर थे थान लुटाये
आज हजारों के तन नंगे देख तुझे लज्जा न आये
मन तो काला नहीं तुम्हारा, बेशक हो तुम तन के काले।
जाग ओ " " " " "

गीत के आरम्भ की चार पंक्तिओं ने खूव वाह वाही लूटी, खूव जादू चला, पर आगे की चार पंक्तियाँ :-

आज विदुर घर साग नहीं तो, बिरले के पकवान पे आजा
प्रीति का भोजन है प्यारे, किन्तु परन्तु न कर खा जा
ऐसे सुन्दर दिन धरती पर बार-बार नहीं आने वाले
जाग ओ " " " " "

इन पंक्तियों के अन्दर चुभते व्यंग्य की ताव न लाकर कुछ विशेष व्यक्ति आहत हो गये.। आगे की पंक्तियाँ मंच पर पढ़ने की सख्त मनाही कर दी गई। यहाँ बात इन्हीं लोगों के स्वार्थ का मुखौटा उतरने की थी।

मंच पर तो गीत की अगली कड़ी नहीं सुनी गई थी, पर उसमें देश के बंटवारे को लेकर हिंसा तथा मानवता की विनाश लीला का परोक्ष रूप से संकेतों द्वारा चित्रण इन शब्दों द्वारा किया गया थां

कौरव और पांडव दोनों में द्वापर में भी युद्ध हुआ था।
तब तुमने उस महानाश को धर्म युद्ध का नाम दिया था।
महाभारत के युद्ध मंझारी, गीता ज्ञान सुनने वाले।
जागओ राधा के मतवाले।।

इस गीत के रचनाकार ने इन अंतिम चार पंक्तिओं में यही सच कहना चाहा था कि, कौरवों और पॉडवों का वह युद्ध भी भाई-भाई का ही युद्ध था, एक भंयकर गृह युद्ध था। देश के लिये महानाश, सभ्यता संस्कृति के विनाश का कारण था।

उस युद्ध को तो धर्म युद्ध का नाम देकर एक अवश्यंभावी धर्म की रक्षा का कारण बतलाते हुए रणभूमि के मध्य में आपने गीता ज्ञान का उद्‌धोष किया था। परन्तु यह 1947 में जो मानवता की विनाश लीला हुई। भाई ने भाई के रक्त से प्यास बुझाई, इस मार-काट को किसी नीति के खातें में डालोगे। इसे कौन सा नाम दोगे, किस धर्म की संज्ञा से सदियों तक इसे स्मरण किया जायेगा। ओ ! राधा के रूप में रमण करने वाले, अब तो जाग जाओ।

उन्नीस बीस वर्षीय इस नौजवान कवि की ऐसी सोच, ऐसी निर्मीकता भरी ललकार भला धर्माचार्यो के गले से कैसे नीचे उतर सकती थी। दो बन्द सुनने के पश्चात पहिले तो एक खामोशी सी छा गई, फिर तुफान, फिर मंच से उतर जाने का चुपके से हुक्म मिला। दूसरे दिन उनमें से बहुत से लोग हमदर्दी जताने आये थे, आत्म बिस्मृत सा हो कर गाया यह गीत एक हलचल सी मचाने में तो सफल हुआ ही था, एक आत्म तुष्टि का बोध तो कहीं मन के भीतर भरा ही था।

दीप ने सुना तो बगले बजाते हुए कहा कि, "तुगी आखिया हा न, नेई जाया उत्थैं। दुहात्थडाँ मारिये रोन्दा औगा। यश, कविता पढ़नी होये तां साढे नैं सलाह सूत्र करिये जा कर"।

"अर्थात :- तुम्हें कहा था न कि उस माहौल में वहाँ मत जाना सिर पीटते, रोते आओगे। भाई ! ऐसी कविता पढ़नी हो तो हम से सलाह

मशविरा कर लिया करो।

दर असल इस कविता द्वारा किसी का दिल दुखाने का तो कोई विचार ही नहीं था, कवि के मन में। भले ही इसमें कोई चोट रही होगी।

हाँ इतना जरूर था कि, घर से छोटे भाई तथा मुहल्ले के कुछ यार दोस्त यह सोच कर वहाँ पहुँचे हुए थे कि, धार्मिक सम्मेलन है, प्रसाद तो मिलेगा ही, अलवत्ता कुछ ज्यादा ही मिलेगा क्योंकि उनका अपना भाई वहां मंच पर होगा।

खैर यह सब तो सन् 1948 के गुज़रे वक्त की बात थी। प्रर इस रोचक घटना की जानकारी मुझे भी वर्षों वाद 24-9-2005 को मिली थी। उस दिन मौलाना आज़ाद मैमोरियल कालिज में सुवह ग्यारह बजे - जम्मू के कुछ मूर्धन्य हिन्दी लेखको के साथ यश शर्मा को भी सम्मानित किया गया था जो प्रशस्ति पत्र दिया गया वह है ......

वर्षों वाद हिन्दी लेखन के लिये दिये गये इस सम्मान से गौरवान्वित अनुभव करना तो सहज मानवीय अनुभूति है पर अपने साथी, हिन्दी लेखकों के लिये एक कचोट सी मन में कहीं जरूर उभरी, विशेष कर दीप, मधुकर के लिये। तभी मुझे भी इस गीत का प्रसंग सुनने को मिला था। तब अपने अतीत के भीतर से स्मृतिओं का जो ज्वार कवि में उमड़ा वह जैसे आज के वर्त्तमान को ठेल-ठाल कर 1947-1948 में ले गया था।

दैनिक जागरण
No. 1

प्रशस्ति पत्र

श्री यश शर्मा को राष्ट्रभाषा
के प्रति उनके सौहार्द, समर्पण-भाव एवं
साहित्यिक सेवाओं के लिए
राष्ट्रभाषा सम्मान
से अलंकृत करते हुए
जम्मू कश्मीर राष्ट्रभाषा प्रचार समिति
एवं
दैनिक जागरण
जम्मू स्वयं को गौरवान्वित अनुभव करते हैं।
दिनांक - 24-9-2005

शुरू-शुरू में रेडियो जम्मू मे हम लोग स्टाक करैक्टर कहलाते थे, केन्द्रिय सरकार से कम बजट मिलने के कारण कम अबधि के कान्टरैक्ट हमें दिये जाते थे। कांट्रैकट की अवधि खत्म होनें पर कुछ दिनों के अन्तराल पर

यह सिलसिला पुनः चल पड़ता था। जो पूर्णतया उच्च अधिकारियों के रहमओकर्म पर निर्भर रहता होता था।

दूसरे मैं कभी-कभार कुछ ऐसी रचनायें रच डालता, जिससे यहाँ के अधिकारियों को अपने बचाव के लिये इन सच्ची बातों को पचा पाना मुशकिल होता था। समय के सत्ताधारियों की प्रशस्तियाँ तो कभी लिख ही नही पाया।

पर यहाँ एक बात का ज़िक्र करना ही पड़ेगा कि अब जो यहाँ जिस कविता का तथा उसकी पृष्ठ भूमि का अवलोकन किया जा रहा है उसके लिये कवि की अनुमति तथा पूरी कविता को तलाश करने में थोड़ी कठिनाई भी मुझे आई ही है। क्योंकि कवि की दृष्टि में यह कविता नहीं बल्कि किसी क्षणिक जोश एवम् आक्रोश में लिखी गई किसी दूसरी कविता की पैरोडी मात्र है। चाहे उस समय का कटु सत्य यही था। इसी लिये कहीं से भी पूरी रचना प्राप्त करना एक तरह से दुष्कर कार्य ही था - इस रचना का नाम है "छोड़ी साहबें कश्मीर किआं"। यह कविता ठाकुर रधुनाथ सिंह सम्याल की कविता "जित्ति असें कश्मीर कियाँ" का केवल उत्तर मात्र ही है।

अति राष्ट्रीयता की ओर उन्मुख तहसीलदार ठाकुर रधुनाथ सिंह जी सम्याल साँबा निवासी थे तथा एक सामन्ती जमींदार घराने के सुपुत्र थे तहसीलदार उन दिनों वस्तुतः अपनी तहसील का शासक हुआ करता था। रधुनाथ सिंह जी को उस समय के शासक तथा सामन्त शाही से बहुत अनुराग था, क्योंकि इन्हीं के द्वारा उनको यह सत्ता प्राप्त हुई थी।

1947 के अनन्तर लोक प्रिय सरकार बनने से इनके विचारों तथा सामन्ती सोच धारा को बहुत ठेस पहुँची थी। उनके मन में इस सत्ता परिवर्त्तन के प्रति कड़ा रोष था। उस समय की वर्त्तमान राजनीति के समर्थक विचारधारा वाले लोगों के साथ इनकी सहमति नहीं बन पा रही थी। एक तरह से उन्हें राजशाही का कट्टर समर्थक भी कहा जा सकता है।

रधुनाथ सिंह जी तथा हमारे बावू जी रैविन्यू विभाग में एक साथ ही काम करते थे। इनके सगे भाइयों के लड़के कमल सिंह सम्याल तथा सुखदेव सम्याल स्कूल और कालिज के दिनों से ही मेरे सहपाठी थे। इन के अपने पुत्र भी बद्री सिंह सम्याल रेडियो में ही कार्यरत थे। इसी कारण मेरा

इन से बहुत अच्छा परिचय था।

रधुनाथ सिंह जी भी मुझे बहुत प्यार करते थे। उनकी उत्कट इच्छा थी कि मैं अपने सुरीले कण्ठ से उनके साथ राजे की मण्डी से लेकर गुमट की सीढियाँ उतर कर सतवारी तक उनकी प्रिय रचना उनके साथ गाता चलूं। गीत था देस बी राँगडा, वेस भी रंगड़ा, भेस भी रांगड़ा। अर्थात : डुग्गर प्रदेश तथा इसके निवासी उनका रहन-सहन शौर्य्य से परिपूर्ण है। और मुझे समझाते भी थे कि, तुम्हारे और मेरे लिये यही रास्ता सुगम और श्रेष्ठ रहेगा। इस अपने डुग्गर प्रदेश के लिये यही हमारा धर्म है, कर्त्तव्य है, इस समय।

मेरे मन में उनके लिये अपार श्रद्धा थी, आदर भाव था, क्योंकि उन के लेखन में डुग्गर की पूर्ण रूपेण संस्कृति झलकती थी। उनकी भाषा लोकोक्तियों से सजी मुहावरे दार होने के कारण लोक मानस और लोक रस के अधिक निकट थी। जिसके समक्ष मैं उस समय भी नतमस्तक था आज तक भी वही श्रद्धा मन मे रची वसी है।

पर हम दोनों की विचार धारा अलग अलग थी। यहाँ वह अतीत को नहीं भूल पा रहे थे, वहाँ मैं इस सत्ता परिर्वत्तन को एक नई सुबह का पर्याय मान रहा था। मैं तथा मेरे कालिज के कुछ मित्र नया सवेरा, नई जागृति, नये मौसमों के नये गीत गाने के लिये सुहाने सफर पर निकल पड़े थे। उस समय नये युग के स्वागत के लिये मैं लिख रहा था।

नमां जुग, नमीं भाख लान्दा केह् आया,
मनुक्खे दी अक्ली दे दिये बली पे।
चिरे हा जो, सुत्ती दी ही सोच जागी
ते बत्तां सुझाने गी तारे ढली पे।।

अर्थात : नया युग, नया गीत गाता हुआ क्या आया है कि, मनुष्य की अक्ल के दीपक जगमगा उठे हैं। चिरकाल से सोई सोच सजग हो उठी है और आकाश के तारे भी पथ प्रदर्शक बन कर नया रास्ता दिखाने के लिये धरती पर उतर आये हैं।

यह ठीक है कि रधुनाथ सिंह जी भी सोई जनता को झिंझोड़नें का ही कार्य कर रहे थे, जो हम कर रहे थे। किन्तु सामन्ती युग का सारे भारत वर्ष में ही अन्त हो चुका था परन्तु उनका अतीत से मोह भंग नहीं हुआ था।

तात्पर्य कि, जो समय के साथ कदम नहीं वढ़ाते-वह पिछड़ जाते हैं।

जब उन्होंने "जित्ति असें कश्मीर किआं" नाम की कविता, एक कवि गोष्ठी में पूरे जोशो खरोश के साथ पढ़ी तो पता नहीं मुझ पर क्या जुनून सवार हुआ कि केवल उन्हें सुनाने के लिये ही एक पेरोडी सी लिख डाली य फिर वह युवावस्था का कोई अनायास सा पंगा था। आज सोचता हूँ कि इस तुकबन्दी नुमा कविता द्वारा उन्हें क्यों दुःख पहुँचाया था ? पर यह सोच तो बाद में आई थी उस समय तो कुछ साथिओं के उकसाने पर कुछ जाने-माने साहित्यकार तथा कुछ उच्चअधिकारियों एवम् जम्मू के गण्यमान्य व्यक्तियों के समक्ष कविता प्रस्तुत कर दी थी। श्री रधुनाथ सिंह सम्याल की कविता के कुछ बन्द :-

जित्ति असें कश्मीर किआं ते चले दे डोगरे तीर किआं
टप्पेया राजे ने पीर किआं
शेखें सराफें ते बेगें गी पुच्छी लैओ
उच्चे-उच्चे सफेदेंगी पुच्छी लैओ
मामू दी कबरा पर बेइये पुच्छी लैओ
कसम ....देइयी ऐ पुच्छी लैओ
जित्ति असें कश्मीर किआं ?

अर्थात् हमनें काश्मीर को कैसे जीता था। राजा ने पीर पंचाल को कैसे पार किया था तथा कैसे चले थे बहादुर डोगरों के तीर।

शेखों, सराफों, बेगों (जातियाँ) से पूछ देखिये। ऊँचें-ऊँचे सफेदे के पेड़ों से पूछें। मामू (काश्मीर के महाराजा रणजीत सिंह का आखिरी गर्वनर) की कब्र पर बैठ कर पूछ लो। उसे सौगन्ध दिला कर दरयाफत कर लो कि, हम कश्मीर पर कैसे विजयी हुए थे।

इस कविता में डोगरों की बहादुरी का जम कर गुणगान किया गया था। रधुनाथ सिंह सम्याल की कविता सत्य थी, बहुत दम था। एक समय काश्मीर विजय में बहादुर डोगरों के तीरों की तीक्षणता का सभवंतः बहुत बड़ा योगदान रहा होगा। परन्तु कबायली हमले द्वारा आम जनता की दुर्दशा का मैं प्रत्यक्ष दर्शी गवाह भी था, स्वयं भी भुक्त भोगी था। शासकों द्वारा निरीह प्रजा को दरिन्दों के खूनी पंजों में मरने के लिये त्याग कर महाराजा

का अपने सहयोगियों के साथ रातों रात पीर पंचाल पार कर जम्मू के गरीव लोगो को निःस्सहाय छोडकर चले जाना एक खेद जनक हादसा ही कहा जा सकता था। परन्तु सत्य तो काल का होता है। कोई अतीत का सत्य तो कोई वर्त्तमान का सत्य। रधुनाथ सिंह जी को उपरोक्त कविता सुनने के पश्चात मैं अपने आप को रोक नहीं सका। सहन नही हो पा रहा था उनकी यह कविता किसी भी तरह गले से नीचे नहीं उतर पा रही थी।

इस समय मौसम वदल चुका था। गुलामी के अंधेरे छंट चुके थ। नई सोच ने जन्म ले लिया था। और अनायास बहुत थोड़े समय में ही समसामयिक परिस्थितिओं वश यह कविता बजूद में आई थी।

छोड़ी साह्वें कश्मीर किआं ?
होये साह्ब उत्थों तीर किआं ?
ते टप्पेया राजे ने पीर किआं।

1. दुर्गानागे दे कुण्डे गी पुच्छी लओ,
होर नेईं काजी गुण्डे गी पुच्छी लओ,
अपर मुंडे, लोअर मुंडे गी पुच्छी लओ
जाओ कुसे भड़ भूंजे गी पुच्छी लओ
सब्बै न जानदे, बोलदा कोई नेईं
निक्खड़ी ही रांझे हा हीर किआं
ते टप्पेआं राजे ने पीर किआं ?

2. आपूं बी मोये ता - देस बी मारेआ,
बड्डे बडेरें दा छैल नां तारेया,
दस्स हां म्हाड़ेया ठैगरा प्यारेया ?
कोह्कड़ा तुसे मदान हा मारेया ?
सच्चियाँ गल्लां बझोन्दियां कौड़ियां,
पेई तुन्दे ढिड्ड पीड़ किआं ?
टप्पेया राजे ने पीर किआं ?

3. शेख साह्वें फरमाया ओ मित्तरा,
कोई निं इत्थैं पराया ओ मित्तरा,

भेत ते भाव मिटाया ओ मित्तरा,

सारें गी गलै नैं लाया ओ मित्तरा।

किआं करी भुल्ली गल्ल तुसेंगी,

कुरजी ही हिरखे दी सीर किआं ?

इस कविता का भार्वाथ कुछ इस तरह है :-

अरे साह्ब आप ने कैसे छोड़ दिया कश्मीर को

(अपनी प्रजा को कवायली दरिन्दों के खूनी पंजों के हवाले करके) राजा ने कैसे अपने सहयोगियों के साथ रातो-रात पीर पंचाल को पार किया था।

1. दुर्गानाग के कुण्ड से पूछ लीजिये। नहीं तो काजी गुंड के कस्वे से दरयाफ्त कर लें। और नहीं तो, रास्ते में पड़ने वाले अपर मुंडा लोअर मुंडा के निवासियों से पूछ लीजिऐ। यदि यह सब भी रास न आये तो किसी आम आदमी से ही पूछ देखिये। जानते तो सभी हैं, पर चुप्पी साधे हैं। कैसे विछोह हुआ था हीर और रांझे का।

2. आप तो मरे ही (मान प्रतिष्ठा गंवाई) देश को भी मार कर रख दिया (गौरव नष्ट कर दिया) हमारे प्यारे ठाकुर। आप स्वयं ही बताओ कि आप ने इस कारनामे के कारण कौन सा मैदान मार लिया (ख्याति अर्जित कर ली) सच्च सदा कड़वा होता है। जिसे सुनने पर उदर में शूल तो गड़ेंगे ही। आप को तो याद ही होगा कि, आपने पीर पंचाल कैसे पार किया की?

3. उस समय (कठिन समय) शेख साहिव (शेख मुहम्मद अब्दुल्ला) का फरमान था कि यहाँ सभी अपने हैं। कोई भी बेगाना नहीं है। भेद-भाव (जातिगत) मिटा कर एकता की अद्भुत मिसाल पेश की गई थी तब। सभी को एक समान गले लगाया था। क्या यह बात आप को याद नहीं आई कि, उस समय घाटी में किस तरह प्यार मुहब्बत का चश्मा फूट पड़ा था।

आवेश में आ कर यह रचना तो रच डाली थी पर उस समय के कुछ अवसर वादी लोग इसे भुनाने के लिये मुझे प्रेरित करने लगे। जिमें बहुत से तत्कालीन मनिस्टर, विजनेस मैन-स्थानीय गण्य मान्य व्यक्ति पत्रकार

एवम् लेखकों के अलावा कुछ चाटुकार किस्म के मठाधीश भी शामिल थे।

कुछ तो खुशामदें भी करने लगे कि, यश! तुम हमारे साथ चलो। इस कविता को शेख साहिव और उनके साथिओं के दरवार में चल कर सुनाओ। तुम्हें तो मन वांछित फल मिलेगा ही कुछ हमारी झोली में भी पड़ेगा। उनका यही तात्पर्य था।

जोश में आकर यह कविता तो जरूर लिखी थी पर यह तो इस नौजवान को कभी भी गवारा नहीं था कि, किसी भी लोभ-लालच वश अपनी गैरत को गिरवी रख दिया जाता जब कि, उस समय कुछ कवि जो "शेख साहवें अर्से तारे ओ फंदुआ" लिख कर कुछ तत्कालीन सरकार का गुणगान करते हुए उँचे ओहदे तथा बहुत से अन्य लाभ प्राप्त कर रहे थे। पर इस स्वाभिमानी कवि के लिये अपनी ही कौम की खिल्ली उड़ाना तथा डोगरों के अपमान को पचापाना अति कठिन था। वर्षों बीत जाने पर भी यह कविता दुवारा किसी के हाथ आज तक नहीं लगी थी।

जब कि अभिनव थियेटर में 15 नवम्बर सन् 2003 को यश शर्मा की दूसरी पुस्तक "बेड़ी पत्तन संझ मलाह" के बिमोचन समारोह में दैनिक काश्मीर टाइमज़ पत्रिका के मुख्य संपादक श्री वेद भसीन जी अपने इस डुग्गर के कवि के प्रारम्भिक जीवन के कुछ दुर्लभ संस्मरणों को एकत्रित श्रोताओं के सम्मुख प्रस्तुत कर रहे थे। साथ ही साथ इनके व्यक्तित्त्व के कुछ अलग-अलग पक्षों को हल्के फुल्के अंदाज से उभारते भी जा रहे थे।

उसी चर्चा में वेद भसीन जी से यह बात भी सुनने में आई कि, रियासत में सत्ता हस्तांतरण के पश्चात् दो राज नैतिक धड़े जम्मू जेल में नजर बन्द थे। राजशाही का समर्थक दल नजर बन्दी के दौरान रघुनाथ सिंह सम्याल की रचना ज़ोर शोर से गाता "जित्ति असें काश्मीर किआं" तो दूसरा धड़ा दुगने जोर शोर से हावी होने की कोशिश में रहता कि "छोड़ी साहवें काश्मीर किआं" इस दल के अगुआ थे वेद भसीन जी स्वयं। भले ही उस आयोजन में उन्होंने समय को परखते हुए। इन रचनाओं के शीर्षक का ही हंसते-हंसतें ज़िक्र किया था। अगली पंक्तियाँ नहीं सुनाई थीं परन्तु मेरे हाथ तो सूत्र का एक सिरा पकड़ाई में आ ही गया था। पूरी रचना प्राप्त करने के लिये मेरे प्रयत्न तो मेरे अपने ही थे। पर रचनाकार के न चाहते हुए भी इस का ज़िक्र इस लिये करना पड रहा है कि, कवि के व्यक्तित्त्व का यह पक्ष

भी कहीं अंधेरे में गुम होकर ही न रह जाये।

सच तो यह भी है कि, किसी भी प्रकार की दलगत राजनीति से एक दम परे यह सब तो एक कालिज स्टूडेंट के समसामयिक परिस्थिति जन्य उपजे केवल उद्‌गार मात्र ही थे।

इस विषय में इनका अपना ही कथन था कि, जब रियास्त का भारत के साथ विलय होने की प्रक्रिया पूर्ण हो चुकी, भारतीय सेना काश्मीर रक्षा हित हवाई रास्ते से समय पर पहुँच कर दरिन्दों के हाथों से काश्मीर को मुक्त करवा चुकी थी तो यह सच्चाई उजागर हुई थी कि, "महाराजा का अपने आस-पास के कुछ विश्वस्त मित्रों पर आवश्यकता से अधिक विश्वास करना ही उनके दुर्भाग्य का कारण बना था"।

अन्यथा अपनी प्रजा की भलाई के लिये उन्होंने बहुत से कार्य किये थे। महाराजा साहिव हार्दिक रूप से आर्य-समाज की विचार धारा के प्रवल पोषक थे। डोगरा समाज में रची-बसी कुरीतियों और सड़ी-गली रूढ़ियों को दूर करने के लिय उन्होंने बहुत से साहसिक कदम उठाये थे। महाराजा हरि-सिंह जी उदार वादी दृष्टि तथा प्रगति शील विचार धारा के पूरे-पूरे समर्थक थे।

"डोगरी साहित्य का अभ्युदय काल"

डोगरी संस्था जम्मू की स्थापना वसन्त पंचमी 1944 को श्री नारायण मिश्र के घर पर की गई थी। इसमें सर्व श्री संसार चन्द बड़ू, भगवत् प्रसाद साढे, दीनू भाई पन्त, धर्म चन्द प्रशान्त राम नाथ शास्त्री तथा नारायण मिश्र, यह छः बुद्धि जीवी महानुभाव थे। डोगरी भाषा और साहित्य का विकास तथा सांस्कृतिक परम्पराओं का संरक्षण इस संस्था का महत्त्वपूर्ण लक्ष्य तथा उद्धेश्य था।

इसी संदर्भ में साहित्य एकेडमी द्वारा 1988 में प्रकाशित श्री ओम गोस्वामी द्वारा लिखित "भारतीय साहित्य के निर्माता" के अर्न्तगत परमानंद अलमस्त नाम की पुस्तक - पृष्ठ संख्या 13-14 की कुछ पंक्तियों का अवलोकन आवश्यक है।

"आज जब हम डोगरी भाषा और उसके रचनात्मक साहित्य की बात करते हैं तो इसकी उम्र को डोगरी के आंदोलन से संवद्ध कर देते हैं।

यह एक ऐसा भ्रम है जो बिना रोक थाम के प्रसारित होता गया। यह सत्य है कि, डोगरी संस्था की स्थापना से भाषाई गौरव जागृत करने और रचनात्मक साहित्य प्रकाशित करने के गंभीर प्रयत्न शुरू हुए थे। पर इस आंदोलन से पूर्व भी कुछ कवि काव्य रचना में प्रवृत्त थे। पंडित हर दत्त ने डोगरी भााषा-भाषाइयों की हीन भावना दूर करने के लिये तथा अपनी बात श्रोताओं को हृदयंगम कराने के लिये डोगरी भाषा को माध्यम बनाया था। हरदत्त जी के भजनों, गीतों की घर-घर चर्चा रहती थी। विशेषतया जिनमें सामाजिक रूढ़ियों और नवीन मूल्यों पर चोट की जाती थी। दीनू भाई पन्त तथा कुछ अन्य कवि-पंडित हर दत्त की रचना शीलता से प्रभावित हो कर डोगरी में उतरे थे। इस लिये संस्था के प्रवर्त्तकों को जिस भाव भूमि ने इस दिशा में प्रेरित किया उसे तैयार करने का श्रेय पंडित हरदत्त जी को जाता है।"

(आधुनिक डोगरी साहित्य 'एक परिचय' लेखक नीलाम्बर देव शर्मा अनुवादक सुभाष भारद्वाज-पृष्ट संख्या 5 प्रथम भाग) में लिखते हैं कि, "पंडित हरदत्त शास्त्री, डोगरी में आधुनिक चेतना के प्रथम कवि थे। जिनकी कविताओं में सामाजिक, आर्थिक तथा धार्मिक समस्यायें अभिव्यक्त हुई हैं। डोगरी साहित्य के विकास को कथा वाचक के रूप में उन्होंने एक निश्चत दिशा दी है।"

(डोगरी भाषा 40 के दशकं में ही आकर प्रौढ़ता को प्राप्त हुई। घुटनों के बल चलने वाली डोगरी भाषा, कुछ एक साहित्यिक योद्धाओं से बल ग्रहन कर खड़ी होने में समर्थ हो सकी। यह कहाँ तक उचित है, कुंछ तथ्य देखने होंगे)

(यद्यपि यह इस. लेखन का विषय नही है) परन्तु औचित्य सिद्ध करने के लिये जालन्धर से प्रकाशित उर्दू दैनिक पत्रिका हिन्द समाचार के कुछ पुराने पन्नों को पलटना होगा।

इस पत्रिका में मई 1971 किश्त न0 4 में जम्मू के ही एक बुद्धिजीवी तथा पत्रकार स्वर्गीय दयाकृष्ण गरदिश जी का सिलसिले बार लिखा एक लेख छपता रहा है। जिसका शीर्षक था "सारस की उड़ान जालन्धर से सुकराला तक"।

दैनिक हिन्द समाचार के इस दैनिक शुमारे में स्वर्गीय दयाकृष्ण

गरदिश, अखनूर के निवासी पंजाबी तथा डोगरी भाषा में लिखने वाले कवि लाला रामधन जी के बारे में लिखते हैं कि लाला रामधन एक खूव रू, खुशदिल और हस्सास शायर था। दरियाये चनाव से लाला जी को बेपनाह मुहब्बत थी। बाँगड़ू नज़्म के खालिक लाला राम धन थे। "बाँसुरी भिड़ें गडरिया" नाम की यह नज़्म, जम्मू के विद्वान श्री गांगेय नरोत्तम शास्त्री जी ने जब महाकवि टैगोर को कलकत्ता में सुनाई तो वह झूम-झूम उठे थे।

फिर महाकवि रविन्द्रनाथ के मुँह से वेसारब्ता निकला कि, काश मैं इस नज़्म को बाँगला में मुन्तकिल कर सकता। मैं भी डोगरी की मद भरी ज़ुवान में कुछ लिख सकता।

नज़्म को मफहूम कुछ इस तरह है :- गरदिश जी के शब्दों में। "काम देव को एक भिड़ ने काट लिया, वह रोने लगा। उसकी माँ ने कहा। तू इस मामूली भिड़ के काटने पर रोता है। ज़रा देखो तो उन लोगों को, जिनके सीने पर तेरे सुनहले तीरों से गहरे घाव पैदा हो चुके हैं, और फिर वह ज़िन्दगी भर आहे भरते हैं और वह सहराओं की ख़ाक छानते फिरते हैं।"

लाला रामधन जी की एक और नज़्म लारेंस साहिव की वसातत् से इंग्लैड पहुँची थी। उसका मफहूम गरदिश साहिव कुछ इस तरह ब्यान करते हैं :-

"कार्त्तिक की पूर्णिमा को एक हसीना पूरी सजधज के साथ अपने घर की छत्त पर चढ़ जाती है। पड़ोस की सहेलियों ने जब उसे चान्द की ओर निहारते देखा तो पूछने लगीं कि (तेरा घरवाला तो परदेस गया है, फिर यह सजधज किस के लियें) हसीना ने जबाव दिया "इस कार्त्तिक पूर्णिमा को शायद मेरा परदेसी भी, मेरी ही तरह चान्द को देख रहा होगा। इस तरह हम दोनों की निगाहें शायद एक चान्द पर मरकूज़ हो जायें और मैं उन्हें पा लूं। विगले साहिव नें इस नज़्म को बहुत अच्छी करार दिया था और कहा था कि लाला रामधन हमारे मुल्क में होता तो उसकी बहुत कद्र होती।

काश वह कावितायें, मूल रूप से हमारे साहित्य को उपलव्ध होतीं। रामधन जी की "चन्दे दी चान्दनी" कविता में जो मधुरता, लयात्मकता शब्द चयन है, वह हमारे शोध कर्त्ताओं को शायद ही कहीं मिल सके।

"जागों डुग्गर" पृष्ठ संख्या 19 में लाला रामधन जी का जीवन परिचय इस प्रकार मिलता है कि, अखनूर निवासी लाला रामधन सुनार जाति के थे। पंजाबी और डोगरी भाषा पर इनको कमाल हासिल था। हृदय में भक्ति रस होने के कारण पंजाबी में देबक-महात्मय लिखा जो उपलव्ध नहीं। जम्मू प्रदेश में इनकी रचनाओं की ख्याति और काफी प्रचार था। उनकी कविता में असाधारण गति और मिठास है। "चन्दे दी चान्दनी" एक लम्बी कविता है "हत्थें दिया दित्तियां कठन होई जन्दियां, खोलनियां पौन्दियां दन्दें कन्ने अर्थात् :- इन पंक्तियों का अर्थ है कि, जो गाँठें हाथों से अनायास ही बंध जाती हैं। वह समय पा कर इतनी कठन (पक्की मजबूत) हो जाती है कि दान्तों से भी मुशकिल से ही खुलती हैं। इस अकेली पंक्ति से ही। रामधन के कवि हृदय की कुशलता तथा व्यवहार नीति परक सूक्ष्मता का बोध भली भान्ति समझा जा सकता है।

यह पद स्वतंत्र रूप से अपने आप में एक कविता है। प्रत्येक पद के अन्त में, "दणां भर कुसे गी मन्दा नेईं बोलना" चन्दे दी चान्दनी चन्दे कन्ने" को टेक मनोहारी सुन्दरता के साथ सुखी जीवन के लिये मूल भूत सिद्धान्त को प्रतिपादित करती है। अलंकार, अनुप्रास का सौन्दर्य अपने आप में अनूठा है।

कहा जाता है कि, कोई भी भाषा विकसित य अविकासित नहीं होती। विकसित य अविकसित होते हैं उस भाषा को बोलने वाले लोग। किसी भी भाषा के साहित्य ने जब भी किन्हीं ऊंचाइयों को छुआ तो अपनी ही भाषा में।

मैथिल कोकिल विद्यापति, विश्वकवि रविन्द्रनाथ टैगोर य फिर अवध के तुलसी, व्रजभाषा के सूरदास, राजस्थानी की मीरा तथा और भी अन्य भाषाओं के मूर्धन्य लेखक, जो अपने अपने साहित्यिक गगन में नक्षत्र बन कर जगमगाये। अपनी ही प्रान्तीय भाषाओं के माध्यम से।

कोई भी साहित्य, जिसका उद्गम अपने ही स्थानीय धरातल से हुआ हो परम्परागत हो चाहे समसामयिक हो, वही समृद्ध होता है जो जन साधारण के दुःखों सुखों से अनुप्राणित हो। जिसकी जड़ों को अपनी धरती से पोषक रस प्राप्त हुआ हो।

1976 में साहित्य एकेडमी द्वारा प्रकाशित कर्नल शिवनाथ जी

द्वारा लिखित "हिस्ट्री आफ डोगरा लिटरेचर में भी यही मत प्रतिपादित किया गया है कि, महाराजा रणवीर सिंह जी के शासन काल में जम्मू के राजदरवार में डुग्गर संस्कृति तथा साहित्य की थोड़ी -थोड़ी पहिचान चिहिन्त होने लगी थी। इन्हीं दिनों भारत भर में प्रान्तीय भाषाओं के पुनरूत्थान की लहर चल निकली थी। 1940 तक पहुँचते पहुँचते वही लहर जम्मू तक भी पहुँच चुकी थी। क्योंकि भारत की एकता के लिये और सांस्कृतिक विकास के लिये प्रादेशिक साहित्य तथा कलाओं का विकास आवश्यक था।

यही सब कारण था कि, 1944 में डोगरी संस्था की नींव रखी गई थी। जब कि श्री बाल कृष्ण शास्त्री, साढ़ा साहित्य 1977 पृष्ठ संख्या 29 कलचरल एकेडमी द्वारा प्रकाशित अपने एक लेख में लिखते हैं कि, जम्मू के कुछ बुद्धिजीवियों द्वारा 1942 में डोगरी परिषद की स्थापना की गई थी जो 1944 तक पहुँच कर डोगरी संस्था में परिवर्तित हो गई थी।

1968 में प्रकाशित आधुनिक डोगरी साहित्य में भी यही विचार स्पष्ट किये गये हैं कि, "बंगला, मराठी, तमिल तथा तेलगु की क्षेत्रीय भाषाओं की संपन्नता से देश के अन्य भागों में रहने वालों के मन में भी असमिया, उड़िया; पंजाबी तथा कश्मीरी आदि भाषओं को समृद्ध बनाने की भावना का उदय हुआ। ऐसे समय इस (डुग्गर) प्रदेश में भी युवकों, अध्यापकों, छात्रों, कलाकारों और लेखकों का एक समुदाय आगे बढ़ा। यह ऐसे व्यक्ति थे जो अपने सेवाभाव, आत्मत्याग तथा अपने रचनात्मक कार्यो के दृष्टान्तों से लोगों में प्ररेणा भर सकते थे, प्रोत्साहित कर सकते थे। नई चेतना, नई स्फूर्त्ति भर सकते थे।"

यह भी एक सत्य है कि, उस समय इस डुग्गर प्रदेश में बहुत से ऐसे चेतनाशील व्यक्तित्त्व थे जिन्हें अपनी भाषा अपनी कला अपनी संस्कृति की हास्यास्पद हीनता को देख कर बहुत क्षोभ हुआ था। चाहे इस के लिये इन पहाड़ी कण्डी क्षेत्रों में चिरकाल से चली आ रही शोषणप्रधान, आर्थिक एवम् राजनीतिक परिस्थितियां ही उत्तरदायी थीं। पंडित हर दत्त जी ने इन स्थितिओं से क्षुब्ध हो कर लिखा था,

"कियां गुजारा तेरा होग डोगरेया देसा" अर्थात् (ओ डोगरे देश ! तुम्हारी कैसे गुजर-बसर होगी। जब वाहर के लोग बास्तबिक परिस्थितिओं से अनभिज्ञ रह कर डोगरों की हंसी उड़ाते थे तो दीनू-भाई पन्त का हृदय

विचलित हो उठता था। उनकी मानसिक उद्विग्नता, इन पंक्तियों में स्पष्ट है कि,

लोक मींह्ने मारदे न डोगरे दा राज ओ,
डोगरें दा हाल मन्दा, जुड़दा नेईं साग ओ।

अर्थात : लोग ताने देते हैं कि, यह डोगरों का राज है ? डोगरों की इतनी दुर्दशा है कि, उन्हें पेट भरने के लिये साग तक उपलव्ध नहीं है।

(दीनू-भाई पन्त की कबिता "डोगरें दा राज" को शेख मुहम्मद अब्दुल्ला खूव पसन्द करते थे)

चाहे इस कविता द्वारा डोगरा जनता की आत्म व्यथा ही व्यक्त की गई थी कि डोगरा राज होने के बावजूद उनकी दशा बिपन्न काश्मीरीयों से बेहतर न थी।

इस सच्चाई को भी नकारा नहीं जा सकता कि डोगरी साहित्य के पुर्न-जागरण काल में साहित्य के क्षेत्र पर छाई धुंध को परे हटाने का काम इस समय के कवियों ने ही किया था। यह तो सर्व मान्य है कि संसार के किसी भी साहित्य का प्रारम्भ पद्य से ही हुआ। हमारे डुग्गर साहित्य के पास भी समृद्ध अनुभूतियों तथा अद्भुत संगीत सौन्दर्य युक्त तथा विविधता से परिपूर्ण लोक साहित्य में लोक गीतों, लोक कथाओं तथा लोक कलाओं का विपुल भंडार था पर साथ-साथ गद्य की विभिन्न विधाओं का भी चहुंमुखी विकास आवश्यक था। जन चेतना को जागृत करने में गद्य का भी महत्त्व पूर्ण योगदान रहता है।

उस समय सभी प्रवुद्ध जनों का एक ही लक्ष्य था, डुग्गर प्रदेश और डोगरी भाषा के गौरव मय अतीत को साथ लेकर वर्त्तमान युग में उसकी महानता का विकास और पुनरूत्थान।

इस नवीन जागृति के युग में साहित्य की प्रत्येक विधा जैसे कविता, गद्य, संगीत, चित्रकला, भित्तिचित्र हस्त शिल्प, पुरातत्त्वबेत्ता-सभी ने अपने अपने प्रयासों से अपनी अपनी सामर्थ्यनुसार कटिवद्ध हो कर इस नवीन जागृति के युग में अपनी अपनी कला के प्रति सचेत हो कर योगदान दिया।

उस समय किसी के भी मन में किसी निजि हानि-लाभ की अपेक्षा नहीं थी। तब कोई नहीं जानता था कि निकट भविष्य में ही किसी "जम्मू-काश्मीर एकेडमी आफ कला, संस्कृति एवम् भाषा तथा और आगे

चल कर कोई साहित्य एकेडमी तथा कालान्तर में भारतीय भाषाओं की आठवीं अनुसूचि में भी डोगरी भाषा को मान्यता मिल जायेगी और फिर किसी विशेष धरातल पर किन्हीं विशिष्ट् व्यक्तियों की बपौती भी स्थापित हो सकती है।"

इस सब का तो कहीं आभास मात्र भी नहीं था किसी को भी। उस समय तो सभी साधकों का एक ही महत् उद्देश्य था मन में, एक ही उत्साह की स्वच्छ निर्मल तरंग थी। एक जैसी ही सामूहिक चेतना के विकास की धारणा थी। डुग्गर और डोगरी भाषा का पुनरूत्थान। जिसके लिये उस काफिले में सभी का अपना अपना मौलिक चिन्तन था, योगदान था।

इस प्रकार सभी लेखक गण स्वर में स्वर मिला कर नव जागरण के प्रभात का स्वागत करने में तत्पर थे।

इन सभी सराहनीय प्रयासों के साथ युवा छात्रों के दल में यश शर्मा भी डोगरी के इस नवीन साहित्य के पौधे के पनपने में गीत और कविताओं द्वारा अपना योगदान तो दे ही रहे थे अपितु जब उन्हें यह अवगत करवाया गया कि, पक्का डंगा स्थित जहाँ डोगरी संस्था का दफतर है, उस स्थान के किराये का जुगाड़ नही हो पा रहा है। उस समय कुछ पहाड़ी पेन्टिगज़ बड़े उत्साह तथा श्रद्धा पूर्वक इस संस्था के उत्थान के लिये भेंट स्वरूप प्रदान करके कहीं गहरी आत्म तुष्टि का अनुभव हुआ था। गाँधी भवन जम्मू में जब आर्ट गैलरी का निर्माण हुआ तो उसका उद्घाटन समारोह भारत के प्रथम राष्ट्रपति डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद जी के कर कमलों द्वारा संपन्न हुआ था। उस समारोह के समय फीता काटने की कैंची आदि से सजी ट्रे यश शर्मा के हाथों में थमा कर खड़ा कर दिया गया था।

उद्घाटन समारोह के समय के इस चित्र में देश के प्रथम राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसाद, युवराज कर्ण सिंह के साथ यश शर्मा का चित्र भी दिखाई दे रहा है। उन्नीस बीस वर्षीय युवक यश ने उस समय इसे अपना परम सौभाग्य माना था। पर इस चित्र में मात्र खड़ा कर देने का सौभाग्य प्रदान कर देने के पीछे कौन सी नीति वद्ध योजना थी। यह स्पष्ट करने की आज आवश्यकता नहीं है।

कितने वर्ष बीत चुके हैं। आज मुझे बड़े खेद के साथ विगत स्मृतियों के संग्रहालय में से कुछ भावुक क्षणों को पकड़ पाना सहज हो पाया

है। वह भी इस लिये कि, मेरे पति द्वारा प्रदान की गई पहाड़ी चित्रकला की इस अमूल्य धरोहर के लिये कहीं कभी किसी डोगरी के इतिहास में य संस्था के किसी भी आयोजन में ज़िक्र तक नही हुआ।

शायद उस समय की संस्था के संस्थापकों की दृष्टि में यह कोई बिलकुल साधारण सी, तुच्छ सी घटना रही होगी। राम-रावण के युद्ध की मनोरम आकृतियाँ शायद आज भी डोगरा आर्ट गैलरी में देखी जा सकती हैं।

इन से ही मैंने यह भी सुना कि उन चित्रों में डोगरी ललना का एक ऐसा रेखा चित्र भी था जो मुझे बहुत पसन्द था। परन्तु शास्त्री जी ने तथा संसार चन्द बडू ने यह कहते हुए कि "यह तुम्हारे किस काम का है" वह भी मुझ से ले लिया। इस के उपरान्त दस का एक नोट मेरे हाथों में चुपके से थमा दिया गया तो मैं आश्चर्य तथा दुःख से भर उठा कि मेरी श्रद्धा को यहाँ इस तरह का व्यवसाय माना गया हैं

उन पहाड़ी चित्रों की संख्या 20, 25 के लगभग रही होगी। बहुत बार मैंने उन चित्रों को देखने की अनुरोध किया तो मुझे नकारात्मक उत्तर ही मिलते रहे।

यह तो रही बहुत पहले की बात। सन् 66-67 की विजय दशमी के दिन-सूर्य वंशी श्री राम चन्द्र जी से लेकर युवराज कर्ण सिंह के जन्म तक की वटवृक्ष वंशावली जो स्वार्णिम तथा हरित रंगीन रंगों से चिन्हित है। उस वंशाबली की एक शाखा जम्मू के राजाओं की है, दूसरी महाराणा प्रताप के वंशजों की है। यश शर्मा ने अपने एक कर्नल मित्र के साथ स्वयं जा कर भेंट की थी। कर्ण सिंह जी ने प्रसन्नता पूर्वक स्वीकार करते हुए स्वतः उनके मुख से यह शब्द निकले कि "विजय दशमी के दिन आपने मेरे पूर्वजों की धरोहर भेंट की है"। उस भेंट को अमर महल म्यूज़िम में यथोचित स्थान तो मिला है। वह बंशावलि अमर महल के म्यूज़िम के भीतरी कक्ष के दाँयी ओर लकड़ी के फ्रेम में शीशे में जड़ी हुई है।

बहुत समय के पश्चात अमर महल म्यूज़ियम जाने पर मैंने पाया कि उसके नीचे पुनरूद्धार कर्त्ता किन्ही बाखलु साहिव का नाम तो है पर भेंट कर्त्ता का कहीं नाम तक वहाँ भी उपलव्ध नहीं था। इसके लिये वहाँ के प्रबंधकों से पूछने पर उन्होंने कुछ भी जानकारी न होने की बात कही।

कितना अच्छा होता कि कहीं भेंट कर्त्ता का नाम ही होता। यहाँ इस बात को मुझे स्पष्ट ही कहना होगा कि, इस कलाकार यश को तो कभी नाम की भूख रही ही नहीं। इन छोटी छोटी बातों को समझने, महसूसने लायक छोटा मन तो इस कवि का है ही नहीं।

यह तो मेरा अपना ही मानना है कि, यहाँ हर तरफ संकीर्णता ही हो, वहाँ अपने मंगल को स्वयं आँख खोल कर देखना पड़ता है। दुनिया-दारी को अपनी आँख मैं चाहते हुए भी मूंद कर नही रख सकी।

साहित्य की स्वच्छ धारा भी सत्ता के गलियारों में सत्ताधरियों के भंवर जाल में उलझ कर किस प्रकार अपना नैतिक स्वास्थय खो बैठती है। इस का लेखा-जोखा तो कोई भावी पीढ़ी ही करेगी ?

अभी तो यहाँ बात चल रही है डोगरी भाषा के पुर्नजागरण काल के प्रांरम्भिक दिनों की। अपने डुग्गर प्रदेश की गहन समस्यायें मानवता के प्रति उभरते नैतिकता के प्रश्न, अपनी धरती के सौन्दर्य की मोहकता, इस प्रदेश के प्राकृतिक झरनों नदियों का कलकल नाद-वन्य जीवियों की चहचहाट, जीवन में नवलता सुकुमारता के भाव बोध का निरूपण।

इस के साथ ही साथ मानवमन का प्रकृति के साथ आत्मीयता का संवध सभी के लेखन का प्रमुख विषय और उद्धेश्य था। अपनी धरती के प्रति अपार श्रद्धा की भावना, जिस में डुग्गर के निर्भीक बीरों की शौर्य गाथाओं का स्वर भी प्रमुख था, क्योंकि डुग्गर की परम्परागत मौखिक चली आ रही बारें, कारकों लोकगीतों का एक बिशाल भंडार भी विरासत के रूप में उपलब्ध था।

इसी लिये इस डोगरी भाषा को भारत की अन्य क्षेत्रीय भाषाओं के समकक्ष अपने समुचित आसन पर आसीन करवाने का लक्ष्य भी स्वतः स्फूर्त्ति दायक सिद्ध हो रहा था।

लेखकों का यह जागरूक दल, विश्व साहित्य की नबीन प्रवृत्तियों के प्रति भी जागृत था। यही सब ध्यान में रखते हुए जनता को आकर्षित करने तथा उनमें नई चेतना जागृत करने के लिये कवि गोष्ठिओं, सम्मेलनों का आयोजन किया जाने लगा। यह कवि गण विभिन्न शहरों, नगरों, गाँवों में जाकर अपनी डोगरी रचनायें पढ़ते थे छोटे-छोटे गीत कवितायें अधिक प्रभावशाली होतीं, कुछ नाटकों का भी कहीं-कहीं मंचन होता, पर भाषण

आदि लोगों को इतना प्रभावित करने में सक्षम नहीं होते थे।

यह कवि सम्मेलन जम्मू तथा जम्मू प्रदेश से बाहर, हिमाचल के पर्वतीय क्षेत्र जैसे कुल्लू, काँगड़ा, धर्मशाला मंडी सुकेत तथा पंजाव आदि में भी आयोजित किये जाते थे। तब तक किसी भी एकेडमी के "शब्द" तक का भी नामोनिशान नही था। निःस्वार्थ भाव से इन कवि सम्मेलनों में भाग लेने वालों ने कभी सोचा तक भी नहीं होगा कि समय पाकर यह महत् उद्धेश्य एक व्यवसायी करण बन कर रह जायेगा।

पर यहाँ तो उस बड़े काफिले में से कालिज के दिनों से ही उभरती उस त्रिमूर्ति, डोगरी में (तिकड़ी) नाम से प्रसिद्ध मधुकर, दीप, यश का ज़िक्र करना ही अभीष्ट हैं। उन तीनों में से यश अपनी कविताओं गीतों को सस्वर पढ़ कर जनता को मंत्रमुग्ध करने में विशेष सक्षम थे।

यह सब सुनने में ही मिला कि उन दिनों कवि सम्मेलनों में श्रोताओं का अपार जन समूह यश को गीतों का राजकुमार कह कर सम्मान देता था। इस का ज़िकर श्रद्धेय श्री राम नाथ शास्त्री ने अभिनव थियेटर में 15 नबम्वर 2002 के अपने अध्यक्षीय भाषण के प्रारम्भ में ही एकत्रित जन समूह के समक्ष किया था।

यहाँ "मधुकर और दीप की बहुत बार कही बात मुझे याद आती है (भरजाई अस तेरे घरे आले कोला कुसे चाल्ली धट्ट लिखने आले नेंई पर एह् गाइये (एक प्यारी सी गाली के साथ) बाद्धी बाजी मारी लैन्दा हा"।

इस का अर्थ इस तरह है कि, हम तुम्हारे पति से चाहे अच्छा ही लिखते हैं, पर यह अपनी रचनाओं को मीठे स्वरों में गा कर बाजी जीत लेता है। यही विशेषता परमानन्द अलमस्त में भी थी। चाहे अधिक ही होगी।

कवि अलमस्त मैडिकल अस्सिटेंट होते हुए भी एक सरलमना भोली प्रकृति के गीतकार थे। अलमस्त की रचनाओं में भी संगीत तत्त्व की प्रमुखता रहती थी। लयात्मकता तथा संगीत का अद्भुत तालमेल रहता था।

हिमाचल प्रदेश के मण्डी सुकेत के मण्डी नगर के कालिज में मिला-जुला मुशायरा था। अलमस्त ने अपना एक गीत गा कर खूव बाह-वाही लूटी थी। गीत के बोल थे :-

कागद चित्तरिये कलमां त्रुटिटयाँ,
स्याई मसाजनीयां सुक्की,
उत्त गै देस तुस जायो, पखेरूयो-बालम जित्यें गेदे उट्ठि।
ओ परदेसिया - ओ बालमा।

की टेक के साथ गाया यह गीत और इसके लय ताल के साथ अलमस्त द्वारा किये गये नृत्य ने वहा ऐसा समां बांधा कि, समय का पता ही नहीं चला। वहाँ का सारा नौजवान तबका दीवाना हो उठा था, अलमस्त के इस गीत का। गीत के साथ गीत की प्रस्तुति अनुपम थी जैसे सोने पर सुहागा। अजीव सा रस बरस गया था, उस समय, सन् 1957 में श्रीनगर में हिमाचल प्रदेश की मंडी के उसी मुशायरे का जिक्र करते हुए अलमस्त जी ने स्वयं बताया था कि इसी गीत की सुआई (टेक) यश दे रहा था मेरे साथ। फिर हम दोनों झूम-झूम कर इसी गीत को गाते रहे और श्रोतागण आनन्द के लहराते सागर में डूबते उतरते रहे थे।

अलमस्त के गीत का भावार्थ :-

परदेसी प्रियतम को प्रेम पत्र लिखते लिखते कलम भी टूट गया है और स्याही भी (मसाजनीया) दवात से समाप्त हो गई है। हे आकाश में उड़ने वाले पक्षियों। तुम्हीं उस देश में जाना, जहाँ मेरे प्रियतम चले गये हैं, मेरा सन्देसा उन तक पहुँचा देना- ओ मेरे परदेसी बालम।

जैसा कि, पहले भी कहा जा चुका है कि रेडियो जम्मू में शुरू-शुरू में काम करने वालों को स्टॉक करैक्टर कहा जाता था। केन्द्रिय सरकार से कम बजट मिलने के कारण कम अवधि के काँटरैक्ट ही कलाकारों को दिये जाते थे। काँटरैक्ट खतम होने की अविध पर कुछ दिनों के अन्तराल पर यह सिलसिला पुनः चल पड़ता था, जो पूर्णतया उच्च्व अधिकारियों के रहमो'करम पर निर्भर होता था। दूसरे मेरे पति का यह भी कहना था कि, मैं कभी-कभार ऐसी सच्ची रचनायें रच डालता था जिस से यहाँ के अधिकारियों को अपने बचाव के लिये इन सच्ची बातों को पचा पाना मुशकिल होता था। मैं कभी समय के सत्ताधारियों की प्रशस्तियां नहीं लिख पाया। जिसका एक कारण तो यही था कि अतिराष्ट्रीयता की ओर उन्मुख ठाकुर रधुनाथ सिंह द्वारा लिखित गीत, "लैत्ती असें कश्मीर कियां" का प्रतिवाद "छोड़ी साहबें कश्मीर कियां" नाम की कविता द्वारा कर चुका था।

उस कविता में तो राजसत्ता की निर्वलतां का ज़िक्र किया था। वहीं एक और कविता में डोगरा बीरों की जातिगत वहादुरी और व्यक्तिगत शौर्यगाथा का चित्रण भी बीर रस पूर्ण शब्दों में किया था।

सभी जानते हैं कि, कश्मीर को हथियाने के लिये कबायली हमला किया गया था। डोगरा सपूत ब्रिगेडियर राजिन्द्र सिंह ने मुट्ठी भर डोगरा सिपाहियों के बल पर हज़ारों की तादाद में टिड्डी दल की तरह चढ़ आने बाले कबायालियों को दो दिन तक रोके रखा था।

यह सभी घटनाऐं मैंने घटती सुनी और देखी थीं। इन डोगरा बीरों के बलिदान का कुछ ऐसा मन पर गहरा प्रभाव पड़ा कि (कुन आखदा डोगरे डरी गेदे) अर्थात् कौन कहता है कि "डोगरे डर गये हैं।" नाम की कविता की रचना स्वयमेव होती चली गई।

कुन आखदा डोगरे डरी गेदे ?
अस ऐमें नि कुसे नै छेड़ करदे
अस जानी निं कुसे दा गला बढ़दे
जेकर औन डाकू इत्थैं अक्खी दसदे,
खड़े खड़ोतें दियां अक्खीं कड्डी दसगे,
साढ़े भाने एह् जीन्दे गै मरी गेदे,
कुन आखदा डोगरे डरी गेदे।
रजिन्द्र सिंहे दी इक्कै ललकार लोको
साम-धाम खड़ोते दा काल लोको
बहादर डीडो दी चले तलवार लोको
करे बैरियें दे टोटे चार लोको
इन्हें बीरें दी कत्थ मैं केह् दस्सां
नांऽ डुग्गर दा अमर न करी गेदे
कुन आखदा डोगरे डरी गेदे ?
असें कीत्ता जाई फतह चितराल यारो
बाज सिंह जी दी यादगार यारो
साढे जम्मू काश्मीर दा राज यारो
लैन्दा मेहत्तरा कोला ख़राज यारो
जाई तिब्बता झंडे न चढ़ी गेदे
कुन आखदा डोगरे डरी गेदे ?

अर्थात् : कौन कहता है कि, डोगरे डर गये हैं ? हम लोग तो कभी किसी से छेड़-खानी करनें में पहल नहीं करते । कभी किसी का बेवजह गला नहीं काटते । अगर यह डाकू (कबायली हमलावर) हमारे ही घर में हमे आँखें दिखाने की कोशिश करते हैं तो हमें उन आँखों को निकालने का हुनर भी आता है । हमारे लिये तो यह जीवित ही मृतकों के समान हैं । कौन कहता है कि डोगरे डर गये हैं ?

डोगरा वीर ब्रिगेडियर राजिन्द्र सिंह की एक ही ललकार प्रत्यक्ष मृत्यु के समान है । मियां डीडो की तलवार जब चलती थी तो दुश्मनों के चार टुकड़े कर के रख देती थी । इन बहादुर डोगरा जाति के बीरों की कहानी में क्या वर्णन करूं । इन्होंने तो हमारे इस डुग्गर प्रदेश का नाम अमर कर दिया है । कौन कहता है कि, डोगरे डर गये हैं ।

यह कविता जब बतौर आर्टिस्ट की बुकिंग पर रेडियो जम्मू में पढ़ी गई तो उस समय बख्शी गुलाम मुहम्मद साहिव रात की नींद लेने की तैयारी में थे । उनके पास रखे रेडियो पर जो प्रोग्राम चल रहा था, उसे सुन कर वह एकदम भड़क उठे कि, "कौन है यह शख्स ?" बन्द कर दो इसके रेडियो प्रोग्राम । बास्तव में डोगरों की शौर्य गाथा सुन पाना उनके लिये असहनीय हो उठा था । परिणाम स्वरूप पन्द्रह दिन के अनुवंध पर रेडियो में मिलने बाले प्रोग्राम भी बन्द हो गये । जाने क्यों उन दिनों तत्कालीन कुछ एक शासकों को डोगरा नाम से ही चिढ़ हो गई थी । इसके साथ ही बेहिचक इस तथ्य को उजागर करने में भी कोई भय नहीं कि कुछ अपने ही स्वार्थी लोगों को यह अपने ही डुग्गर का गुणगान पचा पाना मुशकिल हो गया था । (जब कि यह सब कविता न हो कर एक बचकाना सा प्रयास मात्र ही था ।

और फिर रेडियों के डाइरैक्टर जनरल जानकी नाथ ज़ुत्शी साहिव ने तो मुझे जम्मू से ही उखाड़ फेंका था । पर श्रीनगर जाने पर जो मुझे वहाँ स्नेह, आदर मिला मेरे लेखन को सराहा गया, भारत भर के बड़े-बड़े लेखकों, शायरों का सान्निध्य मिला वह सब जैसे एक वरदान सा ही सावित हुआ था मेरे लिये । जम्मू में उन दिनों हम पर अपनी मातृभाषा डोगरी के प्रचार प्रसार के लिये दीवानगी की हद तक जनून था । जहाँ कहीं भी कवि सम्मेलन होते, जम्मू य इसके आस-पास य फिर रावी पार कॉंगड़ा, धर्मशाला कुल्लु आदि में ही क्यों न हो वहीं अपने साथिओं के साथ चल पड़ते । यहाँ

तक कि दिल्ली तक भी चले जाते थे । जम्मू में रामनगर, बसोहली, उधमपुर, कठुआ, अखनूर, नगरोटा पैंथल तथा कटरा में यह मुशायरे आयोजित होते थे । कभी तो श्री रामनाथ शास्त्री की अगवानी रहती तो कभी इनफारमेशन विभाग द्वारा यह मुशायरे करवाये जाते थे । कभी कहीं किसी पर्व त्योहार पर स्थानीय लोग निजि तौर पर भी कवि सम्मेलन आयोजित करते थे । ओंकार सिंह अवारा, दीनूभाई पंत, चर्ण सिंह, कभी कभी किश्न स्मैल पुरी तथा अलमस्त साथ होते थे । सभी के साथ दीप मधुकर यश इन तीनों का अद्‌भुत संगम होता था ।

पढ़ना लिखना एक तरफ रख कर कवि सम्मलनों में जाना-घरवालों की नज़रों में समय की बरवादी के सिवाये और कुछ नहीं था ।

कई बार तो घर में झूठ बोला जाता कि, वहाँ जाने पर पैसे भी मिलते हैं । जब कि किराया भी अपनी जेब से खर्च करते । कई बार तो उधार भी मांगना पड़ता आने-जाने के खर्चे के लिये ।

और फिर हंसते हुए सच कहने में भी नहीं हिचकिचाये कि, कहीं भी कविसम्मेलन की भनक पड़ते ही रात भर खुशी के मारे नींद ही नहीं पड़ती थी । इस तिकड़ी में से दीप 1950 में लखनऊ पढ़ने के लिये चले गये तो मैं और मधुकर पीछे रह गये । यह सब जानने के पश्चात मुझे ऐसा लगा कि उस समय जीवन के प्रति इनका दृष्टिकोण बहुत ही स्वीकृति तथा कृतज्ञता का रहा होगा । किसी क्षोभ य शिकायत का नहीं ।

जम्मू प्रदेश और हिमाचल दोनों का निकटतम संवध है । तब का कांगड़ा और अब का हिमाचल प्रदेश में बहुत से स्थानीय बुद्धिजीवीयों, कलाकारों, लेखकों का सहयोग वहाँ खूव मिलता था । धर्मशाला जब भी जाते तो राणा कुलतार चन्द जी जो वहाँ के प्रसिद्ध वकील थे, जो बाद में हिमाचल असैम्बली के स्पीकर भी रहे, वह जम्मू और कांगड़ा संस्कृति को दिलोजान से प्यार करते थे । वह चाहते थे कि, दोनों संस्कृतियां एक हो जायें । कुल्लु निवासी श्री लाल चन्द प्रार्थी जो हमारे साथ वहाँ कवि सम्मेलनों के आयोजनों में पूरा-पूरा साथ देते थे, वह हिमाचल प्रदेश के वन मंत्री भी रहे । उनके उत्साह का अभूत पूर्व योगदान रहता था ।

महता किशोर चन्द जी वहाँ के नामी-गरामी वकील थे जिनकी योग्यता का पूरे हिमाचल प्रदेश में डंका बजता था । उर्दू के प्रसिद्ध गज़ल गो

शायर श्री चन्द्र प्रकाश एमनावादी भी उन दिनों हिमाचल के योल कैम्प में स्थित एम.ई.एस विभाग में कार्यरत थे। वह उर्दू गज़ल के उस्ताद माने जाते थे। वह भी वहां हम से मिल जाते थे। "रिटायरमेंट के पश्चात वह जम्मू में ही रहते थे। उनका निधन 2005 में हो गया"। तालिव साहिव का एक शेयर :- "हम कहाँ के ऐसे हैं, किसको याद आयेंगे लोग भूल जाते हैं, लोग भूल जायेंगे"। पर कहैाँ भूले है तालिव ? हिमाचल के कवि श्री पीयूष गुलेरी डाक्टर गौतम व्यथित, सुर्दशन कौशल एवम उनके बड़े भाई तथा पहाड़ी गायक श्री रमेशचंद जी से परिचय भी धर्म शाला में ही हुआ था। वहीं सोम प्रदीप से भी मुलाकात हुई थी जिनसे मित्रता प्रगाढ़ से प्रगाढ़तर होती गई।

रमेशचन्द जी से पहाड़ी गीत सुना था, जिसकी मिठास की महक जैसे आज भी मन प्राणों में रची बसी है। रमेशचन्द के गाये इस गीत के बोल थे "लच्छी बड़ी सूरतां वाली, ते मेरे कन्ने बोल लच्छिये। तेरे कन्ने मिलने दा चा, ते मेरे कन्नें बोल लच्छिये।

अर्थात : "लक्ष्मी नाम की लड़की की अनुपम सूरत है। ऐ सौन्दर्य की प्रतिमा सी लक्ष्मी, तुम्हें मिलने तथा तुझ से बातें करने का बड़ा चाव है।"

सोम प्रदीपं के घर रात में जर्मी महफिल में हारमोनियम पर सधे स्वर और मुक्त कंठ से गाये रमेश चन्द के इस गीत से जैसे इस बंगले से झरने वाला मीठे स्वर लहरियों से मौन प्रकृति भी तरंगित हो उठी हो, देवदार, सनोवर के पेड़ भी जैसे़ झूमने लगे थे।

सोम प्रदीप उन्हीं दिनों धर्मशाला कालिज से नये नये स्नातक हो कर निकले थे। हिन्दी में बहुत अच्छा लिखते थे। मित्रता के नाते मेरा लिखा बंजारा और मेला अपनी कांगड़ी भाषा के शब्दों में ढाल लेते। खूव आनन्दित होकर कोतवाली बाजार के कैफे में बेधड़क होकर सुनाते। खूव भीड़ वहा जुट जाती और प्रदीप वाहवाही लूटते। मैं भी चुपचाप श्रोताओं के जमघट के साथ मिल कर खूव दाद देता तो, मित्रता का रंग और गाढ़ा हो जाता। एक बात और :-

जब डाक्टर परमार, हिमाचल के मुख्यमंत्री बने तो डोगरी संस्था से रामनाथ़ शास्त्री, प्रोफेसर गोबरधन सिंह' जो इतिहास के प्रोफेसर थे तथा मुझे भी अपने साथ नाहन स्टेट लेते गये थे। वहाँ जाने का प्रयोजन था कि,

यदि रावी के आर पार का सारा प्रदेश "जम्मू तथा हिमाचल की संस्कृति" एक हो जाये तो हम अपने अधिकारों में सुदृड़ता ला सकते हैं।

ऐसा संकेत शायद यहाँ के राजघराने के मुखिया की ओर से ही दिया गया होगा। परन्तु उस समय के हिमाचल के मुख्यमंत्री परमार जी ने इस बात से असहमति जताई कि, हर लिहाज़ से हमारा कल्चर हमारी भाषा आप से मेल नहीं खाती। महाँडुग्गर बनाने का यह सपना बुरी तरह असफल हुआ था।

नाहन में हम लोग स्वर्गीय गोवरधन सिंह के सबंधी तथा जज कर्त्तार सिंह के सुपुत्र कुंवर नरेन्द्र सिंह की ससुराल के राजधराने में अतिथि बन कर ठहरे थे। इस असफलता की चर्चा शायद ही कहीं आई भी होगी य बहुत कम की गई होगी य विलकुल नही की गई। इक्कीसवी सदी में पहुचने पर सोचा जा सकता है कि, यह सब डोगरी भाषा के हित में हुआ था या अहित में कि, महाँडुग्गर नही बन पाया था। इस संदर्भ में यही कहा जा सकता है कि इसका लेखा जोखा तो भावी पाठक ही कर पायेंगे। शायद इस बात का मलाल हिमाचल के बुद्धि जीवियों को भी हुआ होगा।

"फूल और कांटे"

कुछ और आगे बढ़ने से पहिले, अंग्रेजी की एक सूक्ति याद हो आई है कि, काँटों रहित गुलाव के फूल का विकास अभी तक नहीं किया जा सका है। उस सूक्ति का हिन्दी में अर्थ कुछ ऐसा ही है।

कितना बड़ा सत्य है "कि जिसने भी गुलाव के फूल की तरह महकना चाहा उसे ही कांटों को साथ लेकर चलने की बिडम्बना झेलनी पड़ी"

बात चाहे किसी की भी क्यों न हो। "दूयें गी लोऽ देने आली जोत सदा गै बलदी ऐ"। अर्थात "दूसरों को रोशनी देने वाली दीये की बाती को पहले अपना आप होम करना पड़ता है।

इस पंक्ति के रचनाकार यश शर्मा की बात करने से पहिले एक दूसरे कलाकार का ज़िक्र जरूरी है जिनका नाम है। "श्री कैलाश नाथ कौल मयकश कश्मीरी।

मयकश, जो यश शर्मा के साथ रेडियों में काम करने से पहले भी प्रिन्स आव वेल्ज़ कालिज में भी इन से सीनियर विद्यार्थी थे। कालिज के दिनों में भी मयकश साहिब को उर्दू में गज़ल लिखने में महारत हासिल थी। 1947 में रेडियों स्टेशन चालू होने के प्रारम्भिक दिनों में भी साथ ही साथ दोनों काम करने लगे थे।

(आगे की कहानी, मयकश की ज़ुबानी)

"उस समय रेडियो स्टेशन रणवीर हाई स्कूल के आखिरी ब्लाक के तीन कमरों में स्थित था। साथ में लगता हुआ बरामदा था। उर्दू के प्रसिद्ध लेखक श्री राजिन्द्रसिंह बेदी, स्टेशन के इंचार्ज थे। एक दिन, दिन के दो ढाई बजे उसी बरामदे में किसी फ़ीचर की रिर्हसल चल रही थी। वहाँ काम करने वाले सभी कलाकार बतौर कान्ट्रैक्ट बेसिज़ पर ही काम करते थे। यह रेडियो स्टेशन जम्मू रियास्त के अधीन था इसलिये रियास्त के अफसरों के रहमो-करम पर ही रोजी रोटी चलती थी। स्कूल के बाहर के गेट पर अर्द्धचन्द्राकार रेडियो जम्मू लिखा देख कर अचानक एक कार गेट के पास रूकी।

बरामदे में रिहर्सल चल रही थी। गेट पर महाराजा गार्ड का पहरा था। यह कार राजमहल से हवाई अड्डे की ओर जा रही थी। गाड़ी मेजर जनरल कुलवन्त सिंह चला रहे थे। कार से लौह पुरूष बल्लभ भाई पटेल उतरे। उनके कन्धों पर एक झोला तथा शाल था। साथ में सफेद शेरवानी तथा दस्तार पहने नबाव जाम साहिब आफ नबानगर भी उतरे। नबाव साहिब की तोंद शेरवानी से बाहर निकली पड़ रही थी जब कि, बल्लभ भाई पटेल में गम्भीरता तथा स्फूर्त्ति का अद्भूत संम्मिश्रण था। महाराजा गार्ड के सिपाहियों ने सलामी दी। सरदार पटेल झुकी नज़रों से बिना किसी ओर देखे दो चार सीढ़ियाँ चढ़ कर बरामदे में आये।

उन्होंने आते ही अंगेज़ी में पूछा Who is the incharge Station Director ? हम सभी बेहद बौखला से गये, हमने केवल सिर हिला कर हामी भरी बोल तो किसी के मुँह से नहीं फूटा। फिर दुवारा उन्होंने यही प्रश्न अंग्रेजी में ही पूछा।

बड़ी हिम्मत जुटाते हुए मयकशने यानि मैंने अंग्रेजी में ही उत्तर दिया राजिन्द्र सिंह वेदी स्टेशन इंचार्ज है। उनका दूसरा प्रश्न थाः- कैसा चल

रहा है सब ? शायद उन्होंने कुछ और भी पूछा य जाने क्या पूछा ? मयकश ने घवराहट के मारे सीधे ही कह दिया, "सर" हमें यहां काम करते दो महीने हो गये हैं। हमें अभी तक कोई बेतन नहीं मिला। यह सुनकर पटेल के गम्भीर और विशाल माथे पर बल पड़ गये और बेहद धीमी आवाज़ में बुदवुदाये - जैसे अपने आप से ही बात कर रहे हों "अभी तक कुछ नहीं मिला" कहते हुअे गाड़ी में जा बैठे। एयरपोर्ट जाने की बजाये गाड़ी महलात की ओर मुड़ गई थी। सरदार पटेल भारत के गृहमंत्री थे। गृह मंत्रालय के साथ-साथ सूचना और प्रसारण मंत्रालय का विभाग भी उन्हीं के पास था। गेट पर जम्मू रेडियो स्टेशन का बोर्ड देख कर ही एयरपोर्ट जाने की वजाये रास्ते में ही उतर पड़े होंगे।

पूरे स्टाफ में हड़कम्प मच गया। बेदी साहिव ने आने पर सब सुना तथा कहा कि, खूब बिलकुल ठीक कहा। ऐसा ही कहना चाहिये था। फिर क्या था जनाव मयकश साहिव तो हो गये हीरो। इस घटना को घटे पूरे चार दिन गुजर गये। रियासत के इनर्फमैशन डिपार्टमेंट के असिस्टेंट डाइरेक्टर श्री वलदेव शर्मा ने अपने आफिस में मयकश को बुलवा भेजा।

अब मयकश जी बता रहे थे कि मेरी खुशी का कोई ठिकाना न रहा। इस पैग़ाम को पाकर। जैसे उड़ान भरने को पंख मिल गये हों। पत्नी से कह कर नई टोपी निकलवाई, क्योंकि उन दिनों नंगे सिर मुबारिक मंडी डयोढ़ी के भीतर जाना नामुमकिन था। उनकी पत्नी भी बता रही थी कि घर में जश्न सा माहौल था। सब से बढ़िया काले रंग का सूट प्रेस करवाया। बाजार से जूते पालिश करवाये। बाज़ार पक्काडंगा से नये मौज़े खरीदे। बेहद खुशी महसूस करते हुए बड़े उत्साह से भर कर इनफरमेशन के दफतर में दाखिल हुए। बलदेव शर्मा ने बड़े अदव से कुर्सी पेश की और सूचना दी कि, बख्शी गुलाम मुहम्मद साहिव आप से अपने दफतर में मिलना चाहते हैं। मयकश साहिव की तो बाँछे खिल गईं, जब उन्हें बताया गया कि कल ठीक बारह बजे वहाँ आप उन से जा कर मिलें।

फिर तो पूछिये मत, रास्ते में जो भी मिला उसे ही बड़ी शान से सुनाया कि जनाव बख्शी स़ाहिब ने उन्हें खुद ही मुलाकात का टाईम दिया है। दफतर की बात तो एक तरफ रही जितने भी रिश्तेदार थे उनको भी अपनी सजधज के साथ उनके घर जा-जा कर इस खुशखबरी से अवगत

करवाने में कसर नहीं रखी। मुशकिल से कई सुनहले खब्वाबो को बुनते रात कटी। उनकी पत्नी को तो खुशी के मारे नीद ही नहीं पड़ रही थी कि जाने कल कौन सा कारूं का खजाना हाथ लगने जा रहा है। एकाध बार तो पति से डाँट भी पड़ी कि, कल होने तो दो। पर अधीरता और खुशी कहाँ चैन लेने दे रही थी।

अगले दिन ठीक समय पर मुलाकात के लिये दफतर जा पहुँचे। बलदेव प्रसाद शर्मा ने यह बात राज़ में ही रखी थी कि वहाँ उनकी पेशी और जबाव तलवी है। जब खुशी-खुशी बख्शी साहिव के कमरे में पहुँचे तो वहाँ राव प्रीतम चन्द ब्रिगेडियर उदयचन्द के साथ बैठे, बख्शी साहिव रियास्त के नक्शे का मुआइना कर रहे थे। मयकश पर नज़र पड़ते ही बख्शी साहिव ने गर्ज़दार आवाज़ में पूछा ? पटेल तुम से मिले थे ? यह तेवर देख कर तो मयकश साहिव की सिट्टी-पिट्टी गुम हो गई। फिर हिम्मत जुटा कर सारी कहानी एक ही साँस में कह सुनाई कि, पटेल साहिव ने जो भी पूछा था।

उसी वक्त मयकश को नौकरी से बर्खास्त कर दिया गया। अब मयकश बता रहे थे कि शायद उन्हें हथकड़ी ही लग जाती परन्तु R.C रैणा श्री कण्ठ रैणा तथा कुछ और प्रभावशाली कश्मीरी पंडित बुद्धि जीवियों ने बीच-बचाव किया था। गो थोड़े दिनों के पश्चात फिर रेडियो में बहाली हो गई, पर इस हादसे नें फिर कभी उभरने का मौका नहीं दिया। तमाम उम्र स्क्रिप्ट राईटर रहते हुए ही रिटायर हो गया। फिर टयूशने पढ़ा-पढ़ा कर बच्चों को पालते रहे।

मयकश साहिव कह रहे थे कि, ज़िन्दगी में पहली बार और आखिरी बार पटेल साहिव से हुई इस मुलाकातें को कभी नहीं भूल पाया। पटेल साहिव ने तो शायद विचारे कलाकारों के लिये कोई नेकी का ही क़दम उठाया होगा पर मुझ तक पहुँच कर वही बदी का काला साया बन कर रह गया था। ऐसी कोई अप्रत्याशित घटना जीवन भर को चुनौती दे जाती है। इसे सारी "घटना या दुर्घटना ही कह लीजिये" क्रम वार सुनते हुए भारत के उस लौह पुरूष वल्लभ भाई पटेल के लिये सब के मन में यही श्रद्धा भाव उमड़ रहे थे कि, कहाँ वह इतने बड़े महाप्राण व्यक्ति जिन्होंने एक छोटी आयु के साधारण से कलाकार की बात को इतना सम्मान दिया, महत्त्व दिया।

ऐसे व्यक्तित्त्व क्या बार-बार मिल पाते हैं इस संसार में दूसरी ओर संकीर्ण मानसिकता से भरे अफसर शाही के अन्य लोग।

पर इस सब से मयकश जी की रचनात्मक उर्जा पर कोई नकारात्मक प्रभाव नहीं पड़ा था। रेडियो स्टेशन की स्थापना के पचास वर्ष पूरे होने पर आकाशवाणी क्लब के द्वारा स्वर्ण जयन्ती समारोह के उपलक्ष्य में जिस स्मारिका का प्रकाशन किया गया था उसमें भी पूर्व सांसद श्री धर्मचन्द प्रशान्त जी ने "जम्मू रेडियो स्टेशन का प्रारम्भिक युग" शीर्षक के अपने लेख में इस घटना का ज़िक्र करते हुए लिखा है "कि, एक दिन के लिये सरदार पटेल जम्मू आये थे। उन्हें स्टाफ के एक व्यक्ति ने कहा कि, हमें वेतन नहीं मिल रहा हैं। इस पर उपप्रधान मंत्री कुछ झुंझलाये और उस व्यक्ति को मंत्री का कोप भाजन बनना पड़ा था"। चाहे इसमें उन्होंने कैलाश नाथ कौल मयकश के नाम का ज़िक्र नहीं किया था।" इसी स्मारिका में यश शर्मा का एक लेख भी प्रकाशित हुआ था। र्शीषक है "जम्मू रेडियो के कुछ अविस्मरणीय चेहरे" इसमें बलबन्त चाचू, कृष्ण भसीन, बलदेव चन्द, कृष्ण दत्त (किच्छू) जो चाची जिऊनी शीर्षक के रूपक में एक विशेष भूमिका निभाते थे। इसमें वह लिखते हैं कि, "कैलाश नाथ कौल मयकश उर्दू और फारसी के विद्वान थे। जो मुझ से कालिज मे दो साल सीनियर थे, जिन्होंने अपने उर्दू लेखन द्वारा रेडियो जम्मू को गुलज़ार बना दिया था"। दुःख की बात है कि, मयकश जी ने रेडियो से अवकाश प्राप्र करने के पश्चात् बुलाने पर भी रेडियों प्रोग्रामों में कभी हिस्सा नहीं लिया। यहाँ तक कि रिटायरमेंट समारोह में शामिल नही हुए थे।

अपनी ओर से मयकश साहिव के लिये यही कहा जा सकता है कि, "बहुजन हितांय, वहुजन सुखाय" के इस महत् भारतीय संस्कृति के मूल मंत्र को आज के स्वामी कैलाशनन्द कहलाने वाले मयकश ने साकार कर दिया था। फलस्वरूप रेडियों के कर्मचारियों को नियमित वेतन का लाभ मिला, हानि सिर्फ मयकश के अपने हिस्से में आई थी।

जब इस सारी घटना का ज़िक्र मस्तगढ़ स्थित उनके घर में चलता तो जीर्ण शीर्ण स्वास्थ्य के होते हुए भी कहकहों की फुलझड़ियों की खिलखिलाहट वर्षों के अन्तराल को नकारती हुई 1947 के उस समय तक जा पहुँचती।

कैलाश नाथ मयकश कौल का जन्म स्थान हफ्त चिनार श्री नगर काश्मीर में 17 जुलाई 1926 को हुआ था। एम.ए अंग्रेजी पंजाव युनिवर्सिटी लाहौर से तथा उर्दू में मुंशी फाजिल की डिग्री हासिल की थी। 34 वर्ष रेडियों में नौकरी की। प्रोग्राम असिस्टैंट श्री नगर तथा असिस्टेंट एडीटर उर्दू जम्मू में रहे। अवकाश प्राप्ति के पश्चात् दीवान बद्रीनाथ स्कूल में बारह वर्षो तक पढ़ाते रहे।

मयकश जी का पहला उर्दू गज़लों और नग़मों का संग्रैह 1998 में प्रकाशित हुआ। जिसका नाम है "बाले हुमा"। दूसरा उर्दू रचनाओं का संग्रैह "बाले उनका" 1999 में प्रकाशित हुआ। स्वर्गीय जगन्नाथ आज़ाद ने इनकी रचनाओं को पढ़ने के उपरान्त अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किये हैं। "हैरत है कि इस वक्त तक जब कि इनकी उमर 71 साल हो चुकी है। इनका कोई मज़मुआ ए कलाम शाया नही हुआ। इस का सवब गालिबन इनके शाने बेन्याजी है, जो उनकी फितरते सानिया बन चुकी है। दूसरे मजमूये में आज़ाद साहिव लिखते हैं कि "मयकश काश्मीरी अगर अपने आप को अलामा इकवाल का मानवी और रूहानी शार्गिद कहते हैं तो ग़लत नहीं कहते। यह रूतवाये बुलन्द जिसको मिला, मिल ग़या" देखिये, मयकश खुद क्या कहते हैं :-

मैं हूँ गुल पैरहन धरती का बासी,
इजारा है मिरी यह गुल फिशानी।
मैं अरज़े जाफरां का रहने वाला,
मेरा रंगे वयां है जाफरानी।

अर्थात् :- मैं इस धरती का रहने वाला हूँ, जिसने फूलों के वस्त्र धारण किये हुऐ हैं। इस लिये मैं पूर्ण रूपेण फूलों जैसी बातें करने का अधिकारी रखता हूँ। मैं केसर की धरती का वासी हूँ। मेरी वर्णनात्मक शैली भी केशर के रंग जैसी है।

मयकश जी शायद जीवन के लगभग अस्सी दीपक जला चुके हैं। मस्तगढ़ की अपनी पुश्तैनी हवेली में पत्नी के साथ रह रहे हैं। कान भले ही जबाव दे चुके हैं पर अपनी ही धुन में मग्न रहते हैं। परन्तु चेतनता पूरी सजग है। अद्भुत स्मरण शक्ति का कोई जबाव नहीं। कानों में सुनने का यन्त्र लगा कर थोड़ा बहुत जो भी सुनते हैं तो भी पुरानी बातों को नाटकीय

अन्दाज़ में याद करके खूव हंसते हंसाते हैं।

वही मयकश, जो कालिज के दिनों में क्रेवन ए का डिब्बा हाथ में लिये और बढिया बढ़िया सूट पहन कर कालिज के घने उद्यान की रबिशों पर ख़रामा ख़रामा चलते-गोरे नाज़ुक शायर मयकश कालिज़ आया करते थे। इस ढलती जीवन संध्या में अपनी बेटी विजया (विज्जि) के निधन के पश्चात् मानों उनके जीवन का टिमटिमाता दिया इस मार्मिक आघात की आँधी को सहन नही कर पा रहा था। मुंवई से उन्होंने एक लम्बा शोक गीत (कहाँ हो बिज्जि) लिख कर हमारे पास भेजा था। दुवारा जब वह मुंवई अपने बेटे के पास जा रहे थे तो उस से कुछ दिन पहले हम दोनों मस्तगढ़ उनसे मिलने गये थे। किसी उर्दू फाउंडेशन द्वारा उनकी तीसरी किताब मुंवई में ही छप रही थी। मुंवई पहुँचने पर उन्होंने सीमा को फोन किया कि, सीमा मैं तुम्हारा ताऊ बोल रहा हूँ। मेरी गज़लों का यहां एक प्रोग्राम तुम्हें करना है। सीमा ने सहर्ष हामी भरी कि ताऊ जी, जब भी आपका हुक्त हो। किन्तु चार दिन बाद उनके बेटे का फोन सीमा को आया कि "पापा नही रहे"।

सीमा जीते जी तो उनसे वहाँ न मिल सकी, उस समय वहाँ पहुँची जब वह विदा हो चुके थे इस संसार से। जम्मू-काश्मीर के उर्दू साहित्य जगत का एक सितारा और टूट गया, विलीन हो गया। मुम्बई माया नगरी में।

19-20 जनवरी 2007 को स्वर्गीय मयकश जी की बरसी पर उनकी तीसरी पुस्तक "शहपरे तऊस" का लोकर्पण उनके पुत्र कर्नल संजीब कौल द्वारा क्रमशः जम्मू के के.एल. सहगल सभागार में तथा "एक शाम-मयकश के नाम" से संगीत सभा का आयोजन बिक्रम चौक के निकट फारेस्ट विभाग में किया गया था। भारी संख्या में शहर के गण्यमान्य वुद्धि जीवी, तथा साहित्यकारों की उपस्थिति थी। मयकश जी की पत्नी तथा परिवार के अन्य सदस्य इस सारे आयोजन को देख कर केवल इतना ही कह पाये कि "काश वह स्वयं देख पाते" अपना मन भी कहीं गहरी संवदेना से भीग गया। कर्नल संजीव कौल ने मयकश जी के हाथ का लिखा अंतिम पत्र (जो मृत्यु) से चार पाँच दिन पहले का था) हमें दिया जिसमें उन्होंने सीमा के प्रोग्राम में उनको न पहुँचाने पर गहरा रोष जताया था।

राग और विराग, मानव मन के दो छोर, दो स्थितियाँ, दो विसंगतियाँ,

आज जब मनुष्य समाज से बची खुची अनुभूति भी विलुप्त होती जा रही है तो इस वेदना के शाश्वत सत्य को वाणी दी, गीतकार यश ने।

हे अनंत

अंत दिने दा आया, बेड़ी कंढै ला

भौड़ें ते लैहरें नै लड़दे,

जोर जुआन्नी लंघी।

न्हेरी बरखा सब किश जरेया,

जरी लेई चंगी मन्दी।

हुन नेंई होर जरोन्दी, दिक्खां, तीला होई गेई काया

बेड़ी कंढै ला। अनंत ....

अर्थात् :- दिन (आयु) की सांध्यबेला झुंक आई है। अब तो बेड़ी (जीवन नैय्या को कहीं किनारे पर (अपने समीप) विश्राम के क्षण प्रदान करो! प्रभो।

दिन का अन्त आ गया है। जीवन नौका को घाट पर लगा दो। इस संसार रूपी सागर से उठने बाले जज्बातों से जूझते हुए यौवन की शक्ति चुक गई है। देह बल क्षीण हो गया है। आँधी, तुफान झेलते हुए। जीवन में जो भी भला बुरा घटा, सब चुप्पी साधे सहन कर लिया। अब और इस जर्जर काया से सहन नहीं हो पर रहा है।

केई बारी तां खिड़-खिड़ हासें,

गीतें, रस्ते रोके।

कदें उदासी मिलने आइयै।

भरदी ठंडे हौके।

हारे तां अक्खीं भरी आइयां जित्ते हासा आया।

बेड़ी कंढे ला। अन्त ....

अर्थात : बहुत से प्रलोभनों ने रास्ता रोकने का जतन किया। कभी खिलखिलाती हंसी, कभी मधुर गान य फिर ठंडी उसासें भरती हुई उदासी, गलबहियां डालने को आतुर हुई। तेरे इस संसार में पराजय मिली तो आँखों में अश्रुकण भर आये, विजय हुई तो अधरों पर हास की रेखा झिलमिला उठी, दिन का अवसान निकट जान कर अब तो नैय्या को घाट पर लगने

की अनुमति प्रदान करो प्रभु ।

अन्त में कवि आत्मा की अनुनये है :-

हुन नेईं तांह्ग मने दी कोई ,
सारत करी कोआले ।
हुन नेईं रूप कुसे दा अड़ेया ।
प्राणें दीया बालै ।
हुन ता इक्कै रंग रंगोई धुप्प, चाननी, छाया ।
अंत दिनें दा आया' बेड़ी कंढे ला ।

अर्थात् : अब कोई इच्छा आकांक्षा शेष नहीं है, जो निज संकेतों से अपनी ओर आकर्षित कर सके। अब कोई भी रूप माधुरी प्राणों में दीप नहीं जलाती। अब तो धूप, ज्योत्सना, छाया सब एकाकार हो चुके हैं। अरे ओ! अब तो मेरी इस जीवन नैय्या को कूल किनारा दे दो। अब कोई भेद अभेद नहीं, हर दृष्टियाँ छूट गईं, अब तो मैं भी शेष नहीं।

यहाँ पर कवि वाणी का स्वर जीवन से भयभीत नहीं अपितु "मृत्युर्मा अमृतोगम्य" की ओर अग्रसर है।

ऐसी और भी रचनायें गीतकार की जीवन संध्या बेला में स्वतः ही स्फूर्त्त हो उठी है।

परन्तु एक दिन इसी संसार की उदय बेला में और दूसरे लोगों की तरह रूप, रस, गन्ध मयी धरती की छाती पर रहने वालों जैसा ही सुख मान यश पाने की कोई कामना, कोई आकांक्षा इस गीतकार के मन में भी तो रही ही होगी। उसी सुकुमार तरूण वय में कवि के मन में जो चित्र, आकांक्षाओं का पुष्प गुच्छ महक उठा था उसके कुछ फूलों के विभिन्न रूप, रंग, रस, भीनी सुगन्धि के प्रति जिज्ञासा भाव स्वयमेव जाग उठा है।

"आकांक्षा"

जे कर मैं दीया बनी जन्दा,
कुसे दे मिट्ठे चेते अन्दर
जगदा रौंहन्दा रात-रात भर
भुल्ले दे राहिये गी रस्ते पाने दा मैं कारण बनदा
जेकर मैं दीया बनी जन्दा। ......(दीपक)

अर्थात् : यदि मैं दीपक ही बना होता तो - किसी की मधुर स्मृति संजोये रात-रात भर जलता रहता। और फिर भूले भटके राहियों को राह दिखाने का कारण बनता। यदि मैं दीपक होता।

जे कर मैं पक्खरू बनी जन्दा
अम्बें दे रूक्खें पर बौहन्दा
फल खन्दा किश भुंइय्या सुटदा
मिगी बनाने खातर कैदी, तूं करनां हा सौ-सौ छन्दा।
जेकर मैं पक्खरू गै हुन्दा। ....(पखेरू)

अर्थात : यदि मैं पक्षी ही होता तो - पंख पसार कर मुक्त आकाश में उड़ान भरता जा बैठता आम के पेड़ों पर। कुछ फल खाता, कुछ कुतर-कुतर कर धरती पर फेंकता जाता। और फिर मुझे बन्दी बनाने के लिये तूने सौ-सौ जतन करने थे, यदि मैं पक्षी ही होता।

जे कर मैं सुखना बनी जन्दा
सुनदे-सुनदे कत्थ कहानी
जित बेलै सेई जन्दी रानी
उत्त बैल्लै मैं चुप-चपाते नैंने दा बन्दी बनी जन्दा
जेकर मैं सुखना गै हुन्दा। .....(स्वपन)

अर्थात् : यदि मैं कोई स्वपन ही होता, तो रात्रि समय कहानी सुनते-सुनते तुम्हें जब नींद अपने अंक में भर लेती तो ओ मेरी प्रेयसी। मैं चुपचाप तुम्हारी बन्द आँखों का कैदी हो जाता। यदि मैं स्वप्न ही होता।

जेकर मैं पत्थर बनी जन्दा,
राह चलदे तुस ठोकार खन्दे
डिगदे-उठदे गालियां, दिन्दे,
ओ पर तुन्दे रोह् करने नैं, सच्च पुच्छो मेरा के जन्दा?
जेकर मैं पत्थर गै हुन्दा। ....(पत्थर)

अर्थात : यदि तकदीर मुझे रास्ते का पत्थर ही बना देती, तो राह चलते-तुम ठोकर खातीं, गिरती, उठती, गाली देतीं किन्तु इससे क्या होता। उस समय का तुम्हारा रोष, तुम्हारा तमतमाना, सच पूछों तो मेरा भला क्या विगाड़ लेता। कही मैं पत्थर ही होता तो।

जेकर मैं तारा बनी जन्दा
कालियां रातां कोई बजोगी
कट्टी लैन्दा मेरिया सौगी
असें गी रातीं गिनदे-गिनदे, ओ बी दिन पूरे करी लन्दा
जे कर मैं तारा गै हुन्दा। ....(तारा)

अर्थात् : यदि भाग्य वश बन जाता, आकाश का तारा। काली अंधेरी रातों में कोई वियोगी मेंरे सहारे (हम तारा गणों को गिनते-गिनते) अपने वियोग के दिन काट लेता (विरह के दिन कट जाते) यदि मैं तारा ही बन जाता। कवि की यह आकांक्षा कैसी है जो नितान्त निजि होते हुऐ भी निर्भल कल्पना प्रसूत परम उज्जवल और आभा युक्त है। जिसमे हल्की सी चुलबुलाहट के साथ स्निग्ध स्नेह की चाश्नी की भी पुट है और है पर-हित की एक हलकी सी अनूगूंज। पत्तों की मर्मर ध्वनि सी।

"यह आकांक्षा कवि की कल्पना मात्र है य परियों की उड़ान ?" यह शब्द है डुग्गर के गायक मनमोहन पहाड़ी जी के। यश शर्मा का गीत "जो तेरे मन चित्त लग्गी जा" (वह गीत जो तुम्हारे मन भा जाये) को पहाड़ी जी प्रायः आत्म बिस्मृत से होकर बिड़ला मन्दिर दिल्ली के प्राँगण में गुनगनाते हुऐ गीता भवन में जाया करते थे। जम्मू में जव कभी कान्सर्ट वगैरा में भाग लेने आते तो सीमा के हारमोनियम पर आकांक्षा को अपने अनूठे ही अन्दाज़ में गाया करते।

यही मनमोहन पहाड़ी थे, जिन्हें दिल्ली की गोल्डन Voice कहा

जाता था। वह हमारे इस प्रदेश की धरोहर थे। आयु में यश शर्मा से डेढ़ दो वर्ष बड़े होंगे। उनके अपने कथनानुसार उनका जन्म 10 फरवरी 1927 को परनाला गाँव में हुआ था। जो जिला कठुआ के फिन्तर बिलावर से कोई 18 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। इनके पिता जी का नाम गंगाराम तथा माता का नाम श्रीमति गंगा देवी था। मूलतः इनके पूर्वज किश्तबाड़ के भलेसा गांव के निवासी थे। घी का कारोवार होने के कारण भलेसिया शाह के नाम से प्रसिद्ध था वहाँ यह परिवार।

पहाड़ी जी ने बतलाया था कि, महाराजा प्रताप सिंह के समय तक इस शाह परिवार की आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी थी। बीसबी सदी के पहले चरण में ही धन की देवी लक्ष्मी ने मुँह मोड़ लिया और आर्थिक स्थिति बिपरीत होने पर किश्तबाड़ से इनके परदादा परनाला गाँव में आ बसे थे। सुखदेव बसोत्रा विष्णुदिगम्बर जी के शिष्य होने के कारण शास्त्रीय संगीत के अच्छे जानकार थे। बसोहली नगरी के प्रसिद्ध गायक श्री दीना नाथ पुरोहित इनके गुरू भाई थे। अपने जीजा सुख देव बसोत्रा के चरणों में बैठ कर शास्त्रीय संगीत की प्रारम्भिक शिक्षा ग्रहण की थी। दूसरी बहिन की शादी बसोहली के अर्न्तगत माड़ा निवासी तांत्रिक पंडित रमाकान्त जी से हुई थी।

मन मोहन पहाड़ी जी की आत्मा में जन्म-जात संगीत प्रतिभा रची बसी थी। स्वर बहुत मधुर था। इन के जीजा जो कि इनके संगीत गुरू भी थे, बहुत ही निपुण कथा बाचक भी थे।

उन्हीं के साथ पहाड़ी जी पैहली बार जम्मू के रधुनाथ मन्दिर में राम भज़न गाने के लिये आये थे। जम्मू आने पर ही बारह तेरह वर्षीय मनमोहन तथा इस ग्यारह वर्षीय यश का स्नेह सूत्र जुड़ा था जो निरान्तर द्दड़ से द्दड़तर होता गया। मन मोहन पहाड़ी उन दिनों की बातें याद करके खूव हंसा करते कि, जब मैं पहली बार जम्मू आया तो परेड ग्राउंड में सरकस के बड़े-बडे तम्बू लगे थे। गेट पर जलते बुझते बल्वों को देख कर अचंभित रह गया। दूर से शेर चीते भालू हाथियों को देख कर तो हैरानी के मारे आँखें खुली की खुली रह गई।

वह सब देखने की उत्कट लालसा रहते हुए भी अपने गुरू सुखदेव जी से डर के मारे कहने का साहस नहीं जुटा पाया। जब कि गाँव जा कर

अपने साथिओं को खूब सी झूठी सच्ची कहानियां गढ़ कर सुनाई और शहरी हीरों बन बैठा था। जीजा सुखदेव के साथ रघुनाथ मन्दिर तथा पंचवक्त्र मंदिर में चौपाइयाँ और भजन गाने के कारण थोड़ा बहुत कथा करने का ढंग भी सीख गया था। थोड़ी बहुत हिन्दी संस्कृत भी उन्हीं से पढ़ी थी। 1943 में गुरूजी से विद्रोह करके चुपचाप लाहौर चला गया तब तक ठीक-ठाक बजाना सीख गया था। लाहौर में हिन्दू संस्कृति के उत्कट विद्वान तथा प्रवक्ता गोस्वामी श्री गणेश दत्त जी से परिचय हुआ। उनके साथ पंजाब भर तथा बन्नू कोहाट तक भी गया। उन्हीं के साथ दिल्ली चला गया।

कुछ अफसोस के साथ ही कह रहे थे कि गुरू जी से ही शास्त्रीय संगीत का ज्ञान प्राप्त करता रहता तो संगीत में बड़ा नाम करता। पर भाग्य को तो कुछ और ही मन्जूर था। फिर भी गुरू जी से ही जो भज़न कीर्त्तन का ढंग सीखा था वही जीवन पर्यतं रोजी रोटी का साधन बना। जब दिल्ली गया तो मुझे हिन्दुमहासभा में रहने की अनुमति मिली थी परन्तु दिल्ली में किसी संगीत सभा में मेरा गाया मीरा भज़न सुन कर श्री बिड़ला जी ने अपने विड़ला मन्दिर में बने गीता भवन में मुझे स्थायी तौर पर कथा वाचक नियुक्त करते हुए मन्दिर के आवासीय घरों में एक घर भी दे दिया।

अपने जीवन के सब से स्वर्णिम अवसर को स्मरण करते हुए पहाड़ी जी विभोर हो उठते और बताया कि, भारत के प्रथम राष्ट्रपति श्री राजिन्द्र प्रसाद जीने विड़ला जी से उनके अपने निवास स्थान में किसी अनुष्ठांन के मौके पर अच्छे भज़न गायक को भेजने का अनुरोध किया। बिड़ला जी ने मुझे वहाँ भेजा।

पहाड़ी जी का कहना था कि, राष्ट्रपति निवास में मैंने मीरा और कवीर की रचनाऐं गाईं। दो ढ़ाई घंटे तक यह सिलसिला चला। राष्ट्रपति जी की मुंदी आंखों से अविरल आनन्दाश्रु झर रहे थे। फिर तो उनके जीवन काल में यदा-कदा यह क्रम चलता ही रहा। उन्हीं महामहिम राष्ट्रपति जी ने विड़ला जी का आभार प्रकट करते हुये कहा था कि आपने शुद्ध सोने जैसे स्वर को सुनपाने का मुझे अवसर प्रदान कर के धन्य किया है। दिल्ली रेडियों स्टेशन में "गोल्डन वायस" की उपाधि से प्रसिद्ध हुओ थे। इसके साथ एक और मज़ेदार बात भी जुड़ी है। पहाड़ी जी को इसी दिल्ली रेडियो

स्टेशन से दो वार संगीत के आडीशन में असफल और अयोग्य करार दिया गया था। हिम्मत नहीं हारी ती तीसरी बार सफल हुए।

पहाड़ी जी के गाये, काँगड़ा, बसोहली, महानपुर डुग्गु के पर्वतीय प्रदेशों के लोक गीत श्रोताओं को मंत्र मुग्ध कर देते थे।

"राई कुकड़ी ते लगी पे दाने ओ - रली मिलि मनसो खाने ओ"

अर्थात् ज्वार मक्का (कुकड़ी) की फसल जो बोई थी अब पक गई है और परिश्रम का फल-दाने तैयार हो गये हैं। मनसो (नाम) अब हम रल-मिल (इकट्ठे) वैठ कर खायेंगे। एक और लोक गीत की बानगी और देखने योग्य है :-

"चूड़े आली वाह्मणियें, मिलेयां तू परले पार मोइये"

अर्थात् : अरी ओ चूड़ा छनकाती व्राह्मण बालां मुझे तुम नदिया के पार मिलना।

ठंडा पानी, चिट्टी रातीं चाननी,
हेठ पत्तरू दा नाड़ा ओ
पानी पीना तेरे हत्थें दा गोरिये-
लैयां तू लोटे की माँजी।।

पर्वतों का सौन्दर्य, प्रकृति की शोभा को इस लोक गीत के माध्यम से पहाड़ी जी ने बरसों की स्वर साधना द्वारा साकार किया था।

अर्थात् : पहाड़ी चश्मों का ठंडा जल और धवल चाँदनी है रात। (पानी की धारा को नियंत्रित करने के लिये वट वृक्ष के पत्तों को जहाँ से पानी गिरता है वहाँ इस प्रकार लगा दिया जाता है कि नल की धार जैसा सयंमित हो कर गिरना शुरू हो जाता है) उसे "पत्तरू दा नाड़ा" कहा जाता है।

"ऐ पहाड़ी गौरवर्णा लड़की। तुम्हारे हाथों से इस पानी को पीने की इच्छा है। इस लिये तुम लोटे को खूव धो माँज कर चमका लेना"। पहाड़ी जी की इस स्वर सिद्धि में यश शर्मा का भी योगदान रहता। जब भी यह दोनों मिलते तो कच्चे ताज़े दूध की सी महक से भरपूर इस पहाड़ी लोक संगीत का आनन्द हम लोग भी घर में प्राप्त करते। साथ में श्रीनगर के लोक संगीत गायक शिव राम जी को भी अवश्य याद किया जाता जो घड़े के ताल पर झंझोटी और पहाड़ी लोक गीत गाते और अन्त में हाथ की थाप से घंड़ा दो फाड़ यानि महफिल खतम कर देते थे।

एक तो थे मनमोहन पहाड़ी, दूसरे थे इन से भी पहले मूलराज पहाड़ी थे। वह कठुआ य बिलावर के आस-पास के ही निवासी थे। इन का लिखा गीत

जीणां प्हाड़ें रा जीणां अड़ी जिन्दे जीणा पहाडें रा जीणा।
झिक्के दे माह्नू, इत्थैं आई रहन्दे -
तन उन्दे उजले ते मन उन्दे गन्दे -
ओह ! केह् जानन पैसे दे बन्दे -
छाँम्वा डाई ठंडा पानी घुट्टें घुट्टें कियां पीणा।
अड़ी जिन्दे। जीणां प्हाड़े रा जीणां।।

इन पंक्तियों का भाव कुछ इस प्रकार है :-

अड़ी ओ जिन्दे अर्थात : अरी ओ मेरी ज़िन्दगी। पर्वतों का जीवन बड़ा आनन्द मय है। नीचे के, मैदानी शहरों में रहने वाले लोग, जब यहाँ आकर रहते हैं तो देखने में चाहे उनके तन भले ही सुन्दर लगते हों, पर उनके मन बड़े गन्दे तथा विषले होते हैं। धर्म इमान बेच कर भी धन इकट्ठा करने वाले यह लोग क्या जाने कि, बहते चश्में के निर्मल जल की गिरती धार के नीचे (छाँबा) अंजली ओक भर कर घूंट-घूंट शीतल जल को पीना कितना आनन्द दायक हैं। गीत की कुछ एक पंक्तियों से ही पता चल जाता है कि कवि का शहरी जीवन की मुलम्मा चढ़ी ज़िन्दगी से कितना गहन परिचय था। पहाड़ी लोग कितने सच्चे निर्भीक, दो टूक बात करने वाले होते हैं, इस प्रकार का चरित्र चित्रण। शहरी और ग्रामीण जीवन पद्धति की स्पष्ट विभाजक रेखा द्वारा पहाड़ों के रहन-सहन को उत्तम ठहराना, भावपक्ष और कला पक्ष की दृष्टि से एक उत्तम रचना है।

परन्तु यहाँ एक प्रश्न और मन में कौंधता है कि क्या इतना सशक्त गीतकार कोई एक ही रचना तो रचता नही होगा ? इसी प्रकार कवि दत्तु, रामधन गंगाराम जी की और अन्य डोगरी रचनाओं की कोई पहिचान नहीं बन पाई कोई अता पता नहीं।

1947 से पहिले दो भाई काले खाँ, रहमत खाँ जो जम्मू के ही रहने वाले थे दूसरे पहाड़ी गीतों के साथ साथ इस गीत को भी बैन्जो और घड़े के ताल के साथ गाते थे। यह गीत तो उनकी पहिचान बन चुका था। विभाजन के पश्चात् वह दोनों भाई पाकिस्तान चले गये थे। सुनने में तो यह

भी आता है कि मूलराज पहाड़ी भी पाकिस्तान ही चले गये थे, संभवत् किसी प्रेम प्रसंग के चलते।

मन मोहन पहाड़ी जी भी मूलराज पहाड़ी के इस गीत का आत्मा में साक्षात्कार करते थे। इस श्रेष्ट भाव पूर्ण गीत में पहाड़ों की सरल पवित्र जीवन शैली के चित्र को साकार करने वाले मूलराज पहाड़ी का नाम भी शायद कभी विस्मृति के गर्भ में खो जायेगा। गीत तो कभी नहीं मरता। पर यह एक तथ्य है कि जिन रचनाकारों ने अपने नाम य उपनाम रचनाओं में पिरोये हैं और रामधन दत्तु आदि की परम्परा को जैसे स्मैल पुरी, अलमस्त ने आगे वढ़ाया है, यही गीतकार जीवित रह जायें। जिन गीतकारों के नाम गीतों में चिन्हित नही होंगे वह गीत भी शायद लोक गीतों के सागर में कोई लहर बन कर रह जांऐगे।

जैसे कि यश शर्मा के जीवन काल में ही उनके प्रसिद्ध गीत मेला और वसन्त लोक गीतों की श्रेणी में शामिल हो गये हैं। जम्मू के प्रसिद्ध डोगरी लोक संगीत गायक "गुलाम मुहम्मद और साथी" सांरगी और ढोलक के साथ इन गीतों का गायन करते हुए देखे या सुनें जा सकते हैं। बास्तव में जो रचना जितनी लोक मानस के निकट होगी उतनी ही हृदय के भी निकट जगह पा लेती है।

उपरोक्त कुछ व्यक्तियों का ज़िकर इस लिये भी अनिवार्य लगा कि बास्तव में इस डुग्गर प्रदेश के यही सच्चे हीरे मोती हैं। कहीं ऐसा न हो कि समय की धुंध में यह सब अनचीन्हे ही न रह जायें। भविष्य में डुग्गर के इतिहास में इन विभूतियों की स्मृति ही न शेष हो जाये।

इस सब से मेरा आशय गीतों, लोकगीतों के पचड़े में पड़ने का कदापि नहीं है। क्योंकि तर्क हमें कहीं नहीं ले जाता, दर्शन भले ही कोई राह सुझा दे।

पर इसी संदर्भ में एक बात और कहने को बाध्य होना पड़ रहा है कि, कुछ समय पहिले महान संगीतकार श्री अनिल बिस्वास जी का निधन होने पर रेडियों कश्मीर जम्मू ने भी उनके द्वारा डोगरी भाषा की उन रचनाओं की खोज पड़ताल करने की चेष्टा की जो उन्होंने स्वर बद्ध की हों। एक तो उन रचनाओं में यश शर्मा द्वारा लिखी लोरी थी, दूसरा गीत श्री विष्णु भारद्वाज जी का लिखा था। इन दो रचनाओं को स्वर बद्ध किया था

अनिल विस्वास ने, श्री शिव कुमार शर्मा ने सन्तूर तथा हरि प्रसाद चौरसिया ने बाँसुरी वादन से उन्हें संवारा था। स्वर दिया था पार्श्वगायिका मीना कपूर ने।

रेडियों स्टेशन की रिकार्ड लाइब्रेरी में कही भी कोई ब्योरा नहीं मिल सका इन रचनाओं का। अलवत्ता संध्या मुर्खी का गाया भजन

"आऊं तेरे द्वारे आई मेरे प्रभु जी
अपने चरणे लायो। यह तो मिला था।

यश शर्मा की रचना के इस मुखड़े का अर्थ इस प्रकार है कि, हे प्रभु मैं आपके द्वार पर तो उपस्थित हूँ अब अपने चरण स्पर्श की अनुमति प्रदान करें। मुझे अपने चरणों मे़ं स्थान दीजिये।

अनिल बिस्वास जी द्वारा दिया गया डोगरी भाषा को यह योगदान धीरे धीरे पूर्णतया विस्मृति के गर्भ में विलीन हो जायेगा, य ऐसा भी कहा जा सकता है कि, विलुप्त हो गया है। इस आधुनिक काल में कला संरक्षण के दावों के खोखलेपन को क्या नाम दिया जा सकता है ?

जिस लोरी का उपर ज़िक्र किया गया है उसका नाम है "नींदर"

(नींद)

आई जा, आई जा, आई जा, नीन्दरे
आई जा, आई जा, आई जा ओ।

माँ अपने नन्हें शिशु को लोरी देती हुई गा रही हैं कि, ऐ निंदिया।

आजा, आजा, आ चली आ।
चीड़े, देआरें दे रूक्खें चा होइयै
ढलदियां संझा दे रंगैं रगोइयै
आई जा नींदरे, आई जा रानियें
बल्लें-बल्लें, बल्लें आई जा ओ।

अर्थात : "चीड़ और देवदार के सधन पेड़ों (हरित बनश्री) को पार करते हुअे ढलती सांझ के रंगों (श्यामल लालिमा युक्त) में रंग कर आजा, ओ, सौन्दर्य की रानी। धीरे-धीरे बहुत धीरे दवे पाँव चली आ।

तेरिया बत्ता च नदियां नाले न
मते छलैपे न, तारें दे आले न
माऊ दी ममता बास्ते पान्दी ऐ
नैन कटोरें समाइ जा ओ
आई जा, आई जा, आई जा नीन्दरे

अर्थात् : तुम्हारे रास्ते में (जल से भरपूर) नदियां नाले हैं। अनंत सौन्दर्य है (आकाश के तारों का) तारों की आभा मयी झिलमिलाती पुकार है परन्तु माँ की ममता (सर्वोपरी) तुम्हें वास्ता देती हैं कि, इस नैसर्गिक सौन्दर्य में से होती हुई तुम मेरे लाडले के नयन कटोरों में आ कर समा जाओ।

गले लग्गी आखै, चन्नै दी चाननी
कन्ते बिना मोइये, कालजा छाननी
असें ते जागदे, रात बिहानी ऐ
मुन्नऐं गी ते, सोआई जा ओ।।
आई जा, आई जा, आई जा नीदरे
आई जा रानियें, आई जा ओ
बल्लें, बल्लें, बल्लें आई जा ओ।

अर्थात : "चाँद की चाँदनी (मुझे) गले से लगा कर पूछ रही है कि, कन्त के बिना (वियोग) तुम्हारा कलेजा छलनी हो रहा है (चाँदनी की शीतलता और वियोग जन्य उत्ताप से) एकान्त "निःस्तब्ध रात्रि के दो विरोधामासी उपादान" हमारी रात्रि तो जागते ही बीत जाती है, पर मेरे इस (मुन्नु) अबोध शिशु को तो (मीठी, मोहक) नींद में सुला जाओ। हे रानी तुम धीरे-धीरे आ जाओ।"

यहाँ एक बात और भी विचारणीय है कि अपने समय के महान गायक श्री के एल सहगल जी ने हिन्दी गीत तो गाये ही, बंगला गीत भी गाये जहाँ तक कि, पंजाबी गीत "माही नाल जे अक्ख लड़दी कदे न" भी गाया था तो फिर जम्मू की धरती से इतना धनिष्ट संबध होते हुए भी डोगरी का कोई भी गीत क्यों नहीं गाया भला ? जब कि उनका तो जन्म ही जम्मू की धरती पर हुआ था, रणवीर स्कूल मे पढ़ते थे तथा दीवान मन्दिर की राम लीला में भी सीता का अभिनय करते रहे थे।

"संघर्ष भरे दिन," गीतकार के

कुन सुने कुसगी सुनां अपनी कथा
मंगदी ऐ पूरा न्यां अपनी कथा

अर्थात् : किसे सुनाऊं अपने मन की व्यथा कथा। कौन है जो सुनेगा, पूरा न्याय माँगती है अपनी कथा। पर किससे कहूँ ?

यह संघर्ष यात्रा है कवि यश की जम्मू से दिल्ली, दिल्ली से जम्मू फिर श्री नगर तक की।

जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है कि, "कुन आखदा डोगरे डरी गेदे" यह क़विता जब रेडियो पर पढ़ी गई तो उस समय की मिनिस्ट्री की नींद उड़ गई थी। उनसे डोगरों का शौर्य्य गाथा का कोई भी उभरता स्वर सहन कर पाना दूभर था। परिणाम स्वरूप रेडियो पर अन्तराल से मिलने वाले कॉंट्रेकट बिलकुल ही बन्द कर दिये गये। नियमित कालिज की पढ़ाई एक तरह से छूट ही चुकी थी। अब करूं भी तो क्या कुछ सूझ ही नही रहा था। रोजी रोटी के जुगाड़ का कोई स्थायी साधन नहीं मिल पा रहा था। अपने घर में भी किसी से कुछ नहीं कहा जा सकता था। बावू जी के तो सामने पड़ने से ही बचता रहता था।

उन्हीं दिनों धर्म शाला से प्रदीप का पत्र मिला, और मैं धर्मशाला चल दिया। प्रदीप के पिता के मित्र दिल्ली में कोई त्रेहान साहिव थे, जो फाइनेंस सेक्रेटरी थे। उनका बड़ा बेटा राजिन्द्र त्रेहान रेडियो स्टेशन में अंग्रेज़ी न्यूज़ युनिट में उपसम्पादक थे। उन्हीं से प्रदीप को पता चला था कि, डोगरी में खवरें पढ़नें की एक पोस्ट खाली होने जा रही है। प्रदीप बहुत सूझ-बूझ वाला तेज तर्रार योग्य लड़का था। अंग्रेज़ी, हिन्दी बहुत सहजता से फर्राटे दार बोलता और लिखता था। परन्तु डोगरी पढ़ने बोलने, लिखने में कुछ अड़चन आती थी। डोगरी बोलने का उसका लहज़ा हिमाचली ही था। डोगरी खवरें पढ़ने में शुद्ध उच्चारण तथा लयात्मकता का अभ्यास करने में उसे मेरी जरूरत थी। सो मैं उसके पास पहले धर्मशाला रहा फिर हम दोनों दिल्ली चले गये। उसकी मदद करने की मैंने भरपूर कोशिश की। दिल्ली में हम त्रेहान साहिव के घर ही ठहरे। ऑडीशन में प्रदीप डोगरी में ख़वरे पढ़ने के स्तर पर पूरा न उतर सका। परन्तु मेरी दमदार आवाज़ और डोगरी भाषा पर पूरा-पूरा अधिकार और पढ़ने की रवानी देख कर राजिन्द्र

त्रेहान ने यह सुझाव दिया कि, तुम्हीं प्रयत्न कर के देखो और सिलेक्ट होने का पूरा-पूरा आश्वासन दिया।

परन्तु अपने मित्र के अहं को चोट पहुँचाना मुझे गवारा नहीं था। क्योंकि मैंने भांप लिया था कि प्रदीप ऐसा नही चाहता था। मेरी वहाँ अकेले की पहुँच ही कहाँ थी। सब कुछ समझते हुऐ भी बिवश था। प्रदीप के यह कहने पर कि, किसी बड़े आदमी के हस्तक्षेप के कारण वह पोस्ट किसी और को दे दी गई है। मैं जान गया कि, मित्रता ने रंग दिखा दिया है। ख़ैर, क्या हो सकता था। फिर भी प्रदीप के साथ दिल्ली जाने का लाभ तो मिला ही था, य ऐसा भी कहा जा सकता है कि, बहुत बड़ा लाभ मिला था।

रविवार शाम को कनाटपलेस स्थित इंडियन काफी हाऊस में अदीवों, शायरों, चित्रकारों, लेखकों और महालेखकों से मिलना जुलना होता था। भांति भांति की कलाये, बोलियाँ, चेहरे, अलग-अलग विचारों के बुद्धिजीवियों से मिलने जुलने का वहाँ खूव अवसर मिला। यह सब कुछ था तो प्रदीप के कारण ही न, नहीं तो वहाँ मुझे कौन जानता था।

यहीं पर परिचय हुआ था देवराज दिनेश, रामानन्द दोषी, रमानाथ अवस्थी तथा देबेन्द्र सत्यार्थी आदि से। सब से बड़ी बात थी हिन्दी के सुप्रसिद्धि कवि श्री हरिवंश राय बच्चन जी के दर्शन भी हुए थे उनकी प्रसिद्ध और लोक प्रियता का शिखर स्पर्श करने वाली रचनाऐं, मधुशाला निशा निमंत्रण आदि में से बहुत कुछ मुझे ज़ुवानी याद थी और मैं सस्वर भाव विभोर हो कर गाया करता था अपने ही ढंग से पुनः बच्चन जी से सन्निध्य जुड़ा था धर्म शाला के कंवि सम्मेलन में। बच्चन जी से यही परिचय आगे चल कर मेरे जीवन में बहुत बड़ा वरदान सिद्ध हुआ था।

इसी काफी हाऊस में चित्रकार माथुर भी मिले, जो उन दिनों बिरला मंदिर में रहते थे। उन्हें शिव का नन्दीगण बनाने में महारत हासिल थी। काफी हाउस की गहमागहमी में हमारी टेवल के निकट आते ही एक नारा बुलन्द होता (माथुर वुल्ल) उनका वह स्वच्छंन्द हास बड़ा भला लगता। माथुर एक ज़ोरदार ठहाका लगा कर हमारे पास आकर बैठ जाते वहुधा मौज मस्ती में आकर मेरा प्रदीप का अपना बिल, अपनी जेब से चुकाते। देवेन्द्र सत्यार्थी, लम्बी दाढी, तेजस्वी चेहरा, विशाल भावपूर्ण आँखें, कंधे पर लटकता झोला, हाथ मे कलम पकड़े गुरूदेव रविन्द्र नाथ टैगोर जैसे दिखने

की कोशिश में लगे रहते थे। कभी पास आकर आहिस्ता से पूछ भी लेते "यश मै लगता हूँ न रवि ठाकुर।

सोम प्रदीप तो इस सारे माहौल का मंजा खिलाड़ी था। पर मैं तो जैसे इस सारे बातावरण में एक नौसिखिये की तरह यह सब देखता रहता था। हाँ इतना जरूर था कि जब भी यहाँ कोई कवि सम्मेलन होता तो कभी कभी मुझे भी गीत पढ़ने का अवसर मिल जाता। उन दिनों छन्द की त्रुटि चाहे भले ही होती होगी, पर मीठे स्वर के कारण कवि सम्मेलन की वाहवाही में मेरी हिस्सेदारी बरावर की आ जाती थी। थोड़ा बहुत कुछ गुज़ारे लायक जुगाड़ भी अकसर हो जाता था। यहाँ मैं हिन्दी कविता पढ़ता था तथा मेरा परिचय जम्मू का हिन्दी कवि कह कर ही करवाया जाता था। पर मैं वहाँ हिन्दी के साथ-साथ एक दो गीत डोगरी के भी जरूंर सुनाता था जो कवि मण्डली में काफी पसन्द किये जाते थे।

रहते तो हम दोनों त्रेहान के ही घर में थे पर चाय नाश्ता खाना पीना बाहर ही होता था। मेरे पास जितने रूपये पैसे थे वह सब प्रदीप के ही पास थे। उसके पास अपने भी थे पर अब वह सब समाप्ती की ओर था।

एक दिन बिना मुझे कुछ विशेष बताये प्रदीप धर्मशाला चला गया। उसी दिन मैं भी अपना बैग उठा कर विड़ला मन्दिर चला आया। माथुर को यह जान कर बड़ा आश्चर्य हुआ कि, विड़ला मंदिर के प्रबंधकर्त्ता श्री जितेन्द्र शर्मा तथा विड़ला मन्दिर में बने गीता भवन के सुन्दर मंच पर मोहक स्वर में प्रातः साँय समय भजन गायक मनमोहन पहाड़ी मेरे बड़े पुराने मित्र तथा संबधी भी थे।

दोनों ने प्रसन्न भाव से मेरे रहने के लिये मन्दिर के एक कमरे का प्रवंध कर दिया। रहने की समस्या तो हल हो गई पर असली समस्या थी दो जून खाने की। पैसे भी समाप्त होने को थे। पर यह बात मैं किसी से कह भी नहीं पा रहा था। मनमोंहन पहाड़ी का खाने के लिये बहुत इसरार करने पर भी मेरी आत्मा को यह सब मंजूर नही था। इन लोगों की पगार भी तो बहुत कम थी, मुशकिल से पाल रहे थे अपने बाल बच्चों को। दो एक छोटे छोटे कमरे और एक संकरे बरामदे बाले क्वार्टर मन्दिर की ओर से इन दोनों को मिले हुऐ थे। बिरला मन्दिर की भोजन शाला में वैष्णव भोजन की थाली

सवा रूपये में मिल जाती थी। जिसमें तीन-चार चपातियां थोड़ा भात, पानी जैसी दाल की कटोरी, चटनी तथा दो चम्मच दही परोसा होता था। कच्ची छावनी के अपने घर, देशी घी की खुश्वू और गर्म मसाले की महक से महकता रसोई घर याद आता जहाँ छोटी चाची नहा-धो कर सुवह पाँच बजे ही चूल्हा सुलगा देती थी। देश के बंटवारे के बाद दिल्ली शहर, पाकिस्तान से आये श़रणार्थियों से भरा पड़ा था। ज़ख्म खाये लोग। माँ-बाप, भाई-बहन अनेकों संवधियों से विछुड़ चुके थे यह अभागे लोग। सिर छुपाने की छत्त नहीं, न कोई रोज़गार। सहमें डरे भयभीत रिफ्यूजी। विछुड़ चुके थे यह अभागे लोग। विरला मन्दिर तथा आस-पास गोल मार्किट, पहाड़ गंज, देव नगर धौला कुआं और दूर-दूर तक पुराने किले तक भी, हर स्थान पर शरणार्थियों के बचे खुचे परिवार जीवित रहने की सिर तोड़ कोशिश कर रहे थे। पर क्या मजाल जो किसी के आगे हाथ फैलायें।

एक पढ़ा लिखा, रिफ्यूजी, लड़का दिल्ली की सड़कों पर घूमता मेरा मित्र बन गया। अक्सर हम दोनों काम धंधे की खोज में स्कूलों के चक्कर लगाते। एक दिन वह मुझे दरियागंज के एक प्राईवेट स्कूल में ले गया। दिल्ली के लोग भी इन बेगुनाह बर्वाद लोगों की दिल खोल कर मदद करते थे। सुरेन्द्र ने मुझे भी पाकिस्तान से आया रिफ्यूजी बता कर 55 रूपये की स्कूल मास्टरी दिलवा दी। 25 रूपये एडबान्स भी दिलवा दिये। रात को मन्दिर के कमरे में सोते समय एक अर्न्तद्वन्द चलता ओह, कितना बड़ा झूठ बोल कर किसी दूसरे जरूरतमंद नौजवान का हक छीना है मैंने। क्या मैं रिफ्यूजी हूँ ? चाहे इस समय रिफ्यूजिओं जैसी स्थिति ही है मेरी, पर इसके लिये मैं स्वयं ही तो उत्तरदायी हूँ।

इतना बड़ा झूठ, यह तो इन घावखाये लुटे पिटे लोगों के सांथ घोर अन्याय है, कितनी बेईमानी कर रहा हूँ। सुबह उठ कर 25 रूपये सुरेन्द्र को वापिस करते हुए कहा कि, यह मुझ से न हो सकेगा। सुरेन्द्र और उसकी माँ ने मुझे बहुत समझाया कि तुम पढ़ाने का मेहनताना ही तो लोगे। पर मैं अपने अन्तर की आवाज़ को न दबा पाया। सुरेन्द्र और उसकी माँ, गोल डाकखाने के पास रहते थे। अब तो दिल्ली महानगर का रूप ही बदल गया है। वह जगह ढूंढे भी नहीं मिलती।

रात को देर तक नींद न आती। अपनी धरती के जिन केन्द्रों से

जीवन की जड़ों को रस प्राप्त हुआ था। अब तक पोषण प्राप्त होता रहा था, उन्हीं के लिये मन भटकने लगता था। अपने आप के विश्लेषण में कहीं अपने को ही कसूरवार पाता। मेरे बावू जी ने मेरे लिये क्या-क्या स्वपन पाले होंगे परन्तु में ही, अपने स्वभाव के चलते कहीं पूरा नहीं उतरा था।

इन दिनों भी बावू जी महाराजा प्रताप सिंह के वज़ीर आसू की लाखों की जमीन-जायदाद, बाग-बागीचों के सार संभाल के लिये "मैंनेजर कोर्ट आफ बार्ड" की नौकरी कर रहे थे। यही बातें सोचते-सोचते मन फिर इसी वर्त्तमान में भटकने लगता कि, कल क्या होगा ? अपनी मर्जी के चलते भरा-पूरा परिवार छोड़ कर चला तो आया था पर वापस कैसे जॉऊ; किस बूते पर पैसों के लिये घर लिखूं। जब कि, माँ ने मना भी किया था।

दिल्ली मे रियासी वालें सितार नबाज़ मोती राम जी जो वुजुर्ग भी थे, परिवार सहित दिल्ली के पुराने किले में रहते थे। उन्हे विश्व विख्यात पंडित रविशंकर जी के शिष्य होने का सौभाग्य प्राप्त था। उनके साथ कभी-कभी रविशंकर जी के घर चले जाया करता। यहाँ रात-रात भर सितार का प्रोग्राम चलता, पंडित जी उन दिनों मांडा हाऊस में रहते थे।

पर कब तक इस व्यर्थ की भटकन का बोध मुझे पूरा-पूरा हो रहा था। एक दिन मन की इस अधीर चंचलता को अचानक ही एक और मोड़ मिला। उस दोपहरी, बड़े अनमने भाव से अपने कमरे की सीढ़ियाँ उतर कर नीचे मन्दिर की ओर जा रहा था तो मेरे ननिहाल बसोहली का एक अच्छा खासा परिचित मिल गया। वह किसी कार्य वश दिल्ली आया था, तथा रामेश्वरी नेहरू के घर की देखभाल करने वाली अपनी मौसी के पास ठहरा था। उस नेक भद्र महिला से मैं भी थोड़ा बहुत बसोहली से ही परिचित था। बातों ही बातों में वह मुझ से सुन चुका था कि यहाँ रेडियों की नौकरी का काम नहीं बन पाया था। और भला दिल्ली आने का मकसद भी मैं क्या बताता उसे।

दूसरे दिन दस बजते न बजते उस बंगले से कार और ड्राईवर के साथ वही मेरा परिचित साथी, मुझे खाने पर निमंत्रित करने आ पहुँचा। बहुत ही उकताये मन से, उसके बहुत इसरार करने पर जाना पड़ा। फिर भी मैंने गाड़ी और ड्राईवर को देखा तो अपना बढ़िया नीला सर्ज़ का सूट, बूट से से लैस हो कर उन के बंगले पर जा पहुँचा।

खूबसूरत फूलों भरे खुशनुमा बागीचे में वह आलीशान बंगला तथा सजा-धजा ड्राइगरूम । वहाँ घर की मालाकिन भी मौजूद थी । उस स्वागत सत्कार को देख कर मैंने भांप लिया कि, उस मौसी ने मेरे और मेरे घर बार तथा ननिहाल के शाह घराने के बारे में बिस्तार से जानकारी रामेश्वरी नेहरू को दी होगी । यह भी कि, मैं जम्मू रेडियो स्टेशन में काम करता हूँ और यहाँ न्यूज़ रीडर का इंटरव्यू देने आया था, पर काम नहीं बना था । क्योंकि इंटरव्यू वाली बात तो मैंने ही पहले दिन उस लड़के को बताई थी ।

छुट्टी का दिन होने के कारण उस बंगले के सजे सजाये ड्रांइगरूम में कांलिज पढ़ती एक स्वस्थ प्राणों वाली छरहरी सी युवति भी मौजूद थी । खाने के पश्चात बात मेरे घर द्वार से होती हुइ कविता संगीत पे चल निकली । साथ ही जब मुझ से पूछा गया कि अगर मैं दिल्ली में ही रहना चाहूं तो आकाशवाणी में किसी अच्छी पोस्ट के लिये यहाँ कोशिश की जा सकती है तब तक वह लड़की कुछ सलज्ज भाव से उठ कर जा चुकी थी ।

पता नहीं - उसी क्षण मेरी छठी इन्द्रिय ने मेरा अन्तः करण झकझोर डाला । मुझ से स्पष्ट कुछ पूछा तो गया ही नही था इस लिये कुछ स्पष्ट कहने की स्थिति में तो था ही नहीं । पर इस बात को नकारना भी अपने आप से बेईमानी होगी कि, एक पुलकित भाव कहीं मन में जरूर झांक रहा था ।

पर दूसरे दिन ही, अपना बढ़िया कैमल क्लाथ कंवल 24 रूपये में एक कबाड़ी के हवाले कर के घर पहुँचने का जुगाड़ हुआ था । वापिस जम्मू अपने घर तो पहुँच गया, पर घर पर भी मेरे लिये “आकाश से गिरा-खूजर में अटका” वाली कहावत मौजूद थी । बेरोजगारी की मानसिक परेशानी से जूझता मेरा व्यक्तित्त्व उस अकस्मात आघात से एक बारगी विचलित हो उठा ।

“आघात” शब्द भी अपनी सार्थकता में शायद कुछ छोटा ही पड़ रहा होगा य फिर कहना ठीक रहेगा कि, आँधी तुफान बाहर ही नहीं चलते, अन्दर भी चलते हैं ।

माँ सब कुछ जानते हुऐ भी अनजान सी बन रही थीं । वहीं तो एक संवल थी मेरा । उन्हीं से जब मैंने चुपचाप ही कहा कि, कहीं मेरी नौकरी का जुगाड़ ही नही बन पा रहा है और न ही निकट भविष्य में इसकी

कोई संभावना ही है, तो फिर यह सब क्या है ? उन्होंने कहा कि अब कुछ मत बोलो । तुम्हारे बावू जी और सत्य (छोटा भाई) गुरदासपुर (पंजाब) में लड़की देख चुके हैं, तिलक का मुहूर्त्त तय हो चुका है । माँ की वह लाड भरी खुशी से छलकती दृष्टि जैसे कहीं मेरे अन्तर को बींधती चली गई । अब कुछ और बोलने को रहा भी क्या था, मेरे पास । मन ही मन इसे भी गर्दिश के दिनों का एक हिस्सा ही मान लिया था । यह गर्दिश का चक्कर भी अजीव होता है । जो पैरों को कहीं भी जमने ही नही देता । जम्मू से धर्मशाला फिर दिल्ली अब फिर जम्मू । यह समय सब पानी की चादर पर लकीर खींचने जैसा ही निरर्थक था ।

"गुडविल मिशन"

पर फिर भी, मन के आकाश पर छाई चिन्ता और उदासीनता के घनें मेघों के भीतर से जीवन्त प्रकाश रेखा की एक झलक दीख पड़ी थी । 1950 में युवा विद्यार्थियों का एक दल तत्कालीन शासन द्वारा उत्तरी भारत के उन्नीस शहरों में भेजा जाना था । इस गुडबिल मिशन का उद्धेश्य, बेगुनाह, निहत्थे काश्मीरी अवाम पर जो कवायलियों द्वारा ज़ुल्म ढाये गये थे । केशर की क्यारियों तथा फूलो-फलों की धरती कश्मीर में जो मृत्यु की बिनाश लीला का ताँडब पाकिस्तान द्वारा छद्म रूप से भेजे गये कवायलियों ने मचाया था, उसकी पूरी-पूरी जानकारी से देशवासियों को अवगत करवाना था ।

इस मिशन के सदस्य थे, सर्व श्री वेद भसीन, शाम लाल पुष्प, राजिन्द्र सिंह, देव भसीन, नीलाम्बर देव शर्मा तथा राम लाल बसूर स्वयं यश शर्मा । इस दल के मुखिया थे श्री वेद भसीन और निगरान थे प्रोफेसर राम लाल बसूर ।

यश शर्मा के कथानुसार उन दिनो एक लाख रूपयों की राशि तक का ख़र्चा इस गुड बिल मिशन के लियें मंजूर हुआ था । ऐसा सुनने में आया था ।

जहाँ भी यह दल जाता, वहीं भव्य स्वागत होता । इस दल के सभी सदस्य पढ़े लिखे, संभ्रान्त व्यक्तित्त्व के धनी थे । उन दिनों काश्मीर के हालातों के प्रति भारत भर के लोगों के मन में बेहद उत्सुकता थी । जहाँ भी हम लोग जाते, जनता हमारे लिये आँखें बिछाये इन्तज़ार करती मिलती ।

अम्बाला में अपने उद्धेश्य में बेहद सफल कार्य क्रम के पश्चात्, "अब्दुल गुफार खान" जो वहाँ के एम. एल.ए. थे। हमे चार घोड़ों की बग्धी पर सारे शैहर की सैर करवाई। शाम को कहीं न कहीं बड़ी सभा का आयोजन किया जाता। काश्मीर के विषय में पूछे गये प्रश्नों के उत्तर बहुधा श्री वेद भसीन तथा दूसरे प्रोफेसर लोग बड़े दिलेराना सधे शब्दों में सन्तोष जनक ढंग से देने में माहिर थे।

दल के भाषणों के मुख्य वक्ता भी यही लोग थे। दल के साथ गये दूसरे भसीन यानि देव भसीन के पास एक लाल जिल्द बाली कापी रहती। जिसमें, जम्मू, कश्मीर, लद्दाख तीनों खित्तों की जनसंख्या, तापमान, जलवायु, पर्वतों, नदियों, पुलों के साथ-साथ रहन-सहन, संस्कृति, भाई चारा तथा रियास्त के अन्य सभी पक्षों का सिलसिले वार व्योरा था। हालातों की तारीखों की निश्चित क्रम वार जानकारी दर्ज थी। जमा, खर्च का हिसाव भी उसी कापी में दर्ज़ रहता। उनका नाम ही लाल किताव पड़ गया था।

जम्मू-कश्मीर के सवंध में कविता, गीत लिखने का उत्तारदायित्त्व मेरा था। जहाँ हमारे दल के सदस्यों के भाषण समुचित समाधान पूर्ण होते थे। वहाँ संगीत का भी इतना जादू था कि, दावतों पर दावतों के निमंत्रण बड़े-बड़े वुद्धि जीवियों के घरानों से मिलते थे। जहाँ भी हम सभी जाते, लोगों की भारी भीड़ जुट जाती कि, यह लोग काश्मीर के हालात सुनाने आये हैं। बहुत से शहरों में गये। कश्मीर के तथ्यों पर आधारित बातें बड़े ध्यान से सुनी जाती। मेजर सोमनाथ के बलिदान, बारामूला के बहादुर मकबूल शीरवानी की कुर्वानी कि सच्ची दास्तान अकेले ही आग उगलती मशीनगन पर ठोढ़ी टिका कर, अंतिम सांस तक लड़ते लड़ते शहीद हो जाना, ब्रिगेडियर राजिन्द्र सिंह का ही हौसला था जिन्होंने तीन चार दिनों तक मुठ्ठी भर सिपाहियों के साथ टिडडी दल की तरह बढ़ते शत्रुओं की अनगिनत संख्या को अपने दम पर रोके रखा था। फिर बचे खुचे दो चार सिपाहियों को जाने का आदेश देकर स्वयं गोलियों से छलनी हो जाना। बीरता के इन कारनामों को लोग स्तब्ध हो कर सुनते।

विशेष कर जिन दिनों पूरा देश साम्प्रदायिक दंगों की आग मे जल कर राख हो रहा था। वादिये कश्मीर में आपसी भाई चारे की मशाल जल रही थी, जिसकी रोशनी मन्द नहीं हुई थी। कारण चाहे कोई भी रहे हों।

शेख मुहम्मद अब्ँदुल्ला ने इस भाई-चारे को निभाने में अहम भूमिका निभाई थी।

फिरोज पुर शहर में ममदोट के नबाव की आलीशान कोठी में हम ठहरे थे। वही से दरिया पार करके, अमर शहीद भगत सिंह, राजगुरू, सुखदेव की समाधियों पर श्रद्धा के फूल चढ़ाये तथा अपने जम्मू-कश्मीर के लिये अमन की प्रार्थना की।

(यहाँ मेरे मन की उत्सुकता थी कि उस यात्रा के दौरान संगीत का विषय क्या और कैसा था)

उत्तर इस प्रकार था कि पहले तो जो कश्मीर में हुआ था उसका ही प्रसंग शुरू किया जाता था जैसे :-

धू-धू जलता था कश्मीर, हमीं से रूठी थी तकदीर
सोम नाथ मेजर, कर्नल राये ने, दी थी कुरबानी
बेगैरत, बेरहम दरिन्दों ने, मारा था शिरबानीं
ज़ाफरान ज़ारों की धरती ने मुँह तोड़ जबाव दिया
हमलाआवर दुश्मन, सर पर पाँओं रख़ कर भाग गया
जान हथेली पर रखकर, लड़े धीर और वीर
धू-धू जलता था कश्मीर, हमीं से रूठी थी तकदीर

इनका कहना था कि, हिन्दी कवियत्री सुभद्रा कुमारी चौहान का "झासी वाली रानी थी" यह छन्द दिलो दिमाग पर छाया हुआ था। उसी को लेकर यह रचना रची गई थी पूरे जोशो ख़रोश के साथ इसे गाया जाता था। इसके पश्चात् श्री वेद भसीन तथा अन्य साथी काश्मीर की जानकारी अपने ढंग से प्रस्तुत करते थे जिसका विशेष प्रभाव श्रोताओं पर पड़ता था। कुछ ऐसे ही गीतों के भाव रहते थे। परन्तु इस समय हमारा उद्धेश्य यह समझाना था कि इस वक्त कश्मीर से सामन्ती युग पूर्णतया विदा ले चुका है। अंधेरा युग समाप्त हो गया है। और हलवाले झंडे के साथ, "नया कश्मीर" "नया सवेरा" जाग रहा है। जागीरदारी, ताल्लुकादारी, सूद खोर निजाम अपनी अन्तिम सांसे गिन रहा है। कश्मीर से बाहर के लोगों को यही सन्देश सुनाने के लिये हमें भेजा गया है कि धरती का स्वर्ग सचमुच काश्मीर ही तो है। गाँधी जी को भी शान्ति की किरण कश्मीर में ही दिखाई दी थी। कश्मीर

घाटी में यह परिवर्त्तन सचमुच ही बहुत अभूतपूर्व था। जमींदारी प्रथा खत्म कर के, जमीने हल चलाने वाले किसानों को दे दी गई थी। यह चमत्कार जैसा ही तो था।

इस नये युग की करबट को दर्शाता यह गीत विशेष उस समय की आमद पर ही लिखा गया था।

बहार आ रही है, बहार आ रही है।
वह गीतों की गुंजार वादी में गूंजी
बह झीलों में चलने लगे फिर शिकारे
शिगूफे खिले और हवा गुनगुनाई
मगर कौन समझेगा इनके इशारे।
बहार आ रही है, बहार आ रही है।

इधर, उस तरफ अपने रेवड़ चराती
वह चरवाही न जानें क्या गा रही है
महकती हुई, ओढ़नी का किनारा
हवा ऊंचे पर्वत पर लहरा रही है।
बहार आ रही है, बहार आ रही है।

कुछ ऐसे ही गीत लिखें और गाये जाते थे। दिल्ली पहुँचे तो वहाँ दिल्ली युनिर्वीसटी में जम्मू के कुछ छात्र छात्रायें पढ़ते थे। वहाँ वह लोग भी हमारे इस कार्यक्रम का ही एक हिस्सा बन कर शामिल हो गये थे। दिल्ली में बड़े-बड़े नेताओं से हाथ मिलाये, आर्शीवाद मिले।

पर सब से यादगार बनी, शिमला की यात्रा। शिमला के क्लाक होटल में हमारा दल ठहरा थां मैंहगा होटल, अंग्रेजी खाना और खाने का ढंग़ भी अंग्रेजी। हम में से एक दो को छोड़ कर छुरी काँटा पकड़ने का ढंग भी किसी को पता नहीं था। होटल के ख़ानसामे, बेयरो का तो हंस हंस बुरा हाल। खाने के पश्चात फिंगर बाउल आये तो कुछ ने उसमें नीबू के टुकड़े डले उस गुनगुने पानी को ही पी डाला।

शिमला के टाऊन हाल में मीटिंग रखी गई थी। हम लोगों के साथ कुछ स्थानीय कवि लेखक गण भी सम्मिलित थे। कश्मीर समस्या पर खूव आदान-प्रदान हुआ, समाधान हुआ।

शिमला के स्कैंडल प्वांइट पर लाला लाजपत राय की प्रतिमा स्थापित थीं.। वहाँ कुछ ऐसे दृश्य देखे कि, मन वितृष्णा से भर उठा। परम श्रद्धेय लाला लाजपत राय, जिन्होंने देश की आन, बान और शान के लिये छाती पर लाठियाँ खाई थीं। वहीं शिमला के युवाबर्ग के कुछ ऐसे कुत्सित दृश्य देखे कि, मन आहत हो उठा। कुछ पंक्तियों की रचना स्वयंमेव हो उठी।

क्या इसी का नाम शिमला ?
सच इसी का नाम शिमला।
क्या यही वह संभ्यता है, जिसने ज्वाहर को बनाया ?
जिसने लाला लाजपत को, देश पर मरना सिखाया?
लाजपत की मूर्त्ति का कर रहा अपमान शिमला।।

क्या इसी का.....

होटलों से उठ रही है, गरम खाने की सुगंधि
और इनमें युवतियों की हो रही युवकों से संधि.....

बस-वात अभी यहीं तक पहुँची थी, कि एकत्रित श्रोताओं में से युवा वर्ग बुरी तरह भड़क उठा। पर वहीं के कुछ गण्यमान्य वयोवृद्ध नागरिकों ने, जिन्होंने मेरी इस कविता के माध्यम से इस सत्य को भांप लिया था। शायद स्वयं भी इस गोलमाल से भली-भांति परिचित थे पर कहने में असमर्थ थे बीच बचाव किया। वेद भसीन ने मौके की नज़ाकत देखकर मुझे वहाँ से चुपचाप खिसक जाने को कहा। वहाँ से छूट कर सीधे होटल में ही आकर दम लिया। पर एक बात जरूर हुई कि, इस कड़वी सच्चाई को उजागर करने के साहस की बहुत दिनों तक शिमला के वातावरण में हलचल मची रही, चर्चा होती रही, यही क्या कम उपलब्धि थी ?

पंजाव के बहुत से शहरों का भ्रमण किया। खर्च के लिये गर्वनमेंट का पैसा - जनता द्वारा मिलने बाला स्वागत-सत्कार, कुल मिला कर बहुत सफल रहा यह मिशन। रहता भी क्यों न भला। सभी सदस्य अपना अपना कर्त्तव्य निवाहने में दक्ष थे। होन-हार सुयोग्य अपने अपने विषय में ईमानदार। यहाँ तक कविता, संगीत का पक्ष था, उसका तो किसी भी देश काल परिस्थिति में महत्त्व कम कर के नहीं आंका जा सकता।

यहाँ-सहज ही समझा जा सकता है कि, अपने लेखन में सहज आत्म विश्वास से भरपूर कवि की 21-22 वर्ष की आयु, घुंघराले बाल। गौर वर्ण मुखड़े पर दो सरल से खिले खिले नयन और फिर कंठ में सरस्वति का बास यानि सुर, संगीत का अनूठा मेल। अपना सन्देश लोगों तक पहुँचाने के लिये जिस भारी भीड़ की अपेक्षा होती थी मेरे मन में, वह पूरी होती थी।

पर मेरे मन में यहाँ पर एक उत्सुकता निरन्तर सिर उठा रही थी कि, माना कि यह 1950 का मिशन खूब सफल रहा था परन्तु वहाँ क्या केवल कश्मीर सबंधी हिन्दी रचनाओं का ही बोलबाला रहा था य कहीं डोगरी गीत कविताओं का भी परिचय मिलता था जम्मू से बाहर की जनता को। वह लोग कहाँ समझते होंगे डोगरी भाषा को ?

परन्तु जो जानकारी मिशन के अन्य साथियों तथा स्वयं कवि से मिली वह बहुत सी संतृप्ति के लिये पर्याप्त थी। मेला वसन्त बंजारा आकांक्षा सुनी जाती। हिन्दी रचनाओं के साथ साथ डोगरी रचनाओं का भी खूव रंग जमता था। इतना सराहा जाता था कि पढ़े लिखे घरानों से निमंत्रण के साथ-साथ कविता सुनने का भी विशेष आग्रह रहता था और फिर मेले की रौनकें कहां नहीं होती? वसन्त कहाँ नहीं खिलता साँझ कहाँ नहीं ढलती? पंजाव के लोक मानस में तो बनजारे की विविध रूपों में भूमिका रची बसी है। हिन्दी पंजाबी डोगरी के थोड़े से भाषाई शब्दों के हेर फेर से गीत य कविता के अन्तः करण को स्पर्श करने में कोई भी संकीर्ण हद-बन्दी को कहीं भी मान्यता नहीं मिल सकती। फिर डोगरा संस्कृति तो जम्मू काश्मीर, हिमाचल प्रदेश तथा पंजाब तक फैली हुई है। दीनू भाई पन्त के "गुत्तलु" को कौन नहीं समझेगा।

मलिका पुखराज के गाये पहाड़ी गीत "मिगी वी लेई चल कच्छ बो म्हाड़े बाँकू देआ चाचुआ (ओ वाँकू के चाचा, मुझे भी अपने पास ले चलो) य फिर "फन्दू मजूरीया नेइयों जाना" य फिर "नूंह सस्सू गी पुच्छना करदी, बाह्र सपाई किआं रहन्दे" (बहू- सास से पूछती है कि, घर से वाहर गये सिपाहियों का जीवन कैसा होता है वह किस प्रकार से रहते हैं ?) यह सभी डोगरी भाषा के अमर लोकगीत हैं। इनको कौन नहीं जानता, समझता। सुर तो सब को बाँध लेने में सक्षम रहता ही है। फूलों की सुंगधि, हवा, पानी

और रोशनी, इन सब की कौन सी भाषा है।

यह वही समय था, जिसका ज़िक्र श्री वेद राही जी ने "जगदियां जोता" में किया है कि, "1951 का वसन्त उत्सव डोगरी संस्था की तरफ से, डोगरा आर्ट की नुमाइश और डोगरी मुशायरे का भारी एहतमाम था, लेकिन दो दिन पहले ही सब को मुशायरे में एक ख़ला (शून्य) का एहसास होने लगा, एक कमी सी महसूस होने लगी। अवाम (जनता) का चहेता गीतकार "यश शर्मा" उस समय बसोहली में था। तार पर तार दिये जाने लगे। मुशायरे का एलान हो चुका था। ऐन वक्त पर यश शर्मा पहुँचा और जब उसने अपनी बंजारा नज़्म सुनाई तो एक कयामत (प्रलय) बरपा हो गई" इन का अपना भी कहना था कि उस बसन्त उत्सव पर जम्मू से दिये गये निमंत्रण के तारों की सूचना मुझ तक पहुँचाने के लिये वसोहली में शीघ्रता से मेरे मामा ने कुछ व्यक्ति जहाँ तहाँ भेजे थे, सो इस प्रकार हल्के तथा उत्साहित, प्रसन्न भाव से जम्मू वापिस पहुँचा था।

अपने जम्मू प्रदेश से बाहर जाने के मोह का घेरा अव पूरी तरह टूट चुका था। फिर उस मुशायरे की (बंजारा) वाहवाही से मन प्रफुल्लित भी था। इस लिये एक दिन बड़े आत्म बिश्वास से पुनः रेडियो स्टेशन में श्री जानकी नाथ जुत्शी साहिव के समक्ष जा उपस्थित हुआ। उस दिन जुत्शी साहिव का एक अजीव सा भाव मन से उठ कर जुवान तक आ पहुँचा थां कुछ देर मुझे- गहरी दृष्टी से देखते रहे, फिर एकाएक जैसे भड़क उठे कि,

"बहुत कुछ लिख चुके हो, डोगरों के लिये, अब कश्मीर जाओ, जा कर कश्मीर के लिये लिखो। कुछ देर के लिये तो मैं भौंचक्का ही रह गया, पर इस सब का कारण समझने में मुझे कोई कठिनाई नहीं हुई। इस सारे रोष का कारण मेरी वह कविता भी थी, जिसकी रचना मैंने किसी दुराग्रह वश नहीं की थी अपितु विभाजन की त्रासदी तथा कबायली हमले की विनाश लीला को निकट से देखने भोगने की स्थिति में की थी। अपनी सारी डोगरा कौम को एक होने का आह्वान किया था। साम्प्रदायिक सौहार्द स्थापित करने का प्रयास किया था। आंज़ादी के पश्चात् कवि सब के साथ कदम मिला कर चलने को तो तत्पर था परन्तु अपनी डोगरा कौम का तो किसी भी मूल्य पर अपमान सहने को तैयार नहीं था। इस कविता में समय के स्वर मुखरित थे।

कविता थी :- "इक सोच"

1 आपूं बिच्चै साढ़ी कोई जफ्फी नेई, लड़ाई नेई
जढ़ी होई, होई-हुन अग्गें दा बचार करो,
देसे दे मलाहो आओ, बेड़िये गी पार करो,
खुन्झ होई जन्दी, भुल्ली जन्दे न मनुक्ख पर,
भुल्लिये परतोई औने आले कन्नें प्यार करो।
वीती दियें गल्लेंगी, खरोतनें च सज्जना
मेरे तेरे दौनें बिच्चा, इक दी भलाई नेंई।
आपू-बिच्चै साढ़ी कोई जफ्फी नेई लड़ाई नेंई।

अर्थात : हमारा आपस में कोई बैर बिरोध नही, मनमुटाव नहीं। बीती बातें भुला कर, अब आगे आने वाले समय का विचार करो। ओ देश के कर्णध ारो! आओ, डूबती नैय्या को घाट किनारे लगा दो। निःस्सन्देह, भटक जाते हैं मानव किन्तु रास्ता भटका हुआ मनुष्य सीधी राह पर आ जाये तो उसे हृदय से प्यार करो। बीती बातों को कुरेदने से हम में से किसी की भी भलाई नहीं हो सकती। हमारी आपस में कोई शुत्रता नहीं है।

2 जिन्दाबाद, मुड़दा बाद, रौला-रप्पा पाई करी,
डाँग-सोटा करने नैं, किश नेइयों सौरना।
लेई डुब्बना असें घरा दी गै जफ्फिया नैं
घरा दे कुहाडुयें नैं कक्ख नेइयों छोड़ना।
किन्ना चिर होआ, असें आपूंच गै डंगदे
इन्नी सारी गल्ल साढ़ी समझा च आई नेंई।
आपूं बिच्चै ....

अर्थातः बेसिर पैर की नारे बाज़ी, व्यर्थ का शोर मचाना तथा परस्पर लट्ठ भाँजनें से किसी समस्या का हल नहीं होगा। देख लेना, एक दिन घर की कलह ही हमें ले डूबेगी। घर के भेदी ही लंका ढ़ाते आये हैं। कब से हम एक दूसरे को दशते ही चले आ रहे हैं। इतनी सी बात भी हम आज तक नहीं समझ पाये। कितने दुःख की बात है। विश्वास करो, हमारा आपस में कोई बैर-बिरोध नहीं है।

3 साढ़ी जफ्फी ओंदे कन्नें, जेहड़ा अज्ज साढ़े कोला -
साढ़ी रूट्टी, साढ़े कम्में, काजें गी ऐ खुस्से दा
साढ़ी ग़ैरता गी जढ़ा दिन्दा ललकार अज्ज
दौनें दौनें हत्थें साढ़ी, इज्जतु गी लुट्टा दा
इय्यै नेह् बैरियें गी, जढ़े थमां बढडने च,
सोह् बाह्वे आलिये दी, दनां बी बुराई नेई,
आपू विच्चें साढ़ी.......

अर्थात् : हमारी लड़ाई तो उसके साथ है, जो लोग बड़ी निर्दयता से हमारी रोज़ी-रोटी और काम काज छीन रहे हैं। दोनों हाथों से हमारी, इज्ज़त आबरू को लूट रहे हैं, हमारी ग़ैरत को ललकार रहे हैं। बावे बाली (बाहू फोर्ट में स्थापित काली माँ) की सौगन्ध है ऐसे दुष्ट चरित्र दुःश्मनों को जड़ों से उखाड़ फेंकने में भी कोई बुराई नहीं है।

4 इक्क मिक्क होई करी, इक्क बारी दस्सी देओ,
डोगरे न इक्क, इक्क साढ़ा लान खान ऐं,
इक जान, इक प्राण, इक ऐ ज़वान साढ़ी,
दुनियां च डोगरें दी, एकता नशान ऐं।
ओदूं तोड़ी जीना साढ़े आस्ते सुगन्द ऐ,
जदूं तोड़ी देसे दी ओ, बिगड़ी बनाई नेंई।
अप्पूं बिंच्चे साढी ....

अर्थात् : आओ एक बार तो इकट्ठे हो जाये और बतादें कि, डोगरे सभी एक हैं। एक जैसा ही खाना पहिनना है। सभी एक जान हैं, एक प्राण हैं, तथा एक ही हमारी भाषा है। यही एकता की भावना ही तो दुनिया भर में डोगरों की सही पहिचान है। जब तक हम अपने देश की विखरी और बिगड़ी दशा को संवार नहीं लेते, तब तम हमें जीवित रहने की भी सौगन्ध है। आपस में हमारा कोई बिरोध नहीं है।

5 थाह्रें ते कुथाह्रें पाई-पाई करी कित्तरां,
लीरें बिच सोभै, अज्ज डोगरें दी लाज औ
फाकें कन्नें पीलियां, नुहारां बाल खिल्लरे दे

इय्यै ही ओ, माँ ! जिन्न जम्मेंआं हा बाज ओ ?
उस देसै दी ऐ दशा दिक्खी मन रोई पौन्दा,
जिस कदें कुसै कोला, गल्ल बी खोआई नेईं ।
आप्पू बिच्चै साढ़ी कोई जप्फी नेईं लड़ाई नेईं ।

अर्थात् : आज इतनी निर्धन हो गई है यह कौम कि फटे पुराने तार-तार कपड़ों में डोगरा कौम की लाज शोभा पा रही है । निर्धन, भूखी, बिवर्ण मुखी, बिखरे, रूखे, अस्तव्यस्त उलझे केशों वाली क्या यही वह डोगरा माँ थी, जिसने बहादुर जरनैल बाज सिंह जैसे पुत्रों को जन्म दिया था ? उसी देश की दुर्दशा देख कर मन चीत्कार कर उठता है, यह हमारा वही देश है, जिसने कभी किसी को बात करने का मौका नहीं दिया था ।

इस रचना ने मुझे अपने जम्मू प्रदेश से अपने घर परिवार से फिर उखाड़ डाला था । इस बार उखाड़ने बाले थे डाइरेक्टर जनरल, रेडियो काश्मीर जम्मू , जे.एंड.के. न डोगरी और डोगरों की एकता तथा शौर्य्य गाथां, चाहे औरों को न ही पच पाई हो परन्तु जम्मू में डोगरों और डोगरी की एकता का दम भरने वाले किसी एक भी बुद्धिजीवी में साहस नहीं दिखा कि ज़रा सा भी प्रतिवाद का कोई स्वर उभरता शायद इसलिये कि, कहीं निज स्वार्थ में बाधा न पहुँच जाये । ठेस न लग जाये । यहाँ पर बुल्ले शाह की काफी की यह पंक्तियां स्वतः सार्थक हो उठती हैं ।

झूठ आखाँ तां कुज बचदा ऐ
सच्च आखां, भांवड़ मचदा ऐ

अर्थात् : पंजाबी के सूफी सन्त कवि बुल्लेशाह की इन पंक्तियों का अर्थ है कि, झूठ कहूं तो कुछ बच जाता है ।

सच कहूं तो ज्वाला (इंर्ष्या द्वेष) भड़क उठती है ।

अब बात कुछ कुछ समझ में आने लगी थी कि, जिन पर मान था वह सब बेमानी (व्यर्थ) था । (जिन पे तकिया था वही पत्ते हवा देने लगे) यह सब घटनाऐं मैंने सुनी ही थीं, उसी जानकारी को आगे बढ़ाते हुए जो भी और जाना, समझा ।

1951 के बसन्त उत्सव में बंजारा की वाहवाही से प्रफुल्लित मन-फिर "डोगरे न इक्क, इक्क साढ़ा खान लान ऐ । इक्क जान, इक्क प्राण, इक्क

ऐ जबान साढ़ी । दुनियां च डोगरें दी एकता नशान ऐ" । इसी एकता के भाव के चलते मुझे जम्मू से काटने की साज़िश रची गई थी ।

जाने किस अर्न्तप्रेरणा वश विना किसी भी आश्वासन के श्रीनगर के लिये चल दिया था । वहाँ कबीरे के ओडियन होटल जो रीगल सिनेमा के पास था दो दिन रूका, पर वह मेरी जेव के हिसाव से काफी मैंहगा था, फिर लाल चौक स्थित काश्मीर वैली होटल में सामान रख कर रेडियो स्टेशन जा पहुँचा ।

रेडियो स्टेशन पहुँचने पर अपना परिचय दिया तव मुझ से सिर्फ इतना ही पूछा गया कि, क्या उर्दू अच्छी तरह से लिख पढ़ सकते हों ? मेरे आत्म विश्वास पूर्ण हामी भरने पर मुझे बतौर केजुयल, आर्टिस्ट रख लिया गया और कॉन्ट्रैक्ट देने का आदेश दे दिया गया । अपने बावू जी के सान्निध्य के कारण मुझे उर्दू लिखने पढ़नें में कोई कठिनाई नहीं थी । रैविन्यु विभाग में सारा काम-काज उर्दू में ही होता था । बावू जी को अपने काम काज में महारत हासिल थी । उन्हीं से मैंने उर्दू में दक्षता हासिल की थी ।

बड़ी हैरानी तो मुझे उस वक्त हुई जब कि, मेरी जैसी ही पोस्ट पर जो व्यक्ति पहिले काम कर रहे थे उनको 120 रूपये मिलते थे जब कि मुझे 135 का कॉन्ट्रेक्ट दिया गया था और बड़ी बात कि रैज़िडैन्सी के क्र्वाटरों में जो एक रेडियो कालोनी जैसा ही था, मेरे नाम एक क्वार्टर भी अलाट कर दिया गया । यह अलग बात है कि, उस घर को मैं देखने तक नही गया । रेडियो स्टेशन मे जो मुझे यहाँ साथी मिले उन में से कुछ वुर्ज़ग थे कुछ हम उम्र थे । प्राण किशोर कौल, गुलाम रसूल नाज़की अली मुहम्मद लोन, प्रेम नाथ परदेसी आदि जो भी लोग थे, सभी कला की परख रखनें वाल़े तथा कला की कद्र करने वाले थे । रेडियो स्टेशन के सभी कर्मचारी, मेहनती, पारखी तथा अपने काम से काम रखने वाले व्यक्ति थे । सभी ने मुझे बहुत अपनेपन से अपनाया, विशेंष कर दिल्ली से आये मुज़तर हाश्मी साहिब । वह जहाँ दीदा आदमी थे जो मुझ से पुत्र वत् ही स्नेह तथा दिशा निर्देश करते थे ।

यहाँ पर यह बात विशेष उल्लेखनीय है कि, श्रीनगर में मुझे एक मिलि-जुली संस्कृति से पहिचान पाने का सौभाग्य मिला था । पटना निवासी प्रसिद्ध उर्दू कहानी तथा उपन्यास कार सुहेल अज़ीमा वादी, उर्दू कवि सर्व

श्री कमाल अहमद सिद्धीकी, जनाव सलाम मछली शहरी, कहानी कार प्रेम नाथ परेदसी, इस सब से बड़ी वात थी कि भारत भर के उर्दू कवि, मुशायरों में भाग लेने के लिये गर्मिओं के मौसम में आंमत्रित किये जाते थे।

हरिचन्द अख्तर, सिकन्दर अली बज़्द, नशूर वाहदी लखनऊ के प्रसिद्ध उर्दू शायर इसरार उलहाक मजाज़, जिगर मुरादावादी, रघुपति सहाये फिराक गोरखपुरी इन के साथ विश्व-विख्यात ज्ञान पीठ पुरस्कार से सम्मानित अली सरदार जाफरी जैसी महान शख्सीयतों से मिलना एक बहुत बड़ी खुशनसीवी थी। अपनी डोगरी भांषा के लेखन को उन्हीं के लेखन के समकक्ष देखने की तीव्र उत्कंठा तथा साधना के लिये प्रेरणा निरन्तर मिल रही थी। अपने मौलिक लेखन को तुलनात्मक दृष्टि कोण से जाँचने परखने के पश्चात् बराबरी का दावा करने का प्रश्न था, जिसके लिये निरन्तर प्रयास रत रहने का बल मिल रहा था। अपने आप में यह मेरी एक बड़ी उपलव्धि थी। डोगरी की कुछ अच्छी रचनाओं का रचना काल यहीं श्रीनगर के रेडियो स्टेशन का ही खुशनुमा माहौल था। यहाँ पर इनका यह भी कहना था कि, अब मैं होटल छोड़ कर दूर की रिश्ते की एक मौसेरी बहिन के घर पेइंग गैस्ट जैसा रहने लगा था। वह शेर गढ़ी में अपने दो बच्चों के साथ एक किराये के छोटे से घर में रहती थी, पति उनके सैक्रेटेरियट में कर्मचारी थे। वह सुघड़ बड़ी बहन, माँ जैसा ही मेरी हर सुविधा का ध्यान रखती थी।

उन दिनों वहाँ रेडियो स्टेशन में पोस्ट तो मेरी स्क्रिप्ट राईटर की थी परन्तु हमारे कॉंट्रेक्ट पर लिखा होता था when and as required। मुझे हर हफ्ते एक लधुनाटिका लिखनी होती थी, जिसे "झलकी" कहा जाता था। झलकी लिखने के साथ बच्चों का प्रोग्राम और भी दूसरे काम प्रोपेगण्डा प्रोग्रामों में भाग लेना, कभी उनको लिखना भी तथा नाटकों में अभिनय भी करना पड़ता था।

यह सभी काम मेरी रूचि के अनुकूल भी थे और यह सभी काम बखूबी खुशी-खुशी अंजाम दे रहा था। इसके साथ ही साथ स्टेशन पर प्रसारित होने वाले दैनिक कार्यक्रमों का क्रमानुसार लेखा जोखा, जिस रजिस्टर पर लिखा जाता था, जिसे लाग बुक कहा जाता था, वह काम भी करना होता था। कभी डयूटी अफसर की अनुपस्थिति में उसका कार्य भी

संभाल लेता था। किसी पत्र पत्रिका में छपी खवर पर काऊंटर प्रोपेगंडा रूपक लिखना तथा प्रसारण समय उसमें भाग लेना मुझे बहुत मज़ेदार लगता था। समय पड़ने पर उद्घोषक का काम भी हम से लिया जाता था। वहाँ मेरे ही हम उम्र थे एक अनाउसर जलाल। उन्हें जल्ला के नाम से बुलाते थे। गोरा रंग, मंझोला कद सुनहरी बाल। उसका गला बहुत सुरीला था। अवकाश के समय हम दोनों शेरे काश्मीर पार्क में अक्सर बैठ जाते तो दोनो मिल कर पंसदीदा फिल्मों के गाने गाते। उसकी शादी की दावतों में भी शरीक होता था। वह व्यक्ति मुझे ईमानदार और भला होने के कारण बहुत प्रिय था। अक्सर उसकी शिफ्ट का काम भी मैं संभाल लेता था। स्थानीय तथा शादीशुदा होने के कारण उसे कभी-कभी दो चार दिनों के लिये किसी रिश्तेदारी में सम्मिलित होना होता तो मैं उसकी डयूटी को बखूवी अंजाम देने में गुरेज़ न करता।

अपने साथ काम करने वाले लोगों में थे अंग्रेज़ी प्रोग्राम देने बाले कर्नल डिक्की। लम्बे कद के गोरे चिट्टे कर्नल डिक्की के साथ काम करती थी आशा हेनले। आशा भारतीय थी, हेनले नाम के युरोपियन से विवाहित थीं। आशा बड़ी सुधड़ और समझदार महिला थी। अक्सर रविवार के दिन, होने वाली प्रार्थना सभा में इनके साथ चर्च चला जाता। मेरा विशेष आर्कषण उस चर्च का भव्य उद्यान था जो रंग-विरंगे फूलों से भरा पुरा था।

इन्हीं लोगों से मुझे कुछ अच्छी इंग्लिश की किताबों के साथ अंग्रेजी का एक शब्द-कोष भी मिला जो 50-55 वर्ष बीत जाने पर भी हमारे पास है। पहले मुझे, फिर मेरे बच्चों तथा अब उनके भी बच्चों को इस डिक्शनरी में शब्दों के अर्थ मिले हैं और शब्द परिचय में सहायता मिलती जा रही है।

ख़वरों के विभिन्न युनिट थे। पश्तो प्रोग्राम, सिराजुदीन और हरभगवान मलहोत्रा के पास था। अब्दुल रशीद बाँडे और महेन्दकौल क्रमशः काश्मीरी और उर्दू में न्यूज पढ़ते थे। डोगरी ख़वरे जम्मू के श्री बोध राज पढ़ते थे। यह सूचना विभाग अलग से था। वाद में ताहिरा हसन भी उर्दू न्यूज रीडर के तौर पर आई।

पचास के दशक में यह रेडियो स्टेशन दो कमरों के दो स्टूडियोज़ में स्थित था। जिनमें लिंकिंग और डीलिंकिग द्वारा बारी बारी प्रोग्राम प्रसारित होते थे। यह स्टूडियोज़ आज के युग जैसे आधुनिक ढंग के

सांउडप्रूफ नही थे तब माइक इतने संवदेनशील होते थे कि, यदि बाहर पेड़ों पर पक्षी चहचहाते य जानवर बोलते तो उनकी आवाज़े भी लोगों को उनके रेडियों सेटों पर सुनाई दे जाती थीं। और तो और यदि कोई शब्द य वाक्य माइक के सामने बोल दिया जाता तो वह भी श्रोताओं तक पहुँच जाता क्योंकि तब तक रिकार्डिग की सुविधायें हम तक नहीं पहुँच पाई थीं।

फिर रिकार्ड डिस्कें आई जिनमें दोनों तरफ रिकार्ड की अवधि होती थी 30 मिनट यानि 15-15 मिनट के लिये कोई स्पीच, कोई लधु नाटिका, गीत संगीत का प्रोग्राम रिकार्ड किया जाता था। एक बार ऐसा हुआ कि, डिस्क की सूई, अटक गई। शब्द चल रहा था निन्नानवें का फेर। (यह नाटिका थी, दिल्ली के हास्य लेखक हज़रत आवारा की लिखी हुई, शीर्षक था "निन्नानेंव का फेर" एकाध मिनट सूई वहीं अटकी रही और इसी शब्द की पुनरावृत्ति होती रही। रशीद बाँडे डिस्क चला रहे थे। खलवली मचने पर उदघोषक महाशय को होश आया तो उन्होंने फौरन फेडर बन्द कर डिस्क पलट कर प्रोग्राम पुनः चालू कर दिया। यह घटना बहुत दिनों तक चर्चा में रही। बांडे को चुपके चुपके निन्नानवें का फेर नाम दिया गया था। प्रायः ऐसी भूलें महीने दो महीने में एकाध बार घट ही जाती थीं। उद्घोषक य कोई कलाकार य फिर माइक्रोफोन के फेडर का खुला रह जाना, ऐसी गलतियों का पूरा-पूरा हिसाव डयूटी अफसर के पास रहता था। कोई प्रोग्राम निर्धारित समय अवधि से कम य अधिक पड़ जाता तो सारा उत्तरदायित्त्व प्रस्तुत कर्त्ता यानि प्रोडयूसर का होता। दूसरे दिन मीटिंग में सभी कर्मचारी इकट्ठे होते तथा रिर्पोटस पढ़ी जातीं। भूल करने वालों को चेतावनी दी जाती। यदि बार-बार चेतावनी देने पर भी सुधार न होता तो काँट्रेक्ट खत्म भी किया जा सकता था। समय की पाबन्दी य लेखन में त्रुटि रह जाने पर एक भय और आतंक की तलबार रेडियो कलाकार की गर्दन पर सदा लटकती रहती थी। यही कारण था कि, प्रोग्रामों का स्तर कलापूर्ण तथा ऊँचा रहता था। कहीं कोई न्यूनता नहीं रहती थी, क्योंकि कलाकार हर समय अपने अपने काम के प्रति चाक चौवन्द चौकन्ने रहते थे।

फिर हंसते हुए एक घटना यह भी इन्होंने सुनाई कि, सहगल के गीत चल रहे थे। एक गीत "जब दिल ही टूट गया, हम जी कर क्या करेंगे" यह गीत इतनी दर्द भरी आवाज़ में था कि मेरे मुंह से बेसाख्ता "वाह-वाह" की दाद सब को सुनाइ दे गई गीत के साथ।

मीटिंग में दिल्ली से आये डारैक्टर मैनी साहिव ने जब इस कोताही के लिये तलब किया तो मैंने सच ही कह दिया कि "मै सहगल के स्वर से इतना मुग्ध था कि, सब कुछ भूल गया। मेरे प्रिय गायक के सोज़ भरे स्वर से मैं अभिभूत हो गया था।

मैनी साहिव कुछ अजीव सी नजरों से मुझे देखते रहे। इसी के फल-स्वरूप मैनी साहिव से मेरें स्नेह संवंध बन गये।

उन्हीं दिनों अंग्रेजी प्रोग्राम करने वाले कर्नल डिक्की और उनकी प्रौढ़ा होत हुऐ भी छरहरी सी पत्नी से मेरा परिचय हुआ। उनके दो तीन बार बुलाने पर ही मैं एक दिन इतवार को उनके घर गया। यहीं मुझे पता चला कि यह निःस्संतान दंपत्ति थे। कर्नल के एक अजीव से शौक ने मुझे उनके निकट ला खड़ा किया था। रहते तो दोनों एक छोटे से हाउस-बोट में ही थे। पर जेहलम के किनारे एक छोटा सा बगीचा लगा रखा था। जिसमें रंग बिरंगे फूलों के साथ चैरी और खुबानी के भी पेड़ थे। फलों के मौसम में बंड पर रहने वाले पोस्टआफिस तथा रेडियो कालोनी वालों के बच्चे तथा कुछ कश्मीरी बच्चे जब इस हरी भरी बगिया में दवे पाँव हौले-हौले चौकन्ने होकर घुसते और गिलहरियों की तरह उन पतली शाखाओं वाले पेड़ों पर चढ़ कर कच्चे पक्के फलों से जेवें भर लेते तो कर्नल खामोशी से बच्चों के दाखिल होने के ढंग को अपनी मुस्कराती आँखों से खिड़की के पीछे खड़े होकर निहारते।

जब बच्चे फल चुरा कर भागने लगते तो कर्नल पीछे से अपनी छड़ी से उनको डराने-धमकाने के अन्दाज़ में बाहर आते। बच्चे खिलखिलाते बिजेता भाव से भाग जाते। एक दो बच्चे शरारत से कर्नल को भागते-भागते मुँह भी चिढ़ाते कि, हम तुम्हारी पहुँच से बाहर हैं।

पर उनकी दुवली पतली सी पत्नी अपनी उदास नरगिसी आँखों से यह सब खामोशी से देखती रहती। यह सब देखकर मुझे कुछ ऐसा आभास होने लगता कि कर्नल के इस अकेलेपन के लिये कहीं पर यह नारी अपने को ही दोंषी मान रही है। और यह भी उन्हीं दिनों मुझे पता चला कि, समस्त विश्व की नारी जाति के मन की संवेदना एक जैसी ही होती है। नारी अन्तर का सूक्ष्मता से यह निरूपण बोध एक नया आयाम था मेरे लिये। जो आगे चलकर धरती सब किज जरदी ऐ "धरती सब सहन कर

लेती है” जैसे कविता की उत्पत्ति के लिये उर्वर भूमि तैयार कर रहा था। कर्नल डिक्की और उनकी पत्नी हर रविवार चर्च जरूर जाते। चर्च जाने के पश्चात् पहाड़ी पर स्थित चैस्ट डिजीज़ अस्पताल जाना उनका नियम था।

रोगियों के लिय चाक लेट, बिस्किट, मुनक्के, बादाम गिरी फल वगैरा होते। हंसमुख कर्नल सब का हाल चाल पूछते, सांत्वना देते, खुशियाँ बाँटते साथ लाये उपहार देते। पर उनकी पत्नी अपनी करूणा भरी आँखों से ही रोगियों को सांत्वना, अपनापन और आश्वासन सा देतीं। एक दो बार उनके साथ जाने पर मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि “रोगी” कर्नल की पत्नी की अधिक उत्सुकता से प्रतीक्षा करते थे। बिना कुछ कहे आँखों की भी अपनी ही एक भांषा होती है इसका पता भी मुझे उन्हीं दिनों चला। कुछ समय के लिये ही सही, वहाँ उस मायूस, उदास माहौल में इन लोगों के जाने से उजली चाँदनी सी छिटक जाती थी।

इसी बंड पर एक और भी अजीव सा व्यक्तित्त्व था। अधेड़ उम्र का वह काला सा अफ्रीकन हब्शी था, जिसे सब मिस्टर टॉम कहते थे। वह एक चलती फिरती दुकान सा था। बैग में बच्चों के खिलौने वाली, नकली पिस्तौलें, ऊनी मोजे, चमड़े के दस्ताने, चावियों के विभिन्न डिज़ाइनों के छल्ले बाजिव दामों पर बेचते। कभी वह आहदू होटल में कभी रेज़िडेन्सी रोड पर कभी अमीरा कदल चौक य कभी लाल चौक में खुश मिज़ाज ग्राहकों से घिरे दिख जाते। एक ही कीमत पर माल बेचने के कारण ग्राहक पसंदीदा चीज़ें बेफिक्र होकर खरीद लेते।

यदि कोई उन्हें चाय काफी के लिये आंमत्रित करता तो “आई हैव टेकन माई ब्रेक फास्ट) कह कर कभी कुछ स्वीकार नहीं करते, कभी अपना अता पता किसी को नहीं देते। दोपहर को कभी फुर्सत के वक्त प्रताप पार्क में समाचार पढ़ते ज़रूर दिखते, वाकी कभी काम के वक्त कभी यहाँ-वहाँ।

एक दिन टाम चल बसे चुपचाप। हम कुछ लोग जब उस गरीव से हाऊस बोट में पहुँचे तो जहाँ वह एक कमरे में रह रहा था, तो उस हाँजी परिवार और उनके बाल बच्चों का रोना बिलखना देख कर स्तब्ध रह गये, जैसे उनका कोई बहुत अपना तथा परिवार पर से साया उठ गया था। मन में विचार उठा कि, इन मानवीय संवंधों को किस देश काल धर्म की सीमाओं में बाँधा जा सकता है।

जाने कहाँ के है, कर्नल और उनकी पत्नी, यह जाने वाला व्यक्ति टाम, यह हांजी परिवार, इस सारे ताने वाने के बीच मैं ही कौन हूँ ? इस प्रकार की भावनाओं की परतें दर परतें आँखों के आगे खुलती जा रही थीं। मनुष्यता को निकटता से जानने समझने की दृष्टि भी मिल रही थी।

अब कहीं जीवन में कुछ सुकून कुछ निश्चिन्तता, सी मिलने लगी थी। रोजग़ार की बेफिक्री। रहने खाने की बहिन के घर की सुख भरी व्यवस्था, रेडियोके साथी कलाकारों द्वारा मिलने वाला भरपूर स्नेह तथा अपनत्व और भारत भर में कश्मीर आने वाली प्रसिद्ध हस्तियों से परिचय का अवसर। उन्हीं दिनों मास्टर निसार जो संभवत् मूक फिल्मों के जमाने के अभिनेता थे, श्रीनगर आये। प्रभावशाली व्यक्तित्त्व के धनी बूढ़े निसार साहिब को उन दिनों रेडियो कश्मीर में कोई नहीं पहिचानता था, मैं भी नहीं। वैसे भी जैसा कि फिल्मी कलाकारों की य और भी दूसरे कलाकारों की बात करें तो नियति होती है कि पर्दे य मंच से दूर होते ही पहिचान से भी दूर हो जाते हैं।

मैं दोपहर की डयूटी खत्म करके बाहर आ रहा था तो वह मिले। उनको स्टेशन से वापिस जाते देख कर अपनी आदत के अनुसार उनका परिचय पूछ बैठा, तो उन्होंने बताया कि, मैं मास्टर निसार हूँ। अचानक मेरे मन में यादों की एक बिजली सी कौंधी कि, यही चेहरा मैंने अपने बावू जी के साथ जम्मू में हरि टाकीज़ के परदे पर देखा था। साथ में कोई अधेड़ सी महिला भी थीं। ताज्जुव की बात थी कि रेडियों कश्मीर में उन्हें किसी ने नहीं चीन्हा था। एक झेंप सी उनके चेहरे पर पसरी थी, शायद महिला के सामने उन्हें अपमान सा ही लगा होगा। बात-चीत कर आदर पूर्वक उन्हें कपूर होटल के सामने स्थित चूनी के प्रसिद्ध बैष्णव ढाबे में ले गया। उनको खाना खिलाया, पान मंगवाये। दुआऐं देते हुए वह विदा हुए। पता नही इतनी सी छोटी बात के लिये क्यों मेरा मन आनन्द और शान्ति से भर उठा। उन्ही दिनों मुझे आमिल दरवेश भी मिले, जो अपनी उम्र उस समय सौ साल बतलाते थे। उर्दू और फारसी ज़ुवानों पर उन्हें अवूर हासिल था। बड़े सिद्ध हस्त शायर थे। वास्तव में वह यू0 पी0 के ब्राह्मण थे उनका असली नाम पंडित केदारनाथ था। कुछ दिनों पश्चात् वह जम्मू में भी मिले। तिल्लो के तालाव नाम के स्थान पर उनका निधन हुआ था। इस से पहिले भी एक सिद्ध सूफी फकीर की सोहबत में बैठना, समय की सार्थकता सा लगता था।

वह बहुत कम बोलते थे। कवायली हमले से पहिले जब मैं अपने चाचा के पास श्रीनगर में था, तो दुर्गानाग मन्दिर में जहाँ वह रहते थे। काँगड़ी में कागज़ जला कर जाने हाथों से क्या संकेत देते थे। उनकी इस संकेतिक चेतावनी को तब कोई भी नहीं समझ पाया था। चाहे कितने ही प्रवुद्ध व्यक्तित्त्व उन्हें घेरे रहते थे।

सच्ची बात तो यह भी थी कि इस समय की सुवहें चाहे हमेशा जैसी ही होती थीं पर इस श्रीनगर की यह वर्त्तमान सुवहें भरी-भरी, पूरी-पूरी सी लगती थीं। मेरे अपने मन की उत्सुकता, हर नई चीज़ को जानने समझने की कोशिश, नये लोगों से परिचय, फिर रेडियो स्टेशन का माहौल भी सुरूचि पूर्ण था।

कश्मीर आने वाले कलाकार, बुद्धिजीवी चाहे धनाढय व्यवसायी ही क्यों न हों। जो भी लोग यानि भारत भर से तथा विदेशों से आने वाले पर्यटक ही हों, सब के बीच यह रेडियो स्टेशन एक तीर्थ संगम सा ही था।

फिर किसी न किसी रूप से कला से जुड़े लोगों का तो विशेष आकर्षण रहता था। उस समय की कुछ यादें तो कोमल चाँदनी की तरह मन को आल्पवित किये रहती हैं।

ऐसी एक सुखद स्मृति है, निशात बाग मे, सचिन देव वर्मन तथा उनकी पत्नी मीरा से मुलाकात। सचिन देव के गाये गीत "पिया मिलन को जाना तथा "भंवरा रे धीरे से आना बगियन में" मेरे प्रिय गीतों में से थे। मैं पूरे मन से इन गीतों को गाता था। वह किन्हीं और कुछ दूसरे लोगों के साथ झील डल के एक बड़े से खूवसूरत हाऊस बोट में ठहरे थे। निशात बाग में मैं अपने एक दो मित्रों के साथ था तो वहाँ वह मिले। उन्हें मैंने रेडियो स्टेशन में अपने कार्यरत होने का परिचय दिया। उन्होंने हमें अपने हाऊस बोट में चलने का निमंत्रण दिया। वहाँ उन्होंने मुझे गाने के लिये कहा तो मैंने उन्हीं के गाये गीत उन्हें सुनाये (वैसे तो कैसे हो सकते थे) पर फिर भी वर्मन जी के गर्वित नेत्र और मीरा जी की मोहक मुस्कान का पुरस्कार मेरे लिये यथेष्ट था। फिर उनका कहना था कि अच्छा लगा, आप फिर भी मिलना। पर मैं ही दुवारा जाने का साहस न जुटा पाया।

ऐसे ही एक वार जम्मू रेडियो स्टेशन के वेटिंग रूम में मिली थीं। मंझोले कद की, तीखे नयन नक्श वाली, लग भग सैंताली, अठ़तालीस साल

की एक महिला। उस शालीन महिला के साथ उनका अठारह उन्नीस वर्षीय, सूखा सा दुवला सा बेटा भी था। अपने महान गायक पिता के.एल सहगल के संगीत पक्ष का तो पता नहीं, पर दूसरे पक्ष मे पिता के पद चिन्हों का उस भरपूर अनुसरण करने वाले पुत्र के प्रति, माँ की चिन्ता का कोई अन्त नहीं था। माँ के अवसाद भरे नेत्रों में पुत्र की दीर्घायु होने की कामना स्पष्ट झलक रही थी। जम्मू में माँ बैष्णों के दरबार में यही मन्नत माँगने वह आई थी।

संतोष की बात है कि अभिनव थियेटर परिसर में अब एक हाल कुंदन लाल सहगल के नाम को समर्पित है तथा वहाँ सहगल का चित्र भी लगा है। पर मुझे गहरा अफसोस था कि रेडियो द्वारा उस विदुषि महिला का, महान गायक की पत्नी के साथ साक्षात्कार की कोई आवश्यकता ही नही, समझी गई थी। फिर वह लोग कभी नही मिले। कौन जाने जम्मू में माँ वैंष्णों ने उस माँ की व्यथा का कहाँ तक निराकरण किया था। भाग्य के क्रूर प्रहारों को झेलना संभवत कलाकारों की पत्नियों की नियति रहती आई है। इनका कहना था कि, मैं आज तक नही समझ पाया कि संगीत सम्राट के.एल. सहगल की पत्नी के साथ ऐसा व्यवहार क्यों हुआ था।

इस समय कवि यश का अपने जीवन के प्रति दृष्टिकोण खिलते वसन्त जैसा था। वह हवाऐं जो वृक्षों से गुजरती हैं, उनकी सरसराहट का संगीत मन प्राणों में झंकृत हो कर शब्दों में ढलने का आग्रह करता तो तितली के पंखों सी गीत की किसी पंक्ति का सृजन अनयास ही हो उठता। जैसे :-

छैन्दी-छैन्दी लंघी गई ऐ, पुरे दी हवा,
गल्ल कुतै साढ़ी बी जरूर चली ऐ।
हल्की गुलाबी चिट्टी दोधिया नुहार,
एह् ते कोई मोतिये दी बन्द कली ऐ।।

अर्थात् : चीड़ और देवदार के जंगलों से होकर आने वाली उन्मत्त पुरवैया, निकट से, धीमें-धीमें दबे पाँव स्पर्श करती हुई गुज़रती है तो ऐसा आभास होता है कि किसी के अधरों पर हमारा भी ज़िक्र आया है, कहीं हमारी भी बात चली है। तव जम्मू के धवल हल्के गुलावी चाँदनी जैसी किसी मोतिये (फूल) की बन्द कली की स्वतः सुधि अंकित हो जाती है हृदय पटल पर।

यहाँ पर सहज ही समझा जा सकता है कि, प्रकृति सौन्दर्य के चितेरे इस रचनाकार की रचनाओं में प्रकृति किस प्रकार मानवी छवि से, स्नेह सुषमा से आप्लावित है। कितने लोग हैं जो वायु के कोमल स्पर्श की बात सुन पाते हैं ? यह प्रकृति छटा जम्मू-कश्मीर की ही प्रकृति नहीं विश्व प्रकृति का सौन्दर्य है।

उन्हीं दिनों अमृतसर के श्याम-सुन्दर नगीना से परिचय हुआ, जो देसी साबुन नगीना सोप के कश्मीर में प्रसिद्ध व्यापारी थे। उन्हीं के साथ अपने मित्र तुली तथा व्रजेश सूद के साथ उन्ही के पैसे से कश्मीर के सभी प्रसिद्ध स्थानों की सैर की। गुलमर्ग की अलपत्थर की चोटी जो लगभग उन्नीस हज़ार फीट से भी अधिक ऊंचाई पर थी, वहाँ प्रकृति की विभिन्न छटाओं से विमोहित होने का अवसर मिला। जेहलम के उद्गम स्थान वैरी नाग के नीलम जैसे स्वच्छ जल तथा मुगल शांहशाहों के वैभव को दर्शाते शालीमार, निशात बाग़, चश्माशाही हारवन तथा डल झील के किनारे स्थित परी महल के खंडहरों में मुगल शहज़ादी के असफल प्रेम की दंतकथाओं का अधिक समोवश रहता था। वह सब जानने में आया था।

पूर्णमाशी के दिन दूधिया चाँदनी में झील डल में शिकारे की सैर का आनन्द, यह सब नगीना सेंठ द्वारा ही संभव हो पाया था। दरअसल नगीना कला पारखी था। रेडियो प्रसारण के समय मेरी आवाज़ का जादू उस पर चल गया था। जब भी व्यापार के सिलसिले में श्रीनगर आता होटल में सामान रखवा कर सीधे रेडियो स्टेशन पहुँच जाता। जितने दिन रहता मैं उतने, दिन उसी का गैस्ट रहता। गीत संगीत शेरो-शायरी का खूव रंग जमता। इसके अलावा नगीना सोप की सेल कैसे और ज्यादा बढ़ाई जाये वहाँ के व्यापारियों के साथ इस बातचीत को भी कड़वी दवाई के घूंट की तरह कुछ समय के लिये कभी पीना पड़ता। गरीव लोगों को हल्की नकली वस्तु से ठगने के दाँव पेचों को देखता तो सोचता कि, इस धनी समाज के भीतर छिपी लोभ की व्याधि, दुनियां में सब जगह एक सी ही होती है।

एक तरफ उनकी स्वार्थी कर्मशक्ति को भी आर्श्चय से देखता दूसरी तरफ सज्जनता की भी कही कमी नहीं थी।

इसी संदर्भ में एक वाकेया हमेशा याद रहा। दिल्ली का रहने वाला एक सुकमार सा सांवला नौजवान जिसका नाम था, मनमोहन। उसक कंठ

अजीव सा मीठा था। रीगल के पास ओडियन होटल के कमरा नं0 4 में वह रह रहा था। नूरजहाँ के गाये गीतों के साथ, विद्यानाथ सेठ के गाये भजनों को अपनी मीठी आवाज़ में पूरे-पूरे स्वरों में उतार लेता था। एक दिन हम उस होटल में चाय पीने गये। वह अपने कमरे में कुछ गा रहा था। उसका स्वर सुन कर हम दोनों उस के पास चले गये। होटल के मालिक कबीरा और उसका खास वेयरा आहदू उन दोनों की निगरानी में वह फक्कड़ नौजवान कैदी की तरह रह रहा था। उसक होटल का बिल कोई सात साढ़े सात सौ चढ़ चुका था। जो उस समय के हिसाव से एक बहुत बड़ी रकम थी। होटल वाला उसका कीमती सामान जो इस रकम से भी काफी ज्यादा का था दे नही रहा था। नगीना ने उसका सारा बिल चुप-चाप अदा कर दिया। उसका सामान जैसे सोने की अंगूठी, सुनहरे चेन की कीमती घड़ी तथा और भी वढ़िया सारा सामान वापिस दिलवा दिया। दो तीन दिन वह हमारे साथ ही होटल में रहा। फिर उसे दिल्ली तक का किराया दे कर घर भेज दिया।

साबुन में मैदे की मिकदार और अधिक करना, साबुन साज़ी के लिये मिलने वाला ग्लीसरीन का कोटा, पूरे का पूरा ब्लैक में बेच देना, व्यवसास में पैसे पैसे चबन्नी आने का हिसाव रखने वाले व्यवसायी का यह कौन सा रूप था। इन्हीं अजीव सी उलझनों में मेरा मन जाने क्यों उलझने सा लगा था। कश्मीर वादी के दूर दराज गाँवों के गरीव लोगों में नगीना सोप का खूव चलन था। क्योंकि अपेक्षा कृत दूसरे साबुनों से सस्त था। पर इस सस्तेपन की आड़ में वह सीधे साधे लोग खूव ठगे जाते थे। श्री अमरनाथ जी की यात्रा तथा शंकराचार्य मन्दिर में साष्टांग दण्डवत् करते हुए आँसू बहाने वाला वह रूप य फिर खोट मिलावट का कारोवारी धंधा। आखिर में मेरा अपना निष्कर्ष था कि, चाहे निजि चरित्र विधान में यह व्यक्ति शुद्ध सोने सा ही है पर नैतिकता के मूल्यों पर खोटे सिक्के सा ही है। आहिस्ता-आहिस्ता अपनी व्यस्तता की आड़ में मैं पीछे हटना शुरू हो गया। पर फिर भी शाम-सुन्दर दास के संसार से विदा होने तक औपचारिकताऐं निभती ही रहीं।

इस तरह कवि का जीवन समय के प्रवाह के साथ बहता जा रहा था। वह सब मुझे भी ठीक से समझ में आ रहा था।

ताजमहल के सौन्दर्य सरीखी गज़ल गायिका बेगम अख्तर, प्रायः चेन बुकिंग द्वारा जम्मू से श्रीनगर रेडियो कश्मीर में आया करती थीं। उन दिनों श्रीनगर के टूरिस्ट सेंटर के हाल में कार्न्सटें और कवि सम्मेलन हुआ करते थे। बेगम अख्तर के कहने पर मुझे अनौन्सर का काम निभाना होता था, जो मेरे लिये एक सुनहला अवसर होता था। मुशायरों में आया करते थे प्रगतिवादी लेखक अली सरदार जाफरी, हरिचन्द्र अख्तर, इसरालउला हक मजाज़ यह सभी उर्दू ज़ुवान के महान शायर थे। उन दिनों को याद करते हुए (मुझे) वताया जा रहा था कि हर सुवह तब किस तरह पूरी खूवसूरती के साथ धरती पर उतरती थी। मौसमें बहार का ताज़ापन कश्मीर की धरती के कण-कण में निखरा रहता। नरम धूप का सुनहलापन मन के भीतर तथा बाहर सब जगह छाया रहता। ज़रा सोचो, जहाँ चारों तरफ प्रफुल्लित जीवन हो, हर क्षण आनन्द सुख से भरा हो यानि पूर्णतया एक निर्द्वन्द, निश्चित जीवन। तव हर दिन एक उत्सव था। बहुत दिनों के वाद कहीं जा कर जीवन धारा एक अनोखे सौन्दर्य बोध के छन्द लय ताल में बंध कर सम गति से चलनी शुरू ही हुई थी कि, अचानक सारा छन्द ही भंग हो गया।

एक दिन बड़े आनन्द से डयूटी के बाद जब रात को गीत गुनगुनाता घर पहुँचा तो बहिन ने खुशी से चमकती आँखों और बड़े दुलार भरे स्वरों में बधाई देते हुए सूचना दी कि, घर से पत्र आया है कि तुम्हारे व्याह का मुहूर्त्त 13 मई को पक्का हो गया है।

कुछ देर तो इस ख़वर से स्तव्ध सा ही हो रहा। फिर धीरे धीरे उबरने पर ऐसा लगने लगा कि, सारे जिस्म पर खौलते पानी की बून्दें टपक रही हैं।

यह सब जो बातें इतनी सहजता से सुनी और कही जा रही थीं, इस समय, उस समय की मनोदशा कितनी असहज रही होगी। मन के आकाश पर भविष्य को लेकर कैसी-कैसी दुःश्चिन्ताओं का काला मेध घिर आया होगा ?

यह सब इन के साथ 50-55 वर्ष व्यतीत करने पर मैं बखूवी समझ सकती थी। और फिर घर परिवार बालों का इतना बड़ा विरोध करने का उतना बड़ा साहस भी तो चाहिये था। रोजी रोटी का रास्ता तो अपनी

मर्जी से अपनाया था, अब जीवन के इतने बड़े निर्णय से पलायन करना बूते से बाहर की बात थी। फिर भी जहाँ तक बन पड़ा विरोध जताने की कोशिश की थी, यह भी कहा कि, अभी डेढ़ दो वर्ष और क्यों नहीं ठहरा जा सकता।

माँ का उत्तर था कि, अब इतना बड़ा आयोजन आगे पीछे नहीं किया जा सकता। फिर लड़की वालों की परेशानी का ज़ोरदार हवाला देकर सभी विरोधों पर विराम लग गया। खैर व्याह तो निश्चित तिथि 13 मई 1951 को ही संपन्न हुआ। जम्मू में घर के सब से बड़े बेटे की शादी थी तो कन्या पक्ष में चार भाई बहिनों में सब से छोटी बेटी की। उस समय के लिहाज़ से दोनों ओर धूमधाम ही थी।

किसी भी कलाकार की जीवन यात्रा (कुछ अपवादों को छोड़ कर) प्रायः सहज, सुगम, सरल साधारण मार्ग पर नहीं चलती।

बहुधा ऊबड़ खाबड़ राहें, धूप-छाँव की आँख मिचौली, सुख दुःख भरी डगर इन सब को जोड़ती, बीच में बहती करूण रस धारा य फिर चट्टानी कगारों को तहस नहस करती, उफनती उद्धाम वेगवति फेनिल लहरें। पर कलाकार का अपना जीवन भी तो किसी उपन्यास य कहानी के काल्पनिक पात्रों के उलझते, टूटते-जुडते सूत्र न होकर कहीं तो एक यर्थाथ के धरातल पर टिका होता है।

कुछ अपनी बात

इसी यर्थाथ और कल्पना के ताने बाने में जिस पात्र के हिस्से में जो आ जाये। पीछे मुड़ कर देखने का मेरा लोभ भी तो कुछ कम नहीं। अब अपने जीवन में भी, साँझ के साये गहराते चले जा रहे हैं। प्रकृति की लीला स्थली में इस श्यामल साँझ के उतरने से वहुत पहले सन् 1934 के 24 (जन्म) अक्टूबर को जो जीवन यात्रा शुरू हुई थी, लगता है वह अब और किसी गहरे रहस्य भरे धुंधलके में धीरे-धीरे प्रवेश कर रही है। सृष्टि के सब से बड़े सत्य के साक्षात्कार के लिये।

मन के इसी लोभ की कामना के चलते दिखती है सुदूर अतीत यानि सन् 1951 की चौदह मई की वह उमस भरी रात - जब रात नौ बजे के करीव इस यात्रा का एक महत्त्वपूर्ण पड़ाव था, जम्मू के कच्ची छावनी के

इलाके की टाँगेबाली गली। यानि ससुराल का घर। जम्मू शहर, कच्ची छावनी, टाँगेबाली गली, यह नाम आज भी सब वैसे के वैसे ही हैं। बदल गये सिर्फ लोग, खो गये वह चेहरे, लुप्त हुए वह दृश्य, धुल पुंछ गये पहिचान के रंग। पर सब बाहर ही बाहर मन की आँखों में सब वही, वैसे का वैसा।

इन आगे आने वाले दिनों का पूर्वाभास तो मुझे कुछ-कुछ एक वर्ष पहिले से ही होना शुरू हो गया था। जब सुनने में आने लगा था कि, जम्मू मे एक जाना-माना तहसीलदारों का घर है। वह घर, वहाँ बसोहली वालों के नाम से पहिचाना जाता है।

इन्ही बसोहली वाले तहसीलदार दंपत्ति के पाँच वेटों में से सब से बड़े बेटे के साथ मेरा संबंध तय हो पा रहा है। बड़े गर्व के साथ हमारे घर वाले दूसरे लोगों को इस रिश्ते का परिचय देते कि, लड़का फाईनल में पढ़ता भी है। तथा रेडियो स्टेशन में नौकरी भी करता है।

सच में ही उनचास पचास के आस पास उन दिनों रेडियो सेट का किसी घर में होना ही एक दुर्लभ जादुई करिश्मा समझा जाता था और किन्हीं प्रभुता संपन्न घरों में ही रेडियो हुआ करता था। साथ में यह भी जान कर कि, लड़का गीत कविता लिखता भी है और कवि सम्मेलनों में सस्वर कविता पाठ से खूव वाहवाही भी बटोरता है। इस सब से जैसे गुरदासपुर के हमारे परिवार वालों के हाथ आसमान का तारा लग गया था। पढ़ाई के साथ ही साथ रेडियो की नौकरी भी और वह भी रेडियो में बोलने की। इतने सारे, बड़े सौभाग्य एक साथ किसे मिल सकते थे भला ? बहुत सी आँखों में इर्ष्या फूल फूल उठती। तब के दिनों में यह विवाह संबंध विचौलियों (रुवारे) के विश्वास पर ही टिके होते थे।

फिर यहाँ तो दोनों परिवारों के बीच सेतु थे मेरे सगे मामा हीरा नगर के मास्टर मेहरचन्द खजूरीया। यह भी एक अजीव संजोग था कि, यही मामा मेरे पति के मामा के साथ प्रिन्स आव वेल्ज़ कालिज जम्मू में पढ़ते थे। इन के मामा बसोहली के प्रतिष्ठित गौड़ पुरोहित परिवार के अति सुन्दर सुयोग्य युवक थे।

वही मामा अपने मित्र यानि मेरे मामा को अपनी संपन्न ऐश्वर्यशालिनी बहिन के घर छुट्टी के दिन साथ लाया करते थे। कच्ची छावनी का यह बसोहली वाला परिवार एक भरा पुरा, मेहमान-नवाज़ी के लिये प्रसिद्ध

सम्मिलित कुटुम्ब था।

मेरे ससुर तहसील दार थें और चाचा ससुर P.W.D. में हैडड्राफ्समैन थे। दोनों भाइयों के यह महकमें ही ऐसे थे कि जहां लक्ष्मी अपने चारों हाथों से ऐश्वर्य बरसातीं थी।

राजौरी से घी के टिन, राजमाँह बनफशा, चिकनी लकड़ी से बनी डोइयाँ, परातें, चित्रकारी वाली कंधियाँ तथा कश्मीर से ठेकेदारों द्वारा दी जाने वाली सौगातों में अख़रोट, बादाम, खुवानियां एवम् गाड़ियों (सूखे छिलके रहित सिंघाड़े) की बोरियां तथा केसर के लच्छे और अनारदाना शामिल होता। जो कुछ वर्षों तक तो मैं भी देखती और हैरान होती थी। ऐसे परिवार में संबंध जोड़ने को मामा क्यों न लालायित होते। मेरे मामा की वाकपटुता और वर्णनात्मक शैली ऐसी असरदार थी कि मेरे घर वालों ने वगैर जम्मू आये, बिना घर-बार की खोज खवर लिये ही इस रिश्ते के लिये हाँ कर दी।

शायद मामा ने जम्मू में भी अपनी बहिन के घर परिवार तथा बहिन का बेटी का भी कोई ऐसा ही लुभावना चित्र प्रस्तुत किया होगा, राम जाने। जब कि, हम लोग 1947 में तहसील शकर गढ़ से जिला गुरदास पुर आये थे।

यह जानते हुए भी कि, उपरोक्त सब बातें रत्ती भर भी किसी के लिये मूल्यवान नहीं, रूचिकर नहीं हैं। पर इस जीवन यात्रा में आगे चल कर जिन संदर्भो से कड़ियाँ जुड़ती चली गई। जो व्यक्ति अपनी छाप छोड़ने में समर्थ रहे। उन सब तक पहुँच पाने के लिये पैरों तले धरती भी तो जरूरी है चाहे आज- यहाँ तक पहुँच कर सब बेमानी सा हो चुका है।

फिर दशकों बीत जाने पर भी, जब उस सारी स्थिति पर विचार करने का मन हो ही रहा है तो वही मोहक क्षण कैसे भुलाये जा सकते हैं। कल्पना की सरस उड़ाने भरता वह व्याह होने तक का एक वर्ष का अन्तराल। 1950 से 1951 मई के बीच का समय।

सुवह की धूप सा कोमल मन-शायद किसी भी किशोर मन की भावनाऐं ऐसी ही होती होंगी, उत्सुकता, कौतूहल भरी सी। वह समय दूर कहीं कोई अनचीन्हा, अनजान, कोई मीठा सा भाव जैसे रातरानी के फूलों की भीनी सी गंध। सच में ही घर से स्कूल जाते समय सुवह के सूरज की

सुनैहरी लाल किरणें कैसी जीवन्त उल्लास भरी भरी सी दिखतीं। तब सीलिंग फैन कहाँ होते थे। रात को छत्त पर नीले निर्मल आकाश पर उगा चाँद और अधिक उज्जवल लगता। क्या घर क्या बाहर, सभी दिशाओं से माँ के आंचल से आशीष की छाया सी बरसती लगती। धरती पर जीवन रस में डूबी हर गुनगुनाहट, हर मुस्कराहट अपने ही लिये लगती। लगती भी क्यों न भला ? कोरस की किताव में जो पढ़ते थे।

प्रकृति माधुरी पर कहा, गर्व तोहे कश्मीर
नंदन वन तो सम अहै, सोहत परम गंभीर।

सो प्रकृति का महमहाता वही नंदन वन, वह सब मेरे अपने ही हिस्से में जो आने वाला था। क्योंकि मामा की भेजी खवर में जम्मू से काश्मीर स्थानांतरण होने की सुखद सूचना से घर परिवार के लोग प्रफुल्लित थे।

संपन्न ससुराल की सुखद कल्पना। फिर रेडियो स्टेशन में कार्यरत "कवि पति" पर कवि कल्पना पर आते ही जाने क्यों ? कहीं मन कुछ थम सा जाता। शायद प्रभाकर की विद्यार्थी होने के कारण कलाकारों, कवियों के गृहस्थ जीवन के उथले पुथले होने की बहुत सी घटनायें जानने बूझने में आ चुकी थीं। यह भी काफी पढ़ रखा था कि, आम साधारण लोगों की दुनिया से यह लोग कुछ अलग असाधारण से होते हैं। पर ख़ैर मैं शुरू से ही भाग्यबादी रही हूँ। दूसरे का अहित करने की ताकत मनुष्य के हाथ में कहाँ तक हो सकती है, यह शक्ति तो केवल विधाता के ही पास हैं। हाँ एक निष्ठा, दुःख सुख को सहने की क्षमता तो अपनी ही है। एक विश्वास भी रहा है कि, ईश्वर अच्छे लोगों का साथ देते हैं पर कोई कैसे अच्छा कह सकता है अपने आप को ? किसके पास है इसकी कसौटी ? कहाँ, कैसी है ? पर चलो एक धारणा का बल ही सही।

एक सच से मुँह क्यों मोड़ा जाये। अपना विश्लेषण करने पर अपने आपको बिलकुल साधारण सी, मामूली से गृहस्थ घर की एक स्कूल मास्टर की बेटी पाती जिसको बचपन से ही ऐनक लग गई थी। कवि कल्पना के अनुरूप तो कुछ भी नहीं था। चाँद सा गोरा मुखड़ा, काले लहराते केश, कमल नयना, कोकिल कंठी, कहीं भी तो कुछ नहीं था। कुछ चिन्ता एवम् संशय से कभी-कभार मन डोल जाता। हमारे घर गुरदासपुर में बावू जी (ससुर) तथा सत्य भाई (देवर) जी एक दो बार हमारे आये गये

थे, बस यही आश्वासन था। गोरे चिट्टे नीलाभ आँखों वाले खूव तेज तर्रार यही सत्य भाई एयरफोर्स ऑफीसर बने। रिटायर होने के कुल दो वर्ष वाद मुंवई के हास्पिटल में कुछ दिन वीमार रह कर चल बसे। अन्तिम विदाई बेला में यही उनके बड़े भाई जम्मू से उनके पास थे। तब तक सत्य भाई ने अपना आशियाना भी मुंवई में ही बना लिया था।

इन्हीं सत्य भाई ने 1951 में शुरू के दिनों में ही शान्त दृढ़ता से आश्वासन दिया था, उसी से मन हल्का तो हुआ ही था, खूव मजबूत भी हुआ था। उनका कहना था कि "मेरे बड़े भाई पर सदा विश्वास करना। इनका कवि मन शुरू से ही संघर्ष भीरू रहा है, यानि दुनियावी झमेलों से पलायन की प्रवृत्ति"।

मेरे जम्मू आने के थोड़े दिनों के पश्चात् वह ट्रेनिंग के लिये बंगलोर चले गये थे। सच में ही इस जीवन यात्रा के कठिन दुर्योगों में उन की कही दोनों बातों ने संबल बनाये रखा था। तभी तो ब्याह के बाद सात-आठ महीनें मैं अपने माँ बावू जी के पास ही रही। इस बीच किसी ने भी कहीं से मेरी खोज खवर नही ली थी। खैर भाग्य को मान लेने से आदमी बहुत सी दुःख तकलीफों से बच जाता है। आठ जनवरी, 1952" धरती का स्वर्ग कहे जाने वाले काश्मीर की यात्रा।

विवाह के पश्चात् के छः सात महीनों बाद दूसरी बार जम्मू 6 जनवरी 1952 को आना हुआ था। आठ जनबरी की ठंडी सुवह। एक नई यात्रा की शुरूआत "जम्मू से काश्मीर के लिये य एक नये जीवन का प्रारम्भ। इन के साथ उस दिन से यहीं से चला सफर आज उम्र के इस मुकाम तक पहुँच पाया है। अपनों की मंगल कामनाओं, आशीषों को सार्थकता प्रदान करने वाले इसी नये जीवन का स्वपन, बहुत सी कोमल कल्पनाओं को अपने में समेटे संजोये, सभी लड़कियों के मन में बचपन से ही पलता आया है। यही सच्च, मेरे भी अपने मन का था।

जम्मू में तो जनवरी में भी दोपहर को सुनहरी धूप खिलती थी। मौसम खूव खुशगवार था। जिस बस में हम श्रीनगर जा रहे थे, लगा था कि, आधे से अधिक लोग तो इनके बहुत अच्छे परिचित हैं। क्योंकि जिस तपाक से जिस अपने-पन एवम् जोर शोर से दुआ सलाम वहाँ हो रही थी उससे बस में खुशी का सा माहौल लग रहा था उसी बस से एस.डी. सोनी

अपनी सुन्दर शालीन पत्नी तथा छोटी बच्ची के साथ श्रीनगर जा रहे थे। उनकी पत्नी की आत्मीयता से भी मन को बल मिला।

और भी दो चार, दस लोग सभी एक दूसरे से परिचित लग रहे थे। चलती बस में जम्मू-कश्मीर की सांस्कृतिक, सामाजिक और अपने समय की राजनीतिक गतिविधियों की अनेक प्रकार की चर्चाऐ, बीच बीच में वहस मुबाहिसे भी ज़ोर-शोर से छिड़ जाते थे। कभी हंसी मज़ाक कहकहों के फब्बारे फूट पड़ते। यह सब मैं पूरे मनोयोग से सुन रही थी, क्योंकि इन सब से मेरी जानकारियों के नये नये क्षितिज खुलते जा रहे थे। यह सारी बात-चीत सुनने में बहुत अच्छी लग रही थी। पर फिर भी भविष्य की अबूझ चिन्ता में डूबा मेरा मन वहाँ सब के साथ होने पर भी कहीं और ही अकेला भटक रहा था। क्योंकि, मुझे ऐसा लग रहा था कि, जिनके साथ मैं जा रही हूँ, वह शायद भूल ही चुके हैं कि, कहीं मैं भी उनके साथ हूँ।

श्रीनगर में जिस परिवार के साथ यह रहते आ रहे थे। वह कोई ननिहाल (वसोहली) की तरफ से दूर पार की मौसेरी बहन का घर था। यह बहन इनके लिये मातृवत स्नेह सुरक्षा का दायित्व निभातीं थीं। वह लोग चाहे आर्थिक रूप से अधिक संपन्न नहीं थे पर मनुष्यता के नाते बहुत बड़े थे।

दो तीन दिन हम उन्हीं के घर ठहरे। वह लोग काफी भले थे। शेरगढ़ी मुहल्ले में किराये के मकान में पति और दो बच्चों के साथ वह छोटा सा परिवार रहता था। यह तो अपनी पहली रूटीन के चलते निःश्चिन्त हो कर रेडियो स्टेशन चले जाते पर मैं उस चीनी कहावत को कैसे भूल सकती थी कि, मेहमान और मछली से चौथे दिन बदवू आने लगती है। जब अकेले थे तो और बात थी। सारा दिन तो बाहर ही गुज़र जाता था तथा महीने में दस बारह दिनों के लगभग तो दोस्तों मित्रों के साथ ही कटता था।

मैं अपनी समझ से खुशनुमा माहौल के चलते ही इस घर से अपने घर जाना चाह रही थी, पर उस अपने घर का रास्ता तो क्या, किसी पतली पगडंडी की सीध तक का भी पता नही चल पा रहा था। इन्ही दो तीन दिनों में मैं बड़ी बारीकी से बहुत कुछ सुन, समझ चुकी थी।

यह भी जानने में आ चुका था कि, यह यहाँ भी रहते हैं, पूरी की पूरी तनखाह उसी घर के हवाले कर देते हैं। सिर्फ दो चार आने सिग्रेट के

लिये चाहिये होते हैं। अच्छी चाय नाश्ता, स्वादिष्ट खाना, साफ घुले कपड़े और अपना पढ़ने लिखने का काम, बस इसके सिवाये और कुछ नही चाहिये था। यह राशि 135 रूपयों की 1952 सन् के बाज़ार भाव के चलते यदि बहुत अधिक नही थी तो भी कम तो किसी भी तरह नहीं थी, जब कि एक तोला बिशुद्ध सोने का मूल्य 104 रूपये था।

अब तक इस बात की भी मुझे पूरी पूरी जानकारी हो चुकी थी कि, श्रीनगर के इस बर्फानी मौसम में नये सिरे से एक खाली घर को सुव्यवस्थित करना बहुत जोखिम भरा काम था। लगभग असंभव सा। यहाँ के निर्धन स्थानीय निवासी तक इस वर्फीले मौसम के शुरू होने से पहले ही जीवनोपयोगी बस्तुओं का संग्रह कर के रख लेते हैं।

कुछ हितैषी जनों की राय थी कि, मुझे तुरन्त जम्मू वापिस लौट जाना चाहिये और सुचारू ढंग से घर गृहस्थी जोड़ने के लिये मौसमें बहार का इन्तज़ार करना चाहिये। इनका भी उखड़ा सा अनमना मूड इसी आशय का संकेत दे रहा था। अब क्या किया जाये। मैं अकेली ही एक अबूझ चिन्ता और संशय के कोहरे में बुरी तरह घिर चुकी थी। तब मेरी अपनी उमर ही कितनी थी यही कोई सत्रह अठारह वर्ष। जितने कड़ाके की ठंड बाहर थी उतना ही चिन्ता के उत्ताप का लावा अन्दर ही अन्दर घुमड़ रहा था। पर सब चुपचाप ज़रा सी भनक तक किसी को नहीं।

क्या गहरे दुःख से ही मनुष्य के मन में बास्तविक धैर्य्य का जन्म होता है। तब गर्म, तप्त कुछ अश्रु बिन्दुओं ने मन कुछ हल्का कर दिया था, उसी हल्के मन से ही एक अजीव निश्चय कर डाला।

दूसरे दिन सभी कुछ यथावत् था। दस बजे इनके रेडियो स्टेशन चले जाने के पश्चात् शाल के अन्दर गर्म काँगड़ी लेकर अकेले ही शेरगढ़ी से निकल पड़ी। यह तो मुझे पता ही था कि, रेडियो स्टेशन के बिलकुल सामने शेरे काश्मीर नाम से जो पार्क है उसके पास ही रेडियो में कार्यरत कर्मचारियों के रिहायशी क्वाटरस हैं। जिन्हें रेज़िडेन्सी के क्वाटरस कहा जाता है। उन्हीं में से सब से पहिला क्वाटर इन्हीं के नाम अलाट है।

शेरगढ़ी से अकेले चल कर, रेज़िडेन्सी क्वार्टरस तक पैदल पहुँचना, नामालुम रास्ता, नई जगह, अनजाने लोग और निपट अकेला पन "अब मुझे अकेले ही अपनी राह जो बनानी थी"।

यह रेडियो कालोनी गहरे हरे रंग में रंगे लकड़ी के खूबसूरत जंगले से घिरी थी। पार्क और क्वार्टरस के बीच साफ सुथरी चौड़ी सड़क। गेट के ठीक सामने नल से पानी की बाल्टी भरती एक सुन्दर कांश्मीरी युवति दिखी। मैं अकचकाई सी इधर उधर देख कर जायज़ा ले ही रही थी कि वही युवति बाल्टी नल के पास ही छोड़ मेरे पास आई और बड़े ध्यान से देखते हुऐ मुझसे पूछा कि, आप यश शर्मा की वीवी हैं क्या ?

मैंने चुपचाप सिर हिला कर हामी भरी। दो कदम और आगे बढ़ते हुऐ बड़े ही अपने-पन से कहा कि, आइये ना। मुझे सूरज ने बतायां था कि, भाई साहिव आप को लाने जम्मू गये हैं। मेरा नाम उमाश्री है, मेरे पति जानकी नाथ काव, रेडियो इंजीनीयर हैं। साथ ही साथ विलकुल सामने एक मात्र कुंडी लगे घर की तरफ संकेत करते हुऐ बताया कि, वह रहा आपका घर, वह साथ लगता मेरा घर है।

उस भली औरत का बिना कुछ पूछे ही इतना सब परिचय दे डालने से मन में एक आश्वस्ति भाव जग गया था। अपने घर ले जाकर उबलते समोवार से दालचीनी, हरी इलायची से महकते काश्मीरी कहवे के दो काँसे के कटोरे कटे कुतरे बादाम बुरक कर ले आई। फिर हमारा कमरा खोल कर दिखाते हुऐ कहा कि, आप सामान ले आइये, तब तक यहाँ सब साफ सफाई हो जायेगी। मेरे उतरे चेहरे की परेशानी को अपने ही ढंग से भांपते हुऐ कहा कि, अरे। आप कोई फिकर न करें हम लोग हैं न।

उस नेक औरत उमाश्री द्वारा दिये गये इस आश्वासन से और गरम कहवे से मन एवम् तन में एक उष्णता एक हौसला भर गया था।

यह ठीक है कि, समय बीतने के साथ बीती हुई यादो के चित्र धुंधला जाते हैं।

उभर के सत्तर सालों के दिनों, महीनों, **वर्षों** के काल विस्तार में बहुत से लोग आये गये, बहुत सा घटित अघटित हुआ होगा। पर उस 1952 के काल खंड की स्मृति में वह बाईस वर्षीय उमाश्री और तेरह वर्षीय किशोर सूरज को भुला पाना-जैसे अपनी आत्मा के सत्य और मन के बिश्वास के साथ अन्याय करना, जैसा होगा। अपने आप को झुठलाना होगा।

आगे के लिये संक्षेप में इतना ही कहना काफी है कि, वापिस

शेरगढ़ी पहुँच कर कुछ पैसे लिये। उन्हीं बहन ने एक डोगरा ब्राह्मण चूनी जो उसी मुहल्ले में रहता था और काश्मीरी भाषा खूव अच्छी तरह बोल समझ लेता था मेरे साथ बाज़ार भेजा। कुल 36-37 रूपये खर्च हुए। खाने-पीने का सब सामान मोटे-मोटे दो बग्गु, काँगड़ी, कच्चे कोयले की बोरी का दाम मात्र तीन रूपये, लोहे का दमचूल्हा। चूनी ने सब सामान बाजिव दामों पर ख़रीद दिया। टाँगा भर सामान लेकर अपने क्वाटर में पहुँचने पर उमाश्री, सूरज, चूनी ने मिल कर उस एक कमरे बरामदे को अच्छा खासा घर का रूप दे दिया। इस प्रकार दो तीन दिन की अकुलाहट में डूबती डोलती नैय्या को किनारा मिल गया। मन चाहता है कि, इस कड़वे कसैले प्रकरण की यहीं शेष कर दूं। पर जनवरी के उस ठंडे दिन की एक और चुभन। सांझ ढलने को हो आई, रात का खाना उमाश्री के घर ही खाया। जानकी नाथ दो तीन दिन से कहीं गये थे। रात को वापिस कमरे में पहुँची तो देखा कि कब से खाली पड़े घर में बिजली तो थी नहीं। बाजार से मोमबत्ती भी नहीं लाई गई थी।

उम्र का पहाड़ चढ़ते चढ़ते कितनी साँझें ढली होंगी। पर सफेद बर्फ की चादर ओढ़े उस साँझ क़ा खौफनाक सन्नाटा ऐसा दिल दिमाग पर पसरा था कि, आज भी कभी कभी कोई सुनसाऩ अंधेरी ठंडी साँझ-भयावह हो उठती है, अन्तर के किसी खाली कोने में।

हस्वेमामूल रात के साढ़े दस ग्यारह बजे यह शेर गढ़ी पहुँचे पर अब वापिस इतनी दूर आना नामुमकिन था, क्योंकि उस दिन जाने किस मित्र के साथ दोपहर से ही कहीं चले गये थे। सूरज ने रेडियो स्टेशन से पता लिया था। पर यह सूचना इन तक पहुँच नहीं पाई थी।

तकिये का कोना उधेड़ कर रूई निकाल कर बत्ती बटी, कटोरी में तेल डाल कर टेढ़ा रखते हुए दीपक जलाया। इस प्रकार एक कलाकार की नई गृहस्थी के शुभारम्भ का साक्षी था, धीमी सी रोशनी फैलाता वह नन्हा सा दीपक। जैसे मन्दिर में दीप जलता है य फिर बाधाओं को पार करती नये संसार की पहली जय यात्रा के मुहूर्त्त का क्षण।

दूसरे दिन घर आने पर सब से पहिले जानकी नाथ ने अपने घर के साथ बिजली का तार जोड़ कर दो बल्ब लगा दिये थे। यह सब इन्ही की सौजन्यता से हो रहा था, अन्यथा मुझे यहाँ जानता ही कौन था। श्रीनगर

की यह छोटी सी रेडियो कालोनी, जिसमें कुल 16 क्वार्टरस थे। आठ छोटे, जिनमें एक कमरा, बरामदा तथा ईंटों वाला सहन। इसी लाईन में हमारा कमरा सब से पहिला था। एक छोटी सी चार दिवारी। सहन में खड़े होंने पर सभी घरों को देखा जा सकता था। सामने वाले बड़े आठ क्वाटिरों में, जिनमें दो कमरे, अलग किचन, बाथ रूम वगैरा सब था। इन बड़े क्वाटारों में सब से पहिले थे अमृतसर के बी, आर अग्रवाल जो विजयबाड़ा से तबदील हो कर आये थे।

उनके साथ लगते दूसरे क्वार्टर में श्री प्रेमनाथ परदेसी सपरिवार रहते थे। परदेसी उर्दू के प्रसिद्ध कहानी कार थे। बहते चिराग उनका उर्दू कहानी संग्रह खूव प्रसिद्ध था। उनका बड़ा बेटा सोमनाथ साधु शुरू से ही विनम्र और प्रतिभा संपन्न था, जो आगे चल कर स्टेशन डाइरैक्टर हुआ पर जिन्दगी ने उसे मोहलत नहीं दी। उस से अगला घर मोहनलाल एमा का था जो म्यूज़िक प्रोग्राम असिस्टेंट थे। एमा साहिव लखनऊ यूनिर्वीसटी से वी. ए.एल. एल बी थे। इनका काश्मीरी भाषा में लिखा ड्रामा "बिधवा" अपने समय का सशक्त तहलका मचा देने वाला नाटक था। घड़ा (मिट्टी का वर्त्तन) बजाने का उनका अपना ही एक खास अन्दाज़ था।

उनका तीन चार वर्षीय बेटा बिल्लु मुर्गिओं के पीछे भागता रहता था, जो आगे चल कर पंजाबी फिल्मों का प्रसिद्ध अभिनेता बना। उससे अगला घर प्राण किशोर कौल का था जिन्होंने ने रिटायर मेंट के पश्चात् "गुल, गुलशन, गुलफाम" सीरीयल के लेखक के रूप में काफी ख्याति अर्जित की। हर भगवान दास मलहोत्रा रेडियो काश्मीर में पहले पश्तो न्यूज़ रीडर थे, कुछ और भी इंजीनीयंरिग विभाग के सरकारी कर्मचारी थे, जिनमें युवा सरदार इन्द्रजीत सिंह था जो बारामूला का रहने वाला था। उनके वहाँ सेव, बादाम के वगीचे थे। उनकी पत्नी प्रकाश कौर को घर से आये फल सब्ज़ियाँ सभी को खिलाने बाँटने में सुख मिलता था। इस प्रकार यह एक छोटी सी रेडियो कालोनी सी ही थी। इन सभी घरों को आपस में हर समय जोड़े रखने का काम करता था वह एक मात्र वाहर लगा नल, जिसमें चौबीस घटों पानी रहता था।

शहर से दूर होने के कारण सभी लोग आपस में एक परिवार की तरह रहते थे एक दूसरे के दुःख सुख के साथी। आज के इस समय तक

पहुँचते-पहुँचते यॉन्त्रिकता मनुष्यता पर इस कदर हावी हो जायेगी कि मानवीय संवेदनाओं से किसी का भी कोई सरोकार ही नही रह जायेगा, इस का अनुमान आज से पचास-पचपन वर्ष पहिले तक सोचा भी नहीं जा सकता था।

दो ढाई महीने बीतने पर अग्रवाल साहिव की पोस्टिंग होने पर बड़ा क्वार्टर हमें मिल गया। शान्ता कौल का छोटा भाई सूरज तब आठवीं क्लास में पढ़ता था। स्कूल से छुट्टी के वाद सूरज का एक हमउम्र दोस्त मुस्लिम लड़का इन क्वाटरों के पीछे की हरी-भरी घास पर साईकल चलाना सीखता था। सूरज के पास स्कूल तथा बाज़ार जाने के लिये अपनी साईकल थी। सफेद कमीज़ ख़ाकी निकर पहने वह गोरा गुलगुथना सा लड़का सूरज के साथ हमारे घर भी आता तथा ऐतवार के दिन बच्चों के प्रोग्राम में भी यह दोनों जा बैठते थे। बच्चों का प्रोग्राम इन्ही के पास था। इन प्रोग्रामों के कारण बच्चों के भैय्या तथा नविश्ताये दीवार के मिर्ज़ा जी को बहुत से लोग जानते थे। सूरज सहानुभूति से भर कर चुपके-चुपके बताता कि, मेरे इस दोस्त का नाम फारूक है। इस के अब्बा शेख मुहम्मद अब्दुल्ला हैं जो जेल में नजर बन्द है। वही लड़का समय पर कर जम्मू-काश्मीर का मुख्यमंत्री फारूक अब्दुल्ला बना। सूरज ने दबाइयों की जानसन कम्पनी में काम करना शुरू कर दिया था। फिर इस भीड़ भरी दुनियां में आम आदमी की तरह सूरज जाने कहाँ खो गया। चालीस-ब्यालीस वर्ष बाद एक बार सूरज मिला था। पत्नी मर चुकी थी, बेटा कहीं विदेश में बस गया था।

सुनने में आया था कि, बंटवारे से पहिले यह क्वाटर रेज़िडेन्सी के कर्मचारियों के क्वार्टर थे। जब कि रेज़िडेण्ट के रहने के लिये अखरोट और देवदार की लकड़ी से बनी नक्काशीदार एक भव्य दोमंज़िला कोठी थी। यही रेजिडेण्ट की कोठी जो उस समय काश्मीर इम्पोरियम में तवदील हो चुकी थी। उसके दामन में रंग-विरंगे फूलों से भरा एक सुन्दर बाग़ था। ऊँचे-ऊँचे सरू और देवदार तथा आकाश को छूते चिनार के पेड़ थे। हमारे पहले छोटे क्वार्टर की एक मात्र खिड़की इसी बाग की तरफ खुलती थी। पर इस समय तो सभी नंग-धंडग पेड़-पौधों को सफेद बर्फ की मोटी चादर ने ढंक रखा था। यह छोटा और वड़ा दोनों क्वाटर हमारे ही पास रहे थे। क्योंकि उस समय और कोई वहाँ नया कर्मचारी आया ही नहीं था। आये तो थे पर कुछ देर बाद।

इस नई गृहस्थी का श्री गणेश 12 जनवरी 1952 को हुआ था। 13 जनवरी, लोहड़ी का त्योहार। काश्मीर का मुख्य पर्व शिवरात्रि माना जाता है। लोहड़ी को कोई ही कहीं जानता होगा। दस बजते न बजते घर में सब में सब से पहिले जिन अतिथिओं का आगमन हुआ, उनमें सें एक तो थे मुज़तर हाश्मी पंजावी मुसलमान तथा दूसरे स्वयं इस छोटी सी गृहस्थी के मालिक यश शर्मा :-

बंटवारे से पहिले लाहौर से प्रकाशित "ज़मीदार उर्दू" पत्रिका के सम्पादक रह चुके मुज़तर हाश्मी साहिव को पता नही हिन्दोस्तान से क्या प्यार था कि, वह दिल्ली में बस गये थे। रेडियो काश्मीर में उनकी नियुक्ति स्क्रिपिट राईटर के रूप में हुई थी। उर्दू और पर्शियन के मंजे हुऐ विद्वान थे।

उन दिनों पाकिस्तान के विरूद्ध काऊंटर प्रोपेगंडा प्रोग्राम में एक प्रोग्राम रात नौ बजे चलता था, जिसका नाम था "नविरताये दीवार" जिसका अर्थ था "दीवार पर लिखा"। इस में एक पात्र खिचड़ी नुमा पंजाबी बोलने वाला था दूसरा ठेठ लख़नबी उर्दू के अन्दाज़ में बोलता था। इस रूपक के प्रारम्भ में वाचक की भूमिका मुज़तर हाशिमी साहिव स्वयं निभाते थे। श्री केदार शर्मा अपढ़ किन्तु दूर की कौड़ी लानें वाला "फत्तु कोचवान" की भूमिका निबाहते थे जब कि मेरे पति-लख़नवी अन्दाज़ में पढ़े लिखे "मिर्ज़ा जी" की भूमिका में उतरते थे।

छोटा मुँह बड़ी बात, किन्तु यह सच है कि सीमापार रहने बाले हमारे पड़ोसी (पाकिस्तान) इस प्रोग्राम को खूव सुनते थे। तथा भूरि भूरि प्रशंसा के पत्र लिखते थे। ऐसा भी कहा जा सकता है कि, पत्र लिखे बिना रह ही नही सकते थे। स्वर्गीय केदार शर्मा की गुलाबी उर्दू यानि पंजाबी तथा उर्दू का मिक्सचर दोनों शिष्ट हास्य व्यंग्य से ओत प्रोत रहता बगैर किसी भी धर्म पर आक्षेप किये। यह प्रोग्राम पाकिस्तान से भारत के विरूद्ध नशर होने वाले प्रोग्राम के जबाव में हर रोज रात को 10 बजे लाईव नशर होता था, क्योंकि उन दिनों रिकार्डिंग की मशीनें य टेप रिकार्डर आदि का कोई प्रवंध नही होता था। जो बात एक बार प्रसारित हो गई, सो हो गई। दोनों तरफ के लोग निधार्रित समय पर इस प्रोग्राम को सुनने के लिये अपने अपने रेडियो सेटों को खोल कर इन्तज़ार में बैठे रहते थे।

मुज़तर हाश्मी साहेव, इन से दो गुनी उमर के यानि पचास के

लगभग के होंगे । साँवला रंग, तीखे नैन नक्श, बाज़ पक्षी जैसी चतुरता भरी दृष्टि, आँखों पर मोटे मोटे शीशों वाली ऐनक । मंझोला गठा कद । मेहन्दी रंगे सिर के खिचड़ी बाल । लगातार पान खाने से दाँतो मे लाली और ओठों मे कुछ स्याही का मिश्रण, बेहद हंसमुख स्वभाव पर फिर भी नपी तुली बात ।

मुज़तर हाश्मी साहिव मेरे पति को मन से प्यार करते थे । सच्च बात तो यह भी है कि इन्होंने बढ़िया उर्दू भाषा उन्हीं से सीखी थी । मीर, गालिव, इकवाल को पूरा पूरा समझ पाने का श्रेय हाशिमी साहिव को ही जाता है ।

रेडियो स्टेशन का नौजवान तवका उन्हें उस्ताद जी कहता, पर हम कालोनी वाले उन्हें चाचा जी कहते, फिर तो वह चाचा जी ही प्रसिद्ध हो गये । सब से बड़ी बात थी कि रेडियो स्टेशन के डाइरैक्टर से भी अधिक बेतन वही पाते थे, यानि 600 से 800 सौ के बीच । उनको सच्ची बात कहने से भी कोई दरेग़ नहीं था । मुझे उन्होंने बताया था कि, जब कभी में एकाध महीने के लिये दिल्ली जाता हूँ तो "नविश्ताये दीवार" रूपक को सिलसिले वार लिखने की ज़िम्मेदारी यश ही संभालता है फिर एक खुला कहकहा हवा में बुलन्द करके कहते "(कुड़िये! जेड़ा कम्म मैं अट्ठ सौच करदा हां, ओ ही कम्म तेरे घर वाला 135 रूपइयाँ विच करदा ऐ । न ते कदे ऐदे लवाँ (ज़ुवान) ते शकैत आन्दी ऐ ते न कदी वद्ध पैसेयाँ लई रौला रप्पाई पांदा ऐ । ऐ ते कोई अल्ला लोक बन्दा ई, अल्ला लोक । लोभ लालच तो वक्ख) अर्थात "बेटी! जो काम मै आठ सौ रूपये में करता हूँ वही काम तुम्हारा पति 135 में निबाहता है । पर कभी भी इस की ज़ुवान पर कोई शिकायत नही आती, न ही कभी अधिक पैसों के लिये कोई तकाज़ा करता है । यह अजीव सा बन्दा है लोभ लालच से एक दम परे । जाने यह कैसी साधु संत रूह है ।"

हाश्मी साहिव के 1952 में कहे यह शब्द कितने सही थे । रेडियो कश्मीर के स्टूडियों में एक बहुत बड़े सर्वभाषी मुशायरे का आयोजन किया गया था । जिसमे श्री नगर के उर्दू और काश्मीरी के दिग्गज कवि भाग ले रहे थे डोगरी कविता के लिये इन्हें निमंत्रित किया गया था । हम ने यह मुशायरा रेडियो द्वारा ही सुना था, उन दिनों रेडियो मुशायरों में आम जनता भाग नहीं लेती थी ।

"अमन"

अमनें दी लोड़ अज्ज, अमनें दी लोड़ ऐ
दुनियां दे लक्खें लक्खें, अत्तियें ते पुच्छियें गी
मुन्नुऐं गी मुन्नियें गी, गिल्लुऐं ते गुच्छियें गी,

जिन्दी थत्थी गल्लें दी मठास मन भान्दी ऐ
जिन्दी खेड घरें विच जोतियां जगान्दी ऐ
उनें गिल्लुऐं गी नित्त अमनें दी लोड़ ऐ
अमनें दी लोड़ अज्ज अमनें दी लोड़ ऐ।

अमन जे होए तद्दे हरे भरे खेतरें च
पक्खरू डोआन्दे गीत गान्दियां न गोरियां
अमन जे होए तद्दे फुल्लें नैं भरोची दियां
डाह्लड़िया होई होई पौन्दियां न दोह्दियां।

अमन जे होए तद्दे जागदे न गीत साढ़े
जागी जागी पौन्दियां न मामें दियां लोरियां
मामें दीयें लोरियें ते गोरियें दे गीतें गित्तै
अमनें दी लोड़ अज्ज अमनें दी लोड़ ऐ।

अमन अमान उनें गोरियें दे गैह्ने गीत्तै
जेहढ़े उनें सांभिये पटारूएं च रक्खे दे
अमन अमान उनें गभरू जुआनें गित्तै
जढ़े अज्ज खेतरें च कम्में-काजें लग्गे दे

गोरियें दे गैह्नें गित्ते-गभरू जुआन्ने गित्तै
अमनें दी लोड़ अज्ज अमनें दी लोड़ ऐ।

पक्खरू-पखेरूएं दी लम्बड़ी उडारें गीत्तै
हरे भरे खेतरे ते सोह्नियें बहारें गीत्तै
नदी नाले बौलियें ते उच्चवड़ियें धारें गीत्तै
चोरी चोरी मिलनें दे कौलें ते करारें गीत्तै
अक्खीं-अक्खियें च होई जाने आले शारें गीत्तै
मोतिये दे फुल्लैं गीत्तै, गरने दे जाड़ें गीत्तै
अमने दी लोड़ अज्ज, अमने दी लोड़ ऐ।

अर्थ : आज हमें अमन की जरूरत है, केवल स्थायी, शाश्वत् अमन की जरूरत है। अमन की दुनियां के लाखों लाख ("अत्ती और पुच्छी" नाम के) बच्चों के लिये। उन अबोध शिशुओं (मुन्नियों, मुन्नुओं) के लिये, जिन की तोतली बातों की मिठास मन को, प्राणों को छू जाती है। जिन के खेल खिलौनों से जगमगा उठते हैं घर आंगन। बस उन्ही मासूम भोले बच्चों के लिये आज हमें अमन की जरूरत है।

यदि अमन होगा तो खेतो के अन्न की रखवाली करने को तत्पर कृषक बालायें पक्षियों को दूर भगाते समय, उनके अधरों पर स्वतः गीत थिरकने लगेंगे। यदि अमन होगा तभी तो फूलों से भरी पुरी पेड़ों की डालियाँ फल आने पर झुक-झुक पड़ेंगी। अमन होगा तो हमारे गीत जाग उठेंगे, जाग उठेगी ममता भरी माँओं की लोरियाँ। माताओं की लोरियों और ललनाओं के गीतों को जीवन्त रखने के लिये हमें अमन की सख्त जरूरत है।

हम चाहते हैं अमन अमान उन सुन्दरियों के आभूषणों के लिये, जिनको उन्होंने बड़े चाव से संभाल कर पिटारियों में सुरक्षित रखा है। अमन की आवश्यकता है, उन गभरू नौजबानों के लिये जो आज अपने परिश्रम से खेतों में अन्न उपजानें में मसरूफ हैं। युवतियों के आभूषणों तथा युवकों की मेहनत के लिये हमें अमन की जरूरत है।

पंख-पखेरूयों की निश्चिन्त लम्बी उड़ानों के लिये, लहलहाते खेतों के तथा महकती वसन्त ऋतु के लिये एवम् नदी-नालों, बावड़ियों, ऊँची धारों (छोटे पर्वत) से बहते निर्मल नीर और प्रिय प्रेयसी के आपसी स्वपिन्ल संकेतों द्वारा मिलन के लिये अमन की आवश्यकता है। हमें अमन की जरूरत है, मोतिये के धबल फूलों के लिये, गरनें के रसीले फलों की झाड़ियों के लिये हमे अमन की जरूरत है।

इस विश्वव्यापी अमन की जरूरत, सर्वत्र जड़ चेतन की सुख समृद्धि की कामना कवि के कोमल करूण अन्तर का आईना है। यहाँ पर पुनः कालिज के सहपाठी वेदपाल दीप की रचना का एक मुखड़ा याद हो आता है :- "मेरा मन कितना कोमल था, जाने सके न जग वाले" तो फिर अमन की ऐसी चाहत रखने वाले यश शर्मा को ही कितने लोग जान पायेंगे, कौन जाने ?

(उस रोज इन्होंने जो कविता पढ़ी थी उसका शीर्षक था अमन) मुशायरे की इस तसवीर में जिन कवियों ने भाग लिया था उनके नाम बाँयें से दायें इस प्रकार हैं। काश्मीरी गायक सर्व श्री गुलाम मुहम्मद रा (गायक भी थे) नूर मुहम्मद रोशन, दीनानाथ नादिम, विश्व विख्यात स्वर्गीय उर्दू शायर अलीसरदार जाफरी (ज्ञानपीठ पुरस्कार बिजेता)। कश्मीरी कवि रहमान राही (ज्ञानपीठ पुरस्कार बिजेता) महान वेदान्ती तथा सूफी कश्मीरी कवि मास्टर ज़िन्द कौल, उर्दू कवि शहज़ोर कश्मीरी रेडियो के प्रसिद्ध हास्य अभिनेता पुष्कर भान, प्रसिद्ध उर्दू कवि गुलाम रसूल नाज़की तथा माइक के सामने डोगरी कविता 'अमन' पढ़ते यश शर्मा।

इस मुशायरे की अध्यक्षता डाक्टर अशरफ (पंडित जबाहर लाल नेहरू जी के मित्र) ने की थी। मज़े की बात थी श्री हर भगवान मल्होत्रा जो पश्तो न्यूज रीडर थे उन्होंने भी पश्तो कविता पढ़ी थी। इस मुशायरे में कश्मीर के मशहूर शायर महजूर नही आ सके थे, संभबत उनका कलाम गुलाम मुहम्मद रा ने ही पढ़ा था। इस चित्र में काश्मीरी के सुप्रसिद्ध शायर रहमान राही, हास्य अभिनेता तथा उर्दू के प्रसिद्ध लेखक पुश्कर भान, यश शर्मा के सिवाये संभवत् तकरीवन सभी महान हस्तियाँ इस दुनिया से विदा हो चुकी हैं। कुछ और आगे बढ़ने से पहिले :-

आज जब उस अतीत की यात्रा में लौटने का मन हो ही रहा है तो ईमानदारी से यह भी मुझे स्पष्ट कर ही देना चाहिये कि इस नई घर गृहस्थी में कवि भन बिलकुल भी, किसी भी प्रकार से नहीं रम रहा था।

मैंने कहीं पढ़ रखा था कि, कलाकार का मन पतंग जैसा होता है। घर गृहस्थी के वर्त्तन भाँडों में उसकी जगह नहीं होती। कलाकार को उड़ने के लिये आकाश का खुला विस्तार चाहिये। य फिर दूसरे सीधे शब्दों में केवल अपनी ही सुख, सुविधा, आनन्द का संसार, कुछ कुछ स्वार्थी होने जैसा ही।

संभवत् किसी भी कलाकार की पत्नी के भाग्य के साथ कुछ उपेक्षायें कुछ विडम्बनाऐं भी जुड़ी होती हैं। कोई न सही पर प्रकृति तो एक सच्चे साथी जैसी मनुष्य के मन क़ी सुख दुःखमयी स्थिति में प्रसन्न य विषादमयी अवश्य हो जाती है। तब मुझे ऐसा ही लगता था।

धवल निर्मल वर्फ की चादर ओढ़े काश्मीर की धरती का आकर्षक,

विराट व्यक्तित्त्व का वह शिव रूप जिस को मैंने वर्षो बाद जाना था। सन् 1952 के प्रारम्भिक महीनों में बेसरो सामानी के आलम में हर दिशा में पसरी बर्फ, ठंडे सफेद कफ्न सी लगती, जिसने अपनी मनहूस, कड़कडाती ठंड से वादी की पूरी की पूरी धरती को ढाँप रखा था। श्रीनगर आने पर अभी एक यही सब मेरे अपने हिस्से में आ रहा था। कहाँ था नंदन वन ? कोई शिकायत, किस से क्या करती। मुज़तर हाश्मी साहिव जहाँदीदा आदमी थे। उनकी कही बात मुझे हमेशा याद रही। (बेटी! श्रीनगर का यह रेडियो स्टेशन स्थानीय तथा भारत भर से आने वाले कलाकारों, बुद्धि जीवियों का गढ़ है। "यश" की अपनी एक खास जगह है। इस निर्मल नाज़ुक मोती की आब बरकरार रहे")

धड़ल्ले से बात कहने वाली शरव्सीयत थी हाश्मी साहिव की। पर आगे कुछ न कहने पर भी उनकी इस चेतावनी का आशय मैं पूरी तरह समझ गई थी। इन के उत्कृष्ट डोगरी गीतों, का रचना काल भी यही 1951-52 का ही था। किसी भी रचना के मधुर भाव के अर्थ का अनर्थ न होने देने की दृष्टि ईश्वर प्रदत्त मेरी भी थी ही। इसी के चलते, आँखों के उपर, संबंधों के उपर भावना एव्मम् संवेदना के उपर कभी कोई संशय की परत नही जम पाई थी।

प्रतीक्षा थी खुशगवार मौसम के आने की। जिस तिस से पूछती कि अभी कितने दिन वाकी हैं इस कड़ाके की ठंड से छुटकारा पाने में। उत्तर मिलता दिन नहीं-महीना, डेढ महीना अभी और। सच में ही बर्फबारी के मौसम के वाद कुछ ठंडी हवाऐं चलने से आसमान से बर्फ के बादल थोड़ा थोड़ा परे हटने लगे। इन्हीं थोड़ा थोड़ा परे हटते बादलों में से हल्की सी गर्मी लिये सूरज की सुनहरी किरणें झाँकने लगी।

पर इन्हीं सुनहरी किरणों के कुछ और गर्म होने पर वर्फ घरों की छत्तों - पेड़ों पर से पिघल पिघल कर धरती पर मैले स्पंज की तरह कीचड ही कीचड़ की सूरत अख्यतियार करने लगी। यह सब असहनीय सा था।

पर इस के पश्चात तो एक अद्‌भुत सा चमत्कार भर उठा था काश्मीर की धरती पर। फरवरी मार्च के अन्त होते ही वर्फ के नीचे से नन्ही नन्ही कोंपलें, सिर पर छोटे छोटे हल्के नीले पीले लाल काशनी फूलों को सजाये मौसमें बहार के स्वागत के लिये सभी जगह मौजूद थीं। सूखे पेड़ों

की काली पड़ी टहनियाँ, नन्ही-नन्ही नाजुक पत्तियों से एकाएक ऐसे भर उठीं जैसे किसी कुशल शिल्पी द्वारा इन को तराशा गया हो। फिर तो सखत डंठलों को फोड़ कर सफेद प्याजी बैंगनी रंग की कलियां और फिर फूल ही फूल रंग-बिरंगें नगीनों से हर तरफ झिलमिला उठे।

सारी वादी चेरी, बादाम, खुबानी, के बेशुमार फूलों से महक महक उठी। सारा वातावरण जैसे खुशी और सुंगधि से परिपूर्ण हो उठा था।

यह जो बीच का यखवस्ता (ठिठुरता) समय गुज़रा था। यह भी नहीं था कि यह दो ढाई महीने बेतुके, बेमानी गुज़रे थे।

रात एक डेढ़ बजे तक इनका तो लेखन कार्य चलता रहता था उसी के अनुपात से सिग्रेट के धुऐं से वन्द कमरे में गंध भर जाती पर मेरे शुरू के एक शौक ने मुझे हर परिस्थिति में संभाले रखा। अपने बावू जी के शिक्षक होने से घर में साहित्यिक पत्र पत्रिकायें तो थीं ही पर साहित्यिक पुस्तकों के नाम पर मुंशी प्रेमचन्द तथा उपेन्द्रनाथ अश्क के अतिरिक्त प्रभाकर के कोर्स की कितावों द्वारा केवल हिन्दी लेखकों से ही अधिक परिचय था, प्रसाद, पंत निराला, महादेवी वर्मा मैथिली शरणगुप्त तथा वच्चन जी की मधुशाला आदि से आगे कुछ जानने समझने को कभी कुछ मिला ही नहीं था। पर इन दिनों श्रीनगर में साहित्य की एक नई दुनिया से परिचय हुआ। यह नई दुनिया थी विश्व भर के प्रसिद्ध लेखकों की हिन्दी अनुवाद कृतियां। बंगला साहित्य के शरतच्चन्द्र, रविन्द्रनाथ यह सब पुस्तकें तो इनके अपने पास ही सहज सुलभ थीं। जब कि पाश्चात्य लेखकों की हिन्दी अनूदित कृतियाँ सूरज द्वारा लाइब्रेरी से मंगवा दी जातीं।

स्पार्टाकस, गोगोल का यामा. द. पिट पर्लबक, टामस हार्डी की "टैस्स" दोस्तोंव्हसकी का जुर्म और सज़ा, पिता और पुत्र, वुदरिंग वहाईट को लाल महल के नाम से पढ़ा था। मैक्सिम गोर्की का "मेरे जीवन की पाठशालायें से लेकर पूरा रूसी साहित्य पढ़ने का सौभाग्य मिला। बोरिस पास्तरनाक का "कैंसर बार्ड" तथा मार्क टवेन का "टाम काका की कुटिया" तथा तुर्गनिव का "मेरा पैहला प्यार" के अतिरिक्त हैन्स एंडरसन की बाल मनोविज्ञान की कहानियों ने नई दृष्टि से संसार को देखने का मार्ग प्रशस्त कर दिया था। अनोतोले फ्रांस की "थायस" एवम भगवती चरण वर्मा की 'चित्र लेखा' ने एक तुलनात्मक दृष्टिकोण को जन्म दिया था। टालस्टाय

का युद्ध और शान्ति इन की भी प्रिय पुस्तक थी। यह ठीक था घर में चाहे भौतिक सुख सुविधाओं का तो कहीं दूर दूर तक नामोनिशान नहीं था। फिर भी आत्मतुष्टि तो भरपूर थी ही। उस समय रेडियो स्टेशन को कला का गढ़ माना जाता था य फिर बुद्धिजीवियों का संगम कहना ही अधिक उचित होगा। इन्होंने यह सभी महान रचनायें स्वयं भी पढ़ी थीं और इन्हीं के कारण मुझे भी पढ़ने जानने का अवसर मिलता रहा। हाँ उर्दू में मीर गालिब फैज़ आदि को पढ़ना और समझना मेरी समझ से एकदम परे था। उर्दू के लिये इनकी अपनी एक अलग दुनिया थी।

उस समय रेडियो काश्मीर में एक से बढ़ कर एक लेखक, शायर, विद्धान थे, जिनके सान्निध्य में एक उर्दू स्क्रिप्ट राइटर एक नौज़वान लेखक के लिये बहुत बढ़िया मौका था, उर्दू जुवान में अपनी कलम की धाक जमा कर पूरे हिन्दोस्तान के बुद्धिजीवी लोगों में शामिल होने का। पटना निवासी उर्दू कहानी तथा उपन्यास कार सुहेल अज़ीमा बादी, उर्दू कवि सर्व श्री कमाल अहमद सिद्धीकी, जनाव सलाम मछली शहरी, उर्दू कहानी कार प्रेम नाथ परदेसी, गुलाम रसूल नाज़की, अली मुहम्मद लोन जैसे प्रवुद्ध लेखकों द्वारा रेडियो स्टेशन में नये नये फीचर, संगीत रूपक लिखे जाते, रिहर्सलें होती। कालिजों के प्रोफैसरज़ अपने अभिनय तथा मंजी शैली द्वारा इन प्रोग्रामों में चार चाँद लगाते।

इस बात का मुझे हमेशा एक अफसोस रहा तथा अपने पर दया भरी खीझ रही कि मैं कितनी नासमझ तथा बेवाकूफ थी कि रेडियो काश्मीर में जो उर्दू का बेहतरीन लेखन था उसका कहीं नामोनिशान नही हैं हमारे पास। झलकियाँ संगीत रूपक ड्रामें, स्टेज नाटक जिनकी प्रंशसा के पुल रेडियो की मीटिंगस में तथा श्रोताओं द्वारा बाँधें जाते थे, सराहे जाते थे। तब का लिखा एक शब्द भी मैंने नहीं सहेजा। यहाँ तक कि ड्रामा प्रातियोगिताओं में प्रथम पुरस्कार प्राप्त स्टेज नाटक "एक कदम, एक मंजिल" का एक पन्ना भी नहीं है हमारे पास केवल कुछ एक उस समय के निमंत्रण पत्रों के सिवाये। लेखक को तो न कुछ संभालने की प्रवृत्ति उस समय थी न आगे कभी आज इस समय तक रही है ।

उन दिनों शेरे काश्मीर पार्क में एक आम जनता के लिये भी सर्व भाषी मुशायरा आयोजित किया गया था रेडियो काश्मीर द्वारा जिसकी

अध्यक्षता स्वयं जवाहर लाल नेहरू ने की थी। उस में यश शर्मा ने "करसान" नाम की कविता पढ़ी थी।

कविता

1. कुस ने एह् करसान बनाया ?
इश्वर दे घर सब्बै इक्कै
कुन्न बनाए बड्डे निक्के
कुसे गी लक्खा, कुसेगी धिक्के
साहूकारें गै लुट्टी धूड़ी
इसगी भूत मसान बनाया
कुसनें एह् करसान बनाया ?

2. दुनिया दे रिजका दा दाता
दिखो लोको! न्हेर साँई दा
इसगी रूट्टी दा बी घाटा
दूएँ दे घर सुरग बनान्दा।
अपना घर शमशान बनाया।
कुसने एह् ....

3. एह्दा रोह् रोके नेंई रूकना
एह्दा कोप ऐ बड़ा भयंकर
धनवानें राजें रजवाड़े
सीस नवानें अग्गे झुकना
आपूं अपनी रत्तू उपर, जुकें गी बलवान बनाया
कुसने एह् ....

अर्थात :-

1. ईश्वर के घर में तो सभी एक समान ही हैं, फिर यह ऊँच नीच का प्रश्न क्यों ?

किसी के पास तो लाखो करोड़ो की अपार धन दौलत है। किसी

के नसीव में दर दर की ठोकरें हैं। स्पष्ट है कि इन्ही धनवानों ने ही कृषकों को लूट खसोट कर भूत प्रेत, मसान जैसी स्थिति में पहुँचाया है।

किसने बना दिया है ऐसा यह धरती का बेटा ?

2. खेतों में कड़े परिश्रम द्वारा अन्न उगाने बाला दूसरों का पालन पोषण करता है। ओ जग बालों, यह कैसा अंधेर है कि, दूसरों का पेट भरने वाला स्वयं अपनी भूख मिटाने के लिये दो मुट्ठी अन्न के लिये तरसता है। दूसरों के धरों को स्वर्ग बनाने वाले का अपना घर शमशान बना हुआ है। यह कैसा किसान है ?

3. अगर किसान क्रान्ति पर उतर आयेगा तो ज्वाला मुखी से भी भयंकर होगा इसका रोष। समाज के शोषण कर्त्ता उच्च वर्ग के धनाढय, राजे रजबाड़े जागीरदार सेठ साहूकार सभी इसके सामने सिर झुकाने को बिवश हो जायेंगे क्योंकि यह सब जोकें इस निर्धन मेहनती किसान का रक्त पी कर ही शक्ति संपन्न हो रही हैं। यह कैसा कृषक है जो चुपचाप अपना रक्त पिला पिला कर इन को बलवान बना रहा है ?

मुशायरे के उपरान्त सभी कवियों से नेहरू जी मिले तो इस कवि का नाम जस शर्मा कहने पर इन्होंने हंसते हुए सुधारा कि मेरे नाम यश शर्मा है। मैंने भी पहली बार ही मंच पर इनको कविता पढ़ते देखा था। इस युवा कवि के कंधे पर हाथ रख कर कुछ समय बात करते रहे थे नेहरू जी। इस कवि मंडली में शायद यही सब से छोटी आयु के थे।

उस समय मुज़तर हाश्मी साहिव इतने खुश थे जैसे कि, मंच पर उनका कोई अपना ही सस्वर कविता पाठ कर रहा हो।

मैं जम्मू में थी तो हाश्मी साहिव दिल्ली चले गये थे। दिल्ली के बल्ली मारान कूचे की जाने किस गली में लुप्त हो गये होंगे। संसार का यही नियम है, जाने इस महासागर में लहरें कहाँ विलीन हो जातीं हैं।

बात तो शुरू की थी कलाकार की पत्नी को प्राप्त होने बाले कठिन सौभाग्य की। अप्रैल के आंरम्भ में ही एक कलाकार का अपनी पत्नी तथा दो बच्चीओं सहित घर में आगमन हुआ, बिना किसी भी सूचना के।

रेडियो स्टेशन के निकट घर होने से प्रायः ही लेखकों कविगणों आदि का आना जाना लगा ही रहता था। इन कलाकार की तेजस्वी आकृति, लम्बी सफेद दाढ़ी वैसा ही कुर्त्ता-पाजामा तथा कंधे पर झोला-

पहली झलक में तो चित्रों में देखी श्री रविन्द्रनाथ टैगोर क़ी छवि जैसा ही भ्रम हुआ। साथ में साँवली सी सौम्य पत्नी, दो बेटियाँ, यह परिवार दिल्ली से काश्मीर घूमने आया था।

उन्होंने अपना परिचय देबेन्द्र सत्यार्थी देते हुऐ निःस्संकोच भाव से बताया कि मैं 1950 से यश जी का परिचित हूँ। जब वह धर्मशाला के अपने मित्र सोम प्रदीप के साथ दिल्ली आये थे। हम लोग कनाट पलेस स्थित काफी हाऊस में शाम के समय मिला करते थे।

इसी परिचय के साथ झोले मे से दो पुस्तकें पेन निकाल कर मेरा नाम पूछा तथा मुझे भेंट स्वरूप थमा दीं। जाहिर है कि कुछ अच्छे विशेषण भी मेरे नाम के आगे जुडे थे। विभिन्न प्रदेशों के लोक गीतों और उनकी बानगियों पर काम कर रहे थे सत्यार्थी जी। उसी सिलसिले में उनका यहाँ आना हुआ था। तब तक यह स्वंय भी रेडियो स्टेशन से घर आ गये थे, जैसा कि इनका अपना ही सुआत्म है, बड़े खुले मन से उनसे मिले। सत्यार्थी जी तो तीन दिन ही घर रहे, वह भी सुवह सवेरे चाय नाश्ता के बाद देर रात दस, साढे दस वजे ही वापिस लौटते, बाहर से ही खा-पी कर। इस के पश्चात यह आश्वासन देते हुऐ कि, हफ्ते दो हफ्ते में वापिस आ जायेंगे। लेह लद्दाख के लोक गीतों के अनुसंधान तथा संग्रह के लिये चले गये।

जब कि जाने के बराबर दो महीने तक भी उनका कहीं अता पता नही था। गनीमत थी कि, अभी तक छोटा बड़ा दोनों क्वाटर हमारे पास ही थे उस समय तक।

चौदह पन्द्रह बरस की उनकी भावुकभना बड़ी बेटी कविता, जो कि शक्ल सूरत में अपने पिता से काफी मेल खाती थी, मेरे साथ किचन तथा वर्त्तन कपड़ों की धुलाई में पूरा पूरा हाथ बंटाने की कोशिश करती। मुझे लगता कविता अपनी माँ के शर्मिन्दगी भरे चेहरे से आहत होती रहती थी।

इस सब को समझते हुए, उनकी बेवसी को देखते हुए घर के माहौल को हल्के से हल्का तथा अपनेपन से भरने की कोशिश मैं करती रहती पर कविता की समझदार माँ के मन पर अवसाद की छाया दिन-ब-दिन गहराती जा रही थी। बड़ी हैरानी की बात थी कि, अपने पति के इस गैर ज़िम्मेदाराना रवैये के लिये उन्होंने कभी एक शब्द तक नहीं कहा था। सैर सपाटे के नाम पर मैं सिर्फ दुर्गानाग मन्दिर तथा शंकराचार्य पहाड़ी पर स्थित

शिव मन्दिर तक ही उन्हे ले जा पाई थी, फिर तो वह स्वयं ही अपनी छोटी बेटी के साथ अपने आप ही प्रत्येक सोमवार को शंकराचार्य मन्दिर चली जाने लगी थी क्योंकि वह हमारे घर से कोई ज्यादा दूर नहीं था।

य फिर कभी दोपहर को हम लाल चौक होते हुऐ, अमीरा कदल पुल पार कर पंचमुखी हनुमान जी के मन्दिर चले जाते। वापसी पर जेहलम नदी के किनारे बंड से होते हुए घर आते।

कभी प्रताप पार्क य घर के पास के शेरे काश्मीर पार्क के रंग बिरंगे फूलों को जल्दी जल्दी निहार लेते। बस हम लोगों के लिये इतनी ही काश्मीर की शोभा पर्याप्त थी। निशातवाग, शालीमार, चश्माशाही, हारबन आदि का तो नाम ही सुनते थे।

उन्हीं दिनों जम्मू से इनका पाँचवें नंवर का सब से छोटा भाई जो मात्र चौथी क्लास में पढ़ता था, पढ़ने के लिये हमारे पास भेज दिया गया। उसके साथ सोलह सत्रह वर्षीय भाई जो बोल न सकने के बावजूद खूव तेज तर्रार और शौकीन मिजाज़ था। दोनो भाई जम्मू से हमारे पास भेज दिये गये थे। इस प्रकार यह सात जनों का कुनवा एक जने के कंधों पर।

खैर काफी सस्ता ज़माना था। जैसे तैसे गृहस्थी की गाड़ी खिंचती चली जा रही थी।

तकरीवन दो महीनों के पश्चात् एक दिन अचानक सत्यार्थी जी वापिस आ पहुँचे, बिना किसी झिझक संकोच के। उपर से यह तकाज़ा "यश! तुम हमें सिर्फ जम्मू तक की टिकटें ले दो, आगे दिल्ली तक का प्रवंध स्वयम् कहीं न कहीं हो ही जायेगा। जम्मू तक की बस की टिकटें लाने में इन्होंने जरा भी आनाकानी नहीं की, जब कि इन टिकटों के पैसे अक्टूबर महीने में दिवाली पर जो साठ रूपये एडबान्स में मिले थे उनसे चुकता किये गये थे। घर से विदा होते वक्त कविता की माँ आवेग भरे कंठ से जाने क्या बुदबुदाई थीं। परन्तु कविता के सुन्दर नयन अश्रु पूरित थे।

मगर मुझे इस बात का अफसोस था कि, यह लोग कोई भी प्रसिद्ध स्थान देख नहीं पाये थे।

इस सब का ज़िक्र मुझे इसलिये करना पड़ा कि, इस सारे प्रकरण में मेरी भूमिका महज़ एक यंत्रकी सी ही थी। क्योंकि किसी से भी कभी कुछ चाह न रखने वाले अपने स्वाभिमानी पति के करूण एवम् संवेदेनशील

मन को मैं अच्छी तरह पहिचान चुकी थी। उस फक्कड़ लेखक सत्यार्थी के प्रति इनके मन में केवल सहानुभूति ही अधिक थी, क्योंकि यह जानते थे कि उन दिनों के प्रवुद्ध लेखक समाज में सत्यार्थी जी का लोक गीतों के संकलन तथा कुछ एक रेखा चित्र लिखने के सिवाय और कोई मौलिक योगदान नही था।

वर्षों बाद 28 अक्टूबर 2005 को सुरेश सेठ द्वारा दैनिक जागरण में "विरासत का मैला होता आँचल" शीर्षक का लेख पढ़ने को मिला। वह इस लेख में सत्यार्थी जी का ज़िक्र करते हैं कि"

(देश में साहित्य, कला और संस्कृति के साथ जो सौतेला ब्यवहार सत्ता के कर्णधारों द्वारा किया जाता है, वह किसी से छिपा नहीं। इसी में सत्यार्थी का नाम कहीं खो गया। लोक साहित्य और लोक संस्कृति के चितेरे गुमनामी और अर्थाभाव में जीते हैं। स्मृतिओं के जीर्ण शीर्ण संग्रहालय में कोई झाँक कर भी नहीं देखता तब) 1952 में श्रीनगर में आने वाले सत्यार्थी परिवार के चेहरे एक एक करके स्मृतियों में कौंधने लगे। सत्यार्थी जी की रविनद्रनाथ टैगोर से कुछ कुछ मिलती आकृति लोगों को बहुधा आकर्षित करने में समर्थ रहती थी। जब कभी यश अपने खुले-डुले स्वभाव के चलते हंसते हुए अपनी सुरीली आवाज़ में "अजगर करे न चाकरी, पन्छी करे न काम, मलूक दास की रचना की इस पंक्ति को गाते तो इस मज़ाक को भी सत्यार्थी जी अपनी दाढी सहलाते हुए "यश। तुम सच कहते हो स्वीकारते हुए सहज सी हंसी में उड़ा देते। फिर सआदत हसन मिंन्टो की कहानियों के पात्रों का ज़ोरदार तब्सरा शुरू हो जाता दोनों ने ही खूव पढ़ रखा था मंटो को।

अपनी पुत्री सीमा को संगीत की उच्च्व शिक्षा दिलवाने के लिये जब यह दिल्ली गये तो, प्रसिद्ध गायक श्री मनमोहन पहाड़ी जी, हंसराज पंडोत्तरा तथा देवेन्द्र सत्यार्थी जी ने अच्छा गुरू तलाशने में बहुत योगदान दिया था। सत्यार्थी जी उन दिनों सीमा के मामा के घेर के पास देवनगर में लिवर्टी सिनेमा के पास की गली में रहते थे और अक्सर मिलते रहते थे। बहुत दिनों बाद ख़बर लगी कि कविता शादी के कुछ चिर पीछे ही चल बसी थी। यह जान कर मन अवसादग्रस्त हो गया कि, पता नहीं कविता ने फिर कभी दुवारा सुखी मन से कश्मीर देखा भी होगा य नहीं।

यह कथा तो एक कलाकार और उसके परिवार की थी अब अपनी कहूँ।

जैसे तैसे हड्डियां कंपा देने वाले बर्फीले मौसम से छुटकारा मिलने पर अब सब जगह नर्म नर्म घास के हरे गलीचे विछ गये थे। जहाँ नर्म नर्म घास थी वहीं ढेरों ढेरों छोटे छोटे मुस्कराते फूलों से धरती ढंक गई थी। इस कालोनी के इकलौते नल के पास एक मात्र चैरी का जो पेड़ था उसकी टहनियां सफेद वैंगनी फूलों से लद चुकी थीं। शेरे कश्मीर पार्क में भी रंग विरंगे फूलों की छटा लहरा रही थी, बस, मेरा नंदन बन तो यहीं तक सीमित था। सुनने को ही मिलता कि, मौसमें बहार आने पर झील डल में रंग बिरंगे पक्षियों जैसे तैरते शिकारे देशी विदेशी पर्यटकों के कारण गुलज़ार हो उठते हैं, य फिर कोई बादामी बाग भी है यहाँ बादामों के खिले शिगूफे की सुगन्धि तथा स्थानीय लोगों के समोवारों से उठती काश्मीरी कहवे की महक को अलग अलग पहिचान पाना मुशकिल होता है। और तो और नरगिस के फूलों को भी अपनी उदास आँखों से किसी की राह तकते देखने की ललक मन में ही दब घुट कर रह गई थी।

मेरे हिस्से में तो बहार का पहला शिगूफा सत्यार्थी परिवार ही था। ग्रीष्म कालीन राजधानी श्रीनगर होने से दरवार मूव के कारण सैक्रेटेरियट तथा अन्य बहुत से कार्यालय जम्मू से कश्मीर स्थानांतरित हो जाते हैं। जम्मू से लोगों को कार्यालयों में जरूरी काम करवाने के लिये ही श्रीनगर आना पड़ता था, ज़ाहिर है कि मध्यमवर्गीय लोगों को होटलों मे रहने की हैसियत न होने के कारण किसी परिचित य संबंधियों के यहाँ ही आश्रय की तलाश रहती है। अगस्त आते-आते श्री अमरनाथ तीर्थ यात्रियों की सेवा द्वारा पुण्य अर्जित करने का सौभाग्य भी भरपूर मिलने लगा था। जम्मू और बसोहली से आवश्यक कार्य वश श्रीनगर आये मेहमानों के जमघट को ही नियति मान लेना पड़ रहा था। किसी के भी प्रति मेरा रवैया इनको नागवार न लगे उसके लिये भी झूठा मुखौटा ओढना मुझे पर बहुत भारी पड़ता था। अपनी माँ बावू जी तथा सहेलियों को लिखे पत्रों में ऐसा झूठ गढ़ा जाता जो उन के मन प्राणों को, सुख से आनन्द से पुलकित कर देता, होली के से रंगों की फुहार से सराबोर कर जाता था पर सच यह था कि यही प्रार्थना मन में उठती कि हे भगवान कब यहाँ से इन सारे झमेलों, उत्तरदायित्त्वों से छुटकारा मिलेगा फिर एक दिन मनचाही मुराद पूरी हुई थी।

1954 में हम जम्मू आ गए जीवन को सरल स्पष्ट सुलझी हुई दृष्टि से देखने, जानने का अवसर मिला था। सुख की सार्थकता में मन डूब डूब जा रहा था। सम्मिलत भरे पुरे कुटुम्ब के वट-वृक्ष की घनी शीतल छाया में निश्चिन्तता का सुखद एहसास, चिन्ता मुक्त सुवह सवेरा, परिजनों की गहमागहमी से रौनक तथा अपनेपन से भरी भरी सी साँझें, यह सब भावी जी (सास दुर्गा देवी) के उदार स्नेह से ही संभव हो पा रहा था।

अपने घर परिवार से परे जम्मू के उस समय के कुछ एक व्यक्तित्त्व आज तक हमेशा याद आते रहे हैं। उनमें से एक थीं बज़ीर आसु की हवेली तथा उस की मालकिन "माँ जी,। कच्ची छावनी की बाँयीं ओर आरम्भ में ही मुड़ने वाली टाँगेबाली गली से कुछ ही आगे जाने पर दिखने लगती है यह हवेली। अभी तक भी जीर्ण-शीर्ण अवस्था में जैसे.तैसे खड़े इस खंडहर के साथ कुछ कोमल स्मृतियां जुड़ी चली आ रही हैं। इसलिए नही कि हमारे बावू जी इन्हीं बज़ोरों की संपत्ति जो, कोर्ट आफ बार्ड के अधीन थी, उस का सारा प्रवंध वही करते थे। नहीं, इसी हवेली के साथ ऐसा घटना क्रम जुड़ा था, जिससे मनुष्य के मन की विचित्रता को निकट से समझ कर आगामी जीवन की राह पर चलने में सुविधा हुई थी, जो आज तक भी बल देती आ रही है। पर वह सब फिर कभी।

श्रीनगर से जम्मू आये अभी शायद दो महीने भी नहीं गुज़रे थे तो एक दिन रेडियो स्टेशन से दोपहर को यह घर आये, साथ में एक चौवीस पच्चीस वर्षीय, दुवला पतला नौजवान, उन्नीस बीस वर्षीय पत्नी एवम् सात आठ माह की स्वस्थ गोल मटोल सुन्दर बच्ची। इन का नाम सुर्दशन कौशल था यह वही सुदर्शन कौशल थे, जिनके भाई रमेश कौशल के गाये लोक गीत "लच्छी बड़ी सूरतां वाली" की लहराती स्वर लहरियों का ज़िक्र पहले धर्मशाला के एक मुशायरे के बाद सोम प्रदीप के बंगले में सभी को मंत्रमुग्ध कर गया था।

सामान के नाम पर एक छोटा सा बैग, जिसमें पति-पत्नी के दो तीन जोड़े कपड़े, बच्ची के फ्राक वगैरा तथा दूध की बोतल, बस। इस दंम्पत्ति का आठ नौ महीने रहने का प्रवंध भाबी जी ने बजीरनी जी के हबेली की ऊपरी मंजिल के कमरे को धुलवा पुंछवा कर गुजारे लायक करवा दिया था। कौशल को एक प्राईवेट स्कूल में अध्यापन कार्य तथा दो तीन टयूशनें भी दौड़ धूप कर के दिलवा दी गई थीं। कवि होने के नाते डोगरी

संस्था का भी जहाँ कहीं कोई कार्यक्रम होता कौशल साथ होता।

सुदर्शन कौशल की कविता की एक छोटी सी पंक्ति मुझे आज भी याद है, "जली जायो फिरंगीये दा राज-टोपूये खाई लेया ताज," इस कटाक्ष भरी कविता का अर्थ था कि "जल जाये अंग्रेजों का राज्य, एक मामूली सी टोपी ने इतने बड़े ब्रिटिश ताज को खा लिया", अर्थात् गाँधी जी की टोपी किस प्रकार कोहेनूर जड़े स्वर्ण ताज से महत्तर सिद्ध हुई थी। इन्हीं दंपत्ति के धर्मशाला से कुछ संवंधी आये थे और इस परिवार को सादर धर्मशाला वापिस ले गये थे। धर्मशाला के गर्वनमेंट स्कूल में मुख्याध्यापक के पद पर कार्य करते हुऐ प्रगतिशील विचारों की कविता लिखते तथा मीठे स्वर में मंच पर सराहनीय प्रस्तुति करते थे कौशल।

फिर तो कई वार धर्मशाला के मुशायरों में दीप, मधुकर, यश जो वहां भी तिकड़ी के नाम से जाने जाते थे अन्य कवियों के साथ जाते, जिनका आयोजन कौशल द्वारा किया जाता था।

वास्तव में इस घटना का ज़िक्र यहां इस लिये नहीं किया जा रहा कि, किसी के आने जाने य रहने सहने की चर्चा अभीष्ट है। असल बात तो नारी सुलभ अपने दुर्वल मन की प्रवृत्ति को मूर्त्त करने की है। यह सच था कि श्रीनगर में दूसरों के लिये दिन रात खटते रहने की कसक, कड़वाहट तो थी ही मन में। कौशल संदर्भ के बहाने माँ से पूछने का साहस जुटा ही लिया कि, जब धर्मशाला में य और कहीं कभी कभार कोई मुशायरे आदि का आयोजन होता है तो जम्मू से बहुत सारे गण्यमान्य घर गृहस्थी वाले कवि भी तो जाते ही हैं। फिर वाहर से आने वाले सीधी हम पर ही क्यों कृपादृष्टि करते हैं, दूसरे लोगों के पास क्यों नहीं जाते हैं ? बिना किसी हिचकिचाहट के इन्ही के पास यानि घर में क्यों लोग चले आते हैं। मुझे स्वयं भी महसूस हो रहा था कि यह सब कहते हुऐ मेरे स्वर में अवश्य एक तिक्तता, एक शिकायत झलक पड़ी थी।

भाबी जी कुछ समय तक खामोशी में डूबी सी रहीं, मेरे प्रश्न को कहीं खंगालती रही होंगी कि, "मैं इर्ष्यालु हूँ, असहनशील हूँ, स्वार्थी हूँ, संकीर्ण हूँ, स्नेह हीन हूँ य फिर उनके कलाकार पुत्र के भविष्य की रेतीली, खोखली सी नींव ही हूँ।

फिर बिना मेरी ओर देखे धीरे से बोलीं कि, "नदी समुन्द्र की ओर

ही जाती है जोहड़ की तरफ नहीं"।

हस्ताक्षर के नाम पर अंगूठा भर लगाने बाले व्यक्तित्त्व की यह कैसी सोच थी। हृदय के इस दर्शन के सामने किसी तर्क की गुंजाइश ही कहाँ थी। मेरे पास भी क्या शेष बचा था इस सत्य को जान लेने के सिवाय कि, सामने बैठी यह संवेदनशील नारी, कोमल मना "गीतों के राजकुमार" मेरे पति की जननी है। साथ ही दिशा भी सुझाई दे गई कि, कवि लोग साधारण आदमी से परे कुछ जटिल से ही होते हैं। सो जीवन की राहें सहज नहीं होंगी। माँ के प्रति सम्मान बोध तो निश्चय ही बढ़ा था। अपने कलाकार पति की भावनाओं को ताज़े फूल की तरह खिले रहनें, सहेजनें में यथाशक्ति योगदान देने का भी साहस दृढ़ हुआ था।

युनान के प्रसिद्ध दार्शनिक अरस्तु का कथन है कि, "ईश्वर जब धरती के जीवों से बात करना चाहता है तो कवियों की वाणी से बोलता है"। (तो इसी कवि वाणी द्वारा) डोगरी के लेखकों कवियों को सुनने जानने का एक सुनहरा अवसर जम्मू में कभी कभार मिलने लगा था। डोगरी संस्था की इस साहित्यिक मंडली का तब तक कोई स्थायी आफिस नहीं था। सुनने में आता था कि फत्तू-के-चौगान में श्री धनिराम की चाय की दुकान जो "द न्ने की हट्टी" के नाम से प्रसिद्ध थी वहाँ य फिर किसी न किसी कवि के घर पर ही यह कवि गोष्ठियां सम्पन्न हुआ करती थीं। कवियों की कवितायें सुनने का, उनको देखने का बहुत उत्साह था मन में क्योंकि यह व्यक्ति कालजयी शब्दों के सृष्टा होते हैं। इन की कला सृष्टि में जड़ भी अमृत की संजीवनी से प्राणवान हो उठता है। एक दो बार हमारे कच्ची-छावनी वाले घर में भी कवि गोष्ठियाँ संपन्न तो हुई परन्तु चाय पानी पहुँचाने के सिवाये अधिक सुनने का समय नहीं मिल पाया। इतना आज संतोष अवश्य है कि बहुत से कवि लेखक जो, जा चुके हैं उनसे कभी कभार परिचय का अवसर अवश्य मिलता रहा था। विशेषतया कवि मधुकर जी की पत्नी निर्मला जी से मेरा उन दिनों ही स्नेह संबंध प्रगाढ़ हुआ था।

तभी जम्मू रेडियो स्टेशन में एक सनसनीखेज़ बंवडर उठ खड़ा हुआ था। जिसका सीधा असर डोगरी संस्था से जुड़े और रेडियो स्टेशन में कार्यरत डोगरी साहित्य के दो स्तम्भों पर पड़ा था यानि उन की घर गृहस्थी पर गाज टूट पड़ी थी। यह दो स्तम्भ थे केहरि सिंह मधुकर और मेरे पति यश शर्मा।

इस सब से पहिले यह ही कहना आवश्यक है कि बास्तव में तब हुआ ही क्या था ?

क्योंकि इस धटना का ज़िक्र कुछ एक डोगरी साहित्य के इतिहासकारों ने अपने अपने ढंग से किया है।

पर यर्थाथ यह था कि, उस समय जम्मू रेडियो स्टेशन तथा श्रीनगर रेडियो स्टेशन रियास्ती हकूमत के अधीन थे। उन्ही दिनों रेडियो कश्मीर जम्मू का विलय केन्द्र के साथ हो गया। अखिल भारतीय आकाशवाणी में होने वाले इस विलय की बात यहाँ के कुछ एक वरिष्ठ साहित्यकारों, कूटनीतिज्ञों तथा तत्कालीन अफसरशाही के गले नहीं उतरी-तब तक डोगरी संस्था ने भी मौजूदा शासकों से हाथ मिला लिया था।

एक सोचा समझा षडयन्त्र रचा गया। रेडियो में कम वेतन पाने वाले कलाकारों की हमदर्दी का मुद्धा उठा कर रेडियो में ही अच्छा काम करने वाले कलाकारों को उनका साथ देने के लिये उकसाया गया। इस सारे आंदोलन के अगुआ थे केहरि सिंह मुधकर। तीन दिन रेडियो स्टेशन में हड़ताल रही जो भारत के ब्राडकस्टिंग इतिहास में अपने आप में पहली घटना थी। डो़गरी संस्था के कुछ अग्रणी व्यक्तियों ने इन स्टाफ, आर्टिस्टों की खूव पीठ थपथपाई और सहायता के आश्वासन दिये। इस सारे घटना क्रम में हड़ताल पर बैठे अभावग्रस्त कलाकारों के हौसले पस्त हो गये। उन्होंने नौकरी से निकाले जाने के डर से क्षमा याचना का आवेदन कर पुनः कम बेतन वाले काँट्रेक्ट पर साईन कर दिये। स्वार्थी तत्त्वों ने एक दम चुप्पी साधे ली और इस पूरे घटनाक्रम से आँखें फेर लीं। इस सारे प्रकरण में कुछ कलाकारों को बलि का बकरा बना दिया गया और उनके अनुबंध हमेशा के लिये समाप्त कर दिये गये। मधुकर कुछ स्टाफ आर्टिस्टों के साथ दिल्ली जा कर चीफ प्रोडयूसर एस. एस. ठाकुर से भी मिले, उन्होंने भी असंभव कह कर टाल दिया। (यहाँ पर मधुकर जी की पत्नी निर्मला के ही शब्दों में) "यह एक ऐसी त्रासदी थी जिसने उनके (मधुकर) अहम् को चकनाचूर कर दिया, जिसकी काली परछाइयाँ अन्त तक उनके साथ रहीं"। मधुकर कभी तो कुछ स्वार्थी मुखौटा चढ़ाये लोगों के विरूद्ध जम कर बरसते थे, फिर तो उनकी यह एक आदत सी बन गई थी। दबंग, निडर, उच्दृंखल उद्दंड। मुशकिल से लीक पर चली निर्मला की घर गृहस्थी के लिये यह एक बहुत बड़ी दुर्घटना सावित हुई थी।

जिन चार कलाकारों के अनुबंध समाप्त कर दिये गये थे, वह थे मधुकर, यश शर्मा, वेद राही तथा विजय सुमन।

कुछ समय पश्चात् मधुकर का उपद्रव न सह पाने के कारण उन्हें कल्चरल एकेडमी में एडजस्ट करने की योजना बनी थी। बेद राही जी बहुत सी राहों से गुज़र कर अन्ततः बाम्बे चले गये। विजय सुमन जी उर्दू पत्रिका गुलाव का सम्पादन करने लगे और बहुत देर तक जी न सके। रह गये यश शर्मा। यदि इनके सिर पर श्री हरिवंश राय बच्चन का वरदहस्त न होता तो हमारी गृहस्थी की डोलती नाव शायद ही किनारे लग पाती।

मुझे आज भी याद है, इस दुर्घटना की ख़वर हास्य अभिनेता स्वर्गीय बलदेवचन्द जी जो कच्ची छावनी में हमारे निकटतम पड़ोसी थे, उस दिन दोपहर को लाये थे। उनका बेटा सूरज मुझे बुलाने आया था। सब जान लेने पर मैंने उन से प्रार्थना की थी कि, इस बात का ज़िक्र घर में और किसी से बिलकुल न करें। शाम को इनके घर आने पर हमने चुपके से सलाह मशविरा किया और चुप्पी साधे रहना बेहतर समझा। हम जानते थे कि, प्रत्येक मनुष्य के कुछ अपने निजि दुःख सुख होते हैं, किसी दूसरे को क्या दिलचस्पी हो सकती है। भगवान ने एक हमारी अवश्य सहायता की थी कि, माँ भी कुछ दिन पहले ही बसोहली चली गई थीं।

इस घटना को वर्षों के पश्चात् कुरेदने की आवश्यकता कदापि न होती यदि 2001 में प्रकाशित मधुकर अंक में प्रोफेसर नीलाम्बर देव शर्मा जी द्वारा लिखित "कवि केहरी सिंह मधुकर" नाम के लेख में पृष्ठ संख्या 115 में यह वाक्य पढ़ने को न मिलते :-

"मधुकर, यश शर्मा, जितेन्द्र शर्मा, ते राम कुमार अबरोल, एह सब्भै मेरे जमाती बी हे - जम्मू रेडियो चं स्टाफ आर्टिस्ट दे तौर पर कम्म करदे हे। पर उन्दे अनुबंध बड़ी घट्ट अवधि दे होंदे हे। इस करी जम्मू रेडियो दे स्टाफ आर्टिस्टें हड़ताल करी ओड़ी। डोगरी संस्था ने स्टाफ आर्टिस्टें दी हमायत कीती, पर रेडियों आले अपनी नीति नेईं बदली ते मधुकर, यश शर्मा बगैरा दे अनुबंध खत्म करी दित्ते गे। वाह्द च इनें सब्भने गी रेडियो च मुड़िये भरथी करी लैत्ता गेया पर मधुकर होर रेडियो च बापस नेईं आये"। अर्थातः मधुकर, यश शर्मा, जितेन्द्र शर्मा तथा राम कुमार अबरोल यह सभी मेरे सहपाठी भी थे और बतौर जम्मू रेडियो में स्टाफ आर्टिस्ट काम

भी करते थे। पर उनके अनुबंधों की समय अवधि बहुत कम होने के कारण रेडियो के स्टाफ आर्टिस्टों ने हड़ताल कर दी। रेडियो वालों ने अपनी नीति न बदलते हुऐ मधुकर यश शर्मा आदि के अनुबंध समाप्त कर दिये। कुछ समय पश्चात् इन सब को रेडियो में फिर से भर्त्ती कर लिया गया पर मधुकर फिर रेडियों में नहीं आये"। नीलाम्बर जी भूल रहे है, अनुबंध स्माप्त मधुकर तथा यश के साथ वेदराही और विजय सुमन के हुए थे।

यहाँ पर :- इसे मेरा अपना अहं कहा जाये य अपने स्वाभिमानी कवि पति के स्वाभिमान पर (मुड़ियै भरथी) "दुवारा भर्ती" शब्द के हथौड़े की चोट को सह पाना नाग़वार गुज़रा है। पहिले तो श्री नीलाम्बरदेव जी से नम्र निवेदन है कि, किसी के भी प्रति कोई टिप्पणी करने से पहिले संबधित व्यक्ति से जानकारी हासिल कर लेनी अति आवश्यक है।

(मुड़िये भरथी) दुवारा भर्ती, शब्द से ज़ाहिर होता है जैसे अपनी गलती के लिये क्षमायाचना के उपरान्त किसी म्यूनिसिपल कमेटी य किसी फौज के दफतर में पुनः भरती की गई हो।

किन्ही दूसरों के लिये कुछ न कहते हुऐ कि, कोई कैसे "मुड़िये भरथी" हुआ होगा। पर यश शर्मा, इस घटना के पूरे साढ़े सात महीने पश्चात सीधे श्रीनगर में जम्मू रेडियों से मिलने 135 की बजाये 175 पर पुनः नियुक्त हुए थे और कुछ समय पश्चात् उनके कार्य की समीक्षा करते हुऐ तत्काल 250 का आर्डर मिला था। श्रीनगर में 1962 तक लगातार अपने लेखन तथा कार्य कुशलता द्वारा लेखन में तरक्की के सोपान तय करते रहे।

बेरोज़गारी के इन सात महीनों में किसी भी संस्था के सदस्यों की न तो परछाई तक दिखी न ही कहीं चन्द सहानुभूति के शब्दों की मरहम। चलो अच्छा हुआ, नीलाम्बर जी के शब्दों में ही कि "डोगरी संस्था ने तत्कालीन सत्ता से हाथ मिला लिया था" कुछ बुद्धिजीवी साहित्यकारों ने निजि स्वार्थ सिद्धी का भरपूर लाभ उठाया था। डोगरी के क्षेत्र में जब भी कोई नया अध्याय जुड़ता तभी कुछ लोग ही सभी जगह स्वयं ही सत्ता-सीन होते हैं स्वयं य अपने पिछलग्गुओं को ही इस तंत्र की भागीदारी प्रदान करने में सक्षम, इन कूटनीतिज्ञों ने हमेशा लाभ के पदों पर अपना ही सिक्का जमाये रखा।

जभी तो अपनी मातृभाषा के प्रति पूर्णतया समर्पित रहते हुए भी "कवि यश" ने अकेले ही अपनी राह पर चलने का निर्णय कर लिया। एकाध पंक्ति देखिये :

जदूं गीत गाये, मैं इक्कले गै गाये -
कुसे मेरे कन्नें सुआई नीं दित्ती।

अर्थात्: "जब भी मैंने गीत गाये, अकेले ही गाये, किसी ने भी मेरा साथ नहीं दिया।" इस सरल हृदय गीतकार को पहिचानते थे बच्चन जी। परन्तु जब यह दिल्ली गये तो विदेश मंत्रालय में होने से बच्चन जी कहीं बाहर गये थे। मिलने पर इन्होंने सभी सच्ची बात कह सुनाई थी। दिल्ली रेडियो स्टेशन के डी.जी रमेश जी, जिन्हें रमेश चार्ली कहा जाता था, बच्चन जी ने उन से मिलवाया। सारा व्योरा सुनने के वाद उन्होंने पूरी जाँच पड़ताल में पाया कि इन लोगों को किस प्रकार बरगलाया गया था। निर्दोषिता सिद्ध होने पर ही श्रीनगर के लिये नियुक्ति पत्र जारी कर दिया गया था।

यहाँ पर आवश्यकता न होते हुऐ भी इस संत्रास का थोड़ा ज़िक्र कर ही दूँ कि इस समय को मैंने अपनी माँ के पास रह कर चुपचाप झेला था। यह कह कर कि इनको रेडियो जम्मू द्वारा वड़ी पोस्ट की ट्रेनिंग के लिये दिल्ली भेजा गया है।

इस झूठ ने दोनों घरों की मान-मर्यादा की रक्षा की थी, और तब यह भी जान लिया था कि कुछ साहित्यकार सौदेबाजी भी जानते हैं, अपने हित का पलड़ा भारी रखने के लिये दूसरे के पलड़े के घाटे के लिये कहीं कोई शर्मिन्दगी का एहसास तक नहीं होता, खैर अब की रेडियो काश्मीर में नियुक्त होने पर हमने अमीराकदल चौक से मघरमल बाग जाने वली गली में किराये पर घर लिया था। जिसका नाम जाने क्यों चरसगली था, वहाँ चरस तो क्या किसी तम्बाकू तक की भी कोई दुकान तक नहीं थी। यह गली क्या थी एक अच्छा खासा संकरा सा बाज़ार ही था। जहाँ जरूरत का हर सामान मिलता था। अमीराकदल चौक से एक रास्ता हरि सिंह हाई स्ट्रीट की खुली साफ सुथरी चौड़ी सड़क की ओर निकलता था। उधर पंचमुखी हनुमान जी का मन्दिर जो मंथरं गति से बहती जेहलम नदी के किनारे स्थित था, एक रास्ता महाराजा बाजार की ओर जाता था।

इस चौक पर अपने समय के प्रसिद्ध सराफ सरदार महत्ताव सिंह

जी की शानदार दुकान थी। उन्हीं के संबंधी सरदार खेमसिंह तारासिंह का इस चरसगली में बहुत बड़ा तिमंजला घर था। डयोढ़ी से अन्दर जाने पर घर का पहिला भाग किरायेदारों के लिये था। जिसकी उपरी तीसरी मंजिल पर बरामदे साहित अच्छा खुला रौनक दार फलैट हमें मिल गया था। किराया मात्र तीस रूपये। दूसरे किराये दारों में एक अमृतसर का पंजाबी परिवार था तथा दो परिवार मुजफ्फराबाद से 1947 में लुटे पिटे श्रीनगर आये थे जो अब अखरोट गिरी के व्यापार में मालामाल हो रहे थे। मकान मालिक स्वयं भी मुजफ्फराबाद के ही थे। परन्तु यह विशाल भवन उनके पुरखों ने विभाजन से बहुत पहिले बनवाया हुआ था।

क्या घर के मालिक क्या किराये दार सभी एक हंसंता, खेलता सुखी परिवार जैसा। शायद हर शै खूव सस्ती थी इसी लिये कहीं भी कोई संकीर्णता य तंग दिली नहीं थी।

कुल मिला कर उबड़-खाबड़ रास्तों से गुजरती ज़िन्दगी अब फिर कुछ संभल गई थी, समतल रास्ते पर चल पड़ी थी हाँ- जब कि इनकी दिक्कत कुछ जरूर बढ़ गई थी। इस घर से रेडियो स्टेशन कोई दो तीन किलो मीटर के फासले पर पड़ता था। कभी-कभार दो तीन चक्कर भी साईकल से लगाने पड़ते थे। रेडियो स्टेशन के पास वाली रेडियो कालोनी भी म्यूनिस्पैलिटी वालों ने खाली करवा ली थी, क्योंकि यह उसी महकमें के क्वार्टरस थे। जगह चाहे बदल गई थी, नहीं वदली थी हमारे भाग्य में मेहमान नवाज़ी की रंग विरंगी तसवीरें। फिर से घर में आने जाने वालों की चहल पहल होने लगी थी। हिन्दी के सुप्रसिद्ध लेखक श्री गंगादत्त विनोद उन दिनों सौपुर में कार्य रत थे प्रायः ही उनको श्री नगर आना जाना पड़ता था। कविगणों का तो यह चरस गली वाला घर सर्दी-गर्मिओं के लिये अब पक्का ही ठिकाना बन गया था। पास पड़ोस वालों ने हमारे घर का नाम मज़ाक ही मज़ाक में "शर्मा गैस्ट हाऊस" रख दिया था। यह तो केवल एक बानगी मात्र हैं, प्रायः जो भी यहाँ जम्मू के लोगों के घर थे, वहीं यही दृश्य देखने में आते थे। बावू किशन दास जी का घर हो य मदन भाई साहिव का, कलकत्ता, बाम्बे, दिल्ली सब जगह से जो कोई भी चाहे थोड़ा सा ही परिचित क्यों न रहा हो उसी नाम मात्र के परिचय के सहारे भी लोग काश्मीर देखने आते तो यह सैलानी मुफ्त में रहने खानें की व्यवस्था का उपभोग जी भर कर करने से क्यों चूकते भला।

इस बार आने वाले मेहमानों में वह नौजवान अधिक होते, जिन्होंने बारहवीं की परीक्षा अच्छे अंक लेकर सफलता हासिल की थी। जम्मू में मैडिकल एवम् इंजीनीयरिंग कालिज न होने के कारण यह विद्यार्थी बेहतर भविष्य की तलाश में काश्मीर का रूख करने के लिये बिवश थे। भविष्य के लिये सुनहले स्वपन संजोनें वाले इन विद्यार्थिओं की पूरी-पूरी सहायता करने से भला कहाँ मुँह मोड़ने वाले थे इन बच्चों के भापा जी यानि यश शर्मा। कुछ तो दो दो महीने भी टिके रहतें थे, जिनको राज्य से बाहर सीटें दिलवाने में बराबर की दौड़ धूप करते रहते थे।

आज उन लोगों में से कितने ही अच्छे डाक्टर हैं, चीफ इंजीनीयर हैं, फारेस्ट अफसर हैं, अच्छे शिक्षक, प्रोफेसर, प्रिन्सीपल हैं कुछ तो रिटायर भी हो चुके हैं आलीशान कोठियों, भव्य बाग वागीचों के मालिक हैं। कभी कभार मैंहगी कारों से गुज़रते हुए राह चलते हमें मिल जायें तो हाथ और सिर की हल्की जुम्विश मात्र इनके हिस्से में आ जाती हैं। इनको तो कोई फर्क नहीं पड़ता, कोई शिकवे शिकायत की हल्की सी लकीर न पेशानी पर उभरती है न जुवां पर। झूठ क्यों कहूँ मेरे मन पर आक्रोश और अफ़सोस के काले साये जरूर गहरा जाते हैं कि कृत्घनता और स्वार्थ शायद वर्त्तमान युग के संदर्भ में चतुराई, होशियारी के पर्याय बन चुके हैं। अमीरा कदल चौक के साथ लगते महाराजा बाजार में उन दिनों डुग्गर के प्रसिद्ध शिल्पी तथा चित्रकार श्री विद्यारतन जी खजूरीया तथा उन की पत्नी सन्तोष अपने छोटे से बच्चे (पप्पू) क़े साथ रहते थे। उनके घर भी यही हाल था। बहुत से प्रसिद्ध व्यक्तियों का भी वहाँ डेरा जमा रहता था। सन्तोष बहुत ही सरल और निःशछल सीधी-साधी गृहणि थी। घर में ठहरने वालों की सेवा जतन में जी जान से जुटी रहती थी। सन्तोष की यह सरलता सीधापन ही उसकी गृहस्थी के सुख सौभाग्य को ले डूबा था। अपने लिये कहूँ तो इतना ही पर्याप्त है कि एक सुखी जीवन न मिल पाने से, कड़बाहट के स्थान पर ईमानदारी और धीरज से जीना सीख लिया था। 1957 का अक्टूबर माह, दरवार मूव हो चुका था कुछ राहत मिलने की तथा आर्थिक स्थिति जो बुरी तरह गड़बड़ा चुकी थी, वह सब संभलने की आशा थी।

परन्तु भविष्य तो विस्मयों से भरा होता है। वह ठंडी धुंधली साँझ का गहराता साया, शाम सात बजे के करीव रेडियो स्टेशन से घर आये तो साथ में आया था एक दुबला-पतला, कुछ हद तक मरियल सा एक व्यक्ति,

उम्र होगी कोई पचास के करीव। मंझोला कद, एक लम्बा पुराना सा ढीला ढाला फौजी ओवरकोट, जो शायद किसी कबाड़ी की दुकान से खरीदा गया होगा। कंधों से लेकर पैरों तक झूलता सा। मैले चारखाने मफलर से खिचड़ी नुमा बालों वाला सिर और चर्बी विहीन हड़ीला चेहरा कस कर लपेटा हुआ। पैरो में सूखे कीचड़ सने लाँग बूट। कुल मिला कर एक डरा डरा सा नर्वस सा व्यक्तित्त्व।

उस से ज्यादा सहमा चेहरा इनका अपना था जभी तो उसका बैग और फौजी कंवल में लिपटा उसका बिस्तर नीचे की मंज़िल की सीढ़ियों पर रख दिया गया था य यही कहना उचित होगा कि छिपा कर रख आये थे।

इस आगन्तुक के आने से तथा उस की वेशभूषा को देख कर मेरी जगह कोई और भी होता तो जल-भुन जाना बाजिव था। आगन्तुक का परिचय इन्होंने इस प्रकार दिया था कि "यह बंगाल से यानि कलकत्ता से ट्रान्सफर होकर रेडियो स्टेशन में एक डेढ़ महीने से आये हुए हैं। नाम था वर्मन दा, परव़ावज बजाने में उस्ताद। अभी तक किसी सस्ते से होटल में कमरा किराये लेकर रह रहे थे। पर वढ़ती ठंड के कारण तथा बचाव का समुचित उपाय न देख कर घवरा उठे हैं। सो मैं इन्हें साथ ले आया हूँ। इस तरह अपने बचाव की सफाई दे रहे थे मेरे कलाकार पति।

बात तो ठीक ही थी। काश्मीर में सर्दी से बचाव में परिवार की ज़िन्दगी एक ही कमरे में सिमट जाती है। जिसमें बुखारी आदि की गर्मी हो, उस लिहाज़ से हमारे दो कमरे खाली थे, उनका इस्तेमाल कोई परदेसी कलाकार कर ले तो उसमें हर्ज़ भी क्या था। फिर वर्मन जैसा निरीह। दो चार दिन के पश्चात् ही इनकी कला-पारखी दृष्टि तथा सहज सरल संवेदना को समझ कर अपनी तुच्छता पर खेद होने लगा। बर्मन-दा की सूखी काली बेडोल उंगलियों में गज़व का जादू था। उनकी उंगलियाँ परव़ावज पर थिरकतीं तो कला की कोमलता का कमाल देख दंग रह जाते थे रेडियो स्टेशन में भी सभी लोग।

रात को बुखारी के पास बैठ कर मुक्तभाव से हिन्दी और बंगला भाषा में राधा-कृष्ण लीला का गायन तथा उसी के अनुरूप भाव़ भरी अभिनय भंगिमा, सुमधुर कंठ यही था वर्मन का असली रूप। कलकत्ते में उनकी पत्नी तथा एक मात्र बेटी कल्याणी उस समय ग्यारहवीं कक्षा में पढ़

रही थी। उसे डाक्टर बनाने का स्वपन पिता की आँखों में पल रहा था। जब भी बंगला में लिखा घर से पत्र आता तो बर्मन-दा के सूखे संवलाये चेहरे पर रौनक और आँखों मे खुशी की नेह, की चमक दिप-दिपा उठती। दफतर से घर आते हुऐ काशी हलवाई की दुकान से पाव वर्फी अधिक लाते, नीचे किरायेदारों के बच्चों में बाँटते तो हम समझ जाते कि, कलकत्ता से चिट्ठी आई है। वैसे भी शाम को वर्फी से रोटी खाना उनका प्रिय भोजन था। लगता है पुत्री सीमा के जन्म से चन्द महीने पहिले ही संगीत में गति और लयात्मकता अनायास ही उसी बंगला संगीत की ही देन है। परवावज के साथ बंगाल के बाउल गीत गाते। मस्ती में नृत्य भंगिमाऐं देखने के लिये छ़त्त से से नीचे रहने बाले लोग भी आ इकट्ठे होते, चाहे गीत की भाषा उनकी समझ से परे होती। बंगाल की धरती की खास खूबी, सभी स्त्री जाति माँ का रूप, सभी बच्चियाँ उनकी अपनी बेटी कल्याणी। टैगोर की कहानी "कावुली वाला" का नायक जो अपनी बच्ची के हाथ की मात्र छाप वाला पुराना कागज़ हृदय से चिपकाये कलकत्ता की गलियो, में घूमता था। तो क्या कलकत्ता में रहती कल्याणी का पिता श्रीनगर में अपनी बेटी की याद संजोये, टैगोर के पात्र से क़िसी तरह भी कम संवेदनशील था। परन्तु सदियों में किसी एक राविन्द्रनाथ टैगोर का जन्म होता है कालजयी रचना धर्मिता के साथ। परन्तु उनके रचे पात्रों से तो कहीं न कहीं जीवन में साक्षात्कार हो ही जाता है।

उससे भी पहिले 1957 का अगस्त सितम्बर माह-बख्शी गुलाम मुहम्मद जम्मू-काश्मीर के वज़ीरे आज़म थे उसी काल में फर्स्ट काश्मीर फैस्टिवल का आयोजन किया गया था। जहाँ पर आज कल टैगोर हाल है य उसके पास जो यूथ होस्टल है वहीं था ओपन एयर थियेटर। यह रंगमंचीय नाटक प्रतियोगिता हकूमत की ओर से ही करवाई जा रही थी। जिसमें काश्मीर की सात आठ प्रमुख नाटय संस्थायें भाग ले रही थीं। नाटक के लिये मंच तथा बहुत मामूली सी धन राशि भी उपलव्ध कराई गई थी। श्री सनातन धर्म नाटक मंडली की ओर से बावू किशन दास जी, प्रोफेसर महमूद तथा श्री इकवाल नंदा तथा कुछ अन्य बुद्धि जीवियों ने जैसे श्री बीरेन्द्र मोहन (रिटार्यड सह निदेशक दूरदर्शन केन्द्र श्री नगर) तथा बहीद रेखी (जो इन के साथ रेडियो श्री नगर में कार्यरत थे। बाद में कमिश्नर इनकमटैक्स के पद से अवकाश प्राप्त किया) सब ने इस नाटक में भाग लेने

की योजना बनाई। योजना तो बनीं प्रश्न यह उठा कि, नाटक कहाँ से आये, नाटक भी जम्मू-काश्मीर यानि रियास्त के ही स्थानीय लेखक का लिखा होना चाहिये तथा जो पहिले मंचित न हुआ हो। नाटक उर्दू य हिन्दुस्तानी में हो।

खूव सोच विचार के पश्चात् यही सलाह ठहरी कि नाटक "यश शर्मा" से लिखवाया जाये।

मुझे आज भी वह दिन याद है, कैसे यह सभी महानुभाव दल बाँध कर आये थे। तब रेडियो से आकर घर में अभी बैठे ही थे कि जैसे सब ने धावा ही तो बोल दिया था। बावू किशन दास जी ने हुक्म दिया था कि "यश तुम्हें स्टेज के लिये नाटक लिखना होगा। परन्तु जो अवधि बताई गई थी, वह तो जान कर मैं भी भौचक्की सी ही रह गई थी। इतना कम समय और पूरा एक रंगमंचीय नाटक। कोई कथा वस्तु नहीं, पात्रों की रूप रेखा तक तय नहीं, गीत संगीत एवम् सम्बाद रचना का सिर पैर नहीं और नाटक वह भी रंग-मंचीय प्रतियोगिता के लिये।

परन्तु दल के आठ दस बुद्धिजीवि सदस्यों का एक ही हठ, एक ही निर्णय कि नाटक तुम्हें लिखना ही पड़ेगा। इन्होंने भी जान छुड़ाने के लिये हामी भर दी कि ठीक है। इसके पश्चात् दो तीन दिन और व्यतीत हो गये। उन से झूठ ही कहते रहे कि हाँ मैं लिख रहा हूँ। पर मैं जानती थी कि, कुछ भी नहीं लिखा जा रहा है। कार्यक्रम पूर्ववत् ही चल रहा है। आखिरकार मुझे उन्हें सूचित करना पड़ा कि यहाँ नाटक के नाम पर कुछ भी नहीं है। सभी चिन्तित हो उठे और निर्णय लिया गया कि, रेडियो स्टेशन से छुट्टी दिलवा कर यश को कमरे में बन्द कर दिया जाये। उन दिनों यह छिप छिपा कर सिग्रेट पिया करते थे। मुझे हिदायंत दी गई कि, जितने चाहें उतने सिग्रेट पियें तुम कुछ नहीं कहोगी। चरसगली स्थित उस घर के कमरे में इनको बन्द कर दिया गया, कैदी की तरह। सब ने मिल कर चार-पाँच दिन में नाटक लिखवाया, सम्बाद, गीत सब लिखे गये। उन्हीं दिनों पैग़ाम फिल्म के निर्माता अदीव मिर्ज़ा भी श्रीनगर में ही थे। नाटक का नाम रखा गया "एक कदम, एक मंज़िल"। इस नाटक को लिखवाने का पूरा-पूरा श्रेय केदार शर्मा के पिता और हम सब के बावू जी किशन दास जी को जाता है। घर के पास होने के कारण बावू जी चार-पाँच चक्कर तो लगाते ही थे। सिग्रेटों के पैकेट खिड़की की राह अन्दर फेंके जाते। नाटक लिखा गया।

हर एक को भूमिकायें सौंप दी गई ।

श्रीनगर के बिस्को स्कूल की टीचर रानी महबूब इस नाटक की नायिका थी । सह-नायिका थी एक और टीचर उषा साहनी, जो श्रीनगर के बर्नहाल स्कूल में पढ़ाती थीं जो बाद में फिल्मी जगत में सोनिया साहनी के नाम से जानी गई । जागीरदार का रोल जो कि एक जावर तथा ज़ालिम का था, इन्होंने स्वयं किया था । नाटकों का मंचन प्रतिदिन हज़ारों दर्शकों की उपस्थिति में होता था । मुझे अच्छी तरह याद है कि रैणावारी की नाटक मंडली और श्री योगेश साहनी के नाटक तसवीर और काश्मीरी नाटक हिमाल नागराए में कड़ा मुकाविला था ।

निर्णायक जज थे, शमीम अहमद शमीम, आईना अखवार के एडीटर, हिस्ट्री के प्रोफेसर नज़ीर, प्रिन्सीपल महमूदा । श्री नरसिंह देव जी जम्बाल भी उन दिनों हजूरी बाग में पुलिस महकमें में कार्य रत थे । अन्त में 2000 रूपये का प्रथम पुरस्कार इन्ही द्वारा लिखे तथा निर्देशित किये गये हिन्दुस्तानी नाटक "एक कदम, एक मंज़िल" को प्राप्त हुआ था । यह नाटक सनातन धर्म प्रताप सभा श्रीनगर जहाँ पर धार्मिक नाटक तथा नवरात्रों में रामलीला का मंचन होता था, इसी सभा की ओर से पूरा-पूरा सहयोग मिला था । उर्दू के एक पैम्फलट के सिवाय हमारे पास उस नाटक की लिखी कोई पंक्ति मात्र तक नहीं है । मुझे लगता रहा है कि "यश शर्मा" ने ज़िन्दगी में गंवाना ही सीखा है, सहेजना नहीं । मैं भी तो एक अलग माहौल में पली-बढ़ी थी । मुझे रत्ती भर भी इस बात की समझ नहीं थी कि, जो कुछ लिखा जाता है वह बहुत मूल्यवान होता है । कितना कुछ काश्मीर के इन 10-12 वर्षों में लिखा गया उर्दू में, हिन्दी में, डोगरी में, मेरी नासमझी से सब नष्ट हो गया । आज जब आक्षेप लगता है कि, बहुत कम लिखा है यश शर्मा ने तो अपराध बोध से मेरा हृदय कुंठित हो उठता है ।

हाँ बात हो रही थी 'एक कदम, एक मंजिल' नाटक की । इस नाटक का आशय समझाने के लिये हिन्दी कवि स्वर्गीय सुभाष भारद्वाज की कविता की एक कड़ी प्रयोग की गई थी ।

बाँहों की ताकत में किस्मत, माथे पर तकदीर नहीं है ।
जो न टूट सके इन्सां से वह कोई जंज़ीर नहीं है ।

यह पंक्तियाँ तब इतनी प्रसिद्ध हुई थीं कि जो लोग नाटक देखने गये थे,

बहुत दिनों तक लोगों के ज़ुवान पर थीं। सुभाष भारद्वाज आज नही हैं पर उनकी यह रचना पंक्ति आज भी उस ज़माने के जो लोग हैं, उन्हें याद हैं। और कुछ तो न सही पर इस नाटक द्वारा हमारे परिवार के लिये एक बहुत बड़ी उपलब्धि रही थी वह थी श्री मदन अरोड़ा जैसे नेक दिल सच्चे मित्र के रूप में मिलना। अमीराकदल पुल के पहले सिरे पर खालसा होटल के सामने, कितावों की एक बहुत बड़ी दुकान थी हिन्दी, उर्दू अंग्रेजी की देशी बिदेशी पत्रिकाओं की एजेंसी थी इन के पास। रेडियो स्टेशन से आते जाते रास्ते में अब पक्का ठिकाना था इन के लिये यह दुकान। मदन अरोड़ा (मक्कड़) स्वयं तो सज्जनता की मूर्त्ति थे ही, उनकी धर्मपत्नी शीला जी तथा उनके बच्चों से भी हमारे स्नेह संबंध प्रगाढ़ से प्रगाढ़तर होते गये। काश्मीर से पलायन के पश्चात् कच्ची छावनी में शीला बुक सेंटर के नाम सें प्रसिद्ध वह दुकान अब उनका पुत्र आनन्द मोहन (कुक्कू) संभालता है। मदन जी तथा शीला दोनों ही आज चाहे नहीं हैं पर इस परिवार के साथ हर दुःख-सुख में आत्मीय संबंध निरन्तर निभते चले आ रहे हैं।

आज की इस भागती दौड़ती दुनिया में शायद किसी के भी पास किसी दूसरे के लिये सोचने, स्मरण करने के लिये समय ही नही है शायद, पर चरस गली में 1957 की बहुत सी स्मृतियाँ धुंधलाई नहीं है, चाहे गडमड भले ही हो गई होंगी। 1957 में जश्ने-काश्मीर में मुशायरे का आयोजन, पर उसमें अभी कुछ दिन बाकी थे।

जीवन समय की धारा के साथ बहता जा रहा था। सर्दारों का यह घर इतना सुरक्षित था कि, घर से बाहर जाने पर किसी ताले कुण्डी की जरूरत ही नहीं होती थी।

ऐसी ही थी वह भी एक कुछ कुछ ठंडी सुरमई साँझ। अमीरा कदल चौक के पंचमुखी हनुमान मन्दिर में धीर मंथर गति से बहती जेहलम की जलधारा से मन ही मन बातें करना एक प्यारा सा शुग़ल था मेरा जब कि दूसरे सब हमारे पड़ोसी इसे मन्दिर के लिये भक्ति श्रद्धा का भाव समझते थे। इन का भी यह समय मदन अरोरा की किताबों की दुकान पर मज़े से गुजरता था, चाय काफी की चुसकियों के साथ। उस दिन भी मन्दिर से घर वापिस आई तो नीचे आंगन में महिलायें बच्चे सहमे घवराये इकट्ठे खड़े थे, तथा मंदिर में मुझे तलाशने के लिये किसी को भेजा जा रहा था। पूछने पर

पता चला कि, उपर आपके घर में कोई साधु सा घुस कर धमाचौकड़ी मचा रहा है, हो सकता है कोई तोड़ फोड़ भी कर रहा हो। सभी महिलायें और बच्चे ही थे उस समय घर में। व्यापारी पुरूष वर्ग होने से घर में कोई नहीं था। सब की सलाह थी कि, य तो बाज़ार के दुकानदारों को बुलाया जाये य फिर पुलीस को ही सूचित किया जाये।

एकाएक मेरे मन में कौंधा कि, कौन हो सकता है जो निचली दोनों मंजिलों के घरों को छोड़ कर निधड़क सीधा तीसरी मंजिल में जा पहुँचा है। कहीं मस्ती के आलम में मधुकर तो नहीं ?

हम दो तीन ने हिम्मत जुटाई। दूसरे तल्ले से उपर झाँकने की कोशिश की, तो कुछ पहाड़ी धुन का हल्का सा जाना पहिचाना सुर सुनाई दिया। तत्काल यह बात समझ में आई कि जम्मू का कोई अपना ही है।

हमें भौंचक्का सा देखकर वह व्यक्ति दो तीन सीढ़ियाँ नीचे उतर आया, हंसते हुऐ कहा "ए कुड़ियो की डरा दियां। में कोई बखला माणु नेई, मेरा ना अलमस्त ऐ, परमानन्द अलमस्त। में यश दा साथी आं, तो नेई भाखा मेरा नां ? तूं मेरी मिट्टी नेहीं ठुआली पर इक्के बारी"। पड़ोसिने हंसती हुई सीढ़ियाँ उतर गई। उनके दिये परिचय का अर्थ इस प्रकार था कि :-

"ए लड़कियो! तुम क्यों डर रही हो। मैं कोई अजनवी नहीं यश का साथी हूँ, मेरा नाम परमानन्द अलमस्त है, तुम ने एक बार मेरी धूल भी तो उड़ाई थी"। अब तो मैंने अन्दर आकर उनका सादर अभिनन्दन किया। पूछा कि, आपने यह क्या हुलिया बना रखा है।

उन्हों ने एक काली लोई (गरम देशी कंवल) के ठीक बीच से सुराख कर के गले में फिरन की तरह पहन रखा था जिसने पैरों तक उन्हें ढाँप रखा था।

बोले, जो है सो है। "दिख कुड़िये मैं पंज सत्त दिन इत्थें रौहना ऐं। होटला च मैं नेई रेही सकदा। तूं तिड़क फिड़क नेई करेयां"।

उनका कहने का अर्थ था, कि मैंने पाँच सात दिन तक यहाँ रहना है। होटल में नहीं रह सकता। अलमगस्त की अटपटी शब्द शैली से मैं खूव परिचित थी। "तिड़क-फिड़क का अर्थ था, नाक मुँह मत चढ़ाना तथा "मिट्टी ढुआली" का अर्थ था धूल उड़ाना। डोगरी जन मानस में प्रचलित मुहावरों का स्वतः प्रवाह और प्रयोग अलमस्त की अपनी शैलीं विशेष थी।

"मिट्टी ठुआली" धूल उड़ाने की सार्थकता जानने के लिये सन् 1954 में प्रकाशित लेख नर्मी चेतना, अंक (3) पृष्ठ संख्या (33) में "डुग्गर के कलाकार" को देखना पड़ेगा, जिसमें मैंने "अलमस्त" नाम का एक छोटा सा समीक्षात्मक लेख (रक्षा देवी प्रभावर, गुरदास पुर (पंजाब) नाम से लिखा था। 1957 की उस साँझ को (मिट्टी ठुआली) धूल उड़ाई द्वारा उसी का ज़िकर उन्होंने किया था। मैं समझ रही थी कि अब जश्ने काश्मीर तक तो इनका ठिकाना यहाँ रहेगा ही अपितु वह अन्य कवि जिनका कहीं और ठौर ठिकाना नही होगा, वह सब भी अपनी चरण धूलि से इस कवि गृह को कृतार्थ करेंगे ही।

यह ठीक है कि, कविताओं गीतों का इन दोनों कवियों का खूब गाढ़ा रंग जमता था। परन्तु हम जब भी उनसे हिमाचल के मंडी क्षेत्र के कालिज में गाये गीत (कागद चितरिये) को सुनाने का अनुरोध करते तो, वह कुछ दूसरी रचनायें सुनाते।

जाने वह उस समय का वैराग्य भाव था य फिर निराशा य मायूसी य फिर और कुछ। कभी दोपहर को मूड होता तो कहते मैं सदा से भोला ही रहा। परिश्रम मेरा होता फल दूसरे खाते। जैसे "डाक्टर कर्ण सिंह के जन्म की खुशी में डोगरी कविता मैंने लिखी, उसी कविता पर इनाम इकराम किसी दूसरे ने हासिल किया"। वह रोज कहीं जाते तो थे फिर और अधिक से अधिक मायूसी से धिरते जाते थे परन्तु तो भी कविता सुनाने का आग्रह किया जाता तो, "जोवन ढली बो जाना, जिन्दे मरी बो जाना"। अक्सर नाच नाच कर गाते या फिर "मोलक जनम गुआया, जन्म मनुक्खा हीरा सुच्चा कच्चू तोल गुलाया"।

अर्थात् :- "यौवन ढल रहा है- मृत्यु की ओर जीवन चल पड़ा है। अनमोल मानव जीवन व्यर्थ ही गंबा दिया है। यह जीवन शुद्ध हीरे की तरह था, पर काँच के भाव तुलवा दिया"। यह सब मुझे इस लिये लिखना पड़ रहा है कि, हम लोगों के बड़े छोटे छोटे दुःख और सुख होते हैं जो आते जाते रहते हैं। एक कवि के पास जीवन में कवितायें, गीत देने के सिवाये और होता ही क्या है ?

यदि उनकी रचनाओं में रची गई अलग अलग झांकियों की छटा आने वाली नस्लों को मिलती रहें तो वह इस धरती का परम सौभाग्य नहीं

तो और क्या हो सकता है।

फिर एक दिन सुना कि, मुंवई में (31) मार्च 1978 को उनका निधन हो गया था। इस डुग्गर धरती का गीतकार कहाँ जा कर विलीन हुआ। हम दोनों जब भी मुंबई गये तो मन में आता रहा कि, इस विशाल माया नगरी में उस अलमस्त नाम के अनाम बिन्दु को कहाँ खोज कर पाया जा सकता है, सिवाये श्री शंभुनाथ शर्मा के इन श्रद्धा भरे शब्दों के कि,

"नेआ अलमस्त कवि भागें कन्ने थोन्दा ऐ"।

अर्थात् :- "अलमस्त जैसा कवि बड़े भाग्य के साथ मिलता है।" पर जिस धरती के गीत उन्होंने गाये वह धरती भी उन्हें नसीव न हुई। परन्तु अभी तो बात यहाँ 1957 में आयोजित जश्ने काश्मीर की हो रही थी। जम्मू से वरिष्ठ कवि गण आमंत्रित थे। श्री परमानंद अलमस्त तो काफी दिनों से हमारे ही घर में थे। मोहन लाल सपोलिया, चरण सिंह, दीनू भाई पन्त तथा मधुकर इस दो कमरों वाले हमारे चरस गली वाले घर में ही ठहरे थे। कुछ अन्य कवि श्री विद्यारतन खजूरिया के घर मे थे, कोई और भी कहीं ठहरे होंगे उनकी मुझे कोई जानकारी नहीं। कवि सम्मेलन से एक दिन पहले, साँझ के झुसमुसे में एक छोटी सी कवि गोष्ठी हमारे ही घर आयोंजित हो गई थी। संध्या बेला के अपने ही रंग में रंगे मधुकर जी के सुझाव पर, उर्दू मुशायरों की परिपाटी के अनुसार एक छोटी सी थाली में शमा (मोमबत्ती) रोशन की गई। अपनी अपनी बारी आने पर शमा कवि के सम्मुख सरका दी जाती।

कुछ तो हम लोगों का सानिध्य कुछ अलमस्त के हंसमुख खुले डुले स्वभाव के कारण घर के मालिक तथा किरायेदारों समेत एक छोटी सी श्रोता मंडली भी जुट गई थी। हम ने मधुकर से "डोला कुन्न ठप्पेया" नाम की उनकी प्रसिद्ध रचना के कुछ अंश सुने थे फिर उनकी हिन्दी कविता "नर्त्तकी" का कुछ अंश सभी कविजनों की फरमाइश पर उन्होंने सुनाया था। नारी संवेदना का मार्मिक चित्रण सब की आँखों में साकार हो उठा था। दीनू भाई पन्त का "शैहर पैहलो पैहल" (शहर में पहली वार आये) कविता का आनन्द सब के हिस्से में बराबर का आ रहा था।

यश का बंजारा सस्वर सुन का सभी मंहिला मंडली को इनके एक नये रूप से परिचय हुआ था। खुशी भरे गर्व की अनुभूति ने स्वतः ही मुझे

उत्साहित कर दिया था। फिर तो हम सब ने मिल कर रात के खाने का एक अच्छा खासा आयोजन कर डाला था।

अलमस्त ने नाच नाच कर उस दिन पूरी तन्मयता से विरहगीत "चित्तरिये" गाया था। एकाएक अलमस्त का हुक्म था "ओ जागता मेरे कन्ने सुआई.ला" अर्थात् मेरा साथ दे। बस फिर क्या था ओ "परदेसिया ओ बालमां", दोनों सुर में सुर मिला कर गा रहे थे तो महफिल मे चार चाँद लग गये थे।

संस्कृत के कविवर दण्डी का मन्तब्य है कि "शब्दों की ज्योति अगर प्रकाश मान न रहती तो सारा संसार अन्धकार मय हो जाता"

सचमुच वह संध्या डोगरी कवियों की शब्द रचना से जगमगा उठी थी।

इस सभा का समापन कवि अलमस्त ने अपने हल्के-फुल्के हंसते अन्दाज़ में किया था कि किस तरह उन्होंने फकीराना बेष में आ कर इस घर में सब को डरा दिया था। अतीत के अन्तराल में झांकने पर आज भी सब ज्यों का त्यों ही जीवन्त है चाहे देश, काल, पात्र सब बदल चुके हैं वह टिप्पणी कि यश के पास "भरोसे से भरा संसार है" एक यथेष्ट पुरस्कार था मेरे लिये।

बहता पानी जिधर चल देता है उधर ही राह बना लेता है। अब श्रीनगर मे रोजी रोटी का साधन उर्दू लेखन होने के कारण फीचर नाटक, लधु नाटिकायें, एवम् हास्य व्यंग्य रचनायें लिखी भी जार्ती और अभिनय भी किये जाते। कवि प्रतिभा जन्म जात कही जाती है तो अभिनय क्षमता भी उपर वाले की देन ही होती है।

इस अभिनय प्रतिभा का अजीव सा कौशल ही तो था जो श्री मोहनलाल एमा काश्मीरी म्यूज़िक के पैक्स थे, उनकी ज़ुवानी सभी को सुनने को मिला था। नेपाल के महाराज महेन्द्र और महारानी रत्ना काश्मीर भ्रमण के लिये आये तो गुपकार के महल में युवराज कर्ण सिंह तथा युवरानी यशोराज्य लक्ष्मी ने काश्मीर के प्रसिद्ध स्थानों के दर्शनों के साथ काश्मीर कला संस्कृंति एवम् काश्मीरी संगीत से भी उनका परिचय करवाना चाहा। म्यूज़िक इन्चार्ज मोहनलाल एमा को काश्मीरी गायकों और वादकों के साथ गुपकार जाने का आदेश मिला। सनाउल्ला बट रबाब बजाते थे, प्रेम नाथ छट्टू सितार निवाज़ थे। तिबत वकाल, कालीन बाफ संतूर बादक थे।

राजबेगम छकरी संगीत की कलाकार, तथा गुलाम मुहम्मद रा काश्मीरी संगीत में निपुण थे ज्ब कि एमा साहिव स्वयं भी सुरीले गायक थे। इन सब के साथ यश शर्मा बतौर अनौन्सर शामिल थे। गुपकार में संगीत की महफिल शुरू हो गई। बड़ी मीठी धुनें, मधुर संगीत, पर नेपाल के महाराजा, महारानी को किसी भी शब्द का कोई अर्थ कैसे समझ आ सकता था? अनौन्सर साहिव को संगीत के बोलों का कुछ-कुछ अर्थ भी धीरे-धीरे अनुवाद के रूप में समझाने के लिये कर्ण सिंह जी ने सलाह दी ताकि संगीत का पूरा आनन्द उनके विशिष्ट अतिथिओं को मिल सके।

अब क्या हो। गीत के बोल क़े कुछ शब्द तो यश की समझ आ ही रहे थे, "बागे निशात के गुलो नाज़ करान-करान बलो, बलो"। अब एमा साहिव बता रहे थे कि मुझे तो घवराहट के मारे पसीने छूट रहे थे कि, अब क्या होगा। यश कहीं सच ही न कह दें कि, मैं भाषा से वाकिफ नहीं हूँ, परन्तु तब तक यश अपना मोरचा संभाल चुका था और ऐसी व्याख्या शुरू की कि, "काश्मीरी भाषा के इस गीत द्वारा यहाँ आपका हार्दिक स्वागत किया जा रहा है। निशात बाग समेत जितने भी यहाँ के बागों के खूबसूरत फूल-पत्ते हैं, सब आपकी आमद को अपना सौभाग्य मान कर गर्व करते हुए आपको खुशआमदीद कह रहें हैं"।

गीतों में कहीं चिनार का नाम आ जाता तो फिर अनुवाद शुरू हो जाता, "ठंडी शीतल हवा चिनार के पत्तों की मर्मर आवाज़ का जादू जगाती हुई गा रही है कि हमारे जम्मू-काश्मीर राज्य के शाही मेहमान हमारे यहाँ तशरीफ लाये हैं। डल झील की लहरें भी लहरा रही हैं, इतरा रही हैं"। गीत तो जो भी था सो था, अब यश शंकराचार्य मंदिर के शिव भोले तथा काठमांडू के पशुपति नाथ की एकता का वख़ान बड़े आत्म विश्वास पूर्ण ढंग से किये जा रहा था तथा साथ में प्रस्तुति से मेल खा रहे थे इसके हाव भाव। एमा ने बताया कि, मुझे तो हंसी के मारे अपने पर काबू पाना मुहाल हो रहा था, परन्तु क्या मजाल कि, झूठ को सच बनाने की कला में कैसी महारत हासिल थी इस एक्टर को। एमा जी का कहना था कि "मैं भी बड़ा अभिनेता हूँ पर यश तुम आज मेरे भी बाप निकले"। गायक वादक सब गाड़ी में बैठे तो हंसते-हंसते सभी लोट पोट हो रहे थे।

इनका अपना कहना था कि, यहाँ तक तो ठीक था, पर उस दिन यशोराज्य लक्ष्मी से भी डोगरी कविता द्वारा परिचय हुआ था। कर्ण सिंह जी

के इसरार पर मैंने "बंजारा" सस्वर गा कर सुनाया था, फिर मेला आकांक्षा का भी रंग जमा। डोगरी क़ा ऐसा समां बंधा कि कर्ण सिंह जी ने भी डोगरी भजन गा कर सब को आश्चर्य चकित कर दिया था। काश्मीरी और डोगरी दोनो भाषाओं के गीतों से खूब मनोरंजन हुआ था, उस दिन शाही दंपत्ति तथा उपस्थित कलाकारों का। असली हंसी की फुलझड़ियाँ तथा कहकहों का रंग तब बरसा जब दूसरे दिन मीटिंग में ऐमा साहिव ने खूव मिर्च मसाला लगा लगा कर अनुबाद की इस घटना को अधिक से अधिक चटपटा बनाने में कोई कोर-कसर बाकी नहीं रखी थी। अभिनय का जो रूझान बसोहली राम लीला द्वारा पाँच छः वर्ष की उमर से शुरू हुआ था, वह बहुत सी राहों से गुज़रता हुआ रेडियो नाटय लेखन, अभिनय से होता हुआ रंग मंचीय नाटकों के लेखन तक सफल अभिनेता के रूप में उत्तरोत्तर प्रसिद्धि के सोपान तय करता चला जा रहा था। उर्दू हिन्दी डोगरी के बहुत से नाटक लिखे गये पुरस्कृत हुए पर यह चर्चा फिर कभी :-

इस समय तो नीडोज़ होटल के मंच पर अभिनीत शौकत थानवी द्वारा रचित हास्य नाटक "धोबिन को कपड़े दिये" की ही बात हो रही है। इस नाटक के नायक थे यश शर्मा और नायिका थी कुमारीं ज़या दुर्रानी।

उन दिनों जम्मू से हमारी माँ (भाबी जी) श्रीनगर में हमारे पास ही आई हुई थी। नाटक के दर्शकों में माँ तथा श्री बेद राही की माता जी। (श्रीमति मुलखराज) भी मौजूद थीं। जिन्हें हम बेजी कहते थे। श्रीनगर का बुद्धिजीवी वर्ग तथा कर्ण सिंह एवम् यशोराज्य लक्ष्मी भी वहाँ उपस्थित थे। नीडोज़ होटल के मंच पर इनकी अभिनय कुशलता देख कर दर्शक हंसी के मारे लोट पोट हो रहे थे, तालियाँ बजा रहे थे। कह-कहों की फुल झड़ियाँ छूट रही थीं। अपने पुत्र की अभिनय प्रतिभा देख कर गर्व से उल्लसित तथा रोमांचित हो उठना स्वाभाविक था माँ का। पर यही उल्लास की उत्तेजना सहन न कर पाने के कारण एका एक बज्रपात हुआ। हंसते-हंसते ब्रेन हैमरिज का प्रवल झटका सा लगा उन्हें। तब तक नाटक के साथ ही साथ माँ का जीवन नाटक सब समाप्त था। 29 अगस्त माँ की अंतिम यात्रा, जैसे जनता का सैलाव सा उमड़ पड़ा था चरसगली में। दूध गंगा में उधर माँ की चिता का धुआं उठने लगा इधर यश शर्मा के गृह में हुआ पुत्र जन्म।

मृत्युधर्मा मनुष्य के सामने मृत्यु के विरूद्ध जीवन की इस निष्ठुर चुनौती की एक चरम नाटकीयता थी। मातृ स्नेह पूरित कवि मन के लिये

इस आघात को झेल पाना कैसा कठिन था कैसे क्या कहा जा सकता है ? कर्ण सिंह जी तथा यशोराज्य लक्ष्मी का शोक संवेदना पत्र तथा कुछ राशि, शायद उन्हीं का कोई एक कर्मचारी लाया था।

विधि का विधान तो यही है कि, समय पार कर सब दुःख शोक सहन कर लेता है आदमी का मन। पर यहाँ तो कलाकार की मातृ स्नेह स्मृतिओं की चेतना के शून्य आकाश को भरने के लिये बहुत जतन करना पड़ रहा था।

समय न किसी का लिहाज़ करता है, न रूकता है पर हम लोगों का अब घर में माँ के न रहने से श्रीनगर में रूकना बहुत सी कठिन परिस्थितिओं को जन्म दे रहा था। सिवाये प्रार्थना के हमारे पास और कौन सी शक्ति थी ?

सुना था कि प्रार्थना द्वारा कोई दैवीय चमत्कार भी घटते हैं य फिर संजोग को ही मान लेने से कौन सी हानि है।

चलो कुछ भी रहा हो पर बात कुछ ऐसे बनी थी। ट्रान्सपोर्ट बिभाग में बतौर मैकेनिक एक नौजवान काम करता था, नाम था "इनायत मसीह" जिस होटल में इनायत रह रहा था, इनका कहना था कि उसी सस्ते होटल में मैंने भी कभी कमरा किराये पर लिया था। जल्दी ही हम दोस्त बन गये थे। दोस्ती की बड़ी बजह यह थी कि मुझे जव एक कविता लिखने के कारण जम्मू रेडियो से कॉंट्रेक्ट मिलना बन्द हो गये थे तो इनायत का बख्शी साहिव के किसी मंजूरे नज़र से किसी बात पर कहा सुनी हो गई थी जिसके कारण उसे भी श्रीनगर तबदील कर दिया गया था। इनायत बहुत ही समझदार, अपने काम में माहिर परन्तु स्वाभिमानी युवक था। जम्मू के रेज़िडेन्सी चर्च के पादरी रेवरेंड विलियम का छोटा भाई था। दोनों भाई सज्जनता की मूर्ति थे। विलियम बहुत विद्वान थे। इनायत "पाँच फुट दस इंच कद, कसा बदन, गेहुआ रंग, हर समय बाईबल साथ रहती थी।

इनायत अपने काम से फारिग होता, मैं भी रेडियो से छुट्टी पाता तो हम काफी हाऊस में मिलते। वहाँ पर पंजाबी के प्रसिद्ध लेखक बलबन्त गार्गी चाहे हम से उम्र में बड़े थे पर खुले दिल से मिलते थे। कुछ दूसरे लोग भी जो साम्यवादी विचारधारा के समर्थक थे जैसे प्रसिद्ध उर्दू लेखक अली मोहम्मद लोन, तथा पुष्कर भान जो बम्बई से इष्टा थियेटर छोड़ कर आये

थे, बन्सी निर्दोष उर्दू और काश्मीरी कहानीकार थे जगन्नाथ साकी जो देहाती प्रोग्राम में काम करते थे, बहुत ही अच्छी आवाज़ के मालिक थे। गुलाम रसूल सन्तोष जो काला लम्बा कोट पहनते थे। इस तरह शाम का समय बहुत अच्छा गुज़रता था।

इनायत मसीह छुट्टी के दिन एक क्रिश्चियिन संत बेंजामिन के पास जाया करते थे। उस बूढ़े रहम दिल फकीर से इनायत बहुत प्रभावित था और उनका सच्चा श्रद्धालु बन गया था। इनायत का कहना था कि अच्छी आत्मायें आज भी होती हैं।

उस नेक फकीर के पास अनेक प्रकार के रोगियों, दीन दुःखियों की भीड़ लगी रहती थी। वह सिर्फ जैतून के तेल की मालिश अपने हाथ से करते तो जाने कोई चमत्कार होता या उनकी प्रार्थना शक्ति थी कि, रोगी स्वस्थ होकर लौटते थे।

प्रायः मैं भी कभी कभार इनायत के साथ उस भले आदमी के पास चले जाया करता था। बेंजामिन पहले लालमंडी घाट के पास हाउसबोट में रहते थे, इस समय कैपिटल, होटल, एक्सचेंज रोड प्रताप पार्क के सामने रह रहे थे। खिज़ा का मौसम था। अचम्भे की बात थी कि, एक दिन हम ज़रा जल्दी चले गये। भीड़ अभी काफी कम थी। बेजामिन अपने आप ही, मेरे तरफ मुखातिव हुए, क्यों बेटा! घर जाना चाहते हो ? जी हाँ, मैंने नम्रता से हामी भरी।

फिर कुछ सोचते हुए फरमाया कि, तुम्हारी ट्रान्सफर आ रही है, चले जाओगे।

उनकी इस बात को मैंने कतई गम्भीरता से नहीं लिया था तब। तीन चार दिन बाद अपना लिखा स्क्रिप्ट सुनाने के लिये रेडियो काश्मीर के डाइरेक्टर श्री प्रेम सागर भाटिया के कमरे में दाखिल हुआ तो वह गले के दर्द से कराह रहे थे। अचानक मुझे बेंजामिन की याद हो आई और उनका ज़िक्र भाटिया साहिव से किया परन्तु उन्होंने कोई खास तबज्जों नहीं दी।

भाटिया साहिव दिल्ली-बाम्बे आदि बड़े-बड़े शहरों के प्रसिद्ध एवम् योग्य डाक्टरों द्वारा एक्सरे आदि से इलाज करवा चुके थे फिर भला पीरों फकीरों की बात पर क्या ध्यान देते। जब कि बहुत ज्यादा विश्वास तो मुझे भी नहीं था।

तीन चार दिन बाद भाटि़या साहिव ने मुझे बुलवा भेजा और बेंजामिन के पास चलने को कहा। उसी हफ्ते के पड़ने वाले रविवार के दिन इनायत को साथ लेकर बेंजामिन के पास हम तीनों चले गये। किसी तरह बाहर की भीड़ में से इनायत हमें अन्दर कमरे में तो ले गया पर घंटा डेढ़ घंटा बारी आने पर ही उन्होंने भाटिया साहिव को देखा। जैतून का तेल लाने को कहा। स्वयं बेंजामिन चुपचाप थिर दृष्टि से जाने कहाँ क्या देख रहे थे। वही तेल की छोटी सी शीशी मालिश के लिये भाटिया को देते हुए कहा कि, तुम सीधे दिल्ली डाईरैक्ट्रेट को लिखोगे तो यश का ट्रान्सफर तुरन्त हो जायेगा। यह कहते हुए निर्विकार भाव से दूसरे रोगी को देखने लगे।

अजीव बात थी कि भाटिया साहिव की बरसों पुरानी गले की जकड़न और दर्द कैसे धीरे-धीरे कम होने लगी। बेंजामिन की बताई अवधि यानि 20 दिन में भाटिया साहिव का दर्द पूरी तरह गायव हो गया और मेरा जम्मू ट्रान्सफर का आर्डर भी पहुँच गया।

इस प्रकार के दैवीय चमत्कारों पर कोई भी शायद विश्वास नही करना चाहेगा।

1960 में भी परन्तु ऐसा ही एक चमत्कार एक आश्चर्य तब भी घटा था जब हम छोटी सी बेटी सीमा की मन्नत चढ़ाने शंकराचार्य पहाड़ी स्थित शिव मन्दिर की चढ़ाई चढ़ रहे थे तब किसी ने इन का नाम लेकर पुकारा। यह कारी भाई (केदार शर्मा) थे जो आकाशवाणी दिल्ली के डाइरैक्टर जनरल श्री जगदीश चन्द्र माथुर और उनकी धर्मपत्नी के साथ मन्दिर से दर्शन कर के वापिस आ रहे थे। हम रूक गये। यथोचित औपचारिकता के पश्चात नन्हीं विटिया को आशीष दी उन्होंने। फिर जैसा कि संसार का नियम है, सब अपने अपने रास्ते पर चल देते हैं। पन्द्रह दिन ही गुज़रे होंगे शायद। दिल्ली से आर्डर आया था यश शर्मा के नाम। उर्दू न्यूज़ पढ़ने का क़ार्य। 175 से एक दम 250 बेतन की बढ़ोत्तरी, फिर वर्ष के जनवरी माह से अगस्त तक की बेतन वढ़ोत्तरी का बकाया भी साथ। श्रीनगर के रेडियो स्टेशन में एक खलवली सी मच गई थी। अब क्या कहा जा सकता है। किसी चमत्कार घट्ने के क़ोई क्षण होते हैं, वर्ष नहीं। पर वर्षों से भी अधिक मूल्यवान हो जाते हैं ऐसे क्षण।

1962 अक्टुबर को पुनः जम्मू रेडियो स्टेशन में ट्रान्सफर हो कर

स्थायी रूप से आ गये थे। बिगत कुछ कटु अनुभव और घटनाओं के कारण पुनः जम्मू आने के लिये मन में कोई विशेष उत्साह नहीं रह गया था। श्रीनगर में एक अच्छी गृहस्थी इस समय तक जम चुकी थी। श्रीनगर के रेडियो स्टेशन का माहौल पूर्णतया रास आ चुका था। पर घर में माँ के न रहने से जम्मू आना आवश्यक था। आज बरसों बाद भी कवि यश की यादों के झरोखे से कौंधते वह चेहरे। उनका कहना थां कि जो आज भी उनको अपने ही से लगते हैं अली मुहम्मद लोन, प्राण किशोर कौल, पुष्कर भान, प्रेमनाथ परदेसी, गुलाम रसूल नाज़की, अब्दुल अहद वर्क, बन्सी लाल निर्दोष, मोहन निराश, मोहन लाल एमा, केदार शर्मा, जगन्नाथ साकी तथा मनोहर प्रोथी जैसे कलाकारों तथा लेखकों का सान्निध्य तथा प्यार अपने हिस्से का हम बटोर ही लेते थे। यह सभी लोग एक दूसरे के दुःख सुख में बरावर शरीक होते थे। सन्तूर वादक कालिन वाफ, तिब्बत वकाल के अतिरिक्त रबाव नवाज़ सनाउल्ला बट, साज़ बजाने वाले अमीर शाह एवम् सितार नवाज़ प्रेम नाथ छट्टू म्यूज़िक इन्चार्ज मोहनलाल एमा तथा मैं गुपकार के उस सामन्ती परिवेष को प्यारे से झूठ से खुशग्वार माहौल बना देने की कामयावी पर हम सब कहकहे लगाते तथा कभी-कभार उस शाम की चुलबुली याद को ताज़ा करते रहते। काश्मीरी संगीत की लता मंगेशकर कहलाने वाली राज बेगम के कंठ स्वर की मोहकता को कैसे भुलाया जा सकता है। जून बेगम, अख्तर बेगम उस समय की प्रसिद्ध गायिका थीं। रेडियो नाटकों में भाग लेने वाली कलाकार थीं रूप मदन, इन्दिरा मदन, उमा खोसला ज़या दुर्रानी, रानी महबूव, जम्मू की हिन्दी डोगरी नाटकों में भाग लेने वाली शान्ति पुरोहित तथा उषा साहनी जिसने सोनिया साहनी के नाम से फिल्मी दुनिया का रूख किया था तथा बारवरा, सभी रेडियो नाटकों को अपने अभिनय से जीवन्त करने में सक्षम थीं। अव्दुर्रहमान पानवाला की गम्भीर गर्ज़दार आवाज़ का अपना ही एक खास अन्दाज़ था। सदामा जी, कश्मीर हास्य व्यंग्य में पुष्कर भान तब्सरानिगार नंद लाल वातल, सत्ती साहनी, युसफ टैग, रहमान राही, प्रो. हाजनी, प्रो. तालिव आदि।

पश्तो भाषा के न्यूज रीडर हर भगवान मलहोत्रा थे तो, काश्मीरी तथा उर्दू न्यूज़ रीडर थे अब्दुल रशीद बाँडे। लद्दाखी युनिट में सारा अंगमो रूथ डेज़न, ताषी फुनचक तथा डोगरी खवरें बोधराज शर्मा पढ़ते थे। उर्दू के प्रसिद्ध शायर जनाव सलाम मछली शहरी थे। उर्दू कहानीकार सुहेल

अज़ीमा वादी जिन्होंने रिटायरमेंट के पश्चात भी अपने जीवन काल में बराबर संपर्क बनाये रखा था। 1981 की पटना में कर्न्सट के लिये गई सीमा तथा उसकी माँ की सुहेल अज़ीमा वादी के नेक दिल बेटे शानुर्लरहमान से भी भेंट हुई थी जो उन दिनों रेडियो पटना में ही कार्यरत थे। अपने स्वर्गीय अब्बा के लिये बेटे के भरे मन से अकीदत और इज्जत को महसूस कर मन कुछ सोचने पर अनायास ही मजवूर सा हो उठा था। क्या मानवीय संवेदनायें सभी जगह एक सी ही होती हैं।

अब हम पूर्णतया जम्मू में ही स्थापित हो गये थे। जम्मू में उस समय सांस्कृतिक गतिविधियों के प्रमुख दो केन्द्र थे। डोगरी संस्था जम्मू तथा जम्मू रेडियो स्टेशन। पहले डोगरी संस्था जम्मू।

इस डोगरी संस्था के बजूद में आने के पच्चीस वर्ष पश्चात् यानि रजत जयन्ती का अवसर, "नर्मी चेतना दे 25 बरें दे इस आंदोलन दा गै नां डोगरी संस्था जम्मू ऐ। अज्जै तगर डोगरी भाषा च जितना साहित्य सिरजेया गेया ऐ ओदा 90-95 फीसदी हिस्सा डोगरी संस्था दे साधके दी साधना दा फल ऐ। इनें साधके दी साधना, बनी दियें पक्की सिड़कें रस्ते अग्गें नेई बदी, इने साधके सुन्ने-बरान थारें च पगडंडियां बी आपूं बनाईयां ते अपने गै हौसले दे दिये बालियै इने बिखड़े पैंडें च इक दूए दी सौग बी नभाई।" (सम्पादकीय टिप्पणी रजत जयन्ती ग्रंथ, पृष्ठ संख्या । (2) अर्थात :- "नई चेतना के 25 वर्षो के आंदोलन का नाम ही डोगरी संस्था जम्मू है। आज तक डोगरी भाषा में जितना साहित्य सृजन हुआ उसका 90-95 प्रतिशत हिस्सा डोगरी संस्था के साधकों की साधना, बनी बनाई सड़कों के रास्ते आगे नहीं बढ़ी। इन साधकों ने सूने वीरान जगहों पर चलने के लिये पगडंडियाँ भी स्वयं बनाईं तथा अपने ही साहस के दीप जला कर इन ऊबड़ खाबड़ रास्तों पर एक दूसरे का साथ निभाया"।

यह एक निर्विवाद तथ्य है कि लिखित साहित्य के नाम पर कुछ एक भजन तथा कोई एक धार्मिक गद्यानुवाद ही इस भाषा के पास थे। चाहे विरासत में मिला लोक साहित्य का विशाल भंडार इस भाषा के पास सदियों से मौजूद था पर प्रतिकूल परिस्थितियों तथा समय की धनी धुंध से आच्छादित। 1944 से चले साधकों के इस काफिले के सामने साहित्यिक यात्रा पर आगे वढ़ने के लिये कोई राजपथ नहीं था अपितु कंटकाकीर्ण

ऊबड़खाबड़ पगडंडियां मात्र ही थीं।

"इस दुर्गम कठिन पथ यात्रा का इतिहास स्वर्णाक्षरों में लिखा जाने योग्य है क्योंकि जिस उद्धेश्य को लेकर डोगरी संस्था के इस काफिले के कदम बढ़े थे। उस का उद्धेश्य ध्रुव तारे की मनिन्द कभी आँख से ओझल नहीं हो पाया था"। आज जो डोगरी भाषा ने पूर्ण स्थान ग्रहन किया है, भारतीय संविधान में अन्य भाषाओं के बराबर सम्मान जनक स्थान मिला है उसके लिये मुख्यतया डोगरी संस्था ही बधाई की पात्र है। "टिप्पणी"

परन्तु डोगरी भाषा के उत्थान, प्रचार, प्रसार के लिये सन्नद्ध इस अभियान में उस समय के प्रिन्स आव बेल्ज़ कॉलिज के तीन विद्यार्थी भी शामिल हो गये थे जिन्होंने हिन्दी में लेखन के बजाये डोगरी में लिखना आरम्भ कर दिया जो धीरे-धीरे देश विभाजन के पश्चात पूर्णतया डोगरी भाषा के लिये ही समर्पित हो कर रह गये। इसी समर्पण में उनके सामने क्या क्या कठिनाइयें आई ? अपने-पराये सभी के कटाक्ष उपहास को किस प्रकार झेलना पड़ता था वह आज सव रहने ही दिया जाये तो बेहतर है।

इतना ही जान लेना ठीक रहेगा कि, यह लोग अपनी ही धुन में मस्त रहते। और कहीं न हो तो कालिज की पुली पर ही बैठे अपनी अपनी रचनाओं का आदान-प्रदान करते, बतियाते रहते, आस-पास से बेखवर बेपरवाह। जब कि दूसरे लोग जो गहरी सोच समझ वाले थे। योजना बद्ध तरीके से अपनी महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति को प्राथमिकता देकर डोगरी की सेवा में रत रहे जब कि यह तीनों फक्कड़ कवि "दीप, मधुकर, यश" कविता के इन्द्रधनुषी रंगों में खो कर रह गये। इस क्षेत्र में इन निःस्वार्थी साधकों को वह सम्मान कभी नहीं मिला जिसके वह भी हकदार थे।

जब इस डोगरी संस्था ने सत्ता से हाथ मिला लिया तो इस व्यवसायीकरण को किसी भी मूल्य पर अपने को गिरवी न रख पाने वाले, इन तीनों कवियों को नागवार गुज़रा। यह लोग अपने अपने रास्ते खोजने निकल पड़े।

यह भी हो सकता है कि, निजि लाभ तो कुछ व्यक्तियों ने बटोरा ही था परन्तु इसके वगैर इस भाषा का विकास पथ भी अवरूद्ध हो सकता था। एक ओर तो कविता के लिये हृदय तो यहाँ इन तीनों के पास भरपूर था पर साहित्य की राजनीति की सफलता के लिये पैनी दिमागी सोच नहीं

थी किसी के भी पास। इन तीनों की इस गोरख धंधे से किनाराकशी कर लेना ही एक बड़ा कारण था कि जिसके चलते इन्होंने अवसरवादी होने से परहेज़ कर लिया था।

दूसरी ओर कुछ लोगों ने डोगरी की दुहाई देकर अपने को खूब मजबूत कर लिया था। वर्षो साहित्य के विकास के नाम पर यश, मान, प्रतिष्ठा पदवी एवम् प्रचुर अर्थ लाभ भी हासिल किया था। इस सब के लिये शायद सत्ता से समझौता कर लेना जरूरी था।

अपनी अपनी जगह दोनो के रास्ते ठीक थे। पर भावी पीढ़ियों के लिये एक तथ्य हमेशा जीवित रहेगा कि, दीप की गज़ल, मधुकर की कविता, यश के गीत, इन तीन मजबूत स्तम्भों के वगैर डोगरी साहित्य की एतिहासिक कथा यात्रा अधूरी ही रहेगी। ज़रा और भी स्पष्ट तथा मेरी समझ में इस तरह भी कहा जा सकता है कि, पुल बनानें पर नाम की तख्ती किसी कद्धावर समृद्ध व्यक्ति की लग जाती है, किन्तु पुल की नींव में चुनें जाने बाले पत्थरों को कोई भी महत्त्व नहीं देता।

यहाँ पर पहुँचते पहुचते इस कथन पर प्रश्न चिन्ह लग सकता है कि, डोगरी भाषा को समृद्ध करने में प्रयत्नशील लेखकों के विशाल काफिले में से दीप, मधुकर यश का ही ज़िकर क्यों, अन्य सब का क्यों नहीं, सो इसके लिये यही कहा जा सकता है कि, प्रकाश और अंधेरा य फिर सत्य और धोखे की खींच-तान में इस युवा "त्रिमूर्त्ति" साधकों के हिस्से में आया था सिर्फ धोखा, अंधेरा, अविश्वास। चाहे इस सब के लिये परिस्थिति जन्य कोई अलग अलग कारण भी क्यों न रहे हों।

मधुकर के व्यक्तित्त्व के लिये बहुत संक्षेप में इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि, मधुकर का व्यक्तित्त्व ज्येष्ट आषाढ़ की प्रखर धूप सा था। साहित्य एकेडमी द्वारा डोगरी को दिया गया साहित्य एकेड़मी एवार्ड हासिल करने के एलान पर मधुकर का अपना ही कथन था कि "इस तपती धूप से मुक्ति पाने के लिये छाते का उपयोग जरूरी हो जाता है यश" यह टिप्पणी उन्होंने किस संदर्भ में तथा क्यों की थी ? किन लोगों को मजबूरन छाता लगा कर उन की उग्रता से निजात हासिल हुई थी ? यह तो वही वेहतर जानते होंगे। य फिर "निर्बल के बलराम नहीं है। निर्बल के वल हैं दो घूंसे"। (वच्चन) केहरो दुनियाँ को उंगली पर फेरो यह उनका

अपना ही सत्य रहा होगा। मधुकर थे दबंग, निडर कुछ हद तक उच्छृंखल जब कि दीप और यश दोनों के दोनों बासन्ती बन वयार से सहज, सरल, कोमल।

बेदपाल दीप जैसे रचनाकार के अन्तर में प्रतिभा का अजस्त्र भंडार था। परन्तु अनेक त्रासदियों, विडम्बनाओं के तुफानों में उनकी जीवन नैय्या डगमगाती रही, किनारों को तलाशती रही। मंझधार के भंवरों में चक्कर खाती रही अन्ततः उन्हें लिखना ही पड़ा कि :-

मंज़िल कुतांऽ ऐ, कुत पासे,
दस्सो के न्यां ऐ कुत पासे। ....दीप

अर्थात् :- "इस जीवन यात्रा की मंज़िल कहाँ है ? जीवन भर अन्याय ही मिला, बताइये कि न्याय कहां है "?

साहित्य की खेद जन्य राजनीति में भी दीप मंज़िल की तलाश में भटकते ही रहे। जीवन भर शोषण, अन्याय के बिरूद्ध आवाज़ बुलन्द करने वाले दीप के हिस्से में अन्याय, शोषण ही बदा था। क्या उन्हें कहीं भी न्याय मिल पाया ? इसका निर्णय गुणीजन पाठक स्वयं ही करेंगे।

मुझे वर्षों तक अपने पति के साथ-साथ चलते कुछ ऐसा लगता रहा है कि, जम्मू में यश शर्मा की साहित्यिक यात्रा विरोधों और विषमताओं का एक इतिहास ही रहा है। कोई अप्रत्याशित य अप्रिय घटना से मन की संवेदनाओं पर गहरी दरारें ही पड़ती रही हैं। पर यह सब मेरे अपने ही मन का भाव है जिसे मैंने वर्षों तक चुपचाप झेला है। यहाँ पर सन् 1972 की एक बेहद अप्रिय स्थिति का प्रमाण सहित ज़िक्र करना पड़ेगा जिससे न्याय तुला का पलड़ा रत्ती भी इधर-उधर न हो सके। रही भुक्त भोगी कवि की बात तो उनमें दुर्घटनाओं को भूलने की अपूर्व क्षमता है। वह तो अतीत को झाड़ पोंछ कर फिर सहज सरल मार्ग पर चल पड़ते हैं। इस सारे प्रसंग का किसी व्यक्ति विशेष के यानि अपने पति का गुणगान करने से मेरा कोई संबंध नहीं। उद्धेश्य है, भविष्य की पीढ़ियों को यह जानकारी देना कि किस प्रकार साहित्य में भी वट वृक्ष कहलाने वाले व्यक्तित्त्व अपने साये तले छोटे पौधों को पनपने नही देना चाहते थे। इसी को साहित्यक भ्रष्टाचार का परोक्ष पर सुसंस्कृत रूप भी कहा जा सकता है।

वैसे तो यह भी कहावत है कि वक्त गुज़रने के साथ बड़े से बड़ा

घाव भी भरने लगता है, पर उसी कच्चे घाव पर जब बार बार रगड़ लगती है तो वह विषाक्त भी हो उठता है।

चलो यह भी मुझे मंज़ूर है। जैसा कि पहिले भी कहा जा चुका है कि 1962 में हम लोग श्रीनगर के रेडियो स्टेशन के सौहार्द पूर्ण बातावरण से घरेलू परिस्थितिओं के चलते जम्मू में स्थायी रूप से आ चुके थे। उस समय तक मुझे यह विलकुल भी पता नहीं था कि जम्मू में कोई कलचरल एकेडमी की स्थापना भी हो चुकी है य उस एकेडमी द्वारा किसी के निजि लेखन संकलन को इस साहित्यिक संस्था द्वारा कोई वित्तीय सहायता भी आंशिक अनुदान के रूप में प्रदान की जाती हैं

यह सूचना तो मुझे एक विश्वसनीय प्रभावशाली व्यक्ति द्वारा घरेलू बात-चीत के दौरान ही मिली थी। उन के परार्मश से ही मैंने अपने पति की रचनाओं को संकलित किया तथा एक जिल्द में बंधवाने का ढंग भी उन्ही से सीखा। और तो और उस पुस्तक का नाम भी "जो तेरे मन चित्त लग्गी जा" उन्ही के परामर्श से दिया गया था। यह नाम यश शर्मा की पुस्तक के प्रथम गीत के मुखड़े पर आधारित था। यह संकलन कलचरल एकेडमी में भिजवा दिया गया।

कुछ समय के पश्चात् कल्चरल एकेडमी में सवमिट करवाई गई "जो तेरे मन चित्त लग्गी जा" की दो प्रतिओं में से एक प्रति लौटा दी गई इस मूल्यांकन के साथ 'The value of this poetory is zero' लाल रंग की स्याही से 100 के 100 गीत बड़े बेढ़ंगे तरीके से काटे गये थे। यानि यह गीत हैं ही नहीं। यहाँ यह नहीं समझा जाना चाहिये कि, किसी लेखक की कोई कृति, किसी संस्था के पारखियों द्वारा अनुदान के लिये अस्वीकृत होने का कोई मन में रोष है। यह सब तो सभी भाषाओं के साथ जुड़ा ही रहता है। कोई कृति लेखन स्तर पर पूरी न उतरने पर उसे अस्वीकृत किया जाना उस भाषा की गुणवत्ता को बनाये रखने का एक स्वस्थ और सराहनीय नियम है।

परन्तु दुःख तो इस बात का है कि, मारने बाले ने पत्थर की बजाये फूल की पंखुडियों से हृदय को चीरने का जतन किया था। किन्हीं कला पारखियों के विषाक्त प्रतिशोध के चलते कैसे उनके अपने बिवेक और विचार पंगु हो गये थे।

यह तो 1972 जुलाई के उस समय के एकेडमी के सत्तासीन

अधिकारी ही बेहतर जानते होंगे। या फिर उस समय के कोई एक वह सर्वोच्च परामर्शदाता, जिन्होंने इस षडयन्त्र में प्रमुख भूमिका निभाई थी।

इस पुस्तक में वह गीत भी सम्मिलित थे जो 1964 में पहली और आखिरी डोगरी फिल्म "गल्लां होइयाँ बीतियाँ" में गाये गये थे जिसके रिकार्ड हिज़ मासर्टस वायस कम्पनी ने तैयार किये थे। फिल्म तो चाहे समय की परतों की धूलि में छिप कर रह गई हो पर अच्छा गीत संगीत तो हमेशा जीवित रह जाता है। उन गीतों की प्रसिद्धि से ही यश शर्मा का "गीतों का राजकुमार" शब्द पर पक्की मोहर लगी थी। यह पदवी तो उन्हें विभाजन के पश्चात ही अनेकानेक मुशायरों में सस्वर गीत कविता पढ़ने पर जनता द्वारा स्वतः दी गई थी, न कि किसी सरकारी संस्थान द्वारा दी गई थी। वह गीत नित नूतन रूप धारण कर के अपनी सत्ता का लोहा मनवा चुके थे। इसकी चर्चा कहीं और :-

उस समय सभी गीत संगीत का निर्देशन जम्मू रेडियो से श्री प्रीतम सिंह जी द्वारा ही होता था। गीतों के शब्दों के अनुरूप ही प्रीतम सिंह जी रचना को स्वरबद्ध करते थे। प्रायः सभी गीतकारों की रचनायें जो उन्हीं के निर्देशन में स्वर बद्ध हुई थी आज तक भी अपने आप में बेजोड़ है। प्रीतम सिंह जी भी उस समय स्तब्ध रह गये थे जब उन्होंने सुना कि, मेला बंजारा, वसन्त, वद्धली जैसे गीतों का मूल्यांकन "ज़ीरो" कलचरल एकेडमी के द्वारा नियुक्त कला पारखिओं द्वारा किया गया है।

उस समय बहुत सी दबी-दबी आवाज़ें उभरी थीं। उनमें अंधेरे में पीठ में छुरा घोंपने वाले स्वयं भी शायद शामिल हुऐ होंगे। जैसा कि प्रायः होता ही है। उस समय हिन्दी अंग्रेजी के समाचार पत्रों में इस अन्याय के विरूद्ध स्वर तो उभरे थे पर यथार्थ के सत्य को उद्घोषित करता एक सशक्त स्वर उभरा था श्री विजय सूरी का। उर्दू पत्रिका उजाला में उन्होंने सत्ता की विसात पर शतंरज की गोटियां विठाने वालों को बेनकाव किया था। विजय सूरी जी का वह लेख इस बात का प्रमाण है कि, किसी साहित्यकार की वर्षों की साधना का मूल्याँकन "जीरो" कलचरल एकेडमी के 1972 के समय के अधिष्ठाताओं की किस ओछी मानसिकता को उजागर करता है।

कहावत है कि प्रत्यक्ष को प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती परन्तु वर्त्तमान के अनन्तर प्रत्यक्ष तो समय की पर्त्तों के अन्दर दफन हो जाता है,

पर प्रमाण कालातीत सत्य को सहेजे रखता है। यही प्रमाण अपने काल खंड से चल कर शब्द समूह तथा तिथियों की रथ यात्रा करता हुआ भावी पीढ़ियों के पाठकों, अन्वेषकों, शोधकर्त्ताओं तक पहुँच पाने में समर्थ होता है। यदि यहां भी ऐसा ही हो सकेगा तो इसे पढ़ने समझने और न्याय की शक्ति को निःस्सन्देह बल मिलेगा।

"उजाला जम्मू : 28 जुलाई, 1972 कलचरल एकैडमी का करिश्मा", डोगरी ज़वान के नामवर गीत कार श्री यश शर्मा डोगरा देस के लिये मौहताजे तआरूफ नहीं हैं। उन के गीत न सिर्फ जम्मू शहर के नौजवानों के लवों पर मचलते रहते हैं, वल्के जहाँ जहाँ डोगरी ज़बान बोली जाती है और समझी जाती है, यश के गीतों की तानें सुनाई देती रहती हैं।

यश शर्मा के गीत, फिल्म रेडियो और स्टेज पर गाये गये हैं और डोगरी मुशायरों में "यश" शामल न हो तो मुशायरा भी फीका लगता है। यश के बहुत से गीत डोगरी के नसाव में लगे हैं। उस के यह गीत डोगरी शिरोमणी में भी शामल हैं।

अवाम और दोस्तों के मजबूर करने पर यश ने अपने यक सद (100) गीतों का एक मजमुआ तैयार किया और अशात के सिलसिले में इमदाद हासिल करने की गरज से रियास्त की कलचरल अकैडमी को भेज दिया। मगर न जाने किन साहव ने यश के गीतों का ये मजमुआ रिव्यू के लिये किसी कुन्द ज़हन और डोगरी जबान से नाबल्द और गैर शायर के पास भेजा और उस गैर शायर और डोगरी जवान से नावाकिफ ने यश के गीत नाकाविले अशात, गैर मुनासिब और बेवज़न गीतों के मजमुअे का नाम दे दिया, यानि उस कुन्द जैहन जज को 100 में से 100 गीत ही बेवज़न नज़र आये।

यश के साथ कलचरल एकेडमी ने जो कुछ किया है, कल वो किसी दूसरे डोगरी जबान के अदीव शायर के साथ किया जा सकता है। यश ने जो मस्वदा पेश किया था उस का नाम था

"ज़ो तेरे मन चित्त लग्गी जा"

कल्चरल एकेडमी के इस हत्तकआमेज़ रवैये के वाइस यश के मद्धाहों में सख्त ग़मों गुस्सा पाया जाता है और वो हकूमत से मुतालवा करते हैं के डोगरी जबान के सरकरदा शोरा इकराम की एक कमेटी के सामने यश का

मसबदा पेश किया जाये और अगर उस कमेटी की राये, पहली राय से मुख्तालिफ हो तो उस शख्स के खिलाफ कारवाई की ज़ाये कि उस ने क्यों अदब के मैदान में भी बददयानती से काम लिया ?

इस हकीकत से कोई इन्कार नहीं कर सकता कि, कलचरल एकैडमी की तरफ से जिन किताबों की अशात के लिये मदद दी गई है, उन में से बहुत सी किताबें हकीकी मायनों में अशात के काबिल न थी। यानि उन में कोई बेहतर मोआद न था।

मगर इस के बावजूद वो किताबें एकैडमी की इमदाद से शाया हुइ।

क्या अकैडमी का यही मकसद है कि वो अच्छे उदबा और शोरा की दिलशिकनी करे, उन के खिलाफ साजिश करें और डोगरी जवान के नाम पर यह उद्‌दवा और शोरा, जिन के फन का लोहा डोगरी जबान के महारथी भी मानते हैं, को ज़लील ओ खोआर किया जाये।

हम एकैडमी के चेयरमैन से गुज़ारिश करते हैं कि डोगरी जबान के इस अज़ीम शायर के साथ हुई नाइन्साफी और हत्तक आमेज़ रवैये की जाँच पड़ताल कराई जाये। (एकेडमी का रिव्यू)

यह बात जाने कैसे श्री हरिवंश राय बच्चन जी तक जा पहुँची थी। तथा डोगरी भाषा के प्रति विशेष स्नेह रखने वाले श्री विष्णु कान्त शास्त्री जी का कलकत्ता से पत्र आया था कि, यश मैं तुम्हारे गीतों को बंगला भाषा के गीतों के समकक्ष समझता हूँ तुम्हारे गीतों में जैसे माटी की सोधी सुगंधि रहती है और न जाने क्या-क्या प्रोत्साहन दिये गये थे तथा लिखने की निरन्तर प्रेरणा देते रहे थे शास्त्री जी।

श्री विष्णु कान्त शास्त्री जी सुहृदय एवम् साहित्य के प्रकांड बिद्वान थे। शास्त्री जी का पत्र 31/3/72 का लिखा प्रस्तुत है प्रमाणिकता के लिये। यह पत्र उन्होंने उस डोगरी गीत को पढ़ने के तुरन्त बाद लिखा था जिसे इन्होंने शास्त्री जी को बंगाल के मुक्ति युद्ध के पश्चात लिखा था। गीत :-

श्री विष्णुकान्त शास्त्री
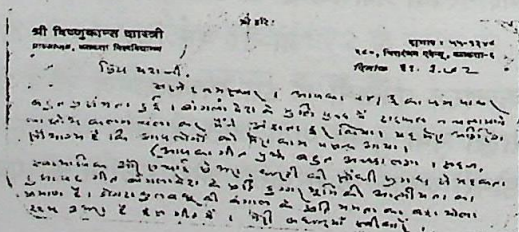
गीत

चन्ना लेई चल देस बंगाले, जित्थें नमां राज बनेया
उसी मुन्नु दी सगंद जेड़ा टाले, छन्दे छन्दे लेई चलेया ।
जादूं भरे नैन, चैन दिले दा चुराई लैन
नीन्दरां गुआई देन सौलियां बंगालनां
गिट्टे गिट्टे तोड़ी काले केसें दी फुहार पवै
हस्सी हस्सी लुट्टी लैन, मनें आला आह्‌लना ।
गुम्मटा दा चढ़ी दिन्नी आले, ते इन्नी सारी गल्ल मन्नी लै ।

चन्ना " " " "

सुन्नें सांई धरती ते नीलमें दा गास जित्थें
मह मह महकदियाँधाने दियां बालियाँ
सन ते कपाह् चाऽ बंझे दे न जाड़ जित्थें
टैह् टैह् टैह्‌कदियां फुल्लें दियां डाह्‌लियां
मन भान्दे रूप निराले, ते इक्क बारी लेई चलेयां

चन्ना " " " "

पापियें दे कोला लाज अपनी बचाने गित्ते
किआं किआं छाली, उने पदमा च मारियाँ
मत्थें कनैं लाई लां मैं धूड़ उत्त देसे आली
जित्त देस रौह्‌दियां न, इय्यै नेईयां नारीयां ।।
रत्तू कन्नें दिये, जिन्हें बाले उन्दे पर वारी जन्नियां ।

चन्ना लेई चल देस बंगाले ।।

अर्थात् : (मुक्ति वाहिनी सेना के सिपाही को उस का पत्नी का अनुनय भरा अनुरोध)

अर्थात् : ऐ मेरे प्रियतम ! मुझे भी उस देश में ले चलो जहाँ नये राज्य की स्थापना हुई है । उसे मेरे मुन्नु (नन्हें पुत्र) की सौगंध है जो इस के लिये टाल मटोल करे ।

श्याम वर्णी बंगला युवतियों के मद भरे युगल नयन होंगे, जिन्हें

निहार कर उड़ जाती होगी रातों की नींद। जिनके लम्बे काले केशों की फुहारें उनके चरण चूमने की होड़ में रहती हैं। जिनका मृदु हास मन के नीड़ को लूट लेता है। गुम्मट (पुराने जम्मू का प्रवेश द्वार) की ढक्की से मैं आपको पुकार रही हूँ कि, मुझे भी अपने साथ ले चलो।

बंगला देश की धरती सोने (उर्वरा) की सी है और आकाश नीलम जैसा है। हरित धान की बालियाँ महमहाती हैं। जहां सन (जूट) कपाास, चाय और घनी वांसावलियाँ हैं। फूलों से भरी टहनियाँ धरती की ओर झुक झुक पड़ती हैं। उन मन भावन निराले रूपों को मैं भी आँख भर कर देखना चाहती हूँ। ऐसे सौन्दर्य को निहारने की मेरी उत्कट इच्छा है।

दुराचारी दुष्टों (बिदेशी) से अपनी लाज बचाने के लिये जिन्होंने पदमा (नदी) में कूद कर जल समाधि ले ली, उस देश की माटी को मैं माथे से लगाना चाहती हूँ। जिस माटी ने जन्म दिया ऐसी बीरांगनाओं को।

एक बार केवल एक बार मुझे भी उस पुण्य भूमि के दर्शन करवा दो, जहाँ उन वीर नारियों ने अपने रक्त के बलिदान से दीपक जलाये हैं।

इस डोगरी गीत को पढ़ कर अभिभूत हो उठे थे विष्णु कान्त शास्त्री और उत्तर में लिखते है "आपका गीत मुझे बहुत अच्छा लगा। सहज स्वाभाविक और सच्चाई से भरा। धरती की सोंधी सुगंध से महकता हुआ यह गीत, बांग्ला देश के प्रति डुग्गर भूमि की आत्मीयता का प्रमाण है। डोगरा कुलवधु की बंगाल के प्रति ममता का बड़ा भोला स्वरूप उभरा है इस गीत में। (मेरी बधाईयां स्वीकार करे) उनके द्वारा इस गीत के प्रति ममत्व की भावना के लिये और कुछ कहने की आवश्यकता नहीं ही है।

इन धिनौनें दाँव पेचों से सर्वथा परे गीतकार की लेखनी तथा स्वाभाविक दिनचर्या पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा था, उन्होंने यहाँ के साहित्य के अधिष्ठाताओं द्वारा किये गये प्रपंच के इस गर्हित अध्याय का पटाक्षेप ही उचित समझा था। हर इन्सानी रेवड़ में कुछ काली भेड़े भी होती हैं। और वह उन्हें अच्छी तरह चीह्नते भी थे।

इस रचनाकार को तो अच्छी रचनाओं का सृजन ही अभीष्ट था कि, डोगरी साहित्य समृद्ध से समृद्धतर होता जाये। उनके पास रेडियो स्टेशन का एक सशक्त साधन जो था।

फिर भी गीतकार यश शर्मा का अंतर कहीं, किसी कोण से तो

आंदोलित हुआ ही होगा। आखिर मानव मन हैं। संभवतः "अभियान" नाम की वह लम्बी कविता "जो तेरे मन चित्त लग्गी जा" पुस्तक वर्षों वाद जब दुवारा बजूद में आई तो उसमें अंतिम कविता "चाह" से पहिले जो कविता पृष्ठ संख्या 131 से लेकर 137 तक में प्रकाशित है उसका जन्म हुआ होगा। इस "अभियान" नाम की कविता का हिन्दी रूपान्तर :-

"अभियान"

दूर बहुत दूर निकल /आये, चलते, चलते/

पीछे मुड़ कर देखें, तो आश्चर्य सा होने लगता है कि/इतनी कठिन राह और इतना लम्बा रास्ता/छाती ताने पर्वत, झाड़ झंखाड़/

गहन अंधेरे जंगल, हम कैसे पार कर आये/

ठहरो! तनिक सोचने दो,

गिनने दो मुझे अपने साथी/

यह मुहिम बड़ी कठिन थी /

वैसी ही जैसी, जोरावर ने सर की थी /

अंधेरों की मार /

अंग अंग में पीड़ा /

बन्द बन्द में टूटन और घाव बेशुमार /

आँखों के आगे तिरते अंधियारे -

गिर पड़ते, किन्तु निश्चय ने

बाँह थाम ली हमारी।

पर एक बात बड़ी अजीव सी थी।

तब भी लगता था कि / हमारा अगुआ (रहनुमा) जिसका अग्रभाग तो सिंह सरीखा था / पर पृष्ठ भाग सियार सा जान पड़ता था। इसे अपने मन की भ्रान्ति सीमानकर / हम सभी मोन ही रहे। किन्तु भोर नही /

वह संध्या बेला थी -

सन्या, पन्था प्रातः काले।

(अध्ययन और यात्रा का समय प्रातः काल)

किन्तु हमारा काफिला चला था -
डूबती साँझ के समय - चलना पड़ा था।

क्योंकि, हमारा मार्ग दर्शक था "निश्चय" / आगे आगे चलता कभी तो वह देवदार के ऊँचे पेड़ सा लगता / कभी कोई गिठमिढिया। उस समय कुछ आवाज़ें कानों में पड़ीं / (सावधान) आप का मार्ग दर्शक, निश्चय नहीं कोई छलिया है /

किन्तु हमने उन आवाज़ों को सुन कर भी / अनसुना कर दिया था/ जहाँ पुरवैया हमारे साथ साथ चल रही थी / वहीं एक सतरंगी पींघ, रंगीले सपने / फूलों की सुगन्धि / साँझ के साये / तथा एक पगडंडी भी सम्मिलित हो गई /

और बन गया एक भरा पुरा काफिला / ज़वानी में उठाया गया कदम/ बड़ा निडर, निधड़क सा होता है / भय नाम की कोई वस्तु/ हमें छू तक नहीं गई थी /

हाँ अलवत्ता डूवता दिन / हमें विदा करते हुए / और भी अवसाद ग्रस्त हो गया था / सान्झ कम्पित हो उठी / आकाश का पहला तारा, एक अश्रु बन कर / उसकी आँखों में झिलमिलाने लगा / पर हमें जाना था, अंधेरे जंगल को पार करके / रोशनी के दूसरे छोर तक / घना जंगल / पेड़ों से झरे / सूखे पत्तों पर पाँव पड़ते ही / सिसकियों की सी आवाज़ सुनाई देने लगती थी / उसी को अनुसना कर के / हमें पार जांना था / प्रातः होने तक, एक साथ चलने और रहने की / कोई प्रतिज्ञा / कोई सौगंध हमने खाई हो / ऐसा कुछ भी याद नहीं / किन्तु हमारे दिलों की धड़कन / एक साथ वढ़ते कदम / होठों पर आये गीत / इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण थे / कि हम सुवह होने तक साथ नहीं छोड़ेंगे /

आज इस बात का कोई रंज, कोई मलाल नहीं / कोई शिकवा शिकायत नहीं / कि, उस घड़ी / उदास ढलते दिन / अश्रुपूरित संध्या को छोड़ कर / कोई तीसरा हमें विदाई देने नहीं आया था / पूर्वजों के कारनामें / उनकी शौर्य्य गाथायें / धरती का गौरव / यही थे वह पहले गीत/ जिनके पैन्ने स्वर / कटार सी बन कर / अंधेरे के वक्ष स्थल में उतर गये थे /

एक चीख / एक आर्त्तनाद / चहूँ ओर व्याप्त हो गया था / पंखेरू फड़फड़ाये / जानवर त्रस्त हो उठे / जटाधारी, सदियों पुराने पेड़ / जड़ों

समेत डोल उठे / (कुरीतियाँ अंध विश्वास)।

यह एक चमत्कार था / गीत मन्त्र बन जायें तो चमत्कार हो जाता है / औंधी पड़ी काली नागिन की तरह / बलखाती पगडंडी साफ दीख पड़ी / अथाह अंधेरों में चमचमाती पगडंडी / यह चमत्कार नहीं तो और क्या था/

अब हमारे होठों पर एक नया गीत था / मनुष्य का/ मनुष्यता का/ समता का ममता का / अपने स्वाधिकारों का / जवान ऊंची पर्वत मालायें/ नदी-नाले बावड़ियाँ / ताल सरोवर / चीड़ देवदार/ जड़, चेतन / उदास रेगिस्तानों / वीरान बाग-वागीचों । कीकर बवूल/ बांसावलियों /आक-धतूरा तुनु कमीला / थोहर, बरैंहकड़ (वन बन्यारों, जडी बूटियों । गरने के जाड़ सभी का / इन्सानियत का / हमारे होठों पर एक नया गीत था /

अंधकार के प्रहारों को / गीतों की ढाल पर थामते हुए / हम आगे ही आगे बढ़ते रहे / दो किंगरों का गीत (कवि चरण सिंह) गाने वाले / अलवेले कवि का / गाते गाते गला बैठ गया / वह काफिले से बिछुड़ कर पीछे रह गया / हम फिर भी चलते रहे (रूके नही) /

थके हारे, निराश उदास / बाँह टूटी / पीड़ा जगी / असह्य हुई, सींक जगी / किन्तु अभी हमारा सफर बड़ा लम्बा था /

अब जा कर समझ आया / कि, ढलता दिन / हमें विदा करते समय / इतना उदास क्यों हो गया था / सान्झ की आँखें क्यों भर आई थीं/ निश्चय के बार बार मना करने पर भी / हम दम लेने को बैठ ही गये / "वह" हम सब से कुछ दूर जा कर खड़ा हो गया।

काश वह हम में से एक होता / या हम सभी उसी जैसे / ठहरो / याद करने दो / "कास्तू" की कहानी किसने सुनाई थी / "फुल्ल विना डाली" की बात "किसने" छेड़ी थी / कथा-कहानियों की मरहम हमारे ज़ख्मों पर लगाते-लगाते। उन दोनों ने चुप्पी क्यों साध ली थी।

अपने घाव, अपनी पीड़ा, वेदना को छिपा कर / दूसरों के घावों पर मरहम लगाने वाले मेरे साथिओ / तुम दोनों मौन क्यों हो गये ? जवाव दो ? बोलो ? अपनी कथा पूरी तो कर लो /

ओ अंधेरे के जंगल / साक्षात्कार कर / सामने आ / क्षमा कर दे हमारी भूलों को / बस इतना उपकार कर / लौटा दे हमें / हमारे सूरज,

चाँद, सितारे /

निश्चय की आँखों में आँसू नहीं चिंगारियां फूट रही थीं / ऐसा लगा आकाश से एक साथ सौ-सौ बिजलियाँ कौंध उठी हों/ पगडंडी भयभीत हो उठी / चरण चले / कदम वढ़े / आगे वह और पीछे हम / पर अब हमारे कदम ल़ड़खड़ा गये थे / हाथ छाती पर धरे / हौसले टूट गये थे/

होठों पर गीतों की जगह मौन था / संभवत्: हम में से हर किसी की यही सोच थी कि / कहाँ रह गई पुरवैया / सतरंगी पींघ / रंगीले सपने / कहाँ खो गये कौल करार / ? फूलों की सुगंधि के स्थान पर / टूटेमन-जर्जर देह / पलाश के रक्तिम फूलों सी / अनगिनत ज़ख्मों की बहार थी / पूर्व दिशा में सूर्य की किरणें फूटीं / यात्रा का अन्त हुआ / रोशनी होने ही वाली थी / हमारा अगुआ वाँहें पसारे / पहली किरणों को बाँहों में भर लेने के लिये एकदम तैयार था / और पीछे खड़े हम सोच रहे थे / कि, कहीं यह किरणें / हमारी जर्जरता को देख कर । मुंह ही न मोड़ लें /

संकेतों द्वारा स्वतः स्फूर्त्त इस कविता में 1944 से लेकर 1972 जुलाई तक का लेखा जोखा है ।

यह लम्बी कविता एक दस्तावेज बन जाता है किसी संस्था के जन्म मरण का अर्थात् उत्थान पतन का। पतन उस दिन होता है जब कोई मठाधीश बन कर चौतरफा चाटुकारों की प्रशस्तियां सुन कर अहं में डूव कर साहित्य का मर्मज्ञ और सर्वज्ञ होने की दावेदारी करता है। इसी तथ्य को उद्घोषित करती यश शर्मा की एक गज़ल की इन पंक्तियों का अवलोकन आवश्यक है ।

"उऐ! अदब नबाज़ न उऐ! अदव शनास उन्दे गै हत्थ अदब दी गलांऽ ऐ दोस्तो ।" *(बेड़ी पत्तन संझ मलाह् - पृष्ठ संखया 49)*

अर्थातः वही साहित्य से परिचित हैं, और स्वयं ही साहित्य के पारखी भी हैं, इस लिये साहित्य रूपी, गाय के गले की रस्सी उन्होंने ही अपने हाथों में मजवूती से पकड़ रखी है। (थाम रखी है).

(वेद पाल दीप को इंगित)

चुपचाप कीऽ चली गेया, गज़ले दा बादशाह

दुखें दी दिल खराश, दास्ता ऐ दोस्तो ....(यश)

अर्थातः गज़लों का बादशाह, क्यों चुपचाप चला गया, दिल को ज़ख्मी करने वाली यह एक दुःख भरी कहानी है दोस्तो (यश)

(दीप की कहानी - दीप की ही ज़ुबानी)
"दैनिक कश्मीर टाइम्स, रविवार फरवरी 25 - 1990"
अजे बी मारा दा कोई आले
डोगरी साहित्य के मूर्धन्य लेखक तथा चर्चित गज़लकार
श्री वेद पाल दीप से की गई भेंट वार्त्ता पर आधारित
भेंट कर्त्री आशा अरोड़ा -

सब से पहिले यह निवेदन आवश्यक है कि, किसी लेखक, को कलाकार को, किसी भी पुरस्कार द्वारा सम्मान, पहचान य फिर आर्थिक लाभ की अपेक्षा होती है य नहीं - यह मेरा विषय नहीं है, परन्तु अपनी रचनाओं के प्रति मोह तो रचनाकार को होना स्वाभाविक ही है।

शायद इसी मोह के चलते एक दिन सुवह सवेरे अकस्मात दीप घर आये थे। चायनाश्ते के शिष्टाचार से पहिले ही हिन्दी दैनिक कश्मीर पत्रिका का एक पन्ना जो 25 फरवरी 1990 को छपा था, टेबल पर रखते हुए कहा, "यश यह मेरा बसीयत नामा है" इन्होंने कहा यार! तुझे क्या हो गया है, यह तो अखवार है।

जाने दीप उस समय किस अकेले पन के दुःख, पीड़ा के अवसाद से ग्रसित थे। कुछ देर खामोश बैठे रहे, फिर कहा -

"कहीं भी, किसी इतिहास में यह सच्चाई कभी नहीं लिखी जायेगी। इसी लिये यह तुम्हें दिये जा रहा हूँ"।

आज वर्षों बाद यह सब मुझे ही लिखना पड़ रहा है कि कैसे उस फक्कड़ शायर की भविष्यवाणी सार्थकता की ओर वढ़ी चली जा रही है क्योंकि मृत्यु से कुछ महीने पहिले दीप ने कश्मीर टाइमज़ के आफिस में वहीं के एक कर्मचारी श्री फकीरचन्द जी के सामने मेज़ की दराज़ से दो पुस्तकें निकाली और फिर मोटी सी गाली देते हुए अपने सखा, वंधु यश को थमाते हुए कहा कि मेरी इस निशानी को संभाल कर रख लेना। एक पुस्तक उर्दू की दीवाने ग़ालिव है दूसरे विदेश में छपी अजन्ता एलोरा खजुराहो की चित्रकला संबंधी अंग्रेज़ी की पुस्तक है।

जब भी इन दोनो पुस्तकों पर निगाह पड़ती है तो दीप का आदेश

याद आता कि, मेरे इस वसीयत नामे का ज़िक्र जरूर करना।

मेरे पति ने दीप के रिसते धावों पर फाहा रखने की ग़र्ज़ से कहा कि, यार! पुरस्कारों की मीनार पर चढ़ बैठने भर से तो कोई हंस नहीं कहलाता। कभी-कहीं, कोई कला पारखी नीर-क्षीर विवेक द्वारा तुम्हारे लेखन के मोतियों का मूल्यांकन करेगा, परख पड़ताल करेगा। मैं सोच रही थी कि, डोगरी कविताओं का पैहला संग्रह "जागो डुग्गर की भूमिका में पृष्ट संख्या 8 में लिखा गया है कि,

"यश और दीप कालिज के विद्यार्थी हैं, इन नन्हीं आत्माओं में कवि का पूरा बल और चंचलता भरी है"।

फिर कालान्तर में इन नन्हें दियों को बुझाने के लिये किस इर्ष्या द्वेष की आंधी ने भरसक प्रयत्न किया। दीप के गज़ल संग्रह "अस आं बनजारे लोक" को साहित्य एकेडमी पुरस्कार तक पहुँचने के मार्ग में जो अवरोध खड़े किये गये थे, वह तो पाठकों ने स्वयं दीप के अपने ही कहे शब्दों से ठीक ठीक जान ही लिये हैं।

सीधे सरल स्वभाव वाले दीप के आहत मन को उनके मित्र यश, शब्दों की कोरी सांत्वना देने के अतिरिक्त और क्या कर सकते थे जब कि, वह इस सारे खेल तंत्र की पूरी जानकारी रखते थे। उन्हीं दिनों उर्दू लिपि में भेजा गया दीप को यश द्वारा वह छोटा सा सन्देश जो इस षडयन्त्र को इस प्रकार रेखांकित करता है :-

काँ आखदे, ओह हंस नेईं,
चिड़ियें नें साधी लेई चुप्प।
कबूतरें, गुटर-गूं कीता,
उसी दिक्खेया ते मीटी लेइयां अक्खीं।
अर्म्मी, कबूतर आं,
केई वारी, कां दे आखे लग्गिये।
गुटरगूं करना।
ते प्ही गलान लगना
नेईं, नेइ ओह्
हंस नेईं ओह् किश होर ऐ।

कैसा घमचोल ऐ।
हुन ते इयां लगदा,
हर सभा, हर सोसाइटी, हर समाज,
कां, कबूतर, चिड़ियें दा गठजोड़ ऐ।

अर्थात् :- कौआ, कह रहा है, वह हंस नहीं हैं इस पर चिड़ियों ने चुप्पी साध ली है। कबूतरों ने कुछ गुटरगूं करने की कोशिश तो की, पर सब देखते हुए भी उन्होंने चुप रहना ही बेहतर समझा। मैं भी एक कबूतर ही हूँ। कितनी बार कौवे के कहे लग कर कहता हूँ कि नही, नही, वह हंस नहीं है परन्तु वह कुछ और ही है। यह कैसा चक्रव्यूह है। अब ऐसा लगता है कि यहाँ प्रत्येक सभा, सोसाइटी, समाज। कौवे, चिड़ियों, कबूतरों का एक गठजोड़ ही है।

उस समय के कुछ सहपाठी जरूर जानते होंगे कि कालिज के दिनों से ही इन दोनों की आपसी खिलन्दड़ी शरारतें होतीं य कोमा में पड़े यश के लिये दीप द्वारा नव जीवन की दुआ। कविता के छंद ही सेतु होते थे। अर्न्तमन की बात कहने का माध्यम उर्दू लिपि का प्रयोग होता। काश्मीर टाइमस के आफिस में काम करते समय दीप ने जो कविता लिखी थी, घर और दफतर - जिस पर उन्होंने जनता से बहुत सी कवि प्रसिद्धि प्राप्त की थी, वह उनके वर्त्तमान का सच था। दीप के जाने के बाद जो कचरा कबाड़ उन के दफतर और घर वाले कमरे में था उसमें शायद कहीं मुड़ा तुड़ा उर्दू में लिखा यह पुर्ज़ा भी ज़रूर होगा, क्योंकि वह अपने चाहने वालों द्वारा लिखी प्रत्येक पंक्ति संभाल कर रखते थे।

यहाँ पर शेख सादी के इस कथन का उल्लेख जरूरी है कि, हज़ार शब्द कहने की जरूरत नहीं। हज़ार विचारों को एक शब्द में कहने की कोशिश करो। इस के लिये एक नम्र पर त्रिकाल सत्य को उदभासित करता निवेदन करना ही पड़ रहा है कि,

"अपने सहपाठी, समव्यस्क, बेद पाल दीप के लिये हज़ार विचार रखने वाले "यश शर्मा" अपने मित्र दीप के लिये एक शब्द तो नहीं ही कह पाये क्योंकि यह नामुमकिन था। एक डेढ़ पन्ने में रूपकों, प्रतीकों, संकेतों द्वारा हज़ारों दिनों महीनों की कथा व्यथा को अभिव्यक्त करने की पूरी पूरी कोशिश उन्होंने जरूर की है। जिसका ज़िक्र आगे चल कर (बंजारा) में

किया जायेगा।

सन् 2002 में प्रकाशित यश शर्मा की दूसरी पुस्तक "बेड़ी पत्तन संझ मलाह्" के पृष्ठ संख्या 178-178। पर वर्षो की दीप की जीवन यात्रा को चिन्हित करती कविता का नाम हैं (बंजारा) अपनी इस पुस्तक को उन्होंने वेद पाल दीप की स्मृति में समर्पित किया है। अपने अन्तर की भावनाओं की अभिव्यक्ति उन्होंने इन शब्दों में की हैं : -

ओह डुग्गर दा शैली हा।
बच्चन पंत निराला
गालिव दा शैदाई हा।
मीरा दा मतवाला।

'शैली और कीट्स' दीप के पसन्दीदा कवि थे। निराला पन्त व बच्चन के साथ साथ टैनसिन और ब्राउनिंग से भी दीप बहुत प्रभावित थे। यदि वह हिन्दी में ही लिखते रहते तो यश शर्मा के कथना-नुसार वह बच्चन पंत निराला ही होते। परन्तु डोगरी भाषा को सम्मान देते हुए इस क्षेत्र में भी उन्होंने डोगरी गज़ल का पहला लेखक, डोगरी का गालिव य गज़लों का बादशाह होने का गौरव हासिल किया। डोगरी के प्रति रेखांकित किये जाने वाले काम में दीप अपनी समस्त उर्जा, समर्पण, प्रतिवद्धता के साथ आज भी पूर्णतया उपस्थित हैं।

परन्तु स्थानीय सांस्कृतिक व साहित्यिक संस्थाओं के धुंधलाते आकाश में दीप और मधुकर को वह स्थान आज तक भी न मिल पाया जिसके वह पूरे-पूरे हकदार थे। जिन हाथों में अब तक इस भाषा की बाग़डोर आ चुकी थी और सच को झुठलाने की पूरी पूरी क्षमता थी। भला वह क्यों कर अपने अधिकार का प्रयोग करने में कोई कोर कसर बाकी रहने देते।

इस सब के साथ ही साथ यह यर्थाथ भी जुड़ा है कि, समाज के बनाये बंधनों को अस्वीकार करते हुऐ भी अपनी लेखनी के बल बूते पर इस डुग्गर की धरती को अपने अनमोल रतन रूपी शब्दों से सदा के लिये मालामाल कर गये दीप।

दीप के जाने के वर्षो बाद डुग्गर के इस अज़ीम गज़ल गो शायर के लिये जम्मू विश्व विद्यालय के राजिन्द्र सिंह सभागार में जम्मू यूनिवर्सिटी

के डोगरी विभाग तथा साहित्य एकेडमी दिल्ली के सहयोग से दो रोज़ा सैमिनार रखा गया जो दीप के व्यक्तित्त्व तथा कृतित्व पर आधारित था। दीप की गज़लों की एक कैसेट भी रिलीज़ की गई तथा पेपर भी पढ़े गये। इनमें एक पेपर श्री मदन पाधा द्वारा भी पढ़ा गया था जिसका समापन यश शर्मा की इन पंक्तियों से किया गया था।

ओह डोगरी दा मान न, सूरज न, चन्न न,
मधुकर ते दीप दा बी कुतैं नां ऐ दोस्तो।

अर्थात् : कुछ व्यक्तित्त्व तो डोगरी भाषा के सूरज तथा चाँद है, पर क्या दीप और मधुकर का भी कहीं नाम हैं ?

उसी सैमिनार में इस पर तत्काल आदेश हुआ कि यह अन्तिम पंक्तियाँ इस लेख में नही छप सकतीं क्योंकि यह एक मर्सिये का अंश हैं जब कि यह अपने साथिओं की मधुर स्मृतियों की सुगंधित पंखुडियाँ थी, यादें थीं, चेते थे। (तत्पश्चात लेख में छपी थीं)

वेद पाल दीप "बंजारा" पदम देव सिंह निर्दोष "चन्हां दे सुर", "शौरे", "बेड़ी पत्तन संझ मलाह्" पुस्तक में संगृहीत हैं।

दीप के गज़ल संग्रह "अस आं बनजारे लोक" की व्याख्यायें अब अपने अपने ढंग से की जा रही हैं। ज़म्मू के बुद्धिजीवियों, दानिशवरों विद्वानों, साहित्यकारों तथा विभूतिओं द्वारा एक सैमिनार के माध्यम से श्रद्धांजलियां, अर्पित की जा रही हैं। यह सब देखने जानने के पश्चात यश लिखते हैं कि :- पाठकगण।

एह् प्हाड़ें दी गूंज गै समझो, दूआ आला कुन दिन्दा ऐ,
ओह केडे जिगरे आला हा, नेई ता मौहरा कुन पीन्दा ऐ।।

चलो! देर से ही सही पर यह एक ठीक दिशा की ओर एक दुरूस्त कदम है।

उपरोक्त पंक्तियों का अर्थ हैं कि यह डुग्गर के ऊँचे ऊंचे पर्वतों से टकरा कर प्रतिध्वानित होने वाली वह गूंज थी जिसे यहाँ बुद्धिजीवी वर्ग ने सुन लिया था और महसूस किया था। दीप! तुम नील कंठ थे। जीवन युद्ध के निहत्थे योद्धा, अर्सा गुजर जाने के वाद तुम्हें श्रद्धांजालियाँ दी जा रही हैं। सचमुच तुम कितने विशाल हृदय थे कितना वड़ा जिगरा था तुम्हारा, जो

वर्षो तक नीलकंठ की तरह चुपचाप विषपान करता रह सकता है ।

मधुकर कैसे दीप को याद करते हैं :-

असें रक्खे'दे न साथी, तेरे चेते संमालिये

मनें च मस्तके च, दोस्ती दे दीये बालिये । ....मधुकर

वेद पाल होंदी चौथी पुन्य तिथि :- सम्हाल किहरी सिंह मधुकर । (दैनिक कश्मीर टाइमज़ बुद्ध वार 3 फरवरी 1999) मधुकर जी अपने साथी दीप की चौथी पुण्य तिथि पर हृदय की गहराई से उपजे इन शब्दों से दीप को स्मरण करते हैं कि, "साथी! तुम्हारी याद को हमने सहेज कर रखा है, मन प्राणों में दोस्ती के दीप जला कर" ....(मधुकर)

इसी पन्ने पर, इसी तिथि को यश शर्मा ने "क्या भूलू क्या याद करूं" शीर्षक में अपने साथी दीप की स्मृतिओं को इस प्रकार सहेजा है, संजोया है ।

"हरिवंश राय बच्चन के एक गीत के मुखड़े ने तुम्हारी याद के घावों को फिर हरा कर दिया है । दीप! तुम मेरे मित्र हो, सखा हो, यार हो । तुम्हारे जीवन के मैं बहुत से आयामों से भली भांति परिचित हूँ । भले ही तुम्हारी राजनीतिक मान्यताओं के संबंध में मेरी जानकारी बड़ी सीमित सी है, किन्तु इतनी बात दावे से कह सकता हूँ कि, पगड़ी पहन कर तथा अंडरग्रांउड जा कर कोई राजगुरू य भगतसिंह नहीं बन सकता । साम्यवादियों तथा तरक्की पसन्दों के तुम कितने निकट थे, इस बारे में यदि मौन ही रहूं तो ठीक रहेगा और फिर मुझे तो पालिटिक्स का ए, बी, सी भी नहीं आता ।

मैं तुम्हारी सियासी ज़िन्दगी, सूझ बूझ तथा गहराई को कहाँ तक माप सकता हूँ । तुम! जो भी थे, एक महान व्यक्ति थे । मैं तो केवल इतना जानता हूँ कि, कालेज के दिनों के बाद भी किसी न किसी तरह हमारा संपर्क बना रहा । हम चाहे कभी कभार ही मिलते थे । एक दूसरे को गालियाँ देते थे, हम फिर अपनी अपनी राह पर हो लेते थे ।

तुम्हारे पारदर्शी निजि जीवन के आर-पार झांकने के पश्चात् भी मैंने यही ज़ाहिर किया कि, कुछ नहीं - मैं कुछ नहीं जानता और भाई । फिर जानने को कोई बिशेष है भी क्या था ?

"कुछ भी खास नहीं होता" यही तो तुम्हारा दर्शन था । प्रिन्स आफ वेंल्ज़ कालिज में यद्यपि तुम दो एक वर्ष ही मेरे साथ रहे और फिर मुझे छोड़

कर लाहौर लखनऊ न जाने कहाँ-कहाँ जा कर बहुत सा इल्म सीख कर वापिस आये, किन्तु मैं इस अर्से में अपने शायर यार मधुकर के साथ कालिज की पुली पर बैठा तुम्हारा इन्तज़ार करता रहा।

छोटी लड़की पंडित की, तथा शल्या! तुम पाषाण बड़ी हो, शल्या! तुम नादान बडी हो' इन कविताओं के माध्यम से तुम्हें याद करते रहे।

इस समय आयु तथा अनेक रोगों ने शरीर को घेर रखा है। अतीत की याद कुछ धुंधला सी गई है फिर भी याद है तुम्हारी अपनी एक निजता थी, इन्डीविजुऐलिटी थी।

कोई व्यक्तित्त्व नहीं, पर्सनैलिटी नहीं। पर्सनैलिटी जिनकी थी, उनकी थी और वह आज भी सलामत हैं किन्तु उन्हें हर जगह हर अवसर पर मुखौटे बदलने पड़ते है। "तुम्हें अपनी निजता के लिये किसी मुखौटे की जरूरत नहीं पड़ी, कोई बदलाव नहीं आया" दीप! तुम जीवन भर वही रहे जो तुम थे। यही कारण था कि, व्यक्तित्त्व को बनाने संवारने की कला से तुम अनभिज्ञ ही रहे।

फेलियर-एक दम फेलियर। टैगोर की कविता की कुछ पंक्तियों का भावार्थ सुनो :-

यदि तुम्हारी माँग ठीक से नही सजी है, तुम्हारे श्रृंगार में कुछ त्रुटियां है तो कोई बात नहीं, जैसी हो वैसी ही चली आओ कोई अन्तर नहीं पड़ता।

ठीक इसी तरह तुम्हारी निजता में भी कोई अन्तर नहीं आया दीप। तुम अपनी ढीली पतलून में हो य तुम्हारे मैले कोट की कुहनियां घिस चुकी हैं, यही तुम्हारी निजता का सौन्दर्य था, इसी से तुम पहचाने जाते थे। कोई आडम्बर नहीं, कोईं प्रंपच नहीं, बस इतना ही प्रयाप्त था कि तुम दीप हो। एक निजता के मालिक।

एक और मज़े की बात सुनो। आज तीन फरवरी को तुम्हारी चौथी पुण्य तिथि है। तिथि मनाने के लिये कुछ बुद्धिजीवी और कविगण युनिवर्सिटी में एकत्रित हो रहे हैं। तुम्हारे जीवन दर्शन को और भी दर्शाने के लिये।

संभवत् यह लोग तुम्हें बहुत गहराई से जानते हों। किन्तु जो तुम्हें जानते हैं तुम्हारे साथ साये की तरह चलते आ रहे थे, उन्हें इस अवसर पर सूचित तक नहीं किया गया। जीवन की त्रासदी यही है कि, जो जानते हैं-वह कुछ नहीं जानते। जो कुछ नहीं जानते-वह सभी कुछ जानते हैं। तुम

ही तो कहा करते थे (जीन्दें गी डाँगां, मोयें गी बांगां)

समझ में नहीं आता, तुम्हारे जीते जी-तुम्हें किसी भी सम्मान के योग्य क्यों नहीं समझा गया ? आज तुम्हारी याद में एक से एक बढ़ कर कबूतर उड़ाये जायेंगे - मरसिये पढ़े जायेंगे, प्रशस्तियां गाई जायेंगी, क्योंकि तुम जम्मू की विभूति हो और गज़ल के बादशाह। दीप! तुम डोगरी की गज़ल के गालिव हो।

यहाँ मिर्ज़ा गालिव का लिहाज़ नही किया गया जीते जी। बून्द-बून्द के लिये वह तरसते रहे पर आज गालिव के मज़ार पर शराब के मटके लुढ़काये जाते हैं। कव्वाली की महफिले जमती हैं, मुशायरों का आयोजन किया जाता है।

अजीव गोरख धंधा है, यह दुनियां भी। तुम ऊपर बैठे, यह सारा तमाशा देख, सुन और समझ सको तो मैं कुछ कह नहीं सकता। यह चर्चा भी सुनने में आई थी कि, तुम्हारी रचनाओं का संग्रह भी छापा जायेगा। परमात्मा करे तुम्हारे अदवनवाज़ तथा अदवशनास भाई वो सब कुछ करें जो वो तुम्हारे जीवन काल में न कर सके। यादों ने अभी पीछा नहीं छोड़ा।

बहुत पुरानी बात है, शायद तुम लखनऊ सें हिन्दी एम.ए कर के घर लौटे थे। मैं बहुत बीमार था, दो दिनों से कोमा में था। तुम मुझे देखने आये थे, दीप! उसे देखने के लिये जो तुम्हारे नौ दिन हस्पताल में एमरजेन्सी बार्ड में कोमा की हालत में पड़े रहने पर भी एक बार तुम्हें देखने न जा सका और आखिर तुम सदा सदा के लिये इस दुनियां से नाता तोड़ गये।

मुझे दुःख है दीप! पर मैं इसलिये नही गया कि, हस्पताल में जिस जिस रोगी को देखने गया वो मर गया, एक दम वहम ही कह लो य और कुछ। मैं तुम्हें मरता हुआ नहीं देख सकता था।

तुम वही दीप थे, कालिज के दिनों में जब मैं मृत्युशय्या पर पड़ा था तो तुमने कविता लिखी थी मेरे नव जीवन की कामना करते हुए। उस स्नेह भरी कविता ने मुझे स्वस्थ कर दिया था। मैं तुम्हारे लिये कौन से जीवन की, किस सुख की कामना करता। कुछ समझ नहीं पाया था। दीप! तुम्हारी अपनी ही लिखी हुई पंक्तियां याद आ रही हैं :-

दीप गी दिक्खी लौ किस चाली, सते दुःखे दे दुनिया च
फुल्लें आंगू हस्सने आले बनी जन्दे न अंगारे लोक।

फूल और अंगोरों का विश्लेषन करना सुधी जन पाठकों का दायित्व है।

दीप! तुम तो नष्ट नीड़ अर्थ हीन, निराशाओं की एक लम्बी श्रृंखला के बीच भी अपनी नियति में विश्वास लिये चलते ही रहे। मेरा यही मानना है। (यश)

गीत कदें मरदा नेई।
गीत कभी मरता नहीं

1972 में जब सारे के सारे गीतों को लाल स्याही से चीर कर रख दिया गया था तो भी मेरे पति रत्ती भर भी विचलिंत नहीं हुए थे, जब कि कलचरल एकेडमी द्वारा इस अन्याय का ज़िक्र दीप ने भी अपने "अजें बी मारा दा कोई आले" नाम की भेंट वार्त्ता में किया है।

क्योंकि कवि को (यश) विश्वास था कि, सौन्दर्य, कला सत्य इन तीनों को कोई धरती से मिटा नहीं सकता। उनके गीत रस की सृष्टि करने में पूर्णतया समर्थ हैं। फिर रस हीन, शुष्क, लय हीन बंजर हृदय तथा साहित्य के व्यवसाइयों से कौन सी अपेक्षायें की जा सकती हैं। इस गीत में क्या कहा है गीत कार ने :-

मैं ते छड़े गीत गंढी गंढी करी गान्दा हा
नग्गरें - गराएं खुल्ले खेतरें खलाड़े बिच,
मिठड़ियें भाखें आले गीतें गी जगान्दा हा
मैं ते छड़े गीत गंढी गंढी करी गान्दा हा।
गीतें गी जगाना तुन्दे आस्ते जे पाप ऐ,
तां पुन्न तुन्दी नजरें च खबरै सराप ऐ।
अक्खियाँ गुहाड़ो सुनो, गीतें कन्ने गूंजियां -
सैलडियाँ धारां, गद्दी बंसरू बजा दे।
ताहई खल्ल नाले विच गुज्जरें दे घरें कोल,
अनमुक्क लोक जोरें जोरें गीत गा दे।

गीतें गी जगाने आला इक्कला गै मैं नेई,
होर बी तां हैन, कुसी कुसी तुस ठाकगे।
कोदे कोदे बन्ननें न बेड़ियें नैं हत्थ तुसें

इन्दे विच्चा दस्सो केहड़ा गीत सूली चाढ़गे ?
इन्दे बिच्चा केहड़ा तुसें देसा बिच्चा कड्ढना
ते कोह्कड़े गी जीन्दैयां गै जिमि बिच गड्डना

गीत कदें मरदे नेंई गीत कदें मुकदे नेई
गीत गीतें गी जगान्दे,
थकदे नेईं हुट्टदे नेई ।

अर्थात : मैं तो केवल गीतों को लिख कर उन्हें अपने नगर नगर गाँव, खुले खेतों, विस्तृत खलिहानों ऊँचे पर्वतों पर मीठे स्वर में गाता भर था । जिससे दूसरे नींद में अलसाये गीत भी जाग उठें ।

यदि गीतों को गाना और दूसरों को भी गीत लिखने की प्रेरणा देना, तुम्हारी नज़रों में पाप है तो फिर पुण्य कहां है ?

तुम लोग कान, आँख खोल कर सुनो । प्रकृति इन गीतों से गुंजाय मान हो उठी है । सरसव्ज़ चोटियों, ऊँचे, पर्वतों पर कैसे गद्धी लोगो की वाँसुरी के मस्ती भरे सुर सुनाई दे रहे हैं । कितने कितने गूजरों के संगीत से धरती का कण-कण संगीत मय हो उठा है गीत गाने वाला मैं अकेला तो नहीं और भीं बहुत हैं ।

इन गीतों की गुंजार नें क्यों तुम्हारे नीरस मन का सुख चैन छीन लिया है ।

बताओ ? जबाव दो ? इन गीतों में से किस किस को तुम फाँसी पर चढ़ाओंगे ? किस किस का सर धड़ से जुदा करोगे ? किस गीत को देश निकाला दोगे ? किस गीत को जीते जी धरती में गाड़ दोगे ? किसी गीतकार को तुम गीत लिखने से नहीं रोक सकते । गीत दूसरे गीतों को ज़गाने के लिये कभी थकेंगे-हारेंगे नहीं ।

तो क्या 1972 में रची गई कलचरल एकैडमी की इस सारी कवायद से यही निष्कर्ष निकलता है कि, 1968 में दीप के गज़ल संग्रह "अस आं बनजारे लोक" को यह कह कर साहित्य एकेडमी पुरस्कार के अयोग्य ठहरा दिया गया था कि केवल गज़लों पर अकादमी पुरस्कार नहीं देती ।

फिर गीत कविताओं के संग्रह "जो तेरे मन चित्त लग्गी जा" के गीतों का मूल्याँकन (ज़ीरों) इसी लिये किया गया था कि कहीं यह संग्रह

प्रकाशित हो जायेगा तो साहित्य एकेडमी पुरस्कार की बाजी न मार ले जाये। इसी भय के कारण सभी गीतों को निदर्यता से काट दिया गया था। कलचरल एकेडमी जम्मू की इस प्रदूषित मानसिक धारा को भला कोई क्या कह सकता है। कहीं तो चहेते लेखक पाँच-पाँच, सात-सात बार राज्य भर में वर्ष के सर्वश्रेष्ठ लेखन का पुरस्कार प्राप्त करने के पश्चात बगलें बजाते दिखते हैं। उसी कहावत को चरितार्थ करते दिखते हैं "अन्धा बाँटे रेवड़ियाँ, मुड, मुड, अपनों को। कहीं कहीं इन पुरस्कार निर्णायकों की विवशता की पोल तब खुल जाती है जब किसी की नाराज़गी मोल लेने के भय से दूसरों का पूरा लेखन ही नकार दिया जाता है इस बहाने से कि उस लेखन का कोई अंश माननीय नहीं है, य अलग होना चाहिये था।

कहने का अर्थ है कि सन् 2002 में प्रकाशित यश शर्मा की दूसरी पुस्तक "बेड़ी पत्तन, संझ मलाह्" को बार्षिक लेखन प्रतियोगिता से इस लिये बाहर कर दिया जाता है कि गीत गज़लों के साथ "बसोहली बैभव" को क्यो स्थान दिया गया है। जब कि, मुख्य कारण था इस पुस्तक को नकारने का "वेद पाल दीप को समर्पित" होना तथा इसी पुस्तक में संकलित "बंजारा" में दीप की ज्वलंत उपस्थिति।

सन् 1972 से लेकर 1992 तक का एक लम्बा बेहद लम्बा अन्तराल।

1992 में यश शर्मा की कृति "जो तेरे मन चित्त लग्गी जा" पुरस्कृत हुई। पर तब तक सच ही कहा जाये तो इस अवधि में पुरस्कृत होने वाली कुछ पुस्तकों का स्तर देख कर कवि के साथ साथ अपने मन की भी प्रतिक्रियाएं ही चुक गई थीं। यह तो (मेरे पति) पुस्तक प्रकाशन के नाम से ही अप्रसन्न हो उठते थे।

इस के कुछ बिशेष कारण भी थे। हमारे घर की चार कलाकृतियें (संताने) अपने अपने विषय कला, विज्ञान साहित्य आदि के मार्ग पर सफलता पूर्वक अग्रसर हो रही थीं।

उधर रेडियो के माध्यम से कवि की रचनायें भी नित नये सफलता के आयाम, वुलन्दियों को छू रही थी।

1964 में जैसा कि पहले भी कहीं ज़िक्र हो चुका है कि "डोगरी की पहली और आखिरी फिल्म "गल्लां होइयां बीतियां" का निर्माण शुरू

हुआ था। कुमार कुलदीप डाइरैक्टर निर्देशक थे इस फिल्म के। कहानी लेखन स्वर्गीय नरेन्द्र खजूरीया का था। मुख्य भूमिकाओं में थे राम कुमार अवरोल, श्री जितेन्द्र शर्मा, बन्सी लाल केरनी, श्री राम नाथ शास्त्री एवम् हास्य अभिनेता जम्मू रेडियो के प्रसिद्ध कलाकार श्री बलदेव चन्द तथा कृष्ण दत्त। अभिनेत्रियाँ थीं। कावेरी, वीणा कोतवाल तथा प्रभात। इस फिल्म के गीतकार थे श्री केहरि सिंह, मधुकर तथा श्री यश शर्मा। केहरी सिंह मधुकर जी के दो गीत थे ? पहला "बद्धले दी पालकी च डोलदा समां" दूसरा था "चल मित्तरा। तुगी प्हाड़ें दी सैर कराँऽ। तो यश शर्मा के तीन गीत थे। "संझा धिरदियां चित्त कमलाई जन्दा" अर्थात साँझ ढलते ही चित्त कुम्हला जाता है। यह गीत बाम्बे की पार्श्व गायिका कृष्णा कल्ले के मीठे स्वर में गाया गया था। दूसरा गीत युगल गीत है। कृष्णा कल्ले और बलवीर सिंह की आवाज़ों में :- गोरिये हो मेरी रानिये हो अलबेलुया हो दगेवाजिया। अर्थात् :- ऐ सौन्दर्य की प्रतिमा! तुम मेरे दिल की रानी हो इसका उत्तर नायिका चुलबुले पर शालीनता भरे अंदाज़ में देती है कि, ओ मेरे अलवेले प्रियतमः तुम बेवफा तो नहीं हो?

तीसरा गीत जम्मू रेडियो के म्यूज़िक प्रोडयूसर श्री देवेन्द्र सिंह जी जो पंजाव के रहने वाले थे द्वारा गाया गया विदाई गीत था नी अड़िये कूंजड़िये, तूं जाना देस पराये, इक्क घर छोड़ी दूये जाना कैसे भाग नीं माये। अर्थात ओ बावुल के मान सरोवर की हंसिनी। तुझे पराये देश मे जाना पड़ रहा है। जहाँ जन्मी थी उस घर को छोड कर दूसरे घर मे जा रही हो यह कैसा भाग्य है तुम्हारा।

यह पांचों गीत चरित्रों के अनुरूप सशक्त वातावरण की प्रस्तुति में पूरे-पूरे सक्षम थे। फिल्म शंकर थियेटर में दिखाई गई थी। दर्शकों की भारी भीड़ उमड़ती थी इस डोगरी फिल्म का देखने के लिये। पर मात्र आठ दिन की अवधि ही मिली थी शंकर थियेटर में।

श्रीमति रीटा जितेन्द्र जी ने बताया था कि, क्योंकि उस थियेटर में अपने समय की रिकार्ड तोड़ फिल्म "संगम" का ठेका शंकर थियेटर वाले पहले ही ले चुके थे। उन लोगों को स्वयं भी इस बात का अनुमान नही था कि इस डोगरी फिल्म को इतनी ज़वरदस्त लोकप्रियता हासिल होने वाली थीं। इकरारनामें के मुताविक केवल आठ दिन के लिये यह थियेटर इस

फिल्म के लिये बुक था।

इन गीतों के H.M.V. रिकार्ड संमभत् आज भी बहुत लोगों के पास मौजूद हैं। जैसे कि किसी भी अन्य फिल्मों के साथ होता है। रिकार्ड किये गये गीत रेडियो द्वारा लोगों तक पहुँचते ही रहते हैं। गीत तथा गीत के गायक, इन का सर्म्पक जनता से बना ही रहता है। इस डोगरी फिल्म के गीतों की रचना लयात्मक शब्दों की महीन कारीगरी से बुनी गई थी और भाव रस सिद्ध लोक धर्म से समाहित थे।

कवि दत्तु कृत "किल्लिया बत्तना छोड़ी दित्ता" गीति परम्परा के पूर्णतया उत्तराधिकारी थे यह गीत। उस समय तो सभी डोगरी विद्वानों के मस्तक डोगरी के इस भाषाई गौरव से गौरवान्वित हो उठे थे।

फिर जाने क्यों 1972 तक पहुँचते पहुँचते किस ईर्ष्या द्वेष की खटाई के छींटों ने गीतों की इस धवल दुग्ध धारा के रूप रंग तक को बदल देने का गर्हित कृत्य किया था।

स्पष्ट था कि, सामन्ती विचार धारा यानि एकछत्र राज्य की भावना इन साहित्य के मठाधीशों के मन में कुंडली मारे बैठी थी।

कुछ वर्ष पहिले इस का संकेत दीनू भाई पन्त के समय डोगरा मंडल की स्थापना समय भी दिखा था। समय पाकर डोगरी संस्था द्वारा भाई भतीजा वाद के प्रधान्य के कारण यह संस्था अब पुरानी-नई दो धाराओं में बंटने पर बिवश होकर रह गई है।

सन् 1958 में सरदार प्रीतम सिंह जी जम्मू रेडियो स्टेशन में संगीतकार के रूप में नियुक्त हुए थे। हर साज़ बजाने में उन्हें महारत हासिल थी। श्री प्रीतम सिंह जी शान्त स्वभाव के मालिक, मित भाषी, स्वच्छ हृदयी तथा सभी के साथ मधुर व्यवहार उन का विशिष्ट गुण था। प्रीतम सिंह जी का समय-धुनों को स्वर बद्ध करने तथा गीतों की आत्मा को पकड़ पाने में सिद्ध हस्त होने के कारण रेडियो में संगीत जगत का वह स्वर्ण काल ही कहा जाना चाहिये। डुग्गर प्रदेश के पहाड़ी संगीत पर उनकी पूरी पूरी पकड़ थी।

मोहन लाल सपोलिया की रचना "चूड़ा कुन्न घड़ेया मेरी जान, अर्थात् चूड़ा किसने (घड़ा) बनाया है। जैसा चुलबुला गीत था वैसी ही चुलबुली धुन में नृत्य की मोहक अदाओं का समोवश प्रीतम सिंह जी के कौशल का ही कमाल था। जम्मू तथा जम्मू से बाहर मायानगरी मुंबई तक

तथा लेह-लद्दाख के पहाडों तक डोगरी भाषा के इस गीत और नृत्य ने अपनी विशेष पहिचान बनाई थी। मधुकर जी की रचना, घमघम गा सौ-सौ बल खा, मेरी रौंगली मदानी ओ :- अर्थात् मेरी रंगीली मथानी दही विलोते समय सुनाई देने वाले ताल के साथ साथ नृत्य करती है।

शब्दों की आत्मा के अनुरूप इसे सुरों में ढाला था प्रीतम सिंह जी ने। जम्मू की गायिका श्री मति विमला देवी का कंठ अद्भुत रूप से रसीला था। विमला देवी का गाया मधुकर जी का यह गीत जम्मू में व्याह शादियों के अवसर पर जब ढोलक की थाप पर महिलायें समवेत स्वरों में गाती हैं तो अनूठा समां बंध जाता है। रेडियो स्टेशन में कार्यरत श्री जे. एस परदेसी द्वारा लिखा गया गीत, "बेलिया, साथिआ, कोल अम्बे दिया डाह्लड़िया गा करदी, इस गीत का अर्थ है कि ओ, साथी। बसंन्त ऋतु आ गई है। कोयल आम की डाली पर बैठी गा रही है। इस युगल गीत की धुन प्रीतम सिंह जी ने बिशेष परिश्रम तथा सूझ बूझ से तैयार की थी। स्वर था प्रसिद्ध लोक गायक श्री प्रकाश शर्मा का तथा सीमा शर्मा का। किशन स्मैल पुरी के लोक प्रसिद्ध गीतों को प्रीतम सिंह जी ने ही स्वर बद्ध किया था, स्मैल पुरी के एक प्रसिद्ध गीत का मुखड़ा था, चम्बे दीये डाह्लड़िये, मोइये उदास नी हो :- अर्थात ऐ चम्पा फूल की कोमल टहनी (नाजुक नायिका) उदास मत हो। यश शर्मा के कृष्ण भजन "आऊं तेरे द्वारे आई मेरे प्रभु जी अपने चरणें लायो।

अर्थात "मैं तुम्हारे द्वार पे आ गई हूँ, अपने चरणों में आश्रय दीजिये। इस भजन को स्वर दिया था, बंगाली फिल्म उद्योग की पार्श्व गायिका संध्या मुखर्जी ने।

दिल्ली रेडियो की कलाकार शान्ता सक्सेना तथा बाम्बे (मुंवई) के फिल्म जगत की पार्श्व गायिका गीना कपूर के सम्मिलित स्वरों में गाया जाने बाला विरह गीत -

"तेरे बाज परदेसिया कीयां जीणा" ओ परदेसी। "तुम्हारे वगैर हम कैसे जीयेंगे" आज भी लोग उसी चाव से सुनते हैं।

एक और विरह गीत, "तुगी तुपदे पैरें छालड़े पेई गे, कदूं मिलना मेरे राम" अर्थात् तुम्हारी खोज में चलते चलते, पैरों में छाले पड़ गये है, आप कब मिलोगे मेरे राम ?

इसके साथ ही "धारां रौंसलियाँ व्हारां रौंगलियां" अर्थात् "सर सब्ज़ धारें एवम नाना रंगों की बहारें" जैसे गीतों में कोमल कान्त पदावलि के अनुरूप लयात्मकता का पूरा-पूरा उपयोग किया था प्रीतम सिंह जी ने। रचनाऐं बीर रस पूर्ण हों य दीवाली, होली, बैसाखी आदि की संगीत रूपक रचनायें हों, पूरी तन्मयता निष्ठा के साथ स्वर बद्ध करने में रचनाकारों से भी भरपूर सहयोग प्राप्त करने में कभी संकोच नहीं करते थे। यह उनकी सादगी का एक अद्भुत पक्ष था।

यहां पर एक और प्रसंग का ज़िक्र जरूरी है। शास्त्रीय संगीत की प्रसिद्ध गायिका श्री मति निर्मला अरूण जब भी रेडियो कश्मीर जम्मू की ओर से शास्त्रीय गायन के लिये आंमत्रित की जातीं तो अपने पुत्र आज के प्रसिद्ध अभिनेता गोविन्दा के साथ जम्मू आने पर हमारे इसी P-24 गाँधी नगर वाले छोटे से घर में ठहरती थी। क्योंकि वह शुद्ध शाकाहारी थीं।

उस बार जब वह आईं तो यश शर्मा की एक गज़ल उनके स्वर में रिकार्ड करने की योजना बनी थी। तब रेडियो स्टेशन की गाड़ी से हारमोनियम लेकर प्रीतम सिंह जी स्वयं निर्मला जी के पास हमारे घर आ उपस्थित हुए। देश की एक विशिष्ट कलाकार का सम्मान इस से बड़ा और क्या हो सकता था भला। प्रीतम सिंह जी जानते थे कि यश शर्मा अपनी किसी भी रचना रचते समय पहले गुनगुनाते थे फिर शब्द जैसे हाथ बाँधे उनके सामने आ खड़े होते थे। हृदय में लहराते संगीत की गुनगुनाहट को सुना-तो धुन तैयार। इस गज़ल की धुन हारमोनियम पर साधने के तुरन्त बाद जब निर्मला जी ने अपनी सिल्वरी आवाज में गज़ल के पहले बोल गाये तो लेखक और कम्पोज़र तथा गायिका तीनों के चेहरों पर खेलती तृप्ति तथा आत्म संतुष्टि की झिलमिलाती लहरियाँ कहीं मुझे भी विभोर कर गइं जब कि गीत संगीत से मेरा कोई दूर का भी वास्ता ही नही था। पर चलो, जैसे मेरे पास अपने सत्य की परिभाषा है ऐसी सभी के पास अपने अपने सत्य की परिभाषायें होती होंगी।

मूल डोगरी रचना पृष्ठ संख्या 72

पुस्तक : बेडी पत्तन संझमलाह

गज़ल का हिन्दी रूपान्तर

"एक लगन लगानी पड़ती है। एक जोत जगानी पड़ती है। अन्तरात्मा की

गहराइयों में डूब कर ही उस अनंत को पाने का प्रयत्न किया जा सकता है। यह प्रीत निभानी कोई सहज सरल नहीं क्योंकि प्यार की राह बड़ी कठिन है इस राह पर चलते चलते जान पर भी खेलना पड़ता है। जीती हुई बाजी हम क्यों हार गये ?, इसकी व्याख्या करें भी तो कैसे। कई बार इस शह और मात के खेल में मात (पराजय) को भी स्वीकारना पड़ता है। आप कहाँ हैं ? किस ओर हैं ? कोई अता पता नहीं, कोई ठौर ठिकाना नहीं इसीलिये हमें द्वार-द्वार पर जा कर अलख जगानी पड़ रही है। एक दिन हमें गले से लगा कर आपने जो बात कही थी। वह बात हमें आकाश के तारों को हर रोज सुनानी पड़ती है। एक कवि सम्मेलन में इस गज़ल को पढ़ा गया था तो इसे सुन कर दीप इतने भावुक हो उठे कि, "यश मैं तो गीत नहीं लिख पाया लेकिन तूने तो डोगरी में गज़ल को नया रंग, नया मोड़ दिया है। लिखा कर यार, लिखा कर"। दीप के इस कहने में कोई कृत्रिमता, कोई छदम भाव नहीं था। इस का ज़िक्र "बेड़ी पत्तन संझ मलाह" नाम के काव्य संग्रह की भूमिका में भी किया गया है। यह गज़ल निर्मला अरूण के स्वर में रेडियो कश्मीर जम्मू में सुरक्षित है।

वर्ष बीतते गये, समय की धारा बिना रूके-झुके चलती ही जा रही है। इस समय हम लोग लास्ट मोड़ गाँधी नगर में रह रहे थे। हमारे घर से थोड़े ही फासले पर उर्दू के प्रसिद्ध शायर स्वर्गीय गौरी नंदन सिंह बाली का घर है। उनके पिता श्री बरकतराय बाली बहुत अर्से से काफी बीमार चल रहे थे।

बख्शी साहिब स्वयं भी साहित्यानुरागी और अच्छे शायर थे। उनका हाल चाल जानने के लिये पड़ोसी होने के नाते हम प्रायः उनके घर जाते रहते थे।

उस दिन भी उनकी तवीयत अधिक खराव सुनकर हम दोनों उन्हें मिलने गये। अभी पहुँचे ही थे कि, बड़ी कमज़ोर सी आवाज में कहने लगे, "यश जी! आपकी एक अमानत मेरे पास है। हम तो हैरान हुए ही, उनके परिवार के लोग भी अचंभित हो गये।

कितनी बार तो उनके घर आना-जाना लगा रहा था, आज किस अमानत की एकाएक बात कर रहे थे। बरकत राय जी ने अपनी किताबों की अलमारी के निचले खाने से एक नीले रंग की फाईल निकालने का आदेश दिया।

फाइल में से अखबार का एक जीर्ण शीर्ण पुराना पन्ना निकाला, जिसका रंग पूर्णतया पीला पड़ चुका था। यश शर्मा द्वारा लिखी गई यह एक हिन्दी रचना उर्दू लिपि में थी, जिसने कभी कालिज के दिनों में बड़ी प्रसिद्धि पाई थी। जिसका शीर्षक था, 'कहाँ है भगवान'? जो देश के बंटवारे के एक दो वर्ष बाद अगस्त 1949 को उर्दू अखबार चाँद में प्रकाशित की गई थी। इक्यावन-बावन वर्ष पहिले का पुराने अखबार का वह पन्ना। उनके वर्षों से सहेजे हुए उस पन्ने को हमने सचमुच इसे अमानत समझ कर ही पूरी श्रद्धा के साथ स्वीकारा था।

अब उनके न रहने पर भी उस एक साधारण से पन्ने को बरकतराय बाली जी के स्मृति चिन्ह स्वरूप समझ कर ही यह सम्मान दिया है। यह श्रद्धा इस लिये नहीं है कि यह कविता वर्षों पहले मेरे पति ने लिखी थी, नहीं

कारण है कि, इस यांत्रिकता के युग में रक्त संबंधो में बढ़ते परायेपन को नकारती इस छोटी सी, लेखक के लिये स्नेह की इस छोटी सी कणी का अपना ही एक मूल्य है, महत्त्व है।
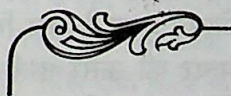
"कहाँ है भगवान"

वाह रे वाह करूणा के सागर
देख चुके तेरे प्रभुताई
तेरी इस ऊँची पदवी को
तेरा झूठा मान बड़ाई ।

आज बता सकता हूँ जग को
कौन छुपा तेरे मन्दिर में
वही जो लम्बे तिलक लगाते
राम नाम मुख छुरी बगल में ।

मूरख हैं जो हमें बताते
पागल हैं जो हमें डराते
इक तुम्हीं करूणा के सागर
इक तुम्हीं दीनों के बंधु ।

बोलों ? भूले से निर्धन के
होठों पे क्यों हंसी न आती
बोलो ? इस के अन्तरतम में
क्यों नही आशा दीप जलाती ?

बोलो निर्धन माँ का बालक,
बिना दूध क्यों मर जाता है
बोलो इस दुखिया का दीपक
इस भान्ति क्यों बुझ जाता है ?

किसने देखा है जल बिन्दु
पत्थर की ऊसर छाती में
किसने देखा है ज्वाला को
स्नेह वंचित दीपक बाती में ।

इसी तरह दीनों के बंधु
तेरे मन में दया कहां है ?
करूणा कर कहलाने वाले
तेरे मन में व्यथा कहां है ?

ओ! मुंसिफ कहलाने वाले
तेरे घर में भी अन्याय
आज समझ पाया हूँ मैंने
व्यर्थ में ही तेरे गुण गाये।

सड़कों पर सोने वालों का
दिन बीता मज़दूरी करते
धनी गर्म विस्तर के अन्दर
दीन मरें ठण्डी में ठिठुरते।

अब समझा क्यों धनवानों ने
पत्थर को भगवान बनाया
खून पिया निर्धन के तन का
और उसे पत्थर से डराया।

उठो-उठो दीनों कंगालो
कोई भी भगवान नहीं है
जो कहता ईश्वर को समझो
कह डालो पहचान नहीं है।

बात हो रही है देश विभाजन के पहिले की हिन्दी कविता की। इस से पहिले एक तथ्य को पुनः देखना पड़ेगा। 1950 में प्रकाशित जागो डुग्गर में "गीतकार यश" के जीवन परिचय में कहा गया है कि यश की कविता शैली पर सुप्रसिद्ध कवि श्री हरिवंश राय बच्चन जी का विशेष प्रभाव स्पष्ट झलकता है।

बास्तविकता भी यही है कि, बच्चन जी की सजग प्रतिभा की साँझ कवि यश के पूरे लेखन में यत्र-तत्र "यही साँझ" नाना रूप धरे मुखरित हो उठती है। जीवन की ढलती साँझ तक कवि के साथ साथ बरावर सहचरी रहती आई है यह साँझ और कवि यश, "संझा दा कवि" साँझ का कवि कहे जाने लगे।

साँझ के कवि यश का एक हिन्दी सांध्य गीत :-

सांझ ढले सोना बिखराये
जीने वाले प्यार किये जा,
देख अरे, दिन बीता जाये।

रात उतरने से कुछ पहिले,
अपने मन की बात तो कह ले
प्यार भरा यह गीत तुम्हारे
अंधरों तक ही न रह जाये साँझ ढले " " "

आज का मौसम बड़ा सुहाना
प्यार करो तो प्यार निभाना
यह अलबेली रूत्त मतवाली
जाने फिर आये न आये। साँझ ढले " " "

कोई न जाने कोई न समझे
दिल की धड़कन के अफसाने
वह क्या जाने राज़े मुहब्बत
जो हस हस कर चोट न खाये।
साँझ ढले सोना विखराये.......

इस गीत का जन्म तो बंटवारे से पहिले का है यानि सत्रह अढारह वर्षीय किशोर यश की कोमल कल्पना की वय संध्या जो कवि के साथ साथ जीवन के विविध रंगों की इन्द्रधनुषी होली खेलते खेलते इस समय -

"रोज मेरे कश आइ बौन्दी, हारी-हुट्टी, थक्की सन्झ"।

अर्थात् : अब तो प्रतिदिन के घात प्रतिधात झेलती थकी हारी साँझ हर रोज मेरे पास आ कर बैठ जाती है। यह साँझ कवि की जीवन यात्रा के आठवें दशक की सांझ है जो निरन्तर उनकी सहचरी रहती आई है। इस साँझ के साथ जीवन का परम सत्य आ जुड़ा है, "हुन ते संझ ढली आई ऐ एह् जीवन दी सच्चाई ऐ' । अब साँझ ढ़ल चुकी है यही जीवन की सच्चाई है।(साँध्य के अनेकानेक रूप रंगों के विषय में विस्तार से फिर कभी। इस गीत के साथ जुड़ी एक रोचक घटना, कि कैसे यह गीत वर्षो की मौन यात्रा करता हुआ मुंवई की सोनी म्यूज़िक कम्पनी तक पहुंचा :-

गाँधी नगर, हमारे पड़ोस में इंजीनीयरिंग की पढ़ाई करने यू0 पी के कुछ छात्रों ने कमरा किराये पर लिया था जिनमें सन्देश नाम का एक छात्र भी था जिसका मन विज्ञान जैसे नीरस विषय में बिलकुल भी नहीं रमता था।

यह जान कर कि, यह रेडियो स्टेशन से संबंधित है चाहे "रिटायर

ही हो चुके थे" उसने इच्छा जाहिर की कि, मुझे संगीत का शौक है मैं रेडियो स्टेशन में गाना चाहता हूँ। आप मुझे अपने कोई डोगरी गीत दें तो मैं उनकी धुन बना कर अपने ही ढंग से गाना चाहता हूँ।

इस सब से पहिले इन्होंने उसे कुछ अपना मन पसन्द सुनाने के लिये कहा - उस युवक ने हारमोनियम पर मीठा तथा वैराग्य भरे स्वर में कबीर भजन गाया। सन्देश के अन्दर के कलाकार को पहिचानने में इन्हें ज़रा सी भी दुविधा नहीं हुई।

सन्देश को दिल्ली य मुंबई जा कर भाग्य आज़माने का परार्मश निःस्संकोच दे डाला था कि जाओ। किसी अच्छे कलाकार, गुरू के मार्गदर्शन में अपनी प्रतिभा को निखारो, सफलता तुम्हारे कदम चूमेंगी। इस आर्शीवाद को पाकर सचमुच माँ वैष्णवी देवी को प्रणाम कर के जम्मू से सन्देश चला गया। चार पाँच वर्ष बीत गये, बात आई गई हो गई थी।

एक दिन अचानक अपने राजस्थानी मित्र के साथ सन्देश माँ वैष्णों की यात्रा से वापिसी पर मिलने आया। उसने दो तीन इनके स्वलिखित हिन्दी गीत माँगे। इन्होंने कुछ कुछ अविश्वास भाव से ही एक सांध्य गीत उसे दे दिया। थोड़े अरसे बाद ही सोनी म्यूज़िक इन्टरटेनमेंट कम्पनी द्वारा एक कैसेट तथा एक अच्छा खासा चैक 18-8-99 को सिटी बैंक मुंबई से भेजा गया। संभवत् इतनी बड़ी रकम एक गीत की ? कैसेट का नाम था "पिया बासन्ती रे"। उसमें वही साँध्य गीत "साँझ ढले सोना बिखराये" युगल गीत के रूप में मौजूद था। जिसमें उस्ताद सुल्तान खान तथा चित्रा ने स्वर दिया था। संगीत बद्ध किया था सन्देश शाँडिल्य ने।

इस तरह सन्देश इंजीनीयर बनते बनते फिल्मों का सफल कम्पोज़र बन गया। ज़ाहिर है कि एक कलाकार ने दूसरे कलाकार के अन्दर छिपी प्रतिभा को परखने में ज़रा भी भूल नहीं की थी।

अजीव बात है, कुछ घटनायें कैसे सूक्ष्म रूप से एक दूसरे के साथ बंध जुड़ जाती हैं। यहाँ पर एक कवि, कलाकार का ज़िक्र न करना उस छोटे से करूण इतिहास के उस पात्र के साथ घोर अन्याय ही होगा जो क्षणिक चमक कर विलीन हो गया था।

सन् 1972 का प्रारंम्भ। यहाँ पर जिक्र है उस नौजवान रशपाल सिंह शास्त्री का जो बुखार से तपती देह लिये सड़क के किनारे बेसुध पड़ा

था। बहुत से लोग वहाँ से गुज़रे होंगे पर दृष्टि पड़ी थी मेरे कोमल सरल मना पति की। गाँधी नगर चौराहे पर थी डाक्टर गंडोत्तरा जी की दुकान। उन्हें वहाँ उपचार हेतु लेजाया गया तो उन्होंने परामर्श दिया कि, इस रोगी को तत्काल गाँधीनगर हस्पताल में ले जाइये और एडमिट करवाने में बिलम्ब मत कीजिये। कुछ दिनों उपरान्त स्वास्थ्य लाभ करने पर वह युवक कृतज्ञ भाव से घर आया तो बहुत झिझकते हुय उसने निवेदन किया कि मैं आपको कविता गुरू मानने की इच्छा रखता हूँ कुछ थोड़ा बहुत लिखने के साथ मैं हारमोनियम पर गुनगुना भी लेता हूँ।

पहले उसे गाना सुनाने का ही आदेश हुआ। स्वनाम धन्य श्री डी. बी. पलुस्कर जी का गाया तुलसी कृत राम भजन :-

"ठुमकि चलत राम चन्द्र, बाजत पैंजनियाँ"

हारमोनियम पर रशपाल ने गाना प्रानम्भ किया तो जैसे सारा बाताबरण संगीत भक्ति और श्रद्धा से भर उठा।

"तदुपरान्त उस गीतकार की अपनी रचना, जो उसने सुनाई उस गीत के बोल थे,

"मोड़ी देयां चन्ना मेरे रातीयें दे नीन्दरे।
सोह्ल ते सुन्हाके मेरे बड़े छैल नीन्दरे।

अर्थात् :- ऐ चाँद! मेरी रातों की नींद मुझे लौटा दे। वह मेरी नींद जो बहुत ही कोमल और सौन्दर्य परिपूर्ण है।

"जोवने दे सरे बिच व्हारां जदूं आइया हियाँ
तरदियाँ किन्नियां गै सोह्ल मरगाइयाँ हियाँ,
उड्डी गेइयाँ फग लाई छोड़ी सुतनीन्दरे
मोड़ी देयां चन्ना " " "

अर्थात् :- यौवन के सरोवर में, जब कि अभी अभी बहार आई ही थी। उसमें रंग भरी कल्पनाओं की राज हंसनियाँ अभी तैरने ही लगी थीं कि जाने क्या हुआ मुझे उनींदा (अर्द्धसुप्त) छोड़ कर सभी की सभी पंख फैलाये उड़ गईं कहाँ ? किस ओर ?

फ्हाड़ जन जिन्दड़ी, उच्चे उच्चे ढक्क न
इक्कली मैं चढ़ा कियाँ, रोकां लक्ख लक्ख न
रोग बक्ख बक्ख न।
मेदें दे मनारे आले ढई गे न कींगरे

मोड़ी देया चन्नां मेरे राती येदे नीन्दरे।

अर्थात् :- जीवन के रास्ते में कढिन ऊँची चढ़ाइयाँ है अकेली मैं कैसे पार करूं उनको, और भी अनेकों अवरोध है, दुःख हैं। आशाओं की मीनारों के सभी स्वपन टूट कर खण्ड खण्ड हो गये हैं। ऐ चाँद मेरी रातों की नींद लौटा दे।

इस गीत की आत्मा तक पहुँच पाये थे गीतकार यश शर्मा। रशपाल नाम के उस युवक को स्नेह और आदर से गले लगाते हुय कहा कि, तुम हमारी इस डोगरी भाषा के लिये बरदान हो, ऐसी कोमल सौंन्दर्य युक्त कल्पना के साथ यथार्थ के धरातल पर टिकी शब्द रचना ही किसी भी समृद्ध साहित्य के लिये समर्थ सिद्ध होती है। फिर इस गीत में जो टेक की बिविध ाता मे नवीनता है, मौलिक्ंता है, वह मुग्धता से भरी है। इस गीत में जो लय की गूंज है उसकी प्रंशसा में मैं इतना ही कह सकता हूँ कि, ऐसा गीत मैं भी नहीं लिख पाया हूँ अभी तक।

तदुपरान्त उसे उचित परामर्श देते हुऐ सुझाव दिया कि, डोगरी के विद्वान, कला पारखी, गुणीजन डोगरी संस्था में मौजूद हैं, वहाँ ही तुम्हारी कला का मूल्यांकन होगा। इस समय तुम्हारे सरीखे लेखकों की बहुत आवश्यकता है इस भाषा को। मौलिकता ही वह संजीवनी होती है जो साहित्य की जड़ों को अपने पोषक तत्त्व से प्राणवाण बनाती है।

मेरे पास तुम्हें शाबासी देने के अतिरिक्त और क्या है - हाँ, इस घर को तुम अपना ही घर समझना।

महीना भर रशपाल संस्था में जा कर वहाँ हर काम में सहयोग देने की कोशिश में लगा रहा पर उसके लेखन को कोई प्रोत्साहन नहीं मिला। दूसरे कला संस्थान इन्फरमेशऩ डिर्पाटमेंट में भी अनादर ही मिला। रशपाल के हताश मन को प्रेरणा की स्फूर्ति चाहिये थी। उसकी निराशा दूर करने की खातिर उसे अंग्रेज़ी उपन्यास लेखक वालपोल के शब्द सुनाये कि "कला के क्षेत्र में अपने जीते जी हज़ारों में से किसी एक व्यक्ति को मान सम्मान मिलता है अन्यथा उसके मरने के पश्चात ही उसकी कला का मूल्यांकन होता है"।

डच पेन्टर "वानगाग" के साथ भी यही घटना घटी थी। वानगाग के जीवन काल में न तो उसकी पेंन्टिग सराही गई न ही कोई खरीदार ही

मिला था। मरनें के बाद उसकी पेन्टिग्ज़ की इतनी कीमत है कि, कोई विरला ही उन्हें खरीद सकता है। यश शर्मा के इन प्रेरणादायी शब्दों से वह पुनः उत्साहित हो उठा था।

(टिप्पणी :-1972 का तत्कालीन समय तथा कला संरक्षण के दावेदारों से इंस सत्यता की जाँच की प्रस्तुति)

तब रशपाल जान गया कि, किसी भी मजबूत घेरावन्दी के अन्दर पहुँच पाना आसान नहीं है, उसके लिये।

संस्कृत विद्यापीठ के कुछ कला प्रेमी छात्र एवम् स्थानीय शौकिया कलाकारों को जोड़ कर अपना ही एक ग्रुप तैयार करने में सफल रशपाल ने "मोहन राकेश कृत, "आषाढ का एक दिन", का काव्य रूपांतरण कर के गुलाव भबन में मंचित किया तो दर्शकों से अपार प्रशंसा और वाह-वाही और भविष्य के लिये खूब प्रोत्साहन मिला। फिर क्या था, सरहदों के निकटवर्त्ती बसे गाँवों में तथा फौजियों के मनोरंजन हेतु कार्यक्रम इस ग्रुप द्वारा प्रस्तुत किये जाने लगे थे। इन कार्यक्रमों में डोगरी भाषा के प्रचार प्रसार तथा देश प्रेम के साथ साथ, अशिक्षा बेरोजगारी पिछड़ा पन, अंधविश्वास जैसी समाज की मूलभूत समस्यों को दूर करने के सुझाब भी मनोरंजक ढंग से प्रस्तुत किये जाते। आज जो काम सरकारी तंत्र द्वारा हज़ारों रूपये खर्च करने पर आयाजित होते हैं वही कार्य यह निःस्वार्थी कलाकार दल बगैर किसी भी अर्थ लाभ की अपेक्षा किये आयोजकों से माइक, मंच वाहन की ही सुविधा की अपेक्षा रखता था।

उस समय के उन साधकों में से आज भी कुछ ऐसे है जो रेडियो, दूरदर्शन, एवम् मंच अभिनेता के रूप में प्रतिष्ठित हो चुके हैं। वह पहली बार मंच प्रदान करने वाले रशपाल सिंह शास्त्री को स्मृति को जरूर मन में कहीं न कहीं संजोये रखे होंगे। जिसने वर्षो पहिले उनकी प्रतिभा को परखा, संवारा, तराशा था।

विद्यापीठ की पढ़ाई के साथ साथ उसके प्रोग्रामों की शोहरत उस के गाँव तक भी अनायास ही पहुँच गई थी जो कि स्वाभाविक भी था। रशपाल के घर से बहन की शादी का पैग़ाम उस अकेले भाई को कुछ साध ारण ही सही, पर जरूरी घरेलू चीज वस्तों की लिस्ट के साथ मिला था। उसकी परेशानी का कारण जानने पर मेरे दयावान पति ने जो काम जीवन

पर्यन्त न करने की कसम खा रखी थी, वही कर डाला था।

जम्मू निवासी श्री द्वारिका नाथ भनोट समृद्ध और संभ्रान्त व्यवसायी थे। उनके सुपुत्र "श्री सुशील कुमार भनोट का विवाह चन्द्रकान्ता सुपुत्री डाक्टर दीवान चन्द जोशी" के साथ 26 नवम्बर 1973 को संपन्न होना था। उन दिनों लड़के वालों की तरफ से बारात में सेहरा लड़की वालों के घर जा कर पढ़ने का प्रचलन भी, सम्भ्राँत समृद्ध परिवार होने का परिचायक था। कुछ ही दिन पहले उन्होंने यश शर्मा से सेहरा लिखवाने का आग्रह किया था परन्तु इन्होंने नम्रता पूर्वक सेहरा लिखने में अपनी असमर्थता भनोट परिवार तक भिजवा दी थी।

पर अब यह कौन सी परीक्षा का समय आ उपस्थित हुआ था? कोई बिधि का संकेत था कि, रशपाल को ही पत्र देकर भनोटों के घर Hkb u k i Mk fd | nke kai fjo kj kad sfo f' kष्ट सदस्यों के नाम भिजवा दें तथा मेरे द्वारा लिखा सेहरा, मेरा ही कोई शिष्य हारमोनियम के साथ सस्वर गायेगा भी।

भनोट साहिब की खुशी का कोई ठिकाना न रहा। सेहरा लिखा गया तथा 26 नवम्बर 1973 को बारात में सस्वर गाया भी .....गया।

वह रात आज भी भुलाये नहीं भूलती। शाम होते ही सीमा के हारमोनियम को एक बादामी रंग की सूती चादर में अच्छा सा लपेट संभाल कर रशपाल के हवाले किया।

उस रात करीव दो ढाई बजे भनोटों की गाड़ी रशपाल को वापिस घर पहुँचा गई थी। दरवाज़ा खटखटाने पर हम सभी जाग उठे। द्वार खोला तो, बाजा तो उसने सर पर उठा रखा था। चद्धर की गठरी बन चुकी थी। रशपाल ने वह बंधी गठरी इन के सन्मुख रखदी। इन्होंने पूछा कि, यह क्या है ? तो उसका उत्तर था। आपकी कृपा की कमाई। (यह सब बंधा बंधाया ले जाओ, तुम्हारा ही है सब) उसकी पुनः प्रार्थना पर किंचित स्नेह से ही झिड़क दिया था। "सेहरे की कमाई मेरे धंधे में शामिल नहीं है"। तब आँसू की दो बून्दें जो रोकना चाहने पर भी नहीं रूकपाई थीं। उन युवक की आँखों से। उन अश्रुकणों की भाषा को कौन समझेगा ? यह सेहरा हरिवंश राय बच्चन जी की प्रसिद्ध रचना मधुशाला की तर्ज़ पर लिखा गया था।

यह सेहरा डोगरा प्रिंटिंग प्रेस, जम्मू द्वारा छापा गया था। परन्तु

लेखक का कहीं नाम नहीं था। सिवाये गायक रशपाल सिंह तथा द्वारिका नाथ जी के किसी को कुछ भी मालुम नहीं हुआ था। इस प्रकार इनकी कलम से जन्म लेने वाला पहिला और अन्तिम सेहरा था यह। जीवन के विषम थपेड़ों से जूझती ज़िन्दगी चलती जा रही थी उस उत्साही कवि की। रोजी रोटी के स्थायी साधन के लिये कठुआ में स्कूल खोला, प्रयत्न सफल हुआ पर, नियति का क्रूर परिहास था कि, जम्मू रेलवे स्टेशन पर पटरी पार करते हुए रेल की चपेट में आकर दारूण अन्त हुआ रशपाल का। परिवार का तो परम दुर्भाग्य था ही, डोगरी भाषा की भी कम क्षति नहीं हुई।

एक उत्कृष्ट गीतकार, जिसमें कलात्मक सौन्दर्य भरे गीत रचने की अपार संभावनाऐं थीं। उसके गीतों की महक से वंचित रहा इस डोगरी साहित्य का प्राँगण। अधखिला फूल, टूट गया, सितारा उदित होते ही विलीन हुआ। कवि दतु, रामधन की गीति परम्परा का वाहक था वह नवोदित कलाकार। उस कवि के भी एक दो गीत ही उपलव्ध हैं इस समय। शेष सब उस के साथ ही समाप्त हो गया। कौन सार संभाल करता उसकी रचनाओं की। रेडियो स्टेशन में एक रशपाल का गाया युगल गीत सुरक्षित है। यश शर्मा की रचना; "अस कामें करसान, बेलिया हो"। अर्थात् : ओ साथी! हम मेहनती किसान हैं।

इस युगल गीत मे स्वर हैं श्री प्रकाश शर्मा और स्वयं रशपाल का। रशपाल की एक और रचना मुझे याद है जिसके साथ छोटा सा रोचक प्रसंग भी जुड़ा है। गीत इस प्रकार था :-

सुन्नें दी पक्खी ते चान्दी दी झालर, चन्नन डंडी लुआई दे
मिगी धारा पर वौंगलु पुआई दे, नेई तां मैं नेइयों बचना।

अर्थात् : "मुझे सोने की पक्खी, जिसमें चाँन्दी की झालर हो तथा उसकी डंडी चन्दन की लकड़ी की बनवा दो साथ में धार (छोटी पहाड़ी) पर बंगला बनवा दो, ऐ मेरे प्रियतम, नहीं तो मैं बच नही पाऊँगी"। गीत के इस मुखड़े पर रशपाल को गीत गुरू की राय जाननें की अत्यधिक उत्सुकता थी। कुछ देर सोचने के पश्चात उसे जो राय दी थी, वह इस प्रकार थी कि, "सोने की पक्खीं के साथ चाँदी की झालर की इच्छा सामन्ती युगीन सोच है पर चलो कल्पना की इस सुन्दर ऊंची उड़ान के साथ सुगन्धित चंदन की डंडी की मांग में हमारे अपने थोड़े मध्यम वर्गीय वातावरण की खुश्बू है। हरी भरी धार

पर छोटे से बंगले की कामना किस नारी के मन में नहीं होगी, इसके आगे, "में नहीं बच पाऊंगी" इन शब्दों में चाहे बहुत अधिक अपनेपन की दावेदारी झलकती है, लोक जीवन के अधिक निकट है, एक प्यारी सी मनुहार है, पर तुम ठीक समझो तो यहाँ, "मेरे बाँकेया सज्जना" लगा दिया जाये तो दंपत्ति का चरित्र चित्रण अधिक उभर सकेगा। उदात्त पात्रों की सृष्टि स्वयमेव हो उठेगी, तुम में ऐसा करने की योग्यता है, समर्थ है) जाओ फिर से सोचो, और आगे बढ़ें :-

दो चार दिन वाद खूव उत्साहित भाव से वह गीतकार पुनः इन पंक्तियों के साथ हाजिर हुआ था :-

तूं मरूये दा फुल्ल छवीला, मै रातीं दी रानी आं,
तूं स्वाति दी बून्द सलक्खनी, मैं नैणें दा पानी आं,
मेरे मैं गी, तूं च समेटी, अपने रंग रंगाई दे।।
मेरे बाँकेया सज्जन। सुन्ने दी पक्खी.......

अर्थात : तुम मरूये का शोभायमान फूल होतो मैं हूँ रात की रानी। तुम स्वाति नक्षत्र की सुलक्षणी (मोती) बून्द तो मैं नयनों का अश्रु बिन्दु हूँ। मुझ में से मेरी "मैं" को अपने में समेट लो ताकि हम द्वैत से अद्वैत हो जायें, एकमयी का रूप हो जायें। यह उसके भविष्य के गीतकार होनें का स्पष्ट संकेत था। यदि डोगरी साहित्य के इतिहास में उभरते गीतकार रशपाल सिंह शास्त्री नाम के उस छोटे से बिन्दू को कहीं स्थान मिल जायेगा तो इस अधूरे अध्याय का कोई चिन्ह तो शेष बचा रह जायेगा।

जीवन के इस संध्याकाल यानि आठवें दशक की पूर्णता तक भी लम्बी यात्रा से कवि मन थका नहीं है अभी तक।

इन्हीं भावों की अभिव्यक्ति प्रस्फुटित हो उठी थी, 2006-18 जनवरी साँय साढ़े छः बजे" गुरूदेव रविन्द्रनाथ की साधना स्थली, शाँतिनिकेतन के गीतांजली सभागार में। सर्वभाषा कवि सम्मेलन में सस्वर कविता "मैं मुक्ति नही चाहता" पाठ के अन्तिम छन्द से एक चरण पहिले जो भाव मुखरित हुआ था वह इस प्रकार था :-

तन थकदा ऐ तां थकदा जा,
इक्क नेंई थक्के तां मन मेरा।

अर्थात् :- "चाहे मेरा तन थक कर चूर-चूर हो जाये पर मेरा मन कभी न

थके"।

बास्तव में इस सत्य को तो स्वीकारना ही पड़ता है कि, आयु वार्ध्क्य से शरीर रूपी दीपक का शनैः शनैः तेल चुकता ही जाता है। यही प्रकृति का अटूट नियम है। पर इस से इस कवि के मन में अपनी धरती माँ तथा मानव स्नेह की उष्मा में तो कोई अन्तर नहीं पड़ सकताः उनकी यही भावना कैसे इन पंक्तिओं में प्रमाणित हो रही हैं।

शुकर करो कलम अजें रवां ऐ दोस्तो।
लिखने गी मेरे सामनें चन्हां ऐ दोस्तों।।

अर्थात् :- चन्द्र भागा में जितनी उर्मियाँ है,। उतनी ही लिखने की अभिलाषा है, तमन्ना है मन में। लेखनी की गति रूकी तो नहीं है अभी तक"। इसे चाहे अतिश्योक्ति ही मान लिया जाये, तो भी प्राणों की अन्तिम धड़कनो तक, सृजन की चाहत तो ज्यों की त्यों बनी ही हुई है। यहाँ पर पुनः 1964 की उस होली का ज़िक्र किया जा रहा है जिसकी जानकारी मुझे श्री प्रकाश शर्मा जो कि जम्मू के प्रसिद्ध लोक गायक हैं जम्मू आकशवाणी के। उनके निवास स्थान 222.A, विष्णु, भवन गाँधी नगर से मिली थी।

उनके कथनानुसार 1964 की बसन्त ऋतु मे होली का पर्व था। भारत भर के आकाशवाणी केन्द्रों को दिल्ली से आदेश मिला था कि त्रिमूर्त्ति भवन दिल्ली में होली पर अपने अपने राज्यों की संस्कृति का प्रतिनिधित्व करने वाले लोकनृत्यों की प्रतियोगिता का आयोजन किया जा रहा है अतः डुग्गर के लोक नृत्य को तथा काश्मीरी लोक नृत्य को, जम्मू कश्मीर राज्य से अपनी अपनी प्रस्तुति के लिये आंमत्रित किया गया था।

आकाशवाणी जम्मू की दैनिक मीटिंग में होली गीतों पर बिचार विर्मश हुआ। यश शर्मा द्वारा लिखे गये चार होली गीतों में से जिस गीत का चयन हुआ वह सहगान के साथ-साथ नृत्य की भाव भंगिमाओं पर पूरा उतरता था। गीत इस प्रकार था :-

स्त्रियाँ :- होली आई, होली आई, होली आई माह्नुआँ।
पुरूष :- होली आई, होली आई, होली आई गोरिये।
सज्जना ओ, मेरे मित्तरा ओ, अलबेलुआ ओ,
होलिये दा आया त्योहार।
फौगनें दी रूत्त अलबेली मेरे सज्जना ओ,

लगदी कलेजे कटार ......

स्त्रियाँ :- आऊं ते चरोकनी रंगोई गेई शाम रंग
डोलदा ऐ मन मेरा हंसदा ऐ अंग-अंग
हिरखे दी पौन्दी फुहार,
होली आई, होली आई ......

पुरूष :- बद्दलें च विजली ऐ फुल्लें च सुगन्ध जियां ।
राधका ऐ रौन्दी सदा शाम जी दे संग इयां ।
कुण जाने हिरखे दी सार
होली आई, होली आई, होली आई सज्जना
होली आई, होली आई, होली आई गोरिये ।
सज्जना हो मेरे मित्तरा ओ - अलवेलुआ हो,
होलिये दा आया त्योहार
फौगणें दी रूत्त अलबेली मेरे मित्तरा
लगदी कलेजे कटार! होली आई ......

अर्थात :- ओ मेरे साजन, ओ मीता, ओ रसियां । होली आ गई है आओ रंग खेलें । उत्तर था कि, अरी ओ सुन्दरी, प्रियतमा होली का त्योहार आ गया है, तुम भी होली खेलने चली आओ ।

फागुण की ऋतु बड़ी अनूठी है साजन, परन्तु विछोडे में तो कलेजे में कटार सी लगती है ।

मेरा तन मन तो कब से साँवरे के रंग में रंग चुका है चित्त डोलायमान हो रहा है । अंग प्रत्यंग से फूट पड़ी हैं धवल हंसी की किरणें चाँदनी सरीखी । स्नेह रस सिंचित रंगीन फुहारें चाहुँ ओर बरस रही हैं ।

पुरूष स्वर :- जैसे बादलों में निहित है बिजली तथा फूलों में बसी है सुगंधि । ठीक इसी प्रकार राधा जी, संगिनी है श्री कृष्ण जी की । कौन परिभाषित कर सकता है इस स्वर्गिक, अटूट स्नेह को । होली आ गई है, आओ! हम भी इस मधु ऋतु में फगुआ खेलें । अधरो पर मृदु हास लिये इस अलवेली रूत्त में हम भी होली खेलें अन्यथा वियोग में तो जैसे कटार सी लगती है कलेजे में...... होली पर्व आया है" ।

श्री प्रीतम सिंह जी ने इस सहगान को स्वर बद्ध किया था । बारह कलाकारों ने इस उत्सव में भाग लिया था । श्री गिरधारी लाल पन्त, विमला

देवी, श्री प्रकाश शर्मा, अमिता डे, सुदर्शन कौर कीर्त्ति, लक्ष्मीकान्त जोशी, विश्व कीर्त्ति गुप्ता आदि, सभी रेडियों के जाने माने कलाकार थे। त्रिमूर्त्ति भवन में श्री जवाहर लाल नेहरू, इन्दिरा गाँधी, लाल बहादुर शास्त्री, गुलजारी लाल नन्दा, मैथिली शरण गुप्त, सत्यनारायण सिन्हा तथा अन्य सांसद एवं गण्यमान्य व्यक्तियों सहित पूरी की पूरी कैबिनेट उपस्थित थी। सभी राज्यों की प्रस्तुतियां एक से एक बढ़ कर थीं।

यहाँ प्रीतम सिंह जी का कहना था कि, चाहे बेषभूषा, साज-सज्जा, नृत्य संचालन में राजस्थान पंजाब आदि लोक नृत्यों की अपनी ही विशेषता थी, परन्तु डोगरी नृत्य संगीत का भी अपना ही एक अलग आकर्षण था। सब से बड़ी बात थी डोगरी भाषा की प्रस्तुति, जो पहली बार वहाँ प्रस्तुत की गई थी जो अपने आप में एक कौतूहल का विषय था। इन्दिरा गाँधी ने जवाहर लाल जी से जानना चाहा था कि यह पहाड़ी भाषा है ? जवाहर लाल जी ने बड़ी गम्भीरता से उत्तर दिया था कि यह जम्मू के डोगरों की डोगरी भाषा है। इस सारे कार्यक्रम की सफलता मे सभी का योगदान था परन्तु अधिक श्रेय श्री गिरधारी लाला पन्त के मधुर कंठ को जाता है। तहसील बिलावर के गुढ़ा कलाल कस्वे के निवासी थे श्री गिरधारी लाल पन्त। मैट्रिक फर्स्ट डिबीज़न में पास करने पर भी नौकरी के बजाये स्वतंत्र जीविका के लिये पान की दुकान खोल रखी थी। स्वयं भी गीत लिखते थे। स्वर्गीय के. एल. सहगल सरीखी गहन गम्भीर आवाज थी उनकी। विमला देवी के साथ इन्होंने बहुत से युगल गीत गाये, जिनमें लोक गीत "चन्न" को जो प्रसिद्धि मिली वह इन दोनों को अमर रखने के लिये काफी है। गीतकार किश्न स्मैल पुरी के "चन्न" को शामिल किये वगैर बात अधूरी ही रहेगी। विमला देवी के स्वरों में गाये गीत जिनमें मधुकर का लिखा गीत "मेरी रौंगली मदानी ओ, य लोक गीत, "मेले जान नइयू दिन्दा" तथा "चौधरी पुत्तरे गी समझा" आदि गीत डोगरी के संगीत क्षेत्र की अमूल्य धरोहर हैं। इसी प्रकार स्वर्गीय मन-मोहन पहाड़ी जी ने "जो तेरे मन चित्त लग्गी जा" गीत शब्दों के अनुरूप भाव में डूव कर गाया है। जब यश शर्मा रेडियो अनाऊसर थे तो पंत जी को याद करते हुए बताया कि, सवेरे की शिफ्ट मे डोगरी गीतों के प्रोग्राम में उनके पूरे नाम के बजाये अनौन्स कर दिया कि स्वर था श्री जी. एल. पन्त का। तत्काल पत्र लिख कर उन्होंने मुझ से अनुरोध किया था कि, मेरा पूरा नाम गिरधारी लाल पन्त ही लिया जाये,

क्योंकि, मेरे इलाके के लोग मुझे इसी नाम से जानते हैं"।

इस डुग्गर प्रदेश में मनमोहन पहाड़ी तथा गिरधारी लाल पन्त जैसे स्वर बार-बार संभवत् नही मिल पायेंगे। सच कहा जाये तो वर्ष 1967 को इस होली उत्सव की यह सारी चर्चा इस लिये करनी पड़ रही है कि, जब 1972 में इन सभी रचनाओं का मूल्यांकन एकेडमी द्वारा "ज़ीरो" आंका गया था तो स्वयं प्रीतम सिंह जी ने डोगरा बुद्धिजीवियों की इस तुच्छ मानसिकता पर बहुत खेद प्रकट किया था। किसी भी पर्व उत्सव पर किसी की भी अच्छी रचनाओं पर कार्यक्रम तो आयोजित होते ही रहते हैं। परन्तु किसी व्यक्तिगत विद्धेष द्वारा डोगरी के प्रचार प्रसार उत्थान का बीड़ा उठाने वाले साहित्यकार ही जब साहित्य में ही भ्रष्टाचार फैलाने लगें तो कितना भला होगा उस भाषा का। क्योंकि इस सारे कार्यक्रम के केन्द्र बिन्दु स्वयं प्रीतम सिंह जी ही थे। इसी संदर्भ में उनसे यह सारा व्योरा मुझे पुनः वर्षों बाद यानि आठ वर्ष पश्चात् सुनने को मिला था।

श्री प्रीतम सिंह जी, मनमोहन पहाड़ी गिरधारी लाला पन्त यह सब इस दुनियाँ से चाहे विदा हो चुके हैं और भी बहुत से कलाकार नहीं रहे हों पर उनकी अमर स्मृतियाँ उनकी कला में जीवित रहती हैं। बहुत से ऐसे कलाकार हैं जिनकी यादें हमारे इस छोटे से घर में रची बसी हैं। माध्यम चाहे जो कोई भी रहे हों।

श्री बुआ दित्ता जी, आकाशवाणी जम्मू के सांरगी वादक बहुत मीठी सारंगी बजाते थे। उनके पिता श्री मस्त राम जी रेडियो के प्रसिद्ध लोक गायक थे तथा इनके कुलीग थे। छोटी सारंगी पर डुग्गर के नायकों अतः बलिदानी शीलवन्तियां, बारां, कारकों तथा लोक गाथाओं को सधे स्वरों में गाने में बहुत कुशल थे। उन्होंने अपने पुत्र बुआदित्ता जी को सारंगी सीखने के लिये दिल्ली के प्रसिद्ध सारंगी नवाज़ साबरी ख़ान की शार्गिदी में रखा था। बुआ दित्ता सांरगी तो मीठी बजाते ही थे पंजाबी वन्दिशें भी उन्हें याद थीं। जैसे "मैं मसलहत पुच्छनीआँ तुसां नूं तुसी गावो बजावो स्हेलड़ियो"।

जैसे कि पहले ही कहा जा चुका है कि "यश शर्मा" (बनना चाहते थे गायक बन गये लेखक) अब अपनी पुत्री सीमा की संगीत में रूचि देखकर प्रयत्नशील थे किसी सुयोग्य संगीत शिक्षक की खोज में। जो व्यवधान

उनकी स्वयं की संगीत सीखने की चाहत में आये थे, उससे वह अब पूर्णतया सतर्क थे। घर में हारमोनियम, तानपूरा, तबले अपनी बच्ची के लिये सब खरीद लिया गया था।

सर्व-प्रथम बुआ दित्ता जी से ही प्रार्थना की कि, शास्त्रीय संगीत की जानकारी सीमा को प्रदान करें, जिसके लिये वह सहर्ष सहमत हो गये। हफ्ते में वह दो दिन शहर से गाँधी नगर आते थे। दो तीन बच्चियाँ गाँधी नगर से और भी उनसे सीखने आने लगी थीं। हम भी चाहते थे कि महीनें में चाहे वह आठ दिन ही आते थे उसके लिये यथेष्ट अर्थ लाभ उन्हे मिलना ही चाहिये। परन्तु उनकी सच्चाई की हम जितनी कद्र करें, सराहना करें वह कम ही होगी। महीने भर के उपरान्त बुआ दित्ता जी का कथन था कि, अन्य बच्चियो में संगीत सीखने की सलाहयित नाम मात्र भी नहीं है। इनसे संगीत शिक्षा के नाम पर पैसे बसूलने, इनके माँ-बाप को धोखे में रखने के समान है। इस प्रकार वह सिर्फ सीमा को ही डेढ़ वर्ष तक शिक्षा देते रहे, जो हम से बन पड़ता वह उसी में संतुष्ट थे। आज के इस व्यवसयिक युग में कहाँ है सच्चे शुद्ध सोने के से एसे मूल्यवान व्यक्तित्त्व। कभी अपने रंग में होते हो गज़ल भी सीमा को सिखाते।

गालिव की गज़ल थी,

। दर्द मन्नत कशे दवा न हुआ,

मैं न अच्छा हुआ बुरा न हुआ।

इस प्रकार पहली गज़ल उन्होंने ही सिखानी शुरू की थी। पर बुआदित्ता जी कशे को "कछे" कहते थे। कुछ दिनों पश्चात छुट्टी के एक दिन सीमा के पिता जी जब घर पर ही थे, तो इन्होंने कहा कि "मन्नत कशे" कहियेगा, तो काफी कोशिश करने पर भी कछे ही कहा जा रहा था। फिर एकाएक बुआ दित्ता जी खिलखिला कर हंस पड़े कि "भाई हम डोगरे हैं शेः को छे ही कहते हैं और कशे को कछे। जतन करने पर भी ज़ुवान नहीं सुधरती। अपने पता नहीं कैसे सुधार लिया है अपने-आप को।

ऐसे थे साँवले, सौम्य, स्वच्छ मन, तथा सादे स्वभाव के धनी बुआदित्ता जी, उन्होंने ही सुझाव दिया था कि, संगीत की तालीम हर रोज ज़रूरी होती है, यह उन्होंने अपने दिल्ली में दो वर्ष लगातार सारंगी सीखते रहने की बिना पर कही थी। फिर कभी सतवारी से शान्ति स्वरूप जी,

तबला वादक ओम प्रकाश जी कुछ दूसरे कलाकार भी आये। इसी तरह छिट पुट सीखने सिखाने में संगीत की इस बहती धारा में अचानक एक नया मोड़ आया। पं. मदन मोहन जी ऐसे तो वह जम्मू के महलोंवाले चारजियों की वंश परम्परा से ताल्लुक रखते थे परन्तु जाने कैसे ग्वालियर घराने के श्री कृष्ण राव शंकर पंडित जी के पास जा पहुँचे थे। उनको अपना गुरू मानते थे। अपने ही में मस्तमौला, स्थान समय की कुछ भी ख़वर न रखते हुए जब जी चाहा रागदारी में डूव कर गाने लगते। गली मुहल्ले के बच्चे ऐसे दीवाने से व्यक्ति को पागल-पागल कह कर चिढ़ाते, माथे पर पत्थर लगने से लहू धारा फूट निकली थी। उनको घर ले आये स्पिरिट वगैरा लगाने के मकसद से सीमा के पिता जी।

घर में हारमोनियम, तानपूरा देखा तो पूछा कि यहाँ कौन गाता है? इन्होंने बताया कि छठी क्लास में मेरी बेटी सीमा पढ़ती है, उसी का है सब।

सीमा नही, सोमा बेटी है अब। सीमा के स्कूल से आने पर कहा कि, पहले क्या सीखा है, वह सब सुनाओ। सुनने पर कहा कि, मैं सिखाऊंगा इसे।

पंडित जी ने साल भर सरगम तथा अलंकारों के साधने और रियाज़ करने से आगे नहीं जाने दिया। तत्पश्चात राग यमन, दरबारी कान्हड़ा के ख्याल और छोटी बड़ी बन्दिशें बड़े मनोयोग से सिखाई थीं। गाँजे आदि के निरन्तर सेवन से आवाज़ गहन गंभीर हो चुकी थी। "कौन कौन गुण गाऊँ राम के" भजन गाते तो जैसे मन प्राणों को कोई जादुई मिठास स्पर्श कर जाती थी।

जम्मू में उन्हें पहिचानते तो बहुत लोग थे पर उस धूलि मे छिपे हीरे की परख की थी सीमा के पिता जी ने ही। फिर डेढ़ दो वर्ष पश्चात् एकाएक जाने कहाँ अर्न्तधान हो गये। "बहता पानी, रमता जोगी"। इसी अस्थिरता ने संभवत् उनकी संगीत साधना को ग्रसा होगा, अन्यथा शास्त्रीय गायन में ग्वालियर धराने की परम्परा में एक जाना माना नाम होता उनका।

"यहाँ मुझे एक उक्ति स्मरण हो आती है कि एक निर्दोष चित्त सदैव सब के लिये खुला रहता है"। कवि यश के निर्दोष मन को विशालता ही थी जो इस घर के द्वार सदैव सब के स्वागतार्थ खुले रहे।

तभी तो कितने कितने संगीतकारों साहित्यकारों कवियों की बहुरंगी

स्मृतियाँ जुड़ी हैं इस घर के साथ।

सन् संवत् चाहे मुझे ठीक से याद न रहे हो पर संगीतकार श्री जियालाल बसन्त का अपनी छोटी सी कलाकार मंडली के साथ गाँधी नगर में आना कैसा सौभाग्यशाली समय था, जिसे यहां के निवासियों ने बहुत दिनों तक याद रखा था, आज भी याद करते हैं इसलिये कि, आज के फिल्म जगत के प्रसिद्ध पार्श्व गायक श्री सुरेश बाडेकर भी उस कलाकारों के दल में सम्मिलित थे और अपने गुरू श्री बंसन्त जी से दूसरे स्थान पर वही सब से बड़े थे। और छोटे छोटे कलाकारों की देख-रेख का भी जिम्मा उन्हीं का था। बसन्त गुरू जी का परिचय अपने पति से मुझे इस प्रकार मिला था कि, रणवीर हाई स्कूल में पढ़ते समय, श्रीनगर और जम्मू में गाना सीखने के लिये जो हम साथी थे उनमें श्री सुरेन्द्र सिंह बाली जी का बेटा पद्यमदेव सिंह, लोक नाथ वकील के पुत्र विद्यारतन, कृष्ण गोयल और पृथ्वी नंदन सिंह तथा स्वयं यश शर्मा थे। इनका कहना था कि, हम सभी जियालाल बसन्त के घर जाया करते थे संगीत सीखने, परन्तु उनके प्रिय शिष्य' थे, कृष्ण गोयल और पृथ्वीनन्दन सिंह। उनको साथ लेकर गुरू जी महाराजा साहिव हरि सिंह जी के महलों में गाने के लिये जाया करते थे। बड़े-बड़े घरों की टयूशनें थीं उनके पास। हम जेब खर्च से फीस जुटाने वाले भला किस गणना में थे। पर उनकी पत्नी सुमित्रा बहुत स्नेह-शील महिला थीं। वह सारी बात समझतीं थी अतः हम बाकी बच्चों को मायूसी न हो। हम से गाना सुना करती चाय भी पिलाती। कानन बाला के गाये गीत उन्हें बहुत पसन्द थे, मुझ से प्रायः "ऐ चाँद छिप न जाना, जब तक मैं गीत गाऊं" कानन वाला का यह गीत मैं अच्छे स्वर में गा लेता था, मुझ से सुना करती थीं। जियालाल बसन्त जी का स्वयं का लिखा गीत था

"जा रे भंवरा दूर दूर,
किस वन से आया।
तुझको पंख मिले- तोहे मिली कोमल कमल सेजरिया
हुए पग घाव हरे, मोहे मिली पथरीली से डगरिया।
हृदय हुआ चुर-चुर जा रे भबरा दूर दूर।

यह गीत वसन्त जी ने ही हमें सिखाया था।

इस गीत को बचपन में ही सीमा को सिखाया करते थे उसके पिता

तो तभी मुझे भी पता चला था गुरू वसन्त जी के बारे में।

उसी नाते से श्री जिया लाल वसन्त इन से मिलने गाँधी नगर हमारे घर आये थे। संगीत के प्रचार प्रसार में उनको सरकार की ओर से कोई सहायता नही मिलती थी, य वह लेना ही नहीं चाहते होंगे इसकी मुझे कोई जानकारी नहीं थी। बच्चों के कार्यक्रम की वसन्त जी ने बात की तो इन्होंने तुरन्त सुझाव दिया कि वह प्रोग्राम ऐसा होना चाहिये जिससे अधिक से अधिक लोग लाभान्वित हो सकें। इस के लिये हमारे अपने ही घर से सटे लूथरा एकेडमी स्कूल के प्रिन्सीपल श्री टी. आर लूथरा से बात की तो वह सहमत हो गये कि इस प्रोग्राम में माइक स्टेज वगैरा का सारा प्रवंध स्कूल की तरफ से होगा। कार्यक्रम का परिश्रामिक 200 रूपये दिया जायेगा। तब स्कूल के बच्चों तथा उनके अभिभावकों एवम् गाँधी नगर निवासियों को भी आंमत्रित किया गया।

जिया लाल बसन्त जी के छोटे छोटे शिष्यों ने जो कार्यक्रम प्रस्तुत किया उसकी बहुत सराहना हुई। दर्शकों ने प्रसन्नता पूर्वक बच्चों को पुरस्कृत भी किया।

इस सारे सफल कार्यक्रम में हमारा सहयोग केवल सुवह की चाय नाश्ता तथा दोपहर का भोजन मात्र तक ही सीमित था। स्कूल के उस समय के कुछ विद्यार्थी जो आज बड़े बड़े ओहदों पर हैं उन्हें सुरेश बाडेकर की इस प्रोग्राम में प्रस्तुति खूव याद है। अवश्य ही इस दल के शेष बच्चे भी नामी-गरामी कलाकार बनकर खूव नाम कमा रहे होंगे।

फूल अपने लिये नहीं खिलता, दूसरों के लिये ही खिलता है, कुछ ऐसी ही धारणा रहती आई है इस कलाकार के लिये मेरे अपने मन मे।

जभी तो जम्मू य श्रीनगर आकाशवाणी द्वारा भारत भर से जो लोग संगीत के लिये आमंत्रित किये जाते थे, उन कलाकारो के स्वागत में सदैव तत्पर रहा यह घर। अच्छे संगीत की परख तो ईश्वर प्रदत्त इनके पास थी ही। उसी के चलते गुणी कलाकारों क घर में आना जाना लगा ही रहता था। इस सब के साथ निजि स्वार्थ का भी एक सूक्ष्म सा तन्तु जुड़ा था। उद्धेश्य सिर्फ इतना ही रहता था कि घर में अपनी बेटी के लिये विशुद्ध संगीत का वातावरण बना रहे। क्योंकि अभी तक सीमा की संगीत की शिक्षा को कोई सन्तोष जनक दिशा न मिल पाने से पिता के मन की चिन्ता

स्वाभाविक थी।

उन गुणी जनों को भी घर जैसी पर्याप्त सुविधा से क्या परहेज़ हो सकता था। पहले भी जिक्र किया गया है कि श्रीमति निर्मला अरूण जब भी जम्मू काश्मीर आती तो उनको भाई को घर में पूरा आदर सम्मान मिलता था। (निमर्ला जी इनको भाई ही कहती थी) मनमोहन पहाड़ी जी तो इनके अपने ही थे। अंतिम बार भी जम्मू अभिनव थियेटर में कार्न्सट के लिये आये थे तो प्रोग्राम के वाद भी कुछ दिन ठहरे थे तथा दोनो मित्र देर रात गये तक बीती घटनाओं की यादें संजोते रहते थे। उस कार्यक्रम के साथ एक दुःखदस्मृति भी जुड़ी है। ज्योति चड़डा भी उस प्रोग्राम में दिल्ली से आमंत्रित की गई थीं। डोगरी वेशभूषा में डोगरी गीत गाकर उस सुन्दर कोमल लड़की ने समां वाँध दिया था।

बिधि की कैसी बिडम्बना थी कि, असमय ही उस ज्योति के बुझ जाने से डोगरी संगीत जगत की बहुत बड़ी क्षति हुई थी।

आकाशवाणीं की संगीत सभा में भाग लेने दिल्ली से रीता गांगुली अपनी छोटी बेटी मेधा के साथ आया करती थीं। दिल्ली में उर्दू पत्रिका आवाज़ की संपादिका नूर जहाँ अपनी मित्र गांगुली के साथ आई थी। आल इंडिया रेडियो के सारंगी वादक श्री इन्द्रलाल जी से भी सारंगी सुनने का सुअवसर घर में मिला था। उनका कथन था कि जहाँ कहीं भी मैं जाता हूँ रैन वसेरा करता हूँ, वहाँ सारंगी की तारों को छेड़ना मेरा धर्म बन जाता था। हम तो चाहते ही थे कि उनकी कला को सुनते ही रहें।

ग्वालियर घराने के ही श्री घनश्याम जी जो मदनमोहन पंडित के गुरू भाई थे, आये तो थे बैष्णवी देवी दर्शनों को परन्तु हमारे घर का आदर सत्कार तथा स्नेह देखकर पूरे महीना भर यहाँ रहे। अपने घरानें की कुछ बन्दिशें मनोयोग से सीमा को सिखाते थे। राग जोग में छोढी बन्दिश आत्म विभोर होकर गाते थे।

"सुनो श्री शखि स्याम शुन्दर जब देखे" तो सच में ही वृन्दा वन और कृष्ण लीला साकार हो उठती थी। कलकत्ता से जय श्री गुप्ते जय देव रचित भजन गाती थी "माधव हम परिणाम निराशा" जय श्री गुप्ते के भाई आलोक गांगुली, शिव भजन ही अधिकतर गाते थे। घर में हम ने उनका नाम ही महादेव गांगुली रख दिया था। "शिव जी ब्याहन चले पालकी

सजाये के, विभूति रमाये के"। शिव विवाह के इस भजन का उनका "एच. एम. वी" का रिकार्ड प्राय सभी आकाशवाणी के केन्द्रों के पास अभी भी सुरक्षित है जो शिव रात्रि के उत्सव पर आज भी यदा कदा सुनाई दे जाता है।

संजोग की बात है कि मुंबई स्थित वार्सोवा के भगवती अर्पाटमेंट में सीमा के फ्लैट के साथ ही उनका भी फ्लैट है। उनकी आयु भी सीमा के पिता जी जितनी है। मुझे अच्छी तरह याद है 1980 में श्रीनगर के टैगोर हाल में शिवरात्री के उत्सव पर आलोक गाँगुली तथा सीमा ने युगल गान के रूप में इस रचना को गाया था तो काश्मीरी पंडित समाज ने मुक्त कंठ से सराहना की थी तथा श्रीनगर आकाशवाणी के केन्द्र निदेशक का धन्यवाद किया था कि जिन्होंने "शिव स्तुति" पर ही यह सारा कार्यक्रम आयोजित किया था।

जानें-माने ख्याति प्राप्त कलाकरों के दर्शन करना, उनसे मिलना-जुलना, उनका घर में ठहरना, सगीत सुनना फिर बर्षों तक पत्र व्यवहार का चलते रहना यह सब सौभाग्य आकाशवाणी में कार्यरत होने के कारण ही संभव होता था। श्रीनगर में तो स्क्रिप्ट राईटर, बच्चों के प्रोग्राम तथा उर्दू न्यूज रीडर का ही मुख्य कार्य रहता था। परन्तु 1962 में जम्मू आने पर उद्घोषक का स्थायी पद प्राप्त हुआ था। ज़ाहिर है कि रेडियो की डयूटी के साथ साथ मंचीय कार्यक्रमों में भी उद्घोषकों की महत्त्व पूर्ण भूमिका भी सदैव ही रहती आई है। प्रभावशाली ढंग से मंच संचालन की पटुता तो इश्वर प्रदत्त थी ही।

फिर उन दिनों दूरदर्शन भी दर्शकों तक पहुँचने का साधन विशेष नहीं वना था। इस लिये आकाशवाणी ही एक ऐसा सशक्त माध्यम था जिसके द्वारा संगीत सभाऐं, कवि सम्मेलन आदि का आयोजन हुआ करता था।

जम्मू रेडियो स्टेशन के गोलाकार आँगन में वटेवृक्ष के चबूतरे को मंच का रूप दिया जाता था। वहाँ संगीत सभाओं तथा कवि सम्मेलनों का आयोजन होता, नाटक भी मंचित किये जाते थे। दर्शकों के बैठने का भी पूरा प्रबंध किया जाता था। रेडियो स्टेशन का यह भवन महाराजा रणजीत देव ने, अहमद शाह अब्दाली के आक्रमण के पश्चात जम्मू में शरण लेने

आई किसी मुगल की वेगम के लिये बनवाया था, जो मुगलानी बेगम की हवेली के नाम से प्रसिद्ध हुआ । इसी हवेली में रेडियो स्टेशन स्थापित हुआ था । य फिर शालीमार चौक स्थित गुलाव भवन में भी कार्यक्रम आयोजित हुआ करते थे । इस प्रकार रेडियो में जो भी कलाकार आते, गायक हों वादक हों, शास्त्रीय संगीत सभा हो य फिर सुगम संगीत एवम लोक संगीत का कार्यक्रम हो । य फिर हिन्दी कवि सम्मेलन हो य उर्दू मुशायरा सभी के साथ कोई न कोई संपर्क सूत्र उद्‌घोषक का जुड़ा ही रहता था । गुणी जनों को परख कर उनको घर में आने का निमंत्रण देते जो कभी कभी हफ्ते दस दिन तक भी चलता रहता । इस लम्बी अवधि के अतिथियों से कभी-कभार मुझे कोफ्त भी होने लगती थी ।

लखनऊ के गज़ल गायक मुज़दद नियाज़ी, तथा बाम्बे से आये शब्बीर ख़ान, इन को गज़ल गायकी में विशेष महारत हासिल थी । उन्हीं को सुन सुन कर शायद सीमा का रूझान गज़ल की तरफ अधिक हो गया था । पंजाव के प्रसिद्ध गायक आसा सिंह मस्ताना बहुत नेक दिल इन्सान थे, सुरेन्द्रकौर, प्रकाशकौर, सर्वजीतकौर पंजाबी लोक संगीत की पहचान थे ।

बेगम अख्तर साहिवा का तथा आसा सिंह मस्ताना, सुरेन्द्र कौर इन सभी का जम्मू के पश्चात पुंछ में कार्यक्रम था । सीदयों का मौसम था । सेना की बहुत सी गाड़ियाँ थीं । प्रीतम सिंह जी तथा अन्य साज़िन्दे और कलाकारो का अपना सामान गाड़ियों में भर दिया गया । वेगम अख्तर के आदेश पर साथ थे उद्‌घोषक यश शर्मा ।

लम्बी यात्रा थी, आसा सिंह मस्ताना सुरेन्द्र कौर ने पंजावी बोलियाँ टप्पे गाने, शुरू कर दिये । सभी आर्टिस्ट एक ही गाड़ी में बैठ गये रसीले सुरों के जादू में वंधे । सामान वाली गाड़ी का चालक भी संगीत की तरफ ही ज्यादा ध्यान दिये था कि गाड़ी एक नाले में लुढ़क गई । सेना के हुशियार ड्राईवर की जान तो बच गई पर सामान गीला हो गया था और कोई विशेष नुक्सान नहीं हुआ था । फिर भी खूव हंसी मज़ाक से माहौल को शीध्र ही सामान्य और हल्का कर लिया गया था । कैसे दिलदार लोग थे, वह सब ।

जिस तरह समय बदला वैसा ही संगीत भी बदला, फिर तो संगीत का कलेवर ही वदल गया । कहाँ लुप्त हो गई पंजावी संगीत से वह सजरे मट्ठे की सुगंधि, ताज़ी मक्की की रोटी की महक । पंजाव की संस्कृति में रचा

बसा रिश्तों का चुलबुलापन। नंदलाल नूरपुरिये के लिखे पंजाबी गीत तथा लोक गीतों की चाशनी से लवरेज़ वह संगीत के कार्यक्रम जो श्रोताओं के दिलो दिमाग पर छा जाते थे।

समय कैसा सुहाना था। जीवन रंगीला था, रसीला था, एक अपने पन की भावना थी। आठवें दशक तक भी इन संगीत के कार्यक्रमों की रमणीयता बरकरार रही। कलाकारों की कभी चेन बुकिंग होती तो पन्द्रह बीस दिनों तक इन कलाकारों का आपसी सद्भाव मेल-ज़ोल संयुक्त परिवार की तरह होता। प्रतियोगिता की बजाये प्रोग्राम को मनोहर और स्मरणीय वनाने का प्रयत्न किया जाता था। यह मेरा अपना स्वयं का अनुभव है। वर्त्तमान युग की इस कोरी औपचारिकता भरे माहौल में जब कि रक्त संबधों के रिश्ते भी केवल शब्द मात्र बन कर रह गये हैं।

अच्छा लगता है कुछ भूली विसरी स्मृतियों को पुनः स्मरण करना।

यहाँ पर एक ऐसी व्यक्तित्व का ज़िक्र किया जा रहा है जो संभवत: किसी को भी महज़ कल्पना से गढ़ी कहानी सी ही लगेगी। विश्व विख्यात श्री पंडित जस राज जैसी विभूति से भला कौन संगीत प्रेमी अपरिचित होगा।

उन्हीं के बड़े भाई श्री प्रताप नारायण जी, शास्त्रीय गायन में प्रख्यात अपनी शिष्या कंकणा बैनर्जी के साथ काश्मीर भ्रमण के लिऐ आये थे, कब आये थे, मालूम नहीं। हाँ, जम्मू से वापिस बम्बई जाने के हम प्रत्यक्ष दर्शी साक्षी हैं य फ़िर पक्की ढक्की के श्री पूर्ण गुप्ता जी थे। प्रताप नारायण जी का पूर्ण गुप्ता से कैसा परिचय था, सो भी नहीं मालूम। पर पूर्ण गुप्ता जी ही उन दोनों को हमारे घर ठहराने के उद्धेश्य से रेडियो स्टेशन में इन के पास आये थे। बात सिर्फ दो तीन दिन ही विश्राम करने की थी। यहाँ भला क्या एतराज़ हो सकता था संगीत के इतने बड़े दिग्गज कलाकारों के स्वागत सत्कार में कहीं कोई कमी न रह जाये, यही चिन्ता अधिक थी।

शुद्ध स्वर्ण मुद्राओं सा खनकता स्वर था कंकणा वैनर्जी का। जो आज भी वैसा ही है। मेवाती घराने के श्री प्रताप नारायण जी की तो शास्त्रीय संगीत में अपनी ही विशिष्टता थी। हालाकि सीमा उन दिनों दिल्ली में थी। तानपूरा, हारमोनियम वगैरा सब घर मे था ही। रात के समय अच्छी महफिल जम जाती इन तीनों की। अतिथि सत्कार की अवधि दो

दिन, चार दिन, हफ्ता फिर दो हफ्तों तक जा पहुँची।

समस्या वही थी कलाकारों वाली। बम्बई जाने का किराया नहीं था। प्रताप नारायण जी अपनी बेटी सुलक्षणा पंडित की प्रतीक्षा कर रहे जो काश्मीर सें "हत्यारा" फिल्म की शूटिंग से वापिसी पर जम्मू एयरपोर्ट पर आने वाली थी।

बाप वेटी का एयरपोर्ट पर आमना-सामना होने पर जाने किस कारणवश बात नहीं बनीं। यहाँ हम लोग तो सिर्फ आश्रय ही दे सकते थे और क्या कर सकते थे।

पक्की ढक्की जा कर पूर्ण गुप्ता से ही बात करनी पड़ी कि, भाई! कहीं संगीत की कोई महफिल ही करवाओ ताकि इनके किराये का जुगाड़ हो सके। घर के दूसरे बच्चे पढ़ने वाले हैं।

पूर्ण गुप्ता ने अपने घर में संगीत की महफिल आयोजित कर के शहर के गण्यमान्य व्यक्ति आंमत्रित किये, जो शास्त्रीय गायन की सूझ-बूझ रखते थे। इस तरह दोनों की वापिसी का किराया जुटाया गया था।

इस सारे नाटक का पटाक्षेप तभी संपन्न होता है जब कि यह जिक्र भी किया जाये। उन दोनों के लियें रास्ते का खाना भर कर देते हुऐ हंसी हंसी में मैंने कहा कि, कंकणा! सीमा की कभी बाम्बे में कान्सर्ट होगी तो कोई परेशानी नहीं होगी हमें। तुम लोग तो हो ही वहाँ। कंकणा वैनर्जी का उत्तर सुन कर स्तव्ध रह जाना पड़ा। "भाभी! बम्बई में तो राह में मिलने पर भी पहचान भूल जाते हैं लोग" यह सच भी सावित हुआ था। चन्द ही महीनों वाद, जलगाँव आकाशवाणी में कोई उदधाटन समारोह था। दिल्ली से सीमा तथा नीलम साहनी तथा लखनऊ, कलकत्ते से अन्य कलाकार भी आमंत्रित थे। उसी समारोह में कंकणा बैनर्जी भी थी। वहाँ कहाँ था गुरू प्रताप नारायण और शिष्या कंकणा वैनर्जी का जाना पहिचाना चेहरा। जब कि, चेन बुकिंग के चलते बम्बई तक बरावर आकाशवाणी की संगीत सभाओं में सभी कलाकार एक ही मंच पर होते थे।

अतीत जैसे वार-वार वर्त्तमान का आवरण ओढ़ मन पर छाने लगता है। 1972 से 1992 तक का वह अन्तराल 1992 में यश शर्मा की कृति पुरस्कृत हुई। इन 20 वर्षों के काल खंड में, सच कहा जाये तो इस अवधि में पुरस्कृत होने वाली कुछ पुस्तकों का स्तर देख कर कवि मन की

तो सारी प्रतिक्रियाऐं हो चुक गई थी। पुस्तक प्रकाशित करने के नाम मात्र से ही अप्रसन्न हो उठते थे। पर मेरा मन सन्तुष्ट कैसे रह सकता था।

इसी भाव की स्वीकारोक्ति "जो तेरे मन चित्त लग्गी जा" के लिये लिखे गये दो शब्द (भूमिका) में स्पष्ट है। "प्रकृति के कोमल सौन्दर्य के कण-कण में व्याप्त उस अनंत प्राण सत्ता के दर्शन करते हुऐ जीवन के दुःखों सुखों को अपने गीतों में समेटते हुऐ मीठे स्वरों में गीत रचने वाले कलाकार का नाम है यश शर्मा। यह कलाकार मेरा पति है :-

एक कवि है, एक लेखक है।

इनकी रचनाएं विभिन्न पुस्तकों में प्रकाशित हो चुकी हैं। सीमा के साथ साथ बहुत से अन्य जाने माने कलाकारों ने इन रचनाओं को गाया है। कवि का सरल सहज, मन, इतने से ही सन्तुष्ट था। पर मेरे संसारी मन को सन्तोष का आभास तभी हो सकता था यदि यह सभी रचनायें पुस्तक रूप में संग्रहीत हो जायें।"

पर तब तक यश शर्मा का काव्य रचना के साथ नाटय लेखन तथा अभिनय की ओर भी उत्साह निरन्तर अग्रसर था। डोगरी, हिन्दी, उर्दू नाटक लिखे जा रहे थे, मंचित हो रहे थे। इस विधा में भी ख्याति और अर्थ यथेष्ट था।

पर मेरे मन में गीतों की पुस्तक प्रकाशित हो सके, यह धारणा चुपचाप निरन्तर वलवति होती जा रही थी।

यह गीत जिनमें जीवन का परम सत्य था, राग-विराग दो छोरों के मध्य प्रवाहित प्रकृति के साथ मानवीय संवधों की छवि का सजीव चित्रण था। जिसे पहिचानते हुए सुधिजन पाठक, गायक निरन्तर मेरे प्रेरक थे। यहाँ पुनः इस गीतकार के गीत गुरू श्री हरिवंश राय बच्चन विष्णुकान्त शास्त्री, देवेन्द्र सत्यार्थी तथा रेडियो स्टेशन के श्री प्रीतम सिंह जी का नाम स्थापिंत करना चाहूंगी। जो पुस्तक प्रकाशन की प्रेरणा निरन्तर दे रहे थे।

इस सब के बीच स्वयं लेखक का बस इतना ही अनुरोध था कि इस पुस्तक को वही नाम दिया जाये जिसको 20 वर्ष पहिले भाषा संस्कृति एकेडमी के विद्वानों ने "मूल्यांकन ज़ीरो" करते हुए लाल स्याही से चीरा फाड़ा था।

सुयोग भी स्वयंमेव आ उपस्थित हुआ था। 1989 में वरिष्ठ

उद्घोषक के पद से रिटायरमेंट के पश्चात् पुणें, मुम्बई आदि स्थानों से कुछ संवंधियों ने इनको आमंत्रित किया था।

वस उसी अवधि में युवा कवि नसीव सिंह मन्हास (अब डाक्टर नसीव सिंह मन्हास) के सहयोग और परार्मश से संकलित रचनाऐं पुस्तक रूप में प्रकाशन के लिये दे दी गई। नसीव सिंह का सुझाव था कि इस पुस्तक की भूमिका डोगरी साहित्य के किसी गण्यमान्य व्यक्ति द्वारा लिखवाई जानी श्रेयस्कर रहेगी। परन्तु गण्यमान्य व्यक्तियों की साज़िशी मानसिकता का परिचय तो पूर्णरूपेण वर्षों पहिले ही मिल चुका था।

"जो तेरे मन चित्त लग्गी जा" पुस्तक प्रकाशित हुई। वगैर किसी विमोचन समारोह के तथा अन्य किसी भी तामझाम के।

लेखक के जम्मू वापिस आने पर परम्परानुसार लेखक समाज को प्रतियाँ वितरित कर दी गई।

फिर जाने क्या हुआ, कैसे यह पुस्तक साहित्य एकेडमी तक पहुंची, पुरस्कृत हुई। जिसकी संभावना तथा अपेक्षा कदापि नहीं थी। क्योंकि वहाँ भी कुछ विशेष व्यक्तियों का दबदवा बराबर बरकरार रहता आ रहा था।

पुरस्कार प्राप्ति के पश्चात् जो वाह-वाही, जो प्रशंसा पाठकों द्वारा इस कृति को मिली वह हमें स्वयं अचंभित कर गई।

उन दिनों हिन्दी दैनिक काश्मीर टाइमज़ पत्रिका के संपादक थे श्री कुंवर वियोगी जी। उनके द्वारा लिखित एक लेख प्रकाशित हुआ, जिसका शीर्षक था "यश शर्मा दुवधा में"।

व्यंग्यात्मक शैली के सिद्धहस्त लेखक कुंवर वियोगी ने अपनी प्रसन्नता की अभिव्यक्ति अपने ही अन्दाज़ में की थी। कवि की युवावस्था का एक चित्र काश्मीर टाइमज़ के दफतर में मौजूद था। उसी का उपयोग करते हुए उन्होंने स्वयं ही बेपर की उड़ा दी कि, यश शर्मा ने इस ढलती उम्र में अपनी जवानी की तसवीर इस कश्मीर टाइमज़ पत्रिका में छपने के लिये भेज कर हम सब की आँखों में धूल झोंक कर "साठे पर पाठा" बनने की कोशिश की है। इस के साथ ही "निक्का मूंह बडडी गल्ल" (छोटा मुंह बड़ी बात) के कार्टून में "सट्ठे पे पट्ठा" (साढे पे पाठा) लिख कर सचमुच ही इस बुढ़ापे में भी जवानी के रंगों की फुहारे बरसा दी थीं।

जब कि यह मीठी शरारत उनके अपने ही दिमाग़ की उपज थी।

लीजिये उन्हींके शब्दों को आप भी पढ़ लीजिये।

प्राकृतिक तथा लोकरसी गीतकार

दैनिक कश्मीर टाइमज़ रविवार 7 फरवरी 1993

डोगरी के लिये वर्ष 1992 का प्रतिष्टित साहित्यिक पुरस्कार आधुनिक डोगरी साहित्य के प्रसिद्ध गीतकार श्री यश शर्मा को "वासु प्रकाशन गाँधी नगर" द्वारा प्रकाशित उनके गीत और काव्य संग्रह "जो तेरे मन चित्त लग्गी जा" पर देने के लिये चुना गया है।

पुस्तक पर टिप्पणी करते हुए डोगरी के लिये साहित्य अकादमी के संयोजक कर्नल शिव नाथ "भारतीय साहित्य" पत्रिका में लिखते हैं कि पिछले 40 बरसों से गीत लिख और सुना रहे 'यश शर्मा' अपनी अनुकरणीय उपलव्धि और मधुर संगीत आवाज़ के कारण कवि गोष्ठिओं में एक विशिष्ठ स्थान रखते हैं और अभी तक उनके गीत जो साहित्यिक पत्र पत्रिकाओं में ही प्रकाशित हुए हैं पहली बार एक पुस्तक के रूप में पाठकों के सामने आए हैं। उनमें से कुछ गीतों को चाहे कवि ने स्वयं गाया य उनकी पुत्री सीमा अनिल सहगल ने गाया हो, श्रोताओं को अतीत में प्रेरित किया है और अभी तक कर रहे हैं।"

यह कोई मामूली बात नही है कि, अपनी संक्षिप्त टिप्पणी में कर्नल शिव नाथ ने केवल यश शर्मा के गीतों की ही चर्चा की। 1992 के मध्य में डोगरी टाइम्स के लिये "जो तेरे मन चित्त लग्गी जा" की समीक्षा करते हुऐ डॉ. वी के पुरी ने भी गीतों के वारे में व्याख्या करते हुए यश शर्मा के गीतों में शब्दों के चुनाव, उनकी शैली में स्वच्छन्दता, लय में कोमलता, मृदुता, सीधे दिल के भीतर समा जाने वाले भावभय बहाव और उनके गीतों के लोक रस पर प्रकाश डाला।

यश शर्मा की काव्य रचनाओ का सार आत्मसात करने के योग्य यह दोनों समालोचक डोगरी साहित्य दृश्य के प्रखर प्रेक्षक हैं। यह बात नही कि, उनके गीतों के इलावा उनकी दूसरी साहित्यिक रचनाएं अर्थहीन हैं। परन्तु अपने गीतों में कवि अपनी चरम सीमा पर है।

कुंवर वियोगी जी के कथनानुसार उनके काव्य में उनके गीत मुकुट में जड़ित हीरों के समान है जो अपनी अलग पहिचान रखते हैं। जब भी कोई इनके गीतों को सुनता है य केवल पढ़ता है तो वह गीतों के मदमस्त

कर देने वाले कोमल अहसास और इनमे छिपे दर्द में खो सा जाता है ।' इससे अधिक और कोई क्या कह सकता है । इन गीतों का विशिष्ट गुण, इनमें लोक रस का होना है । शब्दों के दोहराव और तुकवन्दी रहित, विना किसी रूकावट के बहने वाले यश शर्मा के गीत उस पहाड़ी नदी के समान हैं जिस से प्रेरणा लेकर गुमनाम कवियों ने हमें डोगरी लोक गीतों का समृद्ध खजाना दिया । इस लिये यह कहना कोई अतिश्योक्ति नही होगी कि यश शर्मा के गीतों नें डोगरी लोक विरासत में बृद्धि की है या हमारे उन भावपूर्ण पूर्वजों के बीच एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है, जो सरल स्पष्ट, निःस्वार्थ रूप से प्यार करने और गाने के लिये इस लोक में आए । उनकी ओर गतिविधियों के इलावा मैं आधुनिक डोगरी साहित्य के लिये की गई उनकी निःस्वार्थ सेवाओं को फिर से याद करने का लोभ संवरण नही कर पा रहा हूँ जो उन्होंने अपनी सामर्थ्य अनुसार रेडियो के वरिष्ठ उद्घोषक, वेहतरीन कार्यक्रम संचालक फिल्मों के गीतकार और संगीत के प्रेमी के रूप में की है । जो हमेशा अपनी काव्य रचनाओं को, चाहे आप उन्हें गली के मोड़ पर मिलें य चौराहे में य किसी दफतर मे ही सुनाने के लिये तैयार मिलेंगे । लोगों के लिये इससे बढ़कर और कोई उपहार नही हो सकता । गाने, नकल लगाने और मंत्र मुग्ध श्रोताओं को अपने चुटकुलों से हंसा-हंसा कर लोट पोट कर देने के इलावा यश शर्मा दूसरे गीतकारों के लिये धुनें भी इजाद कर देते हैं । उनकी सभी काव्य रचनाओं को पढ़ कर यह कहना कोई अतिश्योक्ति नही हो सकती कि, उनका विशिष्ट गुण गीत लिखना है और उनके गीतों के कारण ही डोगरी के प्रशंसकों ने उन्हें अपने दिल में एक विशिष्ट स्थान दिया और साहित्य एकेडमी ने उन्हें 1992 के कवि के रूप में चुना । जिसके लिये 17 फरवरी 1993 को उन्हें पुरस्कृत किया जायेगा ।

मूल कुंवर वियोगी

अनुवादक : अभिमन्यु शर्मा ।

(दैनिक जागरण के मुख्य संपादक)

जम्मू और आस-पास की साहित्यिक संस्थाओं ने भी, कवि सम्मेलनों का आयोजन कर यथा योग्य सम्मानित किया था जैसे कठुआ, खौड़, अखनूर, उधमपुर, रामनगर आदि में भी पर्याप्त संख्या में श्रोतागण एकत्रित हुऐ थे ।

जम्मू की डोगरी संस्था ने भी 21 फरवरी 1993 को इस गीतकार

के सम्मानार्थ एक सभा का आयोजन किया था। परन्तु यश शर्मा दिल्ली में होने के कारण उसमें सम्मिलित न हो पाये। वहाँ वह पुरस्कार वितरण समारोह में भाग लेने गये थे।

श्री डी सी प्रशान्त इस आयोजन मे मुख्य अतिथि थे। साहित्य मंत्री श्री ललित मंगोत्रा जी का सुझाव था कि अव यह आयोजन संपन्न होना ही चाहिये। साहित्यकारों को फिर मिलने का अवसर दिया जायेगा। कालिज के दिनों से सहपाठी रहे नीलाम्बर देव जी जो डोगरी संस्था के प्रेजिडेण्ट थे उन दिनों, उन्होंने कवि द्वारा अपनी ही रचनाओं के प्रस्तुतिकरण पर रोशनी डाली थी। हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि श्री हरिवंश राय बच्चन का प्रभाव कैसे यश शर्मा के लेखन पर रहा इसका ज़िक्र भी उन्होंने किया। कश्मीर टाइमज़ पत्रिका के मुख्य संपादक श्री वेद भसीन ने इस चर्चा में भाग लेते हुए "कहा कि मैं और यश लम्वे अरसे तक साथ-साथ रहे हैं। यह एक ऐसा चरित्र था जो हर कला की तरफ लपकता था पर अपनी संवेदन शीलता से कभी परे नहीं हटे। अव तो लेखक और उसकी कृतियाँ एकाकार हो चुकी हैं। पर यह पुरस्कार उन्हें बहुत पहिले मिलना चाहिये था। इस समय मिलना कोई बहुत बड़ी उपलब्धि नहीं है। श्री डी सी. प्रशान्त जी ने अपने भाषण में यश शर्मा को "लोक मंचीय कवि बताया जो अपने सशक्त स्वरों से जनता के हृदयों तक पहुँच पाने में सक्षम है"। श्री रामनाथ शास्त्री किसी कारण वश इस आयोजन में सम्मिलित नहीं हो पाये थे।

स्थान, काल, पात्र इन तीनों को लेकर यह धरती है, और इसी ध ारती पर घटनाऐं भी घटित होती रहती हैं। वर्षों वाद जिस घटना का ज़िक्र आज किया जा रहा है उसे एक सुखद स्मृति कहा जाये य कवि का अपना आत्म संतोष।

17 सितम्बर 1994 राष्ट्रीय साहित्यिक सेमिनार सुरभि संस्था द्वारा मानसोत्सव का चार दिवसीय सम्मेलन केरल में आयोजित हुआ। कोचीन से 20 किलोमीटर दूर पेयरर नदी (पूर्णा नदी) पर स्थित अल्वी नगर नाम के स्थान पर यह आयोजन था। इस सेमिनार समारोह का उद्घाटन तत्कालीन मानव संसाधन विकास मंत्री श्री अर्जुन सिंह द्वारा किया गया था। आकर्षण का मुख्य केन्द्र थी 22 पंखो वाला राष्ट्रीय पक्षी मोर की कला कृति, जो केरल के प्रसिद्ध कलाकार श्री C.M. करूणाकर द्वारा निर्मित की गई थी।

इस राष्ट्रीय चिन्ह का उदघाटन 24 अगस्त 1994 को दिल्ली में किया गया था। 22 भारतीय भाषाओं के 175 लेखकों, बुद्धि जीवियों, मनोषिओं को इस सम्मेलन में आमंत्रित किया गया था।

सुरभि नाम की इस संस्था के चेयर मैन थे श्री एन. वेणुगोपाल। इस संस्था का उद्धेश्य था 22 भाषाओं के प्रसिद्ध रचनाकारों को एक मंच प्रदान करना तथा साहित्य ओर संस्कृति की अखंडता और संरक्षण एवम् साहित्य के प्राचीन मनीषियों से युवा पीढ़ी को अवगत करवाना। भारत भर के 162 विश्वविद्यालयों के प्रतिनिधियों को आमंत्रित किया गया था। इस सैमिनार का यही विषय था।

पैटरनस थे डाक्टर यू. आर. अनन्त मूर्ति, एम लीलावयि, डॉ. अचप्पा पनिकर, डॉ. के. एम. थराकन, डॉ. सी. पी. श्रीधरण। स्वागत कमेटी के चेरमैन थे बालाचन्द्रन। विश्व विख्यात सिंहली विद्वान मैगास्से पुरस्कार विजेता नाटककार श्री एडरीवीरा विशिष्ट अतिथि थे। ज्ञान पीठ पुरस्कार विजेता कन्नड़ भाषा के वरिष्ट साहित्यकार श्री के श्रीबास्तव। मलयालम भाषा के श्री थाकाझी शिवशंकर पिल्लै। हिन्दी के श्री नरेश मेहता, असमिया के वीरेन्द्र कुमार भट्टाचार्य, तेलगु के श्री सी नारायण रेडडी। मैगास्से पुरस्कार विजेता कन्नड़ के नाटक कार सुवाना तथा श्रो मति वाला मणियम्मा मलयालम कवियत्री। जम्मू से आमंत्रित थे, सर्व श्री नीलाम्बर देव शर्मा, शिवरामदीप, ओम गोस्वामी, पदमा सचदेव, यश शर्मा, मोहन सिंह, जितेन्द्र उधम पुरी।

इस सैमिनार का उद्धेश्य ही था एक दूसरे की कला संस्कृति से पहिचान होना, पेपर पढ़े गये। विचारों का आदान-प्रदान किया गया।

अंतिम सत्र में काव्य पाठ के लिये यश शर्मा को मंच पर आमंत्रित किया गया। उस समय तक डोगरी भाषा को संविधान की भारतीय भाषाओं में मान्यता नहीं मिल पाई थी।

अंग्रेज़ी की विदुषि लेखिका कमला दास मंच संचालन कर रही थीं। यश शर्मा नाम को यीश शर्मा कहने पर हल्की सी नोक-झोंक होनी स्वाभाविक थी। इसी बात से कुछ हल्की सी उत्तेजना में कमला दास ने डोगरी कवि और डोगरी भाषा को चैलेंज किया कि, Prove your worth on the stage".

कवि ने अपनी "बद्दली" शीर्षक कविता की व्याख्या करते हुए कहा कि, अंग्रेजी मे हिन्दी "बादल शब्द का पर्याय तो cloud है पर डोगरी शब्द वद्धली का कोई पर्याय है हीं नहीं अंग्रेज़ी में।

तदुपरान्त अपनी इस कविता का भावार्थ समझा कर मंच पर सस्वर पाठ शुरू किया तो सभी श्रोता मंत्र-मुग्ध रह गये।

गीत पढ़ने के पश्चात् गीतकार को श्रोताओं ने सिर आँखों पर विठा लिया था। बनारस युनिवर्सिटी से आये हिन्दी के प्रख्यात बिद्वान श्री शिवमंगल सिंह सुमन ने गले से लगा लिया तथा कहा कि, अपनी प्रान्तीय भाषा में आपने जो "रामा" की टेक जोड़ी है वह अपने आप में अद्भुत है। इस गीत का भाव धन्य हो गया है, इस रामा शब्द के साथ। श्री अनंतमूर्त्ति आदि महानुभाव भी गद-गद थे। नेपाल से आये प्रवुद्ध साहित्यकारों का मानना था कि इस रचना के शब्द स्वयं ही अपने भाव को मानस नेत्रों के सम्मुख चित्रित करते जा रहे हैं। युनिवर्स्टियों के विद्यार्थिओं में तो होड़ ही लग गई थी कवि के हस्ताक्षर लेने में।

इस केरल यात्रा की पूरी पूरी जानकारी मुझे मिली थी, स्वर्गीय शिवराम दीप जी से। यह सुयोग भी एका-एक ही मिल गया था।

उन दिनो जालंधर दूर दर्शन पर डुग्गर दर्पण के नाम से एक कार्यक्रम चला करता था। इस में श्री शिवराम दीप, रतन दोषी तथा यश शर्मा भाग लेने जालंधर गये थे। वापिसी पर बस द्वारा रात के डेढ़ बजे के करीव जम्मू पहुँचे। राष्ट्रीय राज मार्ग से लास्ट मोड़ गाँधी नगर मे हमारा घर केवल दो तीन मिनट की दूरी पर स्थित है। अतः तीनो घर ही चले आये थे क्योंकि बस स्टैण्ड पर जाने से बहुत असुविधा थी।

श्री रतन दोषी किसी कार्यवश बहुत ही सुबह-सवेरे चले गये थे परन्तु शिवराम दीप से दोपहर तक रूकने का अनुरोध किया गया था।

कलाकार घर आये हों तो ज़ाहिर है कि चाय नाश्ते के पश्चात कुछ रचनायें सुनने-सुनाने का सुअवसर हाथ से कैसे जाने दिया जा सकता था। अपनी कुछ ताज़ा गज़लें सुनाने के वाद बातों बातों में डोगरी भाषा को संविधान में स्थान न मिल पाने का ज़िक्र करते करते बात केरल यात्रा तक जा पहुँची। केरल प्रदेश की हरीतिमा, श्यामवर्ण केरल निवासियों की मोहक छवियां एवम् आदि शंकराचार्य जी के जन्म स्थान का अपूर्व शान्तिदायी दर्शन तथा साथ ही मंच पर कमला दास द्वारा दिया गया चैलेंज, यह सब तो

कुछ कुछ में इन से सुन ही चुकी थी। परन्तु पूरा व्योरा उस दिन शिवराम दीप से ही जानने को मिला था। इनसे तो कुरेद-कुरेद कर भी कुछ ही जानकारी मिलना मुशकिल थी।

परन्तु उस सरलमना कवि ने अपनी सहज सरलता से ही केरल में अपनी डोगरी भाषा को तथा कवि को मिलने बाले सम्मान का तथा सुरीले कंठ का ज़िक्र उन्मुक्तता तथा आनंदित हो कर ही किया था।

आज यहाँ इर्ष्या द्वेष की चंचल लहरों से मन की धरती के किनारे कटते फटते ही नज़र आते हैं वहाँ शिवराम दीप जैसे कलाकार की वाणी के स्पर्श से सत्य कितना अर्पूव सुन्दर हो उठा था उस समय। जब उन्होंने वताया कि "सुरभि संस्था के इस मानसोत्सव महोत्सव में हमारी डोगरी भाषा के इस गीत की बहुत सराहना की गई थी तथा पहली वार वहाँ सब ने डोगरी भाषा को बंगला भाषा जैसी गरिमा युक्त भाषा के समकक्ष बतलाया था" साथ ही साथ हंसते हुऐ शिवराम दीप ने जोड़ा था कि, यश जी के मीठे स्वर ने सोने पर सुहागे का काम किया था।

प्रस्तुत है भावार्थ सहित मूल डोगरी गीत "बद्धली" जो तेरे मन चित्त लग्गी जा।

कोई बद्धली गाऐं छाई, रामा नेईं बरदी।
कुण जाने केह् दरद बछोड़े, कोदी ऐ भरमाई,
रामा नेई बरदी....
नां-कूंदी नां, दरद सुनान्दी, नां गै नजरां चुकदी
दूरें गेदी सोचे पेदी, किज चलदी फ्ही रूकदी
सिकल- दपैह्री गी कुन जोगी, संझां गेआ बनाई।
रामा नेई बरदी....
बन परबत, केई मान सरोवर, आले देई-देई हारे
एदी इक्क नजरी गी तरसन, रूपै दे बनजारे
एह् उस्से बनजारे दी जो कीह्ली गेआ टकाई।
रामा नेई बरदी....
बर मोइये 'बर - किज तां हौला, भार मने दा होई जा,
किज तां चैन थ्होऐ खुस्से दा, किज तां दरद बंडोई जा

अपनें हत्थें आपूं गै तूं कैह्ली चिता बनाई ।

रामा नेई बरदी....

भावार्थ :- कोई बदली (मन के) आकाश पर छाई है, हे रामां । बरस नहीं पाती है । कौन जानता है किसने विरहजनित पीड़ा से इसे इस तरह भ्रम में डाल दिया है ।

यह नत नयना, मूक रह कर अपनी व्यथा किसी को सुनाती भी तो नहीं है । किसी दूर की सोच में डूबी कभी चलने का उपक्रम करते करते, फिर रूक जाती है । जाने, यौवन की इस भरी दुपहरी में (चंचलता) कौन है वह जोगी (प्रिय) जिसने इसे संध्या (उदासीन) वना दिया है ।

दुपहरी से संध्या काल की इस यात्रा में राह मे मिलने वाले बन पर्वत मानसरोवर (संसारिक प्रलोभन) इसे पुकार-पुकार कर थक गये । वह सभी रूप यौवन के पारखी, इस की एक दृष्टि पाने भर को तरसते ही रह गये, पर रामा ! यह तो केवल उसी एक की स्मृति में ही लीन है, जो इसे जैसे एक ही स्थान पर स्थिर कर गया है ।

कवि कहता है बरसो पगली ! बरसो ! बरसने (अश्रुओं) से मन का भार हल्का हो जाता है । बरसने से हृदय का खोया चैन कुछ तो लौट आता है और व्यथा हल्की हो जाती है । मौन रह कर क्यों अपनी चिता को रचा बैठी है वियोगग्नि रे राम.... यह बरसती नहीं है ।

इस गीत के भाव में अल्हड़ यौवना के विरह का रूप चित्र तो है ही, पर सौन्दर्याधार वह वाह्य प्रकृति है जिससे मानव मन का आत्मीय संबंध एकाकार हो चुका है ।

मूर्तिमन्त बदली क़ा मानवी कृत रूप, उसका कोमल ललित चेष्टाओं द्वारा वड़ी सुहृदयता से गीतकार ने अंकित किया है । कवि की रचनाओं में रूपकों का समृद्ध भंडार है । इसी सब को आत्मसात् करने के अनंतर वाराणसी विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के निदेशक श्री शंभुनाथ सिंह जी का कथन था कि, आपकी प्रान्तीय डोगरी भाषा में रविन्द्रनाथ टैगोर जैसी शैली में भी गीत रचे जा सकते हैं यह तो हमारी सोच से परे की बात है ।

यह पुरस्कार यथेष्ट था लेखक के लिये । "आपकी भाषा इतनी भावपूर्ण सरल सहज होने से हिन्दी के इतने निकट है यह हमें मालुम ही नहीं था" । उनके द्वारा कहे गये यह शब्द अन्तर की सच्चाई से आर्शीवाद के रूप

में तृप्ति बोध दे गये थे कवि को। यद्यपि वर्षो वाद यह साहित्य एकेडमी पुरस्कार यश शर्मा को दिया गया था। जिसके लिये वेद भसीन जी के कथनानुसार "इतने वर्षो वाद इस कवि को इस पुरस्कार का मिलना कोई बड़ी उपलव्धि नहीं है।"

उनके इस कथन में जो तथ्य निहित था, जो संकेत था उसे वहाँ उपस्थित डोगरी के प्रमुख अदबनवाज़ों, अदवशनासों, डोगरी भाषा के रहनुमाओं के पास कड़वे घूंट की तरह निगलनें के सिवाये कोई चारा नही रह गया था।

दिल्ली मे पुरस्कार वितरण समारोह के उपलक्ष्य में समस्त भारतीय भाषाओं के लेखकों के चित्रों सहित परिचय का पैमफलैट भी प्रकाशित किया गया था।

जूरी के सदस्यों के यश शर्मा के लिये जो विचार थे वह प्रस्तुत हैं पाठकों के समक्ष। "एक गीतकार, फिल्म आलेखक, नाटककार तथा अभिनेता के अलावा अपनी जातीय परंपराओं में गहरी जड़े जमाने वाले कवि के रूप में श्री यश शर्मा जम्मू काश्मीर में व्यापक रूप से सम्मानित हैं"।

इसी संदर्भ में 21-27 फरवरी पैम्पलेट 1993 में साप्ताहिक संडे मेल में "चर्चित चेहरे" शीर्षक से पृष्ठ संख्या 16 में एक लेख प्रकाशित था। उस समय संडे मेल के प्रधान संपादक थे श्री कन्हैया लाल नंदन, व्यूरो प्रमुख थे श्री योगेन्द्र बाली। नंदन जी ने लिखा था कि "कौन कहता है कवि युग गया भारत से"।

"उपलव्धि"

"कवि के जीवन की महती आकांक्षा, तथा सर्वोत्तम उपलव्धि" विश्व कवि रविन्द्रनाथ टैगोर की साधनास्थली शाँतिनिकेतन के गीतांजली सभागार में गूंज उठे थे यश शर्मा के डोगरी गीत "मैं मुक्ति नेईं चाहन्दा" मैं मुक्ति नही चाहता के स्वर। सर्वभाषा कवि सम्मेलन 2006। 18 जनवरी, 2006 बुधवार।।

ey xhr Mkxjh %& "मुक्ति नेईं चाहन्दा"

1. इस धरती एस मनुक्खे गी,
मैं प्यार करां छाती नै लां।
मैं इन्दीं वेदन बुज्झी लां,
मैं इन्दा दरद पछानी लां।।

2. सुरगे दी साध नेई सांई,
मैं चन्न सतारे केह् करने।
जो फुल्ल कदें कमलान्दे नेई,
मैं नेई अपनी झोली भरने।।

3. धरती पर जो पल भर खिड़दे,
खिड़दे हसदे कमलान्दे न।
इक लीकर छोड़ी जन्दे न,
इक डन्ग कलेजे लान्दे न।।

4. मैं इन्दी परीता दा भुक्खा,
मीह् इन्दा दरद रोआन्दा ऐ।
मैं इन्दे रंग रंगोये दा, रंगोये
मीह् इन्दा रूप सुहान्दा ऐ।।

5. अपनी धरती गी छोड़ी ऐ,
ममता दे वंधन तोड़ी ऐ।
कंडे शा नजरां मोड़ी ए,
फुल्ले नें रिशता जोड़ी ए।।

6. मैं होर निं कुदरै जाई सकदा,
नमियां साँझां नेई पाई सकदा।
कोई होर गीत नेईं गाई सक़दा।
कोई बखली भाख नेई लाई सकदा।

7. एह् हिरख दिनो दिन बद्दा जा,
बद्दा जा ममता दा घेरा ।
तन थकदा ऐ तां थकदा जा,
इक नेईं थक्कै तां मन मेरा ।

8. धरती पर मेकी रौह्ने दा,
वरदान थ्होआं दा तेरे शा ।
मैं दाता मुक्ति नेंईं मंगदा,
इस जन्म मरण दे घेरे शा ।
इस आवगमण दे फेरे शा ।
मैं दाता मुक्ति नेईं मंगदा,
मैं मालिक मुक्ति नेईं मंगदा ।।

इस डोगरी गीत के हिन्दी रूपान्तर कार थे, हिन्दी के प्रतिष्ठित विद्वान श्री भूपेन्द्र परिहार।

हिन्दी रूपान्तर :- "मैं मुक्ति नही चाहता"

मैं इन सबको
अपने दिल से लगा लेना चाहता हूँ
यह धरती, यह मनुष्य ।
मैं इन सब की वेदना की
थाह लगाना चाहता हूँ
मैं इनके दर्द को पहिचान लेना चाहता हूँ
मेरे साँई!
कामना नही मुझे किसी स्वर्ग लोक की
क्या करने हैं मैंने चाँद-सितारे
नही भरनी अपनी झोली
ऐसे फूलों से जो कभी मुरझाते ही नहीं ।
फूल जो क्षण मंगुर हैं
सदैव हंसते रहते हैं
और मुरझा जाते हैं ।
छोड़ जाते हैं नई लकीरे ।
जो करते हैं कलेजे को छलनी

मुझे भूख है केवल इनके प्रेम की
मुझे रूलाता है दर्द इन्हीं का
मैं इन्हीं के रंग में रंगा
इन्हीं के रूप का दीवाना हूँ।
नहीं तोड़ सकता मैं ममता के बंधन
धरती का मोह
नहीं जोड़ सकता मैं फूलों से रिश्ता
लगा ली है निगाहें अपनी मैंने काँटों से
नहीं जा सकता मैं अब कहीं और
नहीं बना सकता मैं नये नये रिश्ते
नहीं गा सकता मैं कोई और नया गीत
नहीं ढूंढ सकता
मैं कोई और अलग भाषा।
पनपती रहती है
यह कामना
पल प्रतिफ़ल
दिन प्रतिदिन
फैलता रहता है
निरन्तर
ममता का घेरा।
थक जाये यह तन
बुझे न कभी मन।
नहीं माँगता मुक्ति
मेरे दाता
मुझे धरती पर रहने का बरदान मिला है तुझी से
नहीं माँगता मैं मुक्ति आवागमन से
जन्म-मरण से मुक्ति
नहीं चाहता मैं मुक्ति
नहीं चाहता मुक्ति मेरे दाता, मेरे दाता।

आकाशवाणी की स्थापना के 50 वर्ष पूरे होने पर यह समारोह आकाशवाणी शान्ति निकेतन के स्वर्ण जयन्ती के उपलक्ष्य में आयोजित किया गया था।

आकाशवाणी दिल्ली केन्द्र के महानिदेशक श्री पारिख जी ने मंच पर से सभी आमंत्रित अतिथिओं का हार्दिक स्वागत करते हुए कहा :- "इस बहुभाषी देश मे सभी भाषाओं से समन्वित भारतीय साहित्य की अवधारणा को उभारता यह सर्व भाषा कवि सम्मेलन, आज के दिन एक इतिहास रच गया है।"

आकाशवाणी दिल्ली केन्द्र की उच्च पदाधिकारी श्री मति खुजुर ने संक्षिप्त सार गर्भित शब्दों में कहा कि, "प्रत्येक वर्ष गणतंत्र दिवस के उपलक्ष्य में यह सर्वभाषा कवि सम्मेलन का आयोजन दिल्ली केन्द्र से ही किया जाता रहा है, परन्तु इस बार सर्व सम्मति से यह निर्णय लिया गया कि 2006 का यह सर्व भाषा कवि सम्मेलन विश्वकवि रविन्द्रनाथ टैगोर की कर्म स्थली शान्ति निकेतन केन्द्र की स्वर्ण जयन्ती समारोह द्वारा ही संपन्न किया जाना चाहिये। इस पर सारा गीतांजली सभागार करतल ध्वनि एवम् हर्षोल्लास से मुखरित हो उठा।"

राविन्द्रनाथ टैगोर जितने वांग्ला है उतने ही भारतीय हैं, उतने ही सार्वदेशीय हैं। उनके प्रत्येक रूप में एक शाश्वत् जीवन धारा निरन्तर प्रवाहित होती है। जो जोड़ती है पूरी मानवता को, पूरे देश को, पूरे विश्व को। उनकी यही एक सूत्रता की कामना साकार थी 18 जनवरी की सांध्य वेला में उस विशाल कलात्मक गीतांजली सभागार के सुसज्जित मंच पर।

22 राज्यों से आए विभिन्न भाषाओं के प्रमुख कवि तथा ठीक पार्श्व में वैठे इन कवियों की कविताओं के 22 हिन्दी रूपान्तरकार। यहाँ निज भाषा की (भावनात्मक) गरिमा संपन्न कवि थे तो वहाँ महिमा मंडित राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रबुद्ध रूपान्तरकार जो कविता के मूलस्वर अर्थ को झंकृत करने में पूर्णतया सक्षम थे। जिससे प्रत्येक भाषा का तात्विक चिंतन और साहित्यिक अर्थ वोध सहज हो रहा था श्रोताओं को।

एक और बात, भारत भर से एकत्रित सभी कविजनों के अपने कथनानुसार रविन्द्रनाथ टैगोर की कर्म भूमि पर एक वार काव्य पाठ की चिर संचित अभिलाषा थी। डोगरी कवि यश शर्मा की भी जीवन भर की साध थी, एक वार डोगरी की शब्दांजलि टैगोर की पुण्य धरा को समर्पित करने की।

अपनी वाल्यावस्था से ही टैगोर के गीतों का हिन्दी रूपांन्तर तन्मय हो कर गाने वाला कवि जब पुत्री के पिता बने तो उसे थपथपाते हुअे सहज

ही वही गीत गुनगुनाया करते।

देश की माटी, देश का जल धन्य हों, धन्य हें। हे भगवान।
देश के फूल, देश के फल पुण्य हों, पुण्य हें। हे भगवान।

भाव स्पष्ट ही है "देश की मिट्टी देश का जल और इस धरा के फूल और फल सभी धन्य हैं, कोटिशाः पुण्यों का फल हैं। रवि ठाकुर का आमार बाँग्ला का सौन्दर्य आत्मसात करने के पश्चात डुग्गर की धरती में इस धन्य, पुण्य की महक भला डुग्गर के इस गीतकार के अपने गीतों में कैसे न रच वस जाती।

"मेरा देश"

मेरा देश बड़ा छैल, मेरे लोक बड़े छैल
दिल शीशे सांई साफ, आखो बिन्दक निं मैल।
कुतैं रौसलियाँ धारां, कुतैं पद्धरीयां थारां-
कुतैं ठंडियाँ फुहारां, कुतैं धुप्पें दियां मारां-
कुतें कंडे आली वत्त, कुतैं फुल्लें आली गैल।
मेरा देश वड़ा छैल, मेरे लोक बड़े छैल।

अर्थात :- "मेरा देश बड़ा सुन्दर है, लोग भी बड़े प्यारे हैं। निर्मल स्वच्छ दर्पण की तरह चित्त है, मन में तनिक भी खोट नहीं है। कहीं तो हरी-भरी पहाड़ियाँ हैं कहीं समतल मैदान। कहीं ठंडी फुहारें (पर्वतों पर) हैं तो कहीं पथरीली भूमि (कंडी) है जहाँ ज्येष्ट आषाढ़ की कड़ी धूप की प्रखरता है। कहीं कंटीली राह है तो कही पेड़ों से झरते फूलों भरा रास्ता है।" यहाँ के सभी सौन्दर्य चित्र कवि को प्रिय है और रविन्द्र संगीत की तरह ही ललित गेयता से परिपूर्ण हैं।

वैसे तो सभागार में डोगरी और कश्मीरी को छोड़ कर सभी भाषाओं के श्रोता मौजूद थे। क्रमानुसार हिन्दी उदघोषिका देवयानी एवम् वंगला उद्धोषक सुशान्तो ने काव्य पाठ के लिये कवि को मंच पर आमंत्रित किया। संभवत् बहाँ कुछ श्रोता गण जम्मू-कश्मीर के नाम पर कश्मीरी भाषा का नाम तो जानते थे और कश्मीरी भाषा में सोमवीर जी द्वारा भारत बंदना कविता का रसास्वादन कर चुके थे पर डोगरी नाम से उनका ध्यान अधिक आकर्षित हुआ जब कि, सरल शब्द, सरस लय, कोमल भाव युक्त और फिर

कवि का मीठा स्वर। हिन्दी भाषा के अधिक निकट होने से अनुवाद के विना भी काफी कुछ श्रोता समझ रहे थे। फिर शीर्षक भी थोड़ा लीक से हटकर था "मैं मुक्ति नहीं चाहता" इस कवि सम्मेलन के अनंतर सभी लेखक औपचारिकतायें पूरी करने में व्यस्त थे।

जब कुछ बुद्धिजीवी वर्ग के श्रोताओं को लता मंगेशकर द्वारा गाये किशन स्मैल पुरी के गीत "भला सिपाइया डोगरेया" के प्रति उत्सुक देखा तो मन में गर्व की अनुभूति हुई। उनमें से अधिकांश प्रशंसक "भला" का उच्चारण "पला" से कर रहे थे "धारा" का अर्थ "जलधारा" तथा "बनक्शा दे फुल्ल" से उलझ गये थे कि यह कौन से फूल का नाम है आपकी भाषा में।

उन लोगों की जिज्ञासा को समझाते हुअे बताया कि "पला" नही "भला" जैसे बंगला में भालो होता है। बहादुर सिपाही के लिये आदर सूचक संवोधन है यह शब्द तथा "धारां" हरियाली युक्त छोटी पहाड़ियाँ तथा जीवनोपयोगी जड़ी बूटियों के साथ सुगंधित बनफशा के फूलों का विशेष महत्त्व है।

19 जनवरी को सभी लोग शान्ति निकेतन के छातिम तला नाम के चवूतरे पर उस छातिम के पेड़ को नमन कर रहे थे जहाँ रबिन्द्र नाथ के पिता महषि देवेन्द्रनाथ ने कभी शान्ति स्थली की कामना की थी। पहली मार्च 1863 में सात एकड़ यह ज़मीन रायपुर के ज़मीदार प्रताप नारायण सिन्हा से खरीदी थी। वहाँ के स्थानीय लोगों का कहना था कि ज़मीदार साहिव के मूल्य लेने से विलकुल इनकार करने पर केवल एक रूपया और नारियल उन्हे लेना पड़ा था। क्योंकि कोर्ट कचहरी में खरीदी और बेची चीज़ों पर पक्की मुहर तभी लग सकती है जक कि दोनो आसामियों के हस्ताक्षर मौजूद हों। उस समय रविन्द्र नाथ की आयु महज़ दो वर्ष की थी। इसी पेड़ के नीचे एक सम्मेलन जैसा माहौल बन गया था। कलकत्ता से आये श्री स्वदेश भारती जो साहित्यक पत्रिका रूपाम्बरा के सम्पादक हैं तथा उड़िया भाषा के प्रसिद्ध कवि श्री गोपाल कृष्ण रथ एवम् बंगला कवि वेणुदत्त राय का कहना था कि आपकी भाषा की इतनी समृद्ध संपन्न लोक परम्परा है। फिर भी संविधान में मान्यता इतने विलम्ब से क्यों मिली ? इसका उत्तर कहाँ था ?

यह एक सत्य है कि प्रत्येक आंचलिक भाषा का अपना सौन्दर्य है।

मातृभाषाओं मे एक अजीव वात होती है ज़मीन की खुशवू। वहाँ यह भी एक सच है कि हिन्दी सभी भारतीय भाषाओं का संपर्क सूत्र है। विश्व कवि की रचना का हिन्दी रूपान्तर तन्मय होकर छातिम तला में गाया था कवि यश ने :-

जिसे मैं चाहूं उसे कहाँ पाऊं
जन्म जन्म खोज लगाऊं
सुनो सर्व धाम, घाट पथ गाम -
कभी कभी बन्द करूं जो आँखें
चुप-चुप कान्हा आये झांके
मन वृन्दावन रास रचायें
छिप जायें, जो दीप जलाऊं।

वर्षों से मन प्राणों कंठ में बसी गुरूदेव की इस रचना के श्रद्धा सुमन उन्ही की साधना स्थली में अर्पित करके धन्य हो उठे थे यश शर्मा स्वयं भी। लग रहा था जैसे शान्ति निकेतन के पेड़-पौधों की कलियों और फूलों एवम हलकी कोमल वायु के स्पर्श से झरती नीम हर सिंगार बकुल की पत्तियों द्वारा स्वयं रविन्द्र नाथ टैगोर की आत्मा से आशीष बरस रही थी। सभी गुणी-जनों के भावुक मानस नेत्रों के सम्मुख जैसे उनके गुरूदेव अपने समय के वसन्तोत्सव शारदोत्सव, वृक्षारोपन समारोह के नृत्य गीत, कालिदास कृत शकुन्तला नाटक में स्वंय कवि की अपनी अभिनय छटा का जादुई सम्मोहन छाया था। मणिपुर, नैपाल, राजस्थान से आये कुछ लेखक जिनका सम्मेलन के पश्चात कोलकाता दर्शन का कार्यक्रम था दूसरे दिन, कुछ लोग तो विदा हो गये थे। हम लोग विश्वभारती कला भवन, तथा उत्तरायण स्थित रविन्द्र भवन के दर्शनों के लिये पुनः वहाँ गये थे क्योंकि, पहले दिन अवकाश रहने के कारण सभी कुछ बन्द था परन्तु आकाशवाणी दिल्ली के स्टेशन डायरैक्टर श्री कपिल जी के सौजन्य से केवल दो ही घंटे के लिये विशेष दर्शनार्थ रूप से खोला गया था। रविन्द्र म्यूज़िम को तब तो वाहर से ही देख कर सन्तोष करना पड़ा था। राविन्द्र म्यूज़िम (विचित्रा) का उद्घाटन श्री जवाहर लाल नेहरू जी द्वारा 1961 को कवि के जन्म दिवस पर संपन्न हुआ था। वर्त्तमान समय में इस म्यूज़ियम में गुरूदेव के लेखन की पांडु लिपियां, पत्र, पेन्टिगज़ देश विदेशों से मिले उपहार परिवारिक चित्र सुरक्षित हैं। रविंन्द्र संगीत के मोहक सुर हल्के हल्के से म्यूज़िम में ध्वनित होते रहते हैं। टेगोर के स्वयं के

तथा अन्य महान चित्रकारों के चित्रों की अनुकृतियां सेटों में उपलव्ध रहती हैं। मेरे पति के लिये तो अपने मित्रों को उपहार स्वरूप इन कला चित्रों के सेटों से अधिक मूल्यवान तो जैसे कुछ और था ही नहीं।

शुभ्र धवल सूती कपड़े से ढंके सोफा सेट अतिथि गृह में ऐसा आभास दे रहे थे जैसे अभी अभी यहाँ से गुरूदेव सहित जे.एफ. एंड्रूय, रोम्या रोलां, जवाहर लाला नेहरू, महात्मा गाँधी आदि ने किसी गंभीर मंत्रणा के पश्चात विश्राम गृह के लिये प्रस्थान किया हो।

हाँ एक आघात ज़रूर लगा मनुष्यों की ओछी मानसिकता। पर जब 13 नवम्बर में नोवेल पुरस्कार में मिला गीतांजली पर वह गोल्ड मैडल जो चोरी चला गया था जिसके स्थान पर उसकी अनुकृति रखी गई है। यह सब वहाँ लिखा भी गया है। उत्तरायण काम्पलैक्स में उदयन, कोणार्क, श्यामली, पुनश्चः उदिची के दर्शनीय स्थलों को वारम्वार प्रणाम करने से जी भर नहीं रहा था। गाईड जानकारी दे रहा था कि, जब गाँधी जी कस्तूरवा तथा विनोवा भावे, शान्ति निकेतन आये थे तो इसी श्यामली में कुछ समय रहे थे। स्वयं जवाहर लाल तथा इंदिरा जी उदयन हाउस में निवास करते थे। टैगोर की 1926 माडल की कार भी वहाँ सुरिक्षत रखी गई थी।

गाईड द्वारा दर्शकों की भीड़ को अलाउदीन म्यूज़िक हाऊस की जानकारी भी दी जा रही थी। जो विश्वभारती के संगीत भवन में 9 फरवरी 1999 को स्थापित किया गया था। शान्ति निकेतन की विशालता और भव्यता की पूर्णतया जानकारी तो महीनों में भी असंभव है, फिर भी यह दो दिन भी असाधारण रूप से मूल्यवान थे जीवन के वहुत से बीते वर्षो की तुलना में।

युगों वाद रविन्द्र नाथ टैगोर जैसी प्रतिभायें जन्म लेती हैं विश्व में।

लगता है यह विश्व ही रहस्यों से भरा है। जभी तो कोई अदृश्य, अज्ञातशक्ति कहीं न कहीं कई सूत्रों को जोड़े रखने का कार्य चुपचाप करती रहती है। फिर चाहे उसे हम चमत्कार का ही नाम क्यों न दे दें य फिर भाग्य, सौभाग्य य अंग्रेजी में चान्स ही कह लें।

आकाशवाणी जम्मू से सूचना मिलने पर कि शान्तिनिकेतन में स्वतंत्रता दिवस पर सर्वभाषा कवि सम्मेलन के समारोह के लिये डोगरी कवि यश शर्मा को मनोनीत किया गया है तो एक ओर तो अपार संतुष्टि बोध

था तो दूसरी ओर चिन्तायें भी कम नहीं थीं।

कोलकाता महानगर, यहाँ प्रतिदिन जन सैलाव उमड़ा रहता है। उन्हीं दिनों गंगासागर संगभ का कुंभ पर्व मेला। लाखों लाख तीर्थ यात्रियों का जमघट।

कोलकाता में ठहरने के लिये किसी होटल वगैरा की व्यवस्था का क्या होगा ? इनके दुर्वल स्वास्थय को लेकर भी दुःश्चिताओं का छोर नहीं था।

क्या कोलकाता जाकर भी दक्षिणेश्वर में माँ काली की दर्शन महिमा से वंचित ही रहना होगा ? रामकृष्ण परम हंस की साधना स्थली का वह गंगा घाट, जहाँ आधी रात को तैर कर पार किया था जिज्ञासु युवक नरेन्द्र ने और बिवेकानन्द के रूप में पुर्नःजन्म हुआ था उनका। उस पावन घाट के गंगाजल को स्पर्श प्रणाम करने की भाग्य से अनुमति नहीं मिल पायेगी ? एकाएक एक विचार कौंधा। सीमा प्रायः संगीत के कार्यक्रम के लिये कोलकाता जाती आती रहती है। संभवत् अपने पिता के स्वास्थ्य को ध्यान में रखते हुए किसी उपयुक्त होटल आदि की सूचना दे सके। सुबह दस बजे के करीव फोन पर सीमा से इस समस्या पर बात की। गंगासागर के कुंभ मेले के यात्रियों की भीड़ के कारण उसकी भी चिन्ता स्वाभाविक थी।

फिर भी उसने रात को फोन पर कोई व्यवस्था हो सकी तो सूचित करने की बात कही। शाम छः बजे ही मुंवई से फोन था कि, आप जम्मू से चलने की तारीख तथा गाड़ी का नाम बोगी नंवर बतादें। मैंने वह सब ठीक ठीक उसे नोट करवा दिया। पूछना जरूरी था कि हमें स्यालदा स्टेशन से उतर कर कहाँ जाना होगा ? तो उत्तर मिला, आप 12 जनवरी को जम्मू से स्यालदा में आराम से चलियेगा। कलकत्ता पहुँच कर आप को कोई रत्ती भर भी परेशानी नही होगी।

सचमुच ही स्यालदा स्टेशन पर गाड़ी से उतरते ही अंग्रेजी में मोटे मोटे हरफों में लिखे यश शर्मा के नाम की तख्ती लिये साहू जी नाम का व्यक्ति उपस्थित था। कोई दिक्कत नहीं हुई।

बास्तव में बात यह थी कि बाम्बे के लीला होटल में सीमा को कान्सर्ट के दौरान वहाँ के उद्योगपति वयोबृद्ध दंपत्ति मिस्टर महरा से हमारी मुलाकात हुई थी जो इन के मिलन सार तथा खुले स्वभाव के चलते काफी अच्छे परिचित हो गये थे। कलकत्ता में भी उनका फलता फूलता बड़ा

व्यवसाय था। सो उन्ही की कंपनी द्वारा होटल तथा गाड़ी का ड्राईवर सहित प्रबंध किया गया था।

अठतालीस वर्षीय साहू जी, पूरा नाम ब्रहमानंद साहू, छोटा गठीला कद, चमकीली आँखें गज़ब का फुर्तीला, कलकत्ते की गली-गली, चप्पे-चप्पे से परिचित। सब से बड़ी बात हनुमान जी का अनन्य भक्त सेवा-भाव भी वैसा ही। वचपन से ही महरा परिवार में पला बढ़ा था अव कोलकाता में उन्हीं की कंपनी का विश्वस्त ड्राईवर था।

शिवम् होटल, हावड़ा व्रिज के पास, सुविधा से परिपूर्ण। वहाँ पहुँचते पहुँचते रात गहराने लगी थी। दूसरे दिन सुबह छः बजे साहू जी गाड़ी सहित उपस्थित थे। हनुमान सरीखे उस ड्राईवर साहू को इनका हुक्म था जब तक हम यहाँ है चाय नाश्ता लंच डिनर तुम्हारी ही पसन्दीदा जगह पर लिया जायेगा। कलकत्ता में उस पहले दिन सुबह सब से पहिले हम ने रेडियो स्टेशन जाकर अपने पहुँचने की सूचना देनी उचित समझी। धर्म तल्ला स्थित रेडियो स्टेशन में यह जान कर कि यह भी रेडियो जम्मू से ही अवकाश प्राप्त अनौन्सर हैं तो वहाँ अपनेपन का एहसास जताते हुए एक नवबिवाहित बंगला अनौन्सर दम्पत्ति ने उनके अपने ही घर में रहने का आमंत्रण दे दिया। पर यह प्रबंध तो होटल में हो चुका था। धन्यबाद सहित हमने आभार जताया।

रेडियो स्टेशन के प्रोटोकोल तपन बावू, गोरे चिट्टे, सवल स्वस्थ व्यक्तित्त्व, बड़ी सौजन्यता से सम्मान करते हुए जम्मू काश्मीर के विषय में जानने को उत्सुक थे कि, वहाँ तो उग्रवाद की अग्नि भड़की है। कैसे रहते हैं लोग वहाँ ? अपने सभी प्रश्नों के उत्तरों का समाधान मिलने पर फिर रेडियो की बिरादरी होने से अपनेपन का भाव भी था। वहीं से फोन द्वारा स्पेशल शान्ति निकेतन एक्सप्रेस की जाने और वापिसी की सीटें बुक करवा दी थीं। अब पूरी निश्चिन्तता से कोलकाता दर्शन के लिये तैयार थे हम। साहू जी की समझ पर चलते हुए सर्वप्रथम काली घाट पर काली माँ के दशर्नो से ही श्री गणेश करने की योजना बनी। रेडियो स्टेशन से लौटते समय मार्ग में पड़ने वाली सड़कें, चौराहे, ऊँची-ऊँची भव्य इमारतें एक चतुर सूझवूझ वाले गाईड की तरह उनके इतिहास समेत बताते जा रहे थे साहू जी।

काली घाट जाते समय शरत वोस मार्ग पर बनें स्वच्छ शुद्ध वैष्णव होटल पर खाने के लिये रूके। सच में ही स्वादिष्ट खाना, रसगुल्ले कचौड़ी ढोकला साहित दाल, चावल पूड़ी सव मात्र तीस रूपये थाली। सिर्फ एतवार के दिन 60 रूपये थाली परन्तु मिष्ठान्न की भरमार।

काली घाट मन्दिर में जैसे दर्शानार्थिओं का समुन्द्र ठाठें मार रहा था। मन्दिर वैसा ही जैसा जम्मू में किला बाहू में माँ महाकालीका मन्दिर य जैसे सुकराला य जसरोटा किले में विराजती है माँ काली। वही श्रद्धा, वही अनुभूति वही स्पन्दन। महाकाली की शक्ति सभी जगह समान व्याप्त है।

कटड़ा की त्रिकुटा पर्वतवासिनी माँ वैष्णों देवी ही इस गंगा किनारे वाले दक्षिणेश्वर मंदिर में महामाया रूप में बिराज रही थीं। दक्षिणेश्वर में भारत की अनेकता में एकता का साकार रूप दृष्टिगत था उस विशाल प्राँगण में। कवि के गीत की पंक्तियाँ कितनी सार्थक थीं :-

सुआसें च समाई गेई ऐं तूं, ते आक्खियें च देस बसदा।
कटड़े ऐ वेष्णों वलौर सुकराला ओ -
गा धरती दे जस गा - मनें दा कलेश कढदा।

अर्थात :- प्राणों में तुम्हारी ममता तथा आँखों में देश का सौन्दर्य बसता हैं, कटड़े में वैष्णों तथा बिलावर में सुकराला है, इसी प्रकार कलकत्ते में माँ काली तथा महाँकाली है सभी एक रूप है। इस धरती का कहाँ तक यशोगान करूं। सत्य है, सभी जगह एक ही जन जीवन, एक सी श्रद्धा, आस्था अनेकता में एकता। कितना बड़ा सत्य है कि बाहर भी वही दिखता जो अन्तर में निहित है संभवत् कवि दृष्टि में इसी समष्टि का सत्य है य फिर मीरा के शब्दों में,

"जहाँ, जहाँ, पाँओं धरूं धरणि पर तहाँ तहाँ निरत करूं री"।

डुग्गर धरती और वंग धरती में मातृ शक्ति एक ही समान है।

रानी रासमणि द्वारा निर्मित इसी मन्दिर में माँ के साक्षात दर्शन पाते थे श्री रामकृष्ण। इसी प्रांगण के वाँयें कोने में श्री परमहंस का निजि गृह है। जहाँ पूजा उपासना तथा निजि उपयोग की वस्तुयें, सुरक्षित रखी गई हैं। परमहंस के शिष्यों के चित्र हैं जो बंगाली सभ्य समाज के बुद्धिजीवी मनीषी, योगी एवम् सत्य के अन्वेषकों के हैं। उस धूपकी सुगंध से सुवासित गृह में वही अनुभूतियां वही स्पंदन उर्मियाँ स्पंदित थी, दर्शनार्थियों के अन्तर

में। गंगा के किनारे, रंग विरंगे फूलों, हरे भरे पेड़ो, लताओं से सुशोभित उद्यान। सभी अलौकिक श्रद्धापूर्ण दृश्य। वहीं से बैलूर मठ जा कर दर्शन किये। बैलूरमठ परमहंस जी के निवास स्थान से पाँच किलोमीटर दूर विवेकानन्द जी द्वारा स्थापित किया गया था। यहाँ से ही देश विदेशों में स्थापित मिशन के आश्रमों एवम् संस्थाओं का संचालन किया जाता था। कलकत्ता की अपनी ही एक विशेष उपलब्धि रही है कि यह प्राचीन समय से ही हिन्दी का केन्द्र रहा है। हिन्दी प्रथम समाचार पत्र "उदन्त मार्त्तण्ड यहीं से प्रकाशित हुआ था। विमल मित्र, तारा शंकर के उपन्यासों वाला वेहद भीड़ भाड़ वाला था यह कलकत्ता। जन संकुल होना ही कलकत्ता का गुण है। शेष दो दिनों में सभी दर्शनीय स्थल देखे जा रहे थे। वोटेनिकल गार्डन, महारानी विक्टोरिया म्यूज़िम, अदभुत कला विज्ञान का करिश्मा ईश्वर चन्द्र विद्यासागर सेतु, श्याम वाजार धरम तल्ला शरत वोस सड़क, गर्वनर हाऊस, अंग्रेज़ों के ज़माने का गर्वनर हाऊस, वर्त्तमान मुख्यमंत्री का निवास स्थान, ईडन गार्डन, महात्मा गाँधी रोड जहाँ सिर्फ मशीनरी ही का सामान था। कलकत्ता का वह टाऊन हाल जहाँ रविन्द्रनाथ टैगोर का 28 जनवरी 1912 को नोबेल प्राईज़ मिलने पर जो भव्य अभिनंदन समारोह हुआ था, वह एक इतिहासिक घटना थी कलकत्ता की।

यह सब साहू जी के कारण ही संभव हो रहा था। और फिर अत्यंत भीड़ भाड़ भरा कलकत्ता का बड़ा बाजार जिसका ज़िक्र बंगला लेखकों की रचनाओं में प्रायः ही रहता आया है। छोटी छोटी तंग जगहों पर करोड़ों का थोक व्यापार। कलकत्ता का ज़िक्र हो और वहाँ की काटन साड़ियाँ न खरीदी जायें, ऐसा तो हो ही कैसे सकता है भला। साहू न होते तो कभी भी यह उचित दामों पर खरीदारी न हो पाती। साहू को मान सम्मान उपहारों के साथ विदा किया, उसकी आंसू भरी नम आँखें क्या कभी भुलाई जा सकती हैं।

17 जनवरी को 10 वज कर 10 मिनट पर शान्ति निकेतन एक्स प्रेस से बोलपुर पहुँचे। बंगाल की धरती मीलों तक फैले हरे भरे खेत, केले आम के पेड़, तालाव तलैया, वर्द्धमान का खजूर का गुड़ तथा रेल के डिव्वे में वाँसुरी वादक का मीठा सुर, वह बाऊलगीत, सब क्या कही भुलाया जा सकती है।

बोलपुर स्टेशन पर रेडियो की गाड़ियाँ तथा किराये की टैक्सियाँ मौजूद थीं। बोलपुर से दो किलो मीटर पर शाँतिनिकेतन का कस्वानुमा शहर। सभी आगन्तुकों की अच्छे होटलों मे ठहरने की व्यवस्था, हम कुछ लोग P.W.D. की रेस्टहाऊस में ठहराये गये थे जहाँ का गोलाकार रंग-बिरंगे फूलों से भरा वागीचा, पक्षियों की चहचहाट। काश्मीर घाटी के सौन्दर्य का ध्यान हो आया। कहाँ अन्तर है काश्मीर घाटी की धरती और इस बंग-भूमि में। प्रकृति में तो सौन्दर्य की एक ही धारा सर्वत्र प्रवाहमान है। उस निःस्सीम सौन्दर्य सत्ता का रहस्य क्या कभी सीमा रेखाओं में बंध सकता है? 20 जनवरी को पुनः बोलपुर स्टेशन से शान्तिनिकेतन ट्रेन द्वारा कोलकाता पहुँचे।

इस प्रकार इस दैवीय अनुकम्पा प्राप्त यात्रा द्वारा खूव आनन्द युक्त हल्के मन से ही जम्मू आना हुआ था। कवि के लिये बहुत बड़ी उपलव्धि थी विश्वकवि की कर्म भूमि में सस्वर डोगरी रचना का काव्य पाठ।

शान्ति निकेतन की इस साहित्यिक यात्रा के साथ यदि यश शर्मा के जीवन में मानवीय उद्धेश्यो की पूर्त्ति में योगदान देती दूसरी यात्राओं की स्मृतियाँ भी संजो ली जाये तो उचित रहेगा।

1993 के 12 अप्रैल को राष्ट्रीय युवा योजना का शिविर मध्य-प्रदेश की चम्बल घाटी के भिण्ड मुरैना क्षेत्र में 12 अप्रैल से 19 अप्रैल तक लगना निःश्चित हुआ था। इस योजना के संस्थापक श्री सुब्बाराव जी (भाई जी) का आग्रह था कि आप इस बिशेष कैम्प में अवश्य सम्मिलित होइयेगा।

शताब्दियों से डाकू समस्या से अभिशप्त इस क्षेत्र में श्री बिनोवा भावे जयप्रकाश नारायण जी मेजर जनरल श्री यदुनाथ सिंह एवम् सुब्बाराव जी के प्रयत्नों से यहाँ शान्ति, सौहार्द और प्रेम का वातावरण बना था।

अब सुब्बाराव जी का विचार था कि, आप जैसे व्यक्ति, मैत्री पूर्ण व्यवहार से इन लोगों में मानवीय संबधों को पुनः स्थापित करने की क्षमता रखते हैं। नियति के क्रूर प्रहार ने इनकी जीवन दिशा और स्वाभिमान को क्षत विक्षत कर दिया है। इस लिये आप का आना अति आवश्यक है। दुर्दान्त डाकुओं का आत्म समर्पण इस शताब्दी की अपने आप में एक अभूतपूर्व घटना थी। अंगुलिमाल और रत्नाकर की कहानियाँ जन मानस को आज भी रोमाँचित करती हैं।

पर बीसवीं शताव्दी में अनेक अंगुलिमाल और रत्नाकर एक साथ सामूहिक अनुष्ठान के द्वारा समाज के प्रति अपने को समर्पित करते हुऐ जो दृश्य उपस्थित करते हैं। वह सामाजिक परिर्वत्तन के मूल्यों का एक कीर्त्ति मान इतिहास है।

इस विषय पर पहले भी सुव्वाराव जी के साथ कछ चर्चा वंगलोर एवम् नेपाल तथा कुशीनगर कैम्पों में हो चुकी थी। उनका कथन था कि, वीरता का बाहुल्य किस प्रकार अज्ञान के कारण विवेक हीन होकर आवेग और उन्माद में क्रूरता के रूप में परिवर्तित हो जाता है।

जाके बैरी सुख से सोवें -
ताके जीवन को धिक्कार।

इस प्रकार बीरता और क्रूरता में भेद रेखा समाप्त सी हो जाती है। इसके मूल में वही कारण, शोषक और शोषित वर्ग की खाई ही है। एक निकृष्ठ प्रकार का जातिवाद और सामन्तवादी मनः स्थिति जब दोनों के लिये अपमान और अंह का कारण बनते हैं तो सीधे और सरल लोग भी बदले की भावना से क्रूर और हिंसक पशुओं से भी उग्र हो उठते हैं।

परन्तु मानवता का स्पर्श होने पर किस प्रकार भीतर का प्रकाश बाहर आ जाता है, सुप्त पड़े मानवीय तत्त्व जागृत हो उठते हैं, यह तो इन भोले और सीधे धरती पुत्रों से मिल कर ही जाना जा सकता है।

सो अब यह कैम्प चम्बल घाटी के जिला मुरैना के जौरा नाम के कस्वे में लगाया जा रहा था। मुरैना जिले का जौरा कस्वा दस्यु पीड़ित घाटी क्षेत्र के हृदय में स्थित है। यही पर 1960 के चौदह और सोलह अप्रैल को बहुत से कुख्यात डाकुओं ने आत्मसर्मपण किया किया था। इस कस्वे में 1967 को महात्मा गाँधीं सेवाश्रम की स्थापना की गई थी। 1972 के डाकू समर्पण का रंगमंच भी यही सेवाश्रम बना था। श्री सुब्बा राव इस गाँधी आश्रम के अध्यक्ष हैं।

जब भाई जी द्वारा जौरा आने का यह निमंत्रण मिला तो ऐसा अवसर मैं भी भला कहाँ गंवाने की सोच सकती थी। हम दोनों के साथ श्री नरेन्द्र चिब तथा उनके मित्र विनोद शर्मा ने भी जाने की पूरी तैयारी करली।

इस यात्रा का महत्त्व पूर्ण पक्ष, एक यह भी था कि 1960 के 14-16 अप्रैल को जौरा में जिस स्थान पर डाकुओं ने बिनोवा जी और जय

प्रकाश जी के चरणों में अपनी बन्दूकों का ढेर लगा दिया था पुनः उसी पावन स्थली पर 1993 की 14 और 16 अप्रैल को प्रार्थना सभा आयोजित की जानी थी।

इस सभा में इस क्षेत्र के समर्पणकारी डाकू तथा हृदय परिर्वत्तन के प्रत्यक्षदर्शी जौरा निवासी तथा डाकू परिवारों के सदस्य भी सम्मिलित होने वाले थे।

हम जम्मू से आठ अप्रैल 1993 को ही चल पड़े थे क्योंकि जौरा आश्रम पहुँचने का रेलमार्ग दिल्ली से होकर मथुरा आगरा होते हुए मुरैना पहुँचता था।

आगरा का दूधिया ताज देखने की उत्सुकता मेरे साथ नरेन्द्र और विनोद को भी थी। मथुरा में श्री द्वारिकाधीश जी का प्रसिद्ध, मन्दिर कृष्ण जन्म भूमि तथा वृन्दावन धाम का हम सब ने दर्शन प्रथम वार ही करना था।

यह सौभाग्य हमें, मुझे, नरेन्द्र चिब और विनोद शर्मा को इन्हीं के कारण मिल पाया था। वृन्दावन में मीरा के आराध्य देव के गोबिन्द जी का मन्दिर मीरा के गीतों के भक्ति रस से अभिभूत इस गीतकार के लिये मुख्य आकर्षण था। दूसरा वड़ा आर्कषण था संगीत सम्राट, स्वामी हरिदास जी की साधना स्थली निधिवन, जहाँ उनकी समाधि है। शास्त्रीय संगीत के अमर साधक को भाव सेतु द्वारा शतशत प्रणाम अर्पित किया हम सभी ने।

निधिवन के पूर्व की ओर श्री श्रीराधा जी की मोहनी मूर्त्ति वाला छोटा सा मन्दिर शोभायमान है। साँध्य वेला में केवल महिलायें ही वहाँ, आरती उतारती है। उस समय केवल राधा नाम संकीर्त्तन ही वहाँ होता है।

श्री कृष्ण के हाथ की मुरली उनकी अगाध मोहकता की प्रतीक है, रस माधुरी की परिचायक है। राधा के मन प्राणों में स्पंदित है वंशी की टेर।

तो क्यों अचानक मन में कौधी यश शर्मा की वह कुछ पंक्तियाँ जो पाँचवें दशक के आरम्भ में अनायास ही निसृत हो उठीं थी सरल कवि हृदय प्रदेश से :-

ओह् चरवाल जिदी प्रीत रूस्सी गेदी ऐ
रूक्खें हेठ बैठा जदूं बौंसरी बजान्दा ऐ

डौर भौर होई दी बतोई जन्दी प्रीत हाय
द्वापरे दी राधका दा चेता उठि औन्दा ऐ।

अर्थात :- “वह चरवाहा जिसकी प्रीत रूठ गई है। हरे भरे सधन पेड़ों (कुंज) की छाया में जब बाँसुरी पर तान छेड़ देता है तो सुध बुध भूल कर, उसकी प्रीत भागी भागी पुनः चली आती है। कवि को लगता है कि यह पर्वतीय भोली बलिका द्वापर युग की राधिका ही तो है, अन्य कोई नहीं”।

लगता है कि बीज रूप से यह राधा कृष्ण रूप चित्र संस्कार गत ही थे जिनका भान इन उपरोक्त पंक्तियों से स्पष्ट है। कालान्तर मे राधा कृष्ण प्रेम परक बहुत से डोगरी गीतों की रचना, जिन्हें भजनों की संज्ञा कदापि नहीं दी जा सकती, अपितु गीत विधा के अनूठे चित्रों का प्रस्तुतिकरण इन गीतों में अवश्य पाठकों के सम्मुख हो सकता है।

वृन्दाबन का वह राधा मय सारा वातावर्ण, सभी का मन आनन्द रस से सराबोर था। पर एक सत्य को जानने से बृन्दावन दर्शन का सारा उल्लास तिरोहित हो गया था। वृजवासी दास नाम के उस वृद्ध गाइड से ज़िद भी तो मेरी अपनी ही थी।

तंग सी गली के अन्दर चार विशाल कमरों में भिन्न भिन्न आयु और प्रदेशों की कोई दो हज़ार महिलायें एक जैसे सफेद वस्त्र, कोई मटियाला सा कोई झक उजला पहिने राधा नाम संकीर्त्तन कर रही थीं।

उसी ब्रजवासी दास से ही उन दो हजार अभागी महिलाओं के जीवन यापन की कथा सुनने पर सभी का मन विचलित हो उठा। इस मातृपूजक देश में नारी जाति का ऐसा विवश रूप। सामाजिक अन्याय शोषण जाहँ डाकू लुटेरे हत्यारों के वर्ग को जन्म देता है, वहाँ यह शक्ति हीन साधन विहीन अबलायें जीवित शबों सी मृत्यु की बाट जोहती हैं। वहाँ से अति खिन्नता से भंग मनस्थिति लिये लौटना पड़ा था।

चम्बल घाटी, भिण्ड मुरैना रेलवे स्टेशन से “चम्बल यात्रा” जौरा गाँधी आश्रम तक का मार्ग दूर दूर तक हरियाली का नामोनिशान नही। जहाँ तहाँ लाल भुरभुरी मिट्टी के इतने इतने बड़े ऊँचे टीले। डाकू तो क्या हाथी भी छिप जाये तो खोजने पर भी न मिल पायें। जभी तो पुलिस बल आसानी से मारा जाता था इन्हीं ढूहों के पीछे छिपे डाकुओं द्वारा। धूल भरी राह में दूर से ग्राम देवता का देहरी नुमा मन्दिर दिखने से पता चल पाता कि,

आस पास कहीं कोई बस्ती, गाँव छोटा-मोटा कस्वा जरूर होगा।

सभी को हैरान कर देने वाला था, जौरा का बिशाल गाँधी आश्रम। रंग विरंगे फूलों की छटा विखेरता, हरे भरे पेड़ों पौधों से धिरा। भारत भर के अलग अलग प्रदेशों से आये अतिथियों के स्वागत सम्मान हेतु तत्पर जौरा के स्थानीय निवासियों एवम समर्पित डाकू गिरोहों के सदस्यों का मिला जुला सहयोग जैसे एक पर्व एक उत्सव जैसा दृश्य देखने में आ रहा था।

यह वही चम्वल की बीहड़ धरती थी, जो वर्षो, पूर्व आंतक से थरथराती थी। साँझ ढलने से पहिले ही शमशान की सी शून्यता पसर जाती थी। सम्मेलन में भिन्न भिन्न प्रदेशों की संस्कृतियों की इन्द्रधनुषी छटा बिखरती, तो जैसे मिनि (छोटे) भारत की झलक दिखती मंच पर।

पूर्व दस्यु मोहर सिंह, माधो सिंह, महावीर सिंह, डेरा लाल आदि जिनके सिरों पर लाखों के इनाम घोषित थे, परिवारों सहित अतिथि सत्कार में व्यस्त थे। कुछ विदेशों से आये लोग भी इस सम्मेलन की जानकारी हासिल करने यहाँ पहुँचे हुए थे। संगीत का जादू तो यहाँ भी सब को जोड़ने का काम कर रहा था। सुवह सवेरे सुब्बा राव जी मीठे कोमल स्वर में संत तुकाराम का भजन गाते, "बैष्णव जन तो तेने काहिये, पीर पराई जाने जो" वहाँ यश शर्मा का लिखा "एकाता" शीर्षक का गीत भी वातावरण के अनुरूप बहुत प्रभावशाली था। वैसे यह गीत तो NYP कैंप बैंगलूर में 17/1/1991 को जब पहली वार भाई जी से मिले थे तभी से उनके पास यह गीत सुरक्षित था। उस समय ग्वालियर से आये प्रेम कुमार तथा घौलपुर के शवाव के साथ यश शर्मा उनके संरक्षक बन कर गये थे। तब जम्मू में यह दोनों इंजीनीयारिंग के विद्यार्थी थे जो वाद में सफल कम्पयूटर इंजीनीयर बने थे।

बैंगलोर में सांस्कृतिक प्रस्तुति आवश्यक होने के कारण जहाँ छोटी छोटी लधु नाटिकायें लिखी जार्ती तथा दूसरे प्रदेशों के युवाओं के साथ मंच पर अभिनीत भी की जार्ती पर सब का माध्यम हिन्दी ही होता था। डोगरी के बजाये हिन्दी गीत 'एकता' वहाँ सब को कंठस्थ हो गया था। इस गीत को भारत भर के 35 राष्ट्रीय गीतों में स्थान मिला था जिनका चुनाव आकाशवाणी द्वारा संपन्न हुआ था। इन गीतों का सभी भारतीय भाषाओं में अनुवाद हो चुका था। जम्मू में इस गीत को श्री प्रीतम सिंह जी ने संगीत

बद्ध किया था। वहीं धुन हम सब वैगलोर में समवेत स्वरों में गाया करते थे।

"एकता"

एकता, एकता, एकता का दिया, इस ज़मीं पर सदा जगमगाता रहे
आदमी, आदमी के लिये प्यार के, गीत बुनता रहे, गुनगुनाता रहे

1. रंग और नस्ल का भेद बेकार है
आदमीयत वहाँ है जहाँ प्यार है
भाई चारे का बंधन न टूटे कभी
वक्त चाहे हमें आज़माता रहे।

एकता, एकता, एकता का दिया...

2. फूल-फल लायेगा पेड़ इत्तहाद का
हम अगर एक हैं, हुस्न है ताज का
मादरे हिन्द[1] तेरा हर इक पासबां[2]
तेरी अज़मत[3] के ही गीत गाता रहे।

एकता, एकता, एकता का दिया...

3. लाख तुफान आये चले आँधियाँ
आसमानों से कौंधा करे बिजलियाँ
अपना अज़्मे जवां[4], साथियो दोस्तो
कठिन घड़ियों में भी मुस्कराता रहे।

इस जमीं पर....एकता, एकता

फ्रांसीसी महिला मारियो मध्य प्रदेश के डाकुओं के संबध में जानकारी प्राप्त कर के पुस्तक लिखने की इच्छुक थी सो वह इनकी (यश शर्मा) की सहायता से जान रही थी कि, किन परिस्थितिओं वश क्रूरता का बवंडर अपनी लपेट में मानवता को तहस-नहस कर देता है। और अब इस प्रकार का हृदय परिर्वत्तन का कीर्त्तिमान इतिहास सामने था।

वह सभी सीधे सरल लोग बदले की भावना से क्रूर हिंसक पशुओं

---

1. भारत माता 2. रखवाला 3. महानता 4. पक्का निश्चय

से भी अधिक क्यों उग्र हो उठे थे, वह लोम हर्षक एवम् अतीव कारूणिक कथायें यहाँ सुनने को मिल रही थीं। बातचीत का प्रयास तो इन्हीं की तरफ से था जो काफी सफल रहा था। जिसका बिवरण क्रमशः दैनिक कश्मीर टाइम्स जम्मू से रविवार 3 अक्टूबर 1993 को प्रकाशित होता रहा था। इसी चम्बल घाटी के संदर्भ मे मचेल यात्रा का वृत्तांत भी दैनिक कश्मीर टाइमज रविवार 17 अक्टूबर 1993 को सचित्र यश शर्मा द्वारा दिया गया था।
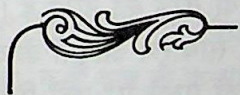
"मचेल यात्रा"

❑ लेखक यश शर्मा

यद्यपि चम्बल घाटी यात्रा के साथ किश्तबाड़ पठार की मचेल यात्रा का कोई सीधा संबंध नहीं दिखता है, और न कोई औचित्य ही।

क्योंकि, एक यात्रा का संवंध तो पर्वतीय प्रदेश से है तो दूसरी का चंबल घाटी के बीहड़ों से। परन्तु यहाँ यह बात पूर्णतया ध्यान देने योग्य है कि, दोनो स्थानों की चाहे अलग समस्यायें थीं, कठिनाइयाँ भी अलग अलग थीं, परन्तु दोनों स्थानों पर जूझने वाला व्यक्तित्त्व एक ही था। उस कर्म योगी का नाम था "मेजर जनरल श्री यदु नाथ सिंह जी" जिन्हें चम्बल में भी, "म्हारे कर्नल जी" नाम से श्रद्धा आदर सहित स्मरण किया जाता था। वसुधैव कुटुम्बकम की उक्ति ऐसे महान चरित्रों पर ही सार्थक होती है। चम्बल घाटी एवम् मचेल यात्रा के दौरान देखने और सुनने से पता चला कि दोनों जगहों की साधारण जनता की श्रद्धा और कृतज्ञता एक जैसी ही है यदुनाथ सिंह जी के लिये।

पाडर किश्तवाड़ में जो अभियान कर्नल सहिब द्वारा 1947/48 में संम्पन्न हुआ था उसके विषय में बहुत सी अद्‌भुत चमत्कारी घटनाऐं वहां के स्थानीय निवासियों तथा चण्डी माता मन्दिर के पुजारी से सुनने को मिलीं।

इतिहास भी शायद दो तरह का होता है। उसे रचता भी दो तरह का आदमी ही है। उसी दूसरे साधारण आदमी के कहे इतिहास की ही बात कर रहा हूँ, जो स्याही से लिखे पृष्ठों पर नहीं मिलता।

मिलता है आम आदमी की गहन आस्था में, विश्वास में। 1989 में आकाशवाणी जम्मू से अवकाश प्राप्ती के पश्चात् ही यत्र तत्र भ्रमण का मन बना लिया था। इसी सिलसिले में मचेल यात्रा का कार्यक्रम बन गया। देवी देवताओं पर बिश्वास की बात रहने भी दी जाये तो मैंने कभी डोडा किश्तवाड़ आदि देखे ही नहीं थे। इस पर्वतीय क्षेत्र का प्रकृति सौन्दर्य का आकर्षण मुख्य था यही कहना अधिक सच होगा।

एक तरफ जम्मू से बटोत, पुल डोडा और दूसरी तरफ चनौती भद्रवाह से मचेल के लिये प्रस्थान करने वाली यात्री गाड़ियों में हमारा काफिला हज़ारों की गणना में भद्रवाह से आये यात्रियों द्वारा, चण्डी माँ के जयघोष के साथ प्रस्थान करने वाला था। यह यात्रा पुल डोडा, डोडा नगर,

ठाठरी, किश्तवाड़ ग्लाहर शाशु फिर अठौली आकर एकाध दिन विश्राम के लिये रूक गई। यानि यात्रा ठहर गई थी। रंग बिरंगे कपड़े पहने बच्चे बूढें जवान कोई 15 हज़ार के करीव यात्री छड़ी के साथ चल रहे थे।

छड़ी की अपनी ही एक अपूर्व शोभा होती है। निखालिस कंठों से, श्रद्धामय भजनों भेंटों की गुंजार से अजव सा समय बंध गया लगता है। कृत्रिमता का कही लेशमात्र भी नामों निशान नही। इस सारे प्रदेश के लोग सीधे सरल और परिश्रमी हैं। पता नही किस भोले जन कवि ने कुछ पंक्तियों में इतना बड़ा सत्य और तथ्य जोड़ कर रख दिया था।

"जरनल जोरावर मैय्या तेरे दर आया,
गिलगित्त[1] फतह करी आया हो।
करनल यादव मैय्या देखी तेरी शक्ति,
उच्चा तेरा भवन बनाया हो।
परगट होई माता मिन्दल भटासे,
डेरा लाया पाडर मचेला हो।।

अर्थात : "हे माँ चण्डी। जरनैल जोरावर सिंह आप के ही द्वार पर माथा टेक कर गिलगित्त लेह्-लद्दाख को फताह करने आते थे। कर्नल यादव (यदुनाथ सिंह) ने भी तुम्हारी शक्ति को प्रत्यक्ष देख कर ऊँचे मन्दिर का निर्माण करवाया था। आप प्रकट तो मिन्दल हिमाचल क्षेत्र में हुईं थी, अब इस पाडर क्षेत्र के 'मचेल' गाओं में आप विराज मान हैं"।

विचारणीय है कि, कहाँ कब के जनरल जोरावर सिंह, किस प्रदेश के जन्मे कर्नल यदुनाथ सिंह। कैसे जन मानस के श्रद्धा सेतु से जुड़ा है हमारा देश। अपार जन समूह के मन में कहाँ थी प्रादेशिक समस्याओं की कोई भी संकीर्ण विषैली गंध। पूरा वातावरण स्वच्छ मानसिकता, निर्मल सुगंध से भरपूर था और थी सद्भावना की समरस लहर।

उस समय इस सम्पूर्ण मचेल यात्रा की अगुआई ठाकुर कुलवीर सिंह जी करते थे। अठौली में मैं रात को गुलाम मुहम्मद के घर ठहरा। 45 वर्षीय गुलाम मुहम्मद की वहाँ किरयाना की दुकान थी। इस निःस्संतान

नोट : 1. जन कवि नें गिलगित्त शब्द पिरों दिया है जब कि लेह-लद्दाख पर जोराबर सिंह ने आक्रमण किये थे।

दंपत्ति में मानवता कूट कूट कर भरी है। उनकी पत्नी में ममतामयी भारतीय नारी के गुण विद्यमान हैं।

उनके घर में गर्मागर्म महकता कहवा पीने को मिला। सभी यात्रियों के खाने पीने का प्रवंध स्थानीय जनता द्वारा लगाये लंगर में होता है।

वहाँ इस बड़े लंगर का आयोजन कैसे होता है, इसकी जानकारी भी मिली। कुछ उत्साही लोग इस पुण्य कार्य को शुरू कर देते हैं। फिर अपने आप ही इतना अन्न बरसता है कि सभी के लिये पर्याप्त होता है। अन्न इकट्ठा होने में किसी जाति धर्म का कोई भेद भाव नहीं बरता जाता। सिर्फ इतना ध्यान रखना जरूरी होता है कि अन्न चुना, फटका, शुद्ध हो। भोजन में पहाड़ी चावल और दाल तथा राजमाँह अतीव स्वादिष्ट लगते हैं। इतने सारे यात्रियों का खाना पीना, रहना विलकुल मुफ्त, कोई पाई पैसा खर्च नहीं। इस युग में पैसे की अंधी दौड़ में तो वह सब सुनने में भी अजीव सा ही लगता है। अगस्त के दिनों में भी सुवह शाम हल्की सर्दी होती है। अठौली के पास भोटनाला और चिनाव आपस में मिलते हैं, अंगूठी में जैसे नगीना जड़ दिया गया हो।

यहाँ पर चाँद, हंसता है तो लगता है, वह हंसी ही फेनिल लहरों पर, धान के हरे भरे खेतों में, घर-घर के छप्परों पर, मन्दिरों के कलशों पर तथा पर्वत शिखरों पर एक सी ही छिटक जाती होगी। प्रातः हमे प्रस्थान करना था, अगली यात्रा के लिये। अन्य शिखरों पर चढ़ना था। भोट नाले के साथ साथ चिनाब नदी के दूर ऊपर तक चीड़ देवदार तथा भुर्ज पत्रों के ऊंचे गगनचुम्बी वृक्षों में से होकर हमें जाना था।

भोज पत्रों के वन प्रतीक्षा रत थे उन, ऋषिओं की प्रतीक्षा में जो पुनः भुर्ज पत्रों पर वैदिक ऋचाऐं लिखें। कोई बाण भट्ट आये, कादम्बरी की महाश्वेता का चित्रण करे। कब आयेगा कोई कालिदास, जो शकुन्तला और मेधदूत जैसे "महाकाव्य" की रचना करेगा।

यहाँ उल्लासमयी प्रकृति निश्छलता से उमग उमग कर बातें करती हैं मनुष्य से। जाने मानव ही क्यों अन्धा वहरा होने का नाटक कर रहा है प्रकृति के सात्विक स्वरूप के साथ। वन्यश्री का कितना विध्वंस हुआ हैं

परन्तु मनुष्य के मन की पाशविकता तो अन्त हीन है। हरे भरे वनों से आच्छादित इन पर्वतों पर निरीह पर्वत संन्तानों के लिये आज भी उषा,

उदीय मान सूर्य की लालिमा में चेतनता का बिम्ब लिये आती है, और संध्या को स्वर्ण राशि लुटा कर जाती है।

परन्तु यहाँ की निर्मल वायु में यह बारूद के धुंये की गंध अब क्यों मिलती जा रही है ? जंगली फूलों की महक में भय, त्रास, मृत्यु के काले साये क्यों धुलमिल गये हैं ? अब तो यहाँ रात, जैसे काँपते काँपते वक्त गुज़रने का एलान करती है।

1948 में यदुनाथ सिंह जी जब यहाँ पाडर में नियुक्त हो कर आये थे तब भी जंस्कार की ओर से कवायलियों का हमला हुआ था। तब भी काली रातें, ऐसे ही खौफनाक हुआ करती थी। वह सब भी यहाँ के निवासियों को खूव याद है।

यदुनाथ जी के नाम से भी पहिले, मुझे ऐसा लगा कि, डोगरा जरनैल जोरावर सिंह को याद करना चण्डी माँ की श्रद्धा पूर्त्ति के लिये इन लोगों के लिये अति आवश्यक है। यात्रा से पहली रात चिशौती में ठहरे। यहाँ रात को बड़ी सर्दी थी। हज़ारों यात्रियों की गहमा गहमी के कारण एक विशाल मेले का सा समां वंध गया था। ढलवानदार छत्तों वाले धरों के कमरे बरामदे आंगन सब खचा-खच भरे थे। जगह की कमी के कारण बहुत से यात्री खुले आँगन में आग तापते हुए पहाड़ी सुरों में माँ चण्डी की महिमा के गीत गा रहे थे। हम जिस घर में ठहरे थे, वहाँ आग तापने का पक्का इन्तज़ाम था। अतिथी सत्कार की परम्परा यहाँ आज भी प्राणमयी है।

रात को बहुत से स्थानीय लोगों से इसी यात्रा के विषय में बात चीत चलने लगी। सुना था कि आगे कुछ मील पैदल चढ़ाई का रास्ता सुगम तो कम ही है कठिन अधिक है।

बस कठिनता का ज़िकर होते ही कठिनाइयों से जूझने वाले वहादुरों की ओर विषय ने मोड़ ले लिया। यहाँ के लोगों के पास बात कहने का एक अपना ही ढंग है। अपना ही इतिहास है, साधारण लोगों का साध ारण गति से चलने वाला इतिहास।

यदुनाथ सिंह जी जब यहाँ आये थे तो उनके साथ केवल सौ सवा सौ सिपाही ही थे। इस क्षेत्र में रक्षार्थ हेतु उन्हें यहाँ नियुक्त किया गया था। शीध्र ही स्थिति का जायज़ा लेते हुए उन्होंने स्थानीय युवकों को गुरिल्ला प्रणाली से थोड़ा बहुत प्रशिक्षित करना शुरू कर दिया था। जब हज़ारों

हज़ार कवायली घुस आये तो कर्नल ने माँ चण्डी के चरणों में माथा टेकते हुऐ सहायता की प्रार्थना की।

मन्दिर के पुजारी जी का एकाएक झोल पड़ी और आदेश हुआ कि यहाँ के लोगों के हाथ जो भी ईंट पत्थर ढेला कंकड़, आये उसी से शत्रु दल पर प्रहार करो, विजयी यदुनाथ होंगे। देवीय चमत्कार घटित हुआ था। पत्थर, कंकड शत्रुओं पर आग के भीषण गोले बन कर कहर ढाने लगे। हमलावारों की गोलियाँ यहाँ तहाँ लग रही थीं दुश्मन भाग निकला।

हैरानी की बात थी कि कर्नल के एक भी सिपाही की क्षति नहीं हुई थी। स्थानीय लोगों का बाल भी बाँका नहीं हुआ था।

डोगरा जरनैल जोरावर सिंह के विषय में काहन सिंह बलौरिया का लिखा इतिहास एवम् के एम पनिकर द्वारा लिखित गुलाव सिंह विषयक पुस्तक मे पढ़ रखा था कि, किस प्रकार उस योद्धा ने पहली वार रियासत का झंडा संसार की छत्त 'लेह' पर जा गाड़ा था। वहाँ यह भी स्पष्ट किया गया था कि चाहे सम्राट अशोक और अकवर जैसे महान सम्राट हो गुज़रे हैं पर हिमालय पार करके ल्हासा और तिब्बत तक हमारे देश की सीमाओं को बढ़ाने वाला योद्धा जोरावर सिंह ही था। विदेशी इतिहासकारों ने तो "जोरावर सिंह" की तुलना नैपोलियन बोनापार्ट और चार्ल्स मैन से की है।

चिशौती की उस रात को लोग जोरावर सिंह और यदुनाथ सिंह के विषय में बता रहे थे कि चण्डी माँ के इस मन्दिर की टीन की छत्तों का निर्माण कराया था यदुनाथ सिंह जी ने। जो स्वयं भी श्रद्धा और आस्था सहित इस निर्माण में बराबर का योगदान देते थे।

इस पैदल रास्ते हज़ारो डोगरा फौज के जवान और जोराबर सिंह चण्डी माँ को प्रणाम करके बिजय अभियान के लिये आगे बढ़ते थे। डोगरा जरनैल जोरावर सिंह तथा कर्नल यदुनाथ सिंह यह दोनों एक डुग्गर की धरती का अप्रतिम योद्धा, दूसरा मध्य प्रदेश की चम्बल घाटी का पराक्रमी सपूत, यहाँ के जनमानस में इस प्रकार घुल मिल गये हैं जैसे भोटनाला और चिनाब की फेनिल लहरों में चम्बल नदी की पावन धारा भी आ कर मिल गई हो। वात यात्राओं की ही हो रही है तो इनका कहना था कि पीछे मुड़ कर देखें तो किसी ने सच ही कहा है कि, ज़िन्दगी के न जाने कितने घाटों पर हमारी नाव ठहरती है चलती जाती है। हर जगह ही कितना लेन देन

वाकी रह जाता है, इसका हिसाव कैसे रखा जा सकता है।

पर उन काल खण्डों की स्मृतियाँ तो साथ साथ चलती आ रही हैं।

"यात्रा कुशी नगर की"

1990 का फरवरी माह, सुब्वाराव जी ने बैंगलूर कैम्प के लिये निमंत्रण भेजा था। ग्वालियर से आये प्रेम तथा घौलपुर निवासी शबाव जो जम्मू में इंजीनीयरिंग के स्टूडेण्ट थे मेरे साथ चलने को तैयार हो गये। यह दोनों लड़के अपने अपने क्षेत्र में आज कम्पयूटर के सफल इंजीनीयर हैं। वंगलोर से हम मैसूर के महल देखने के लिये श्री रंगापटनम चले गये। सुलतान टीपू के महल उनकी माँ मदीना बेगम की कब्र, कुछ पुराने मन्दिर भी देखे गये। 9-2-92 को कुशीनगर की यात्रा का सौभाग्य मिला था। इस बार मेरे साथी थे शकील जो आज कल जम्मू में एडबोकेट शेख शकील अहमद के नाम से अपनी इमानदारी और बेवाकी के लिये जाने जाते हैं। रामनगर के शिक्षाविद् श्री मनोज निश्चिन्त, जानीपुर जम्मू के अशोक तथा पंजतीर्थी के संजय इन चारों हंसमुख उत्साही युवाओं के साथ कुशीनगर से नेपाल की यात्रा भी एक स्मरणीय यात्रा थी।

इस लिये भी यह यात्रा विशेष कही जा सकती है कि इस से पहिले के राष्ट्रीय युवायोजना में हिन्दी की लधुनाटिकायें प्रस्तुत करते थे तथा "एकता" शीर्षक का गीत युवाओं के लिये इस सम्मेलन के लक्ष्य को पूर्ण करने में सक्षम सिद्ध हुआ था।

परन्तु डोगरी की पहिचान विभिन्न प्रदेशों से एकत्रित युवाओं के समक्ष "न" के बरावर थी, जिससे एक कचोट सी टीसती थी।

कुशीनगर में बर्मी मन्दिर के विशाल प्राँगण में सांस्कृतिक कार्यक्रम का आयोजन था। उसमें हमारी भागीदारी आज की सामाजिक समस्याएं और समाधान नाम की हिन्दी लधु नाटिका थी।

हम सभी सहयोगियों नें एक डोगरी लोक गीत को भी मंच पर प्रस्तुत करने की अनुमति प्राप्त की थी आयोजकों से।

क्योंकि मंच पर उन्हीं प्रदेशों की भाषाओं की प्रस्तुति मान्य थी जो संविधान की आठवीं अनुसूचि द्वारा स्वीकृत थीं।

तदुपरान्त डोगरी लोक गीत :-

धारां धूड़ा पेइयां, कंडिया पेया बरसाला,
आऊँ तुगी ठाकी वो रेहियाँ, इक्कली नीं जायां धारा,
गद्धियें दे छोकरू बुरे, किल्लिये गी पौन्दे मारा।

अर्थात :- पर्वतों पर धुंध छा गई है और समतल भूमि (कंडी) में पाला पड़ गया है। अरी ओ लड़की! तुम्हें बार बार मना किया जा रहा है कि, उस ऊँची पहाड़ी पर अकेली मत जाना। वहाँ (गद्धियों) चरवाहों के नौजवान विश्वसनीय नहीं है। तुम्हें अकेली देख कर मार पीट भी कर सकते हैं।

यह डोगरी का परंम्परागत प्रसिद्ध लोक गीत भाख शैल में प्रस्तुत किया गया था।

महात्मा बुद्ध की निर्वाण स्थली में उपस्थित सभी अपार जन समूह विस्मय विमुग्ध हो झूम उठा था।

यद्यपि हम पाँचों सहयोगियों में व्यवसायिक रूप से गायक कोई भी नहीं था। परन्तु अपनी माँ डोगरी भाषा तो प्राणों की धड़कन में रची वसी होने से यही कहा जा सकता है कि यह कला प्रतिभा जन्मजात संस्कारगत ही डुग्गर वासियों को ईश्वर की देन है।

इस लोक गीत में पहाड़ों धारों कंडी तथा चरवाहों की जीवन शैली का चुलवुला चित्रण कलात्मक हावभावों द्वारा इन युवाओं द्वारा प्रस्तुत किया गया था। एकत्रित श्रोताओं में कुछ शास्त्रीय संगीत के ज्ञाता और सुरों के पारखी गुणीजन भी उपस्थित थे। पहाड़ी संगीत के सुरों के जादू से अभिभूत वहाँ हमारी डोगरी को जो सराहना मिली, सम्मान मिला उस गर्व की अनुभूति से जैसे हृदय प्रफुलित हो उठा था सब का।

स्तूप की आकृति का बना यह बौद्ध मन्दिर कुशी नगर का विशेष दर्शनीय स्थल है। चारों ओर फूलों से भरा खूवसूरत बागीचा। तत्पश्चात उस मन्दिर के दर्शन किये जहाँ पाँच हज़ार चार सौ वर्ष पहिले भगवान बुद्ध ने देह त्याग किया था। अंतिम दर्शन हैं बुद्ध के इक्कीस फुट लम्वी कोहनी के वल लेटी इस अवधातु मूर्ति का जिसका निर्माण मथुरा के दीन नाम के कारीगर ने 1500 वर्ष पूर्व किया था। नेपाल यात्रा में काठमाण्डू वगैरा मे सुन्दरी चौक लाल पत्थर से निर्मित प्राचीन राजमहल पशुपति नाथ मन्दिर आदि के दर्शन किये।

आज कल टूरिस्ट बसें य तीर्थ यात्रियों की बसों द्वारा यह यात्रायें सुगम और सहज सरल है। वास्तब में राष्ट्रीय युवा योजना एवम् मचेल यात्रा के साथ कोई अदृश्य सा संपर्क सूत्र 1959 से ही जुड़ना शुरू हो गया था यश शर्मा का। 1959 जुलाई में श्री विनोवा अपनी पदयात्रा के क्रम में श्रीनगर कश्मीर में थे। यह भी एक संयोग था कि मेजर यदुनाथ सिंह उन दिनों काश्मीर लोक सेवा संघ के अध्यक्ष थे और काश्मीर सरकार ने उन्हें विनोवा जी की राज्य में पद यात्रा व्यवस्थाओं का प्रभारी नियुक्त किया था।

इनका कहना था कि, उन दिनों मैं भी रेडियो काश्मीर में स्क्रिप्ट राईटर के पद पर कार्य कर रहा था। बाबा का प्रवचन मंच शेरे काश्मीर पार्क में स्थित होता था। संध्या समय बाबा के पास जा कर बैठ जाता। उस समय मेरी आयु भी 27-28 वर्ष ही रही होगी।

बाबा से कुछ चुटकीली नुकीली नोंक झोंक चलती। अन्त में बाबा कोई भजन सुनाने को कहते वह जान गये थे कि, राजनीति य उससे संबंध रखने बाली बातों के बारे में मैं क, ख, ग भी नही समझता।

कबीर सूर मीरा का भजन सुनते सुनते बाबा कहीं खो से जाते तो मैं बीच में ही डोगरी का कोई श्रृंगारिक गीत्त जोड़ देता। मुंदी पलकों पर तो जोर जतन चल सकता है पर चेहरे पर की मृदु स्निग्धता पर भला कौन सा आवरण ओढ़ा जा सकता हैं। यही यथेष्ट प्रसाद था मेरे लिये। फिर धीरे-ध ीरे खिसक जाना भी मेरे अपने कौतुक क्रम में शामिल था। विनोवा की पद यात्रा के प्रभारी श्री मेजर यदुनाथ सिंह से पूर्णतया अपरिचित ही रहा था। तब तक मुझे इस बात की भी कतई जानकारी नहीं थी कि 1948 में जम्मू काश्मीर पाडर में जंस्कार की तरफ से हुऐ कवायली हमले का मुँह तोड़ जबाव देने वाला ग्रही अप्रतिम योद्धा है। चंवल घाटी यात्रा की उत्सुकता का एक विशेष कारण यह भी था कि 1960 के दस्यु समर्पण में चाहे जय प्रकाश नारायण और विनोवा जी के अदम्य कौशल की मुख्य भूमिका रही थी परन्तु गहराई से जानने पर दो मुख्य नाम सामने आये, एक यदुनाथ सिंह जी तथा दूसरे सुव्वाराव जी। चम्बल के दस्यु समुदाय तथा स्थानीय जनता से जानकारी मिली कि दस्यु समर्पण में मेजर जनरल युदुनाथ सिंह जी ने जिस निष्ठा और उत्साह से कार्य किया था उसके कारण चम्बल क्षेत्र में भगत जनरल के नाम से जाने जाते थे। दस्युदलों के अज्ञात ठिकानें, विद्रोही

मौसम और प्रतिपल मंडराता हुआ मृत्यु का संकट सभी कुछ बिरोध में था परन्तु मेजर साहिव के पास अडिग आत्म विश्वास और प्राण हथेली पर रख कर जूझने वाला जीबट था तो सुब्बा राव जी के पास पर हित कल्याण का उत्साह तथा कान्तिमय शरीर के साथ हृदय में अद्‌भुत आकर्षक मीठा संगीत था।

अन्य और किसी यात्रा के लिये इनके इच्छुक मन की टोह लेने पर मालुम हुआ कि, कन्याकुमारी दर्शन की मन में उत्कट इच्छा शेष है। जहाँ आज भी विंध्याचल की श्यामवर्णी कन्या हाथों मे वरमाला लिये खड़ी भोले शिव को पति रूप में वरण करने हेतु प्रतीक्षा रत है। हिमाचल पुत्री को डाह से बचाने के लिये नारद जी द्वारा निकाला गया मुहूर्त्त का मांगलिक क्षण जाने कब आयेगा ? उत्तर और दक्षिण, हिमाचल और कन्या कुमारी को जोड़ती यह कोमल करूण कथा केवल भारत की धरती पर ही संभव हो सकती है। गौरवर्णा हिमाचल पुत्री और श्यामवर्णी विंध्याचल कन्या की यह गाथा है दो संस्कृतिओं के मिलन की, उत्तर और दक्षिण को एक सूत्र में पिरोने की अद्‌भूत सी सूझ बूझ का सफलतम प्रयास।

काव्य के साथ-साथ नाटय विधा में भी यश शर्मा की लेखनी का बरावर का साथ चलता आ रहा हैं यहाँ पर उनके नाटकों के लेखन, मंचन, अभिनय की बात करने से पहले अपने ही मन को टटोल कर देखूं, तो इस सत्य से मुँह कैसे मोड़ा जा सकता है कि, अपने पति के लेखक रूप में उनका गीतकार का रूप ही मेरा इष्ट है। श्रेय है। कविता, कहानी, नाटक, अभिनय सब गौण।

स्वीकाराना होगा कि, यही कारण है कि उनका कोई भी नाटक प्रकाशित नही हो पाया है आजतक। जीवन रहा तो जब गीतों का मोह छूटेगा तो कुछ एक रंगमंचीय नाटक, एकाँकी प्रहसन छप सकें, इसका भी प्रयास किया जायेगा।

नाटक विधा अभिनय से ही जीवन्त रहती है। यदि उसमें धरती और जीवन रस में डूबा संगीत का भी मिश्रण हो तो और अधिक प्रीतिकर हो उठना स्वाभाविक है।

"वसोहली की प्रसिद्ध राम लीला का मंचन"

जैसे कि पहले भी कहां गया है कि मामा अमीर चन्द पुरोहित, fo Yo e x y] : d e f . k g j . k] Hkä I q ke k v kfn u kV d kae ad ष्ण' की भूमिका में उतरते थे। राम लीला के दृश्यों के पश्चात् किसी न किसी नाटक का मंचन भी अवश्य किया जाता।

चौथी क्लास में पढ़ने वाला बहन का बेटा "पाल" मामा की बहुत खुशामदें कर के हनुमान की बानर सेना में स्थान पाने में सफल हुआ था।

यही था, यश शर्मा की अभिनय यात्रा का श्री गणेश। पाँचवीं छटी में जम्मू आने पर मन्दिरों में राम लीला देखने जाते थे गली मुहल्ले के कुछ साथी तथा विशेष वचपन के मित्र, हंसराज पंडोत्तरा तथा उनके चचेरे भाई श्री चंचल शर्मा।

दीवान मन्दिर की रामलीला देखकर उसी के अनुरूप पंडोत्तरा के घर में साड़ियों चादरों से राम लीला की स्टेज तैयार होती। शिबी, गणेशा, भाना, मूंज की चारपाईयाँ खड़ी करके रस्सियाँ बाँध कर मंच सज्जा द्वारा अपना योगदान देते।

दीवान मन्दिर की रामलीला के पात्रों द्वारा बोले गये संवादों को टूटे फूटे तरीके से बोला जाता। कुछ ही दृश्यों की नकल की जाती जैसे रावण की सभा में अंगद का पैर जमाना, शूर्पनखा की नाक लक्ष्मण द्वारा काटना।

एक ऐसा दृश्य भी था जिसके डायलाग बोलने पर चंचल शर्मा और पंडोतरा की जम कर आपस में लड़ाई होती। वेदवति और रावण संवाद में रावण वेदवति को संबोधित करता कहता है,

"गोरे गोरे गाल पर काले काले बाल
य चंदन के वृक्ष पर लटक रहे हैं ब्याल।

सुन्दरी तुम कौन हो" ? हंस राज और चंचल, दोनों ने यह सब खूब एक सा रट रखा था। बिना इस बात को जाने की, ब्याल का क्या अर्थ है य फिर चंदन वृक्ष से उसका कौन सा संबंध जुड़ा है।

इन्हीं का कहना था कि हमारा मित्र जगदीश सेम, गोरा चिट्टा, गोल-मटोल खूवसूरत लड़कियों जैसा चेहरा, उसे सीता बनाया जाता। वहीं प्रेम स्यारिया, चमकीले, बर्को से मुकुट, तीर कमान गुर्ज बनाने का तथा चेहरे रंगने का काम बखूवी अंजाम देता। रंग विरंगे सितारे ज़र्क वर्क कागज, गत्ते आदि पर कोई दो ढाई रूपये का खर्चा तो उस ज़माने में हो ही

जाता ।

चवन्नी चवन्नी सब से जमा की जाती जो राम लीला के नाम पर अपने अपने घरों से सब को आसानी से मिल जाती । दीप प्रज्जवलित कर मंगलाचरण की रस्म निभानी जरूरी होती सो इसके लिये तेल का मिट्टी का दीया तथा शुरू में ही "ओम जय जगदीश हरे" आरती गाई जाती । आरती के कुछ आधे-अधूरे बोल केवल हंस राज को ही आते थे हम सब तो सुर में सुर मिला कर काम पूरा कर लेते ।

हाँ एक बात जरूर थी कि, बसोहली से ही मैंने अपनी मासियों से राम लीला का एक संवाद रट रखा था । सीता रावण की धमकियों का निडरता से उत्तर देती है :-

अरे रावण तू धमकी दिखाता किसे,
मुझे मरने का खौफो खतर ही नहीं
जिस सोने की लंका का मान करें,
मेरे आगे वहा मिट्टी का घर ही नहीं ।

इसी के बल पर मैं गायक मंडली का सिरमौर था । इस गाने के साथ सीता मैय्या बस आँखें मटकाती, मुँह बनाती, हाथ नचाती ।

इन पंक्तियों के अर्थ से माँ समेत मुहल्ले की महिलाओं के चेहरे गर्वीले हो उठते जैसी अधर्मी अत्याचारी पुरूष वर्ग के प्रलोभनों को ठुकराता सीता का यह उत्तर स्वयं उनका अपना ही हो ।

पर इस भाव की समझ तो शायद वर्षो वाद इस कच्ची छावनी की टाँगेवाली गली स्थित हंसराज पंडोत्तरा के घर में खेली जाने वाली रामलीला के इन पाँचवी छटी में पढ़ने वाले पात्रों को क्या आई होगी? उस समय तो यही बड़ी उपलव्धि थी इन कलाकारों के लिये कि इस राम लीला की धूम पूरे मुहल्ले भर में थी । मुझे वताया गया कि हमारे मुहल्ले का फीरो धोवी, चाचा कुतुवदीन, जूरा जिसका पूरा नाम जहूरूद्धीन था । वह भी हमारे दर्शक थे । बच्चे तो होते ही थे । उन वाल्य स्मृतिओं के झरोखे से कुछ चेहरे झाँकते हैं भावुक मना कवि की आँखों में ।

बेबे मैहतानी, गली की सब से वुर्जग महिला स्वर्गीय मैहता सुखदयाल की पत्नी । मैहता सुखदयाल महाराजा प्रताप सिंह के खास अहलकार थे ।

जिनके नाम पर टाँगे वाली गली कुछ आगे चल कर महतों वाली गली के नाम से प्रसिद्ध थी। बेबे खुशी से हम बच्चों में मिठाइयाँ बाँटतीं जैसे जलेवियाँ, अमरतियाँ, बूंदी के लड्डू। उनकी हवेली आज भी अपनी र्जीण र्शीण अवस्था में अपना बैभव दर्शाती उस गली में देखी जा सकती है।

इसी गली के शुरू में ही दूसरी बहुत बड़ी हवेली थी बज़ीर आसु की। जिसके साथ लगते बागीचे में संतरों के पेड़ थे। इस हवेली के विलकुल सामने गंगाराम जज का भव्य भवन था।

सभी बच्चे वज़ीर आसु के संतरों के पेड़ से संतरे चोरी करने के ताक में रहते। वज़ीरों का रसोइया मथरा, जिसकी कमर झुकी हुई थी उसे "घोड़ू" कह कर चिढ़ाने का मज़ा उठाते। मथरा भी पूरा सतर्क रहता, बच्चों से तोड़े हुए संगतरों को छीन लेता। अपनी बालकनी में बैठे भव्य आकृति वाले जज साहव धीरे-धीरे हंसते हमे एक एक संतरा देने का निर्णय लेते हुए मथरा को आदेश देते।

बज़ीर आसु की हवेली के उन संतरे के पेंड़ों की जगह अब गाय भैंस बाँधने का तबेला गंधाता रहता है। उसी के अनुरूप उस हवेली का सारा ढाँचा ही चरमरा गया हैं

ख़ैर, उस गली से आज भी होकर निकलो तो यह कहावत याद आती है कि, "रघुपति की कोसल नगरी, यदुपति की मथुरा" ही वैसी कहाँ रहीं, फिर हम लोग तो मामूली आदमी हैं। पंजतीर्थी के राधा कृष्ण मंदिर (विल्लु मंदिर) में आज की प्रसिद्ध राम लीला का श्री गणेश बेबे मैहतानी के बड़े पुत्र स्वर्गीय कृष्ण मैहता व चन्न मैहता तथा प्रेम स्यारिये के बड़े भाई कर्त्तार स्यारिये ने किया था।

यह एक सुखद संयोग ही कहा जा सकता है कि हंसराज पंडोत्तरा चंचल शर्मा तथा स्वयं यश शर्मा तीनों ही रेडियों मे कार्यरत हुए। हंसराज पंडोत्तरा आकाश वाणी दिल्ली में डोगरी न्यूज़ रीडर चंचल शर्मा एकाँउट आफिसर तथा यश शर्मा बरिष्ट उद्घोषक एवम् प्रेम स्यारिया, "अब प्रेम गंडोत्तरा" सेना में पेंटर चुन लिये गये थे। शिव नाथ, रियास्त के सूचना प्रसारण मंत्रालय के मनोरंजन विभाग में कार्यरत रहे। जगदीश सेम जालंधर छावनी के चर्च गेट में फोटो ग्राफर की बहुत बड़ी दुकान "सेम स्टूडियो" के मालिक थे।

एक सच मुझे यह भी वताया गया था कि देखा जाये तो जम्मू में यह सब उन दिनों की बातें हैं जब हमने पाँचवीं कक्षा भी पार नहीं की थी। उन सभी साथियों में से कोई भी डाक्टर, इंजीनीयर, वैज्ञानिक नहीं बन पाया।

तो क्या वह सब खेल भाव-भावी जीवन के लिये फूटते अंकुर थे। फिर भी वह सब पनपती कोंपलें कालांतर में फलते फूलते सफल वृक्ष थे अपने अपने क्षेत्र में।

रणवीर हाई स्कूल में शनिवार को आधे दिन के वाद का सभय सांस्कृतिक कार्यक्रमों के लिये निश्चित था, जिसका बेसब्री से इन्तजार किया जाता। छोटी छोटी लधुनाटिकायें, गाने बजाने के कार्यक्रम होते थे। परन्तु यश शर्मा का अपना कहना था कि, पूरा मंच मिला 1944 में प्रिन्स आफ वेल्ज़ कालिज में जब 'यहूदी की लड़की' नाम के नाटक का मंचन हुआ। उसमें शहज़ादा मार्क्स का रोल अकस्मात ही मुझे मिल गया था। पर अब तक सारे परिदृश्य बदल चुके थे, स्कूल कालिज में दूसरे दूसरे नये साथी मित्र, नये क्षितिज, नई उड़ान भरते भावुक कल्पनाओं के कोमल पंख -

पर इस समय बात नाटकों की ही की जा रही है। सौभाग्य वश हास्य व्यंग्य अभिनेता जितेन्द्र शर्मा भी रेडियो जम्मू में ही कार्यरत थे।

इन्हीं दिनो श्री राम नाथ शास्त्री जी भी कालिज में प्रोफेसर नियुक्त हुए थे। दीवान मंदिर में स्टेज पर श्री हरिकृष्ण प्रेमी द्वारा लिखित "आहुति" नाटक का मंचन किया गया जो महारानी कर्मवति द्वारा दिल्ली के शंहशाह हुमायु क़ो राखी भेज कर भाई बनाने की कंथावस्तु पर आधारित था। इस नाटक में राम़नाथ शास्त्री, लाल चन्द वासुदेवा, श्री ऋषि राज तथा पूर्ण रैणा ने भाग लिया था। पूर्ण रैणा जो कि बहुत ही सुन्दर प्रभाव शाली व्यक्तित्त्व तथा युनानी देवताओं जैसा उनका रूप रंग था। जिनकी बहुत बड़ी हवेली आज भी दीवान मंदिर के मुख्य द्वार के विलकुल सामने स्थित है।

फिर वह कालिज के प्रारम्भिक दिनों में दीप और यश का व्राह्मण सभा में दर्शकों के सम्मुख डोगरा सिपाही यश और सिपाही की पत्नी की भूमिका में दीप का उतरना भी तो छोटा सा नाटय मंच का प्रयास भर ही तो कहा जा सकता है। जिसे लिखा भी यश शर्मा ने ही था।

वर्षों बाद भी दोनों मित्र जब भी मिलते, बहुरूपिये जैसे उस स्वांग

भरने को याद करके खूब कहकहे लगाते, हंसते।

काश! जीवन के नाटय मंच पर भी वह निर्मल चाँदनी सी खिलखिलाती हंसी भरपूर साथ निभाती इन सरल कलाकारों का। फिर तो रेडियों नाटकों, प्रहसनों को लिखना तथा उनमें अभिनय तो रोजी रोटी का साधन ही वना रहा। श्रीनगर में रंग मंचीय नाटकों की प्रतियोगिता में यश शर्मा का लिखा "एक कदम एम मंज़िल" नाटक को प्रथम पुरस्कार मिला था इसकी पूरी चर्चा पहले की जा चुकी है अब तो इतना ज़िक्र ही जरूरी है कि, उर्दू लिपि में होने के कारण तंथा मेरी नन्हें बच्चों की देखभाल की व्यस्तता के कारण वह सब लेखन ज़रा सा भी नहीं संभाला जा सका।

उस समय के संगीत रूपक, हास्य नाटक, लधुनाटिकायें उन सब का कोई चिन्ह तक शेष नहीं। जब सुनने में आता है कि, यश शर्मा ने लेखक के रूप में बहुत कम लिखा है तो मेरा हृदय भारी अपराध बोध से ग्रसित होकर रह जाता है। सारा दोष मेरा ही है।

अभिनय की ही बात की जाये तो नीडोज़ में खेला गया शौकत थानवी कृत "धोविन को कपड़े दिये" यह प्रहसन खूव प्रसिद्ध हुआ था।

जम्मू में हिन्दी उर्दू रंगमंचीय नाटकों में भी अभिनय चलता रहा। जिसमें सब से प्रसिद्ध कृष्णचन्द्र कृत नाटक "दरवाजे खोल दो" था जो गुलाव भवन में खेला गया था। उसमें मेजर हरनाम सिंह, पुणे से आये मराठा वंधु, भाल चन्द्र राव, हरीश राव, सुरेश त्यागी आदि कलाकारों ने स्मरणीय अभिनय के जौहर दिखाये थे।

यश शर्मा को श्री विष्णु प्रभाकर कृत मानवीय संवेदनाओं को उकेरता "डाक्टर" नाटक में कर्नल माधव के अभिनय के लिये पुरस्कृत किया गया था। इसमें केन्द्रिय विद्यालय जम्मू के शिक्षकों ने अभिनय किया था।

श्री शैलेन्द्र शंकर, स्टेशन डाइरैक्टर के निर्देशन में रेडियो नाटकोत्सव में एक अमेरिकन नाटक अभिनीत हुआ था, जिसका अनुवाद यश शर्मा ने किया था। यह नाटक रेडियो स्टेशन के गोलाकार अहाते में वट वृक्ष के नीचे खेला गया था। जिसमें नरेन्द्र शर्मा, यश शर्मा, जितेन्द्र शर्मा, श्रीमति सब्बर वाल, रीता जितेन्द्र जैसे उत्कृष्ठ कलाकारों ने भाग लिया था। यश शर्मा के ही शिष्य चन्द्र मोहन का लिखा नाटक "और आकाश झुक गया"

मंचित हुआ था। जिसका निर्देशन रधुनंदन बाली ने किया था।

फौजी बिधवाओं के सहायतार्थ, इस नाटक की आय से सिलाई मशीनें वितरित की गई थीं। अभिनय के क्षेत्र में किये गये, यह सारे कार्य कहीं से भी किसी अर्थ लाभ के लिये कभी नहीं किये गये थे। P-24 वाले इस छोटे से घर में रिहसलें होतीं। कलाकारों के चाय नाश्ते खाने पीने का पूरा ध्यान रखा जाता।

अब नाटक लेखन की बात की जाये तो कुछ नाटको के केवल नाम भर ही ज़ेहन में शेष हैं जैसे युनिवर्सिटी के अंग्रेज़ी विभाग के डाक्टर प्रजापति प्रसाद जो ग्लास्को युनिवर्सिटी से जिन्होंने डाक्टरेट की डिग्री प्राप्त की थी और मूलतः विहार निवासी थे। उन्होंने पंजाबी नाटक लिखने का यश शर्मा से अनुरोध किया था कि आप युनिवसिर्टी स्टूडेंट को प्रहसन लिखा कर दें तथा उनका निर्देशन भी आप ही को करना है, इस के लिये युनिर्वीसटी की ओर से कोई भी वित्तीय सहायता नहीं दी जा रही है। उस समय दो प्रहसन "चलदी गडडी" चलती गाड़ी, "असींबी हैगे जे" हम भी है, नाम से पंजावी में लिखे तथा निर्देशित किये गये थे जो बहुत ही सफल रहे थे। प्रसाद द्वारा आभार व्यक्त किया गया वह पत्र भी मेरे पास है।

और फिर "तीन शहज़ादे नाम का नाटक गाँधी मैमोरियल कालिज के उसी मंच पर खेला गया था जिस मंच पर लेखक यश शर्मा ने अपने कालिज के विद्यार्थी जीवन में शहज़ादा मार्क्स का अभिनय करके अपने को सौभाग्यशाली समझा था।

इस नाटक की कथावस्तु पढ़े लिखे उन तीन बेकार नौजवानों के इर्द गिर्द घूमती है जो संजोग वश नौकरी पाने के लिये इंटरव्यू देने के लिये एक ही स्थान पर मिल जाते हैं। बेकारी और अर्थाभाव से जूझते हुए भी यह पात्र हास्य व्यंग्य द्वारा जीने की उर्जा समेटे बेहतर भविष्य की तलाश में जुटे रहते हैं।

हास्य और करूण रस का संमिश्रण "तीन शहज़ादे "हिन्दी नाटक दूसरे प्रदेशों के कालिजों में भी खूब सराहा गया था।

"आज और कल" नाम का डोगरी गीतिनाटय सूचना प्रसारण विभाग के कलाकारों द्वारा अभिनीत किया गया था। इस लेखन के लिये अढ़ाई सौ रूपये भी लेखक को प्रदान किये गये थे जब कि, इतने ही

कार्यक्रम यानि पूरे अढ़ाई सौ कार्यक्रम विभिन्न स्थानों गाँवों नगरों में मंचित किये गये थे। जिसकी सूचना मुझे तत्कालीन इन्फर्मेशन अफसर श्री नरेन्द्र सिंह जी से मिली थी।

इस नाटक को संगीत बद्ध किया था स्वर्गीय लक्ष्मीकान्त जोशी ने जो डुग्गर के प्रसिद्ध गायक थे। हास्यं अभिनेता ओमी ने अपने लाजबाव अभिनय से इस नाटक में जान फूंक दी थी।

दूर दराज़ के पहाड़ी गाँवों, कस्वों की भोली अशिक्षित निर्धन जनता, जमीन्दारों, सरकारी अहलकारों तथा स्थानीय साहूकारों के चंगुल में फंस कर शोषित होती थी। नमक चीनी चाय के वदले पांगी पाडर के लोगों से नीलम हड़प लिया जाता। निरीह पहाड़ी लोगों से गुच्छियाँ कुठ, शिलाजीत शहद तथा अन्य दुर्लभ जड़ी वूटियों के बदले काँच की चूड़िया कंधी, शीशे शोख चटक रंगों के नकली रेशम के कपड़े बेचे जाते। मुंशी प्रेम चन्द ने अपनी कहानियों, उपन्यासों में सूद खोर साहूकारों भ्रष्ट पुलीस, आदि का जो चित्रण किया था वही जोंके इस डुग्गर प्रदेश मे शाह तथा बजिया के नाम से जानी जाती है।

लेखक के आँखों देखे, आश्चर्य और अनुभवों की अभिव्यक्ति ही यह ओपेरा "आज और कल है"। जब नया सूरज उगा, नया सवेरा हुआ तो इस परिवर्त्तन से दवे पिसे लोगों के जीवन में भी कुछ आशा का संचार हुआ। इसी ओपेरे की कुछ पंक्तियाँ :-

खुशामदी चापलूसों से धिरे मुख्यपात्र भुक्खशाह का अपनी गद्दी पर हुक्का पीते हुए अपने सद्‌गुणें का बखान करना ज़रा आप भी सुन लीजिये :-

चापलूस चमचे :- चार चफेरे, चारों धाम, गून्जे करदा भुक्खुराम।

शाह स्वयं :- चोरें कन्नें मेरी यारी, पुलसा नैं आऊं छिकना झारी,
मेरे नां दी माला जपदे, लम्बड़ बजिये ते पटवारी,
सब्बने दी मैं गरज टारना, पही बी लोक करन बदनाम।।

चमचे :- तुन्दा नां भुक्खू शाह ऐ,
एह्‌ सारा लाका तुन्दा ऐ
धन दौलत दी थोड़ निं कोई
तुन्दे जैसा होर निं कोई

तुस कैहूदे लेई चिन्ता करदे
तुस जाणी की झूरा करदे
भावें अस मरदे मरी जागे
खीरे तोड़ी साथ नभागे ।

अर्थात :- गाँव के सूद खोर भुखु शाह के खुशामदी लोगो का कहना है कि, आप के नाम का तो चारों ओर हर दिशा में डंका बजा है । अपनी प्रशंसा से फूल कर शाह जी अपने सद्‌गुणें का बखान करते हुए कहते हैं कि इस इलाके के सभी चोर मेरे मित्र है (चोरी की माल खरीदना) पुलिस से मेरी साँठ-गाँठ है । मेरे इलाके के नवंरदार, पटवारी, तहसीलदार सब मेरी मुठ्ठी में बन्द हैं । हर गरज़मन्द की गरज़ को मैं ही पूरा करता हूँ, फिर भी लोग मुझे बदनामी देते हैं ।

चापलूस लोग :- "शाह जी! आप का नाम तो भुक्खु शाह (भूखों का शहनशाह) है । धन दौलत की कोई कमी नहीं है आपके पास । आपको चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नहीं । हम जो आपके साथ है, मरते दम तक साथ रहेंगे" ।

अपने प्रदेश की नाना विषम समस्यों को उघाड़ता तथा उनका चुटीले व्यंग्य द्वारा समाधान इस डोगरी गीति नाटय की अपनी ही विशेषता थी ।

श्री ओमी जी ने भुक्खु शाह का पात्र निभाया था । उस समय के सूचना विभाग तथा प्रांयः सभी रेडियो के गायक कलाकारों का इसमें भरपूर योगदान था अमिता डे ,. अल्पना डे, कृष्ण कुमारी, लक्ष्मी कान्त जोशी प्रकाश शर्मा तथा अन्य सभी कलाकारों के लिये यादगार था वह सातवां दशक । उन दिनों श्री नरेन्द्र सिंह जी इन्फार्मेशन आफिसर थे उन्होंने भी अढ़ाई सौ रूपये का ज़िकर हंसते हंसते किया था ।

अन्य अप्रकाशित गीति नाटय गिलमू, भागू तथा नाटक चन्न ते चीड़ां, गोकुल चोर, राक्षस ते राजे दी बेटी रेडियो पुरस्कृत नाटक न्हेरे दूर करो सभी अप्रकाशित ही हैं । केवल एकांकी नाटक "हीखियाँ, सत्त डोगरी नाटक संग्रह में प्रकाशित है । जब कि डोगरी नाटक "गोकुल चोर" 6-7 जनू 1981 को आल जम्मू काश्मीर यूथ कल्चरल एसोसिएशन द्वारा अभिनव थियेटर जम्मू में नगरोटा के एक्सीडेंट में मारे गये सेना के जवानों की

विधवाओं के सहायतार्थ मंचित किया गया था।

अजोका कल्ब के तत्वाधान में दीपक कुमार, सुरेन्द्र गोयल, अरूण वख्शी, सुरेश कुमार रमण केसर आदि पुरूष पात्र थे तो मिस शोभा, रचना मलहोत्रा सन्तोष सांगड़ा नारी पात्रों की भूमिका में थीं "राक्षस ते राजे दी बेटी" नाम का डोगरी नाटक त्रिकुटाटूरिंग ट्रस्ट द्वारा "पाधा-कटोच के निर्देशन में मंचित हुआ था जिसमें कुल 12 पात्र थे। सलाहकार कमेटी के सदस्य थे मुहम्मद युसुफ टेंग, वाचस्पति शर्मा, एन. डी शर्मा तथा यश शर्मा।

13 अप्रैल 1982 दिल्ली में डोगरा हिमाचल संस्कृति संगम के तत्वाधान में प्रथम अखिल भारतीय डोगरी सम्मेलन में शीशम ड्रामेटिक क्लब राम नगर द्वारा मावलंकर हाल में यश शर्मा का लिखा डोगरी नाटक मंचित किया गया था। प्रस्तुति रामनगर निवासी योगेन्द्र दुबे की थी। इस नाटक की प्रशंसा कर्नल शिवनाथ जी ने भी खुले मन से की थी। इस नाटक को दिल्ली रंगमंच पर अभिनीत होते देखकर काश्मीर टाइम्स के कल्चरल समीक्षक श्री वेद पाल दीप जी ने भी अपनी कलम का रूख नाटक के विश्लेषण की ओर मोड़ा था। योगिन्द्र दुवे को अभिनय के लिये प्रथम पुरस्कार मिला था।

मुख्य पात्र भगतु (कमल शर्मा) महन्ती (ललिता तपस्वी) मुख्य नायिका तथा महन्त के चरित्र को स्वयं योगिन्द्र दुवे ने अभिनीत किया था। कमल शर्मा ने उपस्थित दर्शकों के सम्मुख जव पहलवान की वेषभूषा में ढोल के ताल पर साथियों समेत नाचते हुऐ मंच पर प्रवेश किया तो हाल तालियों की गड़गडाहट तथा वाहवाह की ध्वनि से गूंज उठा। वहाँ अकस्मात भगतु को महन्ती का हाथ थामना पड़ गया। जिसे उसका चाचा वूढ़े साहूकार के हाथ बेच रहा था। वस यही से श्री गणेश होता है नाटक की कहानी का। इस नाटक को देखने N.S.D. के कलाकार छात्र भी आये थे। रेडियो दूरदर्शन का भी अच्छा सहयोग रहा था। जम्मू काश्मीर भाषा एवम् कलचरल अकादमी द्वारा आयोजित नाटय समारोह के उपलक्ष्य में थियेटर मित्र द्वारा यश शर्मा कृत यही डोगरी नाटक 'राक्षस ते राजे दी बेटी', अभिनव थियेटर में 15 जनवरी 1998 को सांय 5-30 बजे मंचित किया गया था। निर्देशक थे श्री संजय कपिल।

"इस नाटक में, श्री यश शर्मा ने डुग्गर अंचल की पृष्ठ भूमि में

समाज के चार अलग अलग वर्गों द्वारा जिस तरह से औरत के शोषण को बुना व उभारा है, उससे एक गीतकार की सूझ व कवि-मन की तड़प यक्सां स्थापित हुई है.। इस नाटक में लगभग एक भार "महन्ती" नामक पात्र पर इस लिये भी है कि उसने न केवल समाज के भदेस और ग़लाज़त को उभारना है वल्कि उसे अपने अभिनय के बल पर विभाजित और स्थापित भी करना है। एक बेवस नारी को जीना भी है तथा तमाम तरह के पुरूष वर्चस्व की खिल्ली भी उड़ाना है। किसी सुरक्षा का आसरा भी तलाशना है। अपने बजूद की सत्ता को भी सामाजिक मूल्यों में स्थापित करना है। रूप-सौन्दर्य, आकर्षण, श्रृंगार यदि उसके पास हैं तो एक नैतिक बोध भी उसके पल्लू से बंधा है"।

(दैनिक कश्मीर टाइम्स, शनिवार 17 जनवरी 1998)

लोक संगीत से लवरेज़ एक प्रस्तुति - राक्षस ते राजे दी बेटी।

नाटक मेला : चार। इस नाटक के समीक्षक है श्री मनोज शर्मा।

नाटक के लेखक यश शर्मा के अपने विचार है इस नाटक की कथा वस्तु के लिये :-

"यह नाटक एक कथा व्यथा है, नारी जीवन की इस अन्त हीन यात्रा की। यह कथा यात्रा त्रेता युग की सीता हो, कोई द्रौपदी हो, शेक्सपीयर युगीन डेसिडिमोना हो, य फिर किसी पर्वतीय आंचल की कोई महन्ती को लेकर हो। किसी न किसी पुरूष प्रकृति के राक्षस से जूझते हुऐ भी विवश है, "राजे की बेटी" किसी न किसी एक पुरूष का आश्रय लेने को"। नारी की इसी नियति को लेकर पुरूष प्रकृति के विभिन्न पात्रों द्वारा दर्शाया तो गया पर, व्यथा यात्रा का अन्त नही।

जम्मू दूरदर्शन पर भी इस नाटक को थियेटर मित्रा के कलाकारों द्वारा दर्शाया गया था।

शिवनाथ, बी - 505 .

पूर्वांषा, मयूर विहार, दिल्ली

5 जून 1991 का लिखा डोगरी में पत्र का अंश इस प्रकार है। "तुन्दा नाटक "राक्षस ते राजे दी बेटी" डोगरा हिमाचल संस्कृति संगम बैसाखी दे पर्व दे मौके मावलकर हाल पर खेडेया गेया हा मिगी इस

अभिव्यक्ति दी शैल शैली बड़ी पसिन्द आई ही। इनें रचनाऐं दा प्रकाशन होना बी लोड़चदा"। अर्थात् :- डोगरा हिमाचल संस्कृति संगम के अवसर पर मावलंकर हाल दिल्ली में आप का लिखा नाटक "राक्षस ते राजे दी बेटी" का मंचन देखा। इस नाटक में की गई अभिव्यक्ति और शैली बहुत सुन्दर लगी। इस का प्रकाशन होना आवश्यक है।"

कर्नल शिव नाथ जी का यह पत्र "अखिल भारतीय रेडियो नाटय लेखन प्रतियोगिता में यश शर्मा को उनके नाटक "न्हेरे दूर करो" के आलेख के लिये डोगरी भाषा के सामान्य वर्ग में तृतीय पुरस्कार प्राप्त करने पर बधाई संदेश के संदर्भ में लिखा गया था।

कर्नल शिव नाथ जी का यह स्नेह आग्रह भरा पत्र कवि अन्तःस्थल को कहीं गहरे से स्पर्श कर गया था। यश शर्मा अपनी विगत मधुर स्मृतिओं में खो से गये थे। शिव नाथ जी के लिये जो मुझे बताया जा रहा था कि जब हम कालिज पहुँचे थे तो शिव नाथ जी अंतिम वर्ष के विद्यार्थी थे। कालिज भर में मेधावी छात्र। संस्कृत और अंग्रेज़ी पर पूर्ण अधिकार। हम दूर से इन्हें क़ालिज आते जाते देख कर आश्चर्य चकित रह जाते। "चेतें दी चित्तकवरी" नाम की पुस्तक में जिन सहपाठिओं का ज़िक्र किया है इन्होंने उन को भी केवल देखा भर ही है, बात करने का तो कभी साहस ही नहीं जुटा पाये।

इनका सादा लिवास, वही छवि मन में आज तक उज्जवल से और उज्जवलतर आभा मयी हो उठी है। विशेष बात कि मुझे इस बात का गर्व है कि, मुझे मेरे गीतों का परिचय इन्होंने ही करवाया था। यह भी एक बहुत बड़ा सत्य है कि डोगरी की जो मान प्रतिष्ठा आज है, भारतीय भाषाओं के समकक्ष गौरवमय स्थान है, इसका पूरा पूरा श्रेय कर्नल शिवनाथ को जाता है। तथा दिल्ली निवासी इन्हीं के कुछेक मित्रों को जाता है। इन्हीं के अनथक प्रयासों से सुनीति कुमार चैटरजी के कार्य काल में डोगरी को 1969 में साहित्य एकेडमी में मान्यता प्राप्त हुई थी। तथ्यों पर आधरित यश शर्मा का यही मानना है।

इस सब बीच के वर्ष कभी सूखे पत्तों से झरते रहे तो कभी कहीं कोमल किसलय से तांबिया पल्लव प्रस्फुटित होते रहे। अन्तर की आँखों में बीतें दिनों की बहुत सी बातें जग पड़ने पर पहले अपने अनुभवों से यह बात

तो कहनी ही पड़ेगी कि यह कवि लोग कुछ जटिल तो होते ही हैं, साधारण आदमी से परे।

तो बात उन्हीं दिनों की, उन दो गुणी जनों की, जो तब घर में आये थे। एक थे डोगरी के महारथी श्री केहरि सिंह मधुकर, जीवन के टेढ़े मेढ़े रास्तों के राही। दूसरा व्यक्तित्त्व था पंजावी भाषा का गीतकार, शिव बटालवी, मृत्यु के बाद की अपनी महिमा को फुल्ल-तारा बनने की काल्पनिक संभावनाओं में समेटता "असां तां जोवन रूत्ते मरना" यौवन रूत्त में मरने का चाव रखने वाला शायर। मधुकर जी तो खूव से परिचित थे पर वह साँवला सा सादा सा बन्दा (व्यक्ति) पहली बार ही घर आया था। गृहस्वामी के आनन्द उत्साह का तो कोई ओर छोर ही नहीं था जैसे :-

दिनों वाद शिव बटालवी के अपने स्वर में उस शाम रिकार्ड की गई गीत गज़ले उनके भाव अर्थ सहित जब मुझे समझाई गई और उनका परिचय मिला तो स्तव्ध रह जाना पड़ा। मुझे अपने पर ही रोष भरा तरस हो आया जो आज तक भी उत्तरोत्तर बढ़ता ही जा रहा है।

इनके बार बार बुलाने पर भी कि यह पंजावी के बहुत बड़े कलाकार, शायर, गीतकार हैं। खुश किस्मती से हमारे घर आये हैं, तुम सुनो तो सही, पर मैंने कोई विशेष तवज्जों दिये बिना चाय पानी की केवल औपचारिकता भर ही निभाई और व्यस्तता का ढोंग कर दिया था। अपने मन का अपराध बोध कुछ तो कम हो जाये उस के लिये इस सत्य को स्वीकारना ही उचित है कि मधुकर का निर्मला के प्रति किये गये अन्याय की फाँस कहीं मन में गड़ रही थी और फिर साँझ के ढलने पर उनका बार-बार उतावला हो उठना भी कुछ विचलित सा कर गया था।

शिव बटालवी के गीत कैसे बंजर वीरानों में फूल उगा सकते हैं। सूनी उदास देहरियों पर युगों के अन्तराल में भी स्मृतिओं के दीप जला सकते हैं। मुझे अपनी भूल का पूरा पूरा अहसास है। सच में ही पंजाब की धरती कितनी उर्वरा है जिस पर वारिस शाह से लेकर शिव बटालवी तक ने स्वयं विष पी कर अमृत रस सींचा है :- शिव बटालवी के गीत का मुखड़ाः "अज्ज दिन चढ़ेया तेरे रंग बरगा" भोर हुई तेरे उजले रंग जैसी।

"माये नी माये। मेरे गीतां दे नैणा विच्च, बिरहों दी रड़क पवे" ओ माँ। मेरे गीतों की आँखों में बिरह की रड़क (चुमन) हो (पड़) रही है।

शिव बटालवी का अपना ही कहना था कि, "मेरे गीत किसे नेई गाने" पर उनके जाने के बाद उनके गीत तो अर्न्तराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कर ही रहे हैं, उन गीतों के गायक भी अर्न्तराष्ट्रीय प्रसिद्धि पर रहे हैं।

कलाकार की नियति ही रहती है कि मरने के बाद ही उसकी कला को उसकी महानता को स्वीकारा जाता हैं। जीवन काल में अपनों की ही बेइमानियों से वह तिरस्कृत होता है। "गल पाके बास्कट काली मुरव्वेयां बाली ते लडडूआं दा भा पुच्छदी" चन्न वे, ते शौंकन मेले दी"

"इस गीत में पंजाब की धरती की युवति जो मेला देखने जाने की शौकीन है उसने काले रंग की चारखाने दार बास्कट पहन रखी है, मेले में लडडूओं का भाव पूछती है"। अपनी भाषा में अपनी ज़मीन की सोंधी खुश्वू से भरपूर फूल खिलाने वालों के अपन जीवन पुष्प की पंखुरियाँ झर जाती हैं। दूसरों की ज़िन्दगी में रंग भरने वालों के अपने जीवन के रंग अध ूरे ही कैसे रह जाते हैं, विखर जाते हैं, नंद लाल नूर पुरी का अपने ही हाथों मार्मिक अन्त रहस्य की पर्तो में चाहे दफन हो गया हो पर प्रवासी पंजाबी समाज में जहाँ पंजाव के गीतों तथा लोकगीतों ने अपनी संस्कृति की पहचान को जीवित रखा है, वहीं नूरपुरी के गीतों के बोलों ने विदेशों में भी भारतीयों को अपनी जड़ों से जोड़े रखा है। कहते हैं कि, मानव जीवन कमल पत्र पर पड़ी जल बून्द सदृश है। क्या बून्द को प्रतीक्षा रहती है उस लहर की, कब आये वह लहर, वहा ले जाये उसे अनन्त सागर तक। गंगा का कितना कितना पानी जा मिला है सागर की लहरों में। इस का कौन हिसाव रख पाया है। इसी सोच में कितने ही चेहरे डूवते उतराते विलीन हो जाते हैं जिन्हें हम "स्वर्गीय" की महिमा से मण्डित कर के बात करने का सहज मार्ग तलाश कर लेते हैं।

यहाँ बात हो रही है स्वर्गीय शंभुनाथ शर्मा जी की। जम्मू में कच्ची छावनी की टाँगे वाली गली में भी शंभुनाथ जी वसोहली वाले परिवार के निकटतम पड़ोसी थे। गाँधी नगर लास्ट मोड़ में भी उनका घर हमारे P-24 वाले घर से ज्यादा दूर नहीं था।

गौर वर्ण, तीखे नाक-नक्श, वलिष्ठ देह यष्टि, पर अब आयु वार्धक्य की छाप स्पष्ट थी। हम सब उनका पितृ-तुल्य आदर करते थे। 1958-1959 में नये नये वसे गाँधी नगर के इस छोटे से मुहल्ले तथा गिनी

चुनी दुकानों वाले रामपुरा बाजार में सब उन्हें प्रभु जी कहा करते थे।

यह जानकारीयां भी हमें मेरे पति ही से मिलतीं। रामलीला में वाल्मीकि की भूमिका मे उतरते तो रामायण पाठ में उनकी गर्जदार और सुरीली आवाज़ दूर दूर तक तैर जाती थी, घर में आने पर यही गुज़री बातें हमें भी सुनने को मिलती थीं, यह प्रभु नाम भी इन्ही का (यश शर्मा) दिया हुआ था। उनका असली नाम तो यहाँ कोई शायद ही जानता हो उस समय और आज भी उनके जाने के पश्चात भी "प्रभु जी" के नाम से ही उनको याद किया जाता है। हारमोनियम बहुत मीठा बजाते थे। हारमोनियम के तीन सप्तकों की प्रथम जानकारी सीमा को उन्होंने ही दी थी। 1960-61 में तुलसीकृत रामचरितमानस का सटीक काव्यानुवाद उन्होंने बड़े परिश्रम से किया था जिसकी भूमिका 15 दिसम्वर 1961 को श्री कर्ण सिंह जी ने लिखी थी।

शंभुनाथ जी के अपने जीवन काल में ही डोगरी साहित्य में उनको अमर कर देने वाली दो कवितायें थी विधवा और "फूलां दा कुर्त्ता" फूलां का कुर्त्ता। "विधवा" कविता में परम्परागत दुर्दशा से जूझती विधवा नारी के जीवन का चित्रण है। फूलां दा कुर्त्ता में निर्धन वालिका फूलां का "कुर्त्ता के फट्टा जिगर गै फट्टी गेया" जैसे :- कुर्त्ता क्या फटा, जिगर ही फट गया, डर से कि सौतेली माँ अब ज़िन्दा नहीं छोडेगी। फूलां का पिता नसीबू (नसीब सिंह) बेटी को सात्वनां देता हुआ कहता है कि "दनां क गरीबी ऐ तां मन बचारदा "नेईं तां नसीबू कदें नीं हारदा" अर्थातः दुःख यही है कि थोड़ी गरीबी होने के कारण मन सोचने पर बिवश है अन्यथा (मेरा नाम नसीव है), नसीव कभी नहीं हार मानता। करूण रस की यह बेजोड़ कविता शायद ही कभी डोगरी साहित्य में दुवारा लिखी जा सकेगी। ऐसा कथन है कवि यश का।

1970 में किसी कवि सम्मेलन के दौरान आये थे जम्मू में श्री मनोहरसागर पालम पुरी। पालम पुर के मंरड्डा नाम के स्थान के निवासी सागर पालम पुरी से परिचय चाहे दिल्ली में सत्तर के दशक में ही हुआ था परन्तु इतना हमें पता था कि हमारे बहुत से जाति गोत्र भाई हिमाचल पंजाव तथा कुछ पाकिस्तान अधिकृत तहसील शकरगढ़ में जा बसे थे। इस जाति की जड़े मूल रूप से डुग्गर प्रदेश में ही हैं।

डोगरा हिमाचल संस्कृति संगम द्वारा 1969-70 में प्रथम डोगरी लेखक सम्मेलन दिल्ली में आयोजित किया गया था। इसमें दोनों प्रदेशों के लेखकों कलाकारों, कवियों, विचारकों ने भाग लिया था वहीं पालमपुरी जी से प्रथम परिचय हुआ था इनका।

यहाँ मुझे अपने कवि पति के लिये यह कहना ही पड़ेगा कि उनका खुला डुला हंसमुख स्वभाव और मिलन सार प्रकृति ही ऐसी है कि जैसे सारी दुनियां ही इनकी अपनी ही हो कोई पराया नहीं पर इनकी यह मन-मौजी प्रवृत्ति प्रायः मेरे लिये परेशानियों का सबव भी बनती रही हैं।

पर सागर पालमपुरी जी तथा उनका परिवार एवम् हम सब का निकटतम वन्धुत्व संवंध था। यानि जड़ से लेकर शीर्ष तक एक ही वृक्ष की टहनियाँ पत्ते थे। हम लोगों के वंश की जड़ थी दर्बुज नाम के गाँव मे जो जम्मू पठानकोट राष्ट्रीय राजमार्ग पर स्थित 'जख' नाम के कस्वे से बायी तरफ जाती सड़क से तीन किलो मीटर के फासले पर है।

वहाँ हमारी कुल देवी माँ दाती के मन्दिर के अन्दर गंगा सदृश ठंडे निर्मल नीर की बावली है। जिसके साथ एक मार्मिक कथा जुड़ी हुई है।

इस डुग्गर प्रदेश की पावन धरती पर जहाँ बहुत से बीर बलिदानियों के शौर्य्य की गाथाऐं हैं वहीं बहुत सी देहरियाँ, देहरे, सत्यावतियां तथा थान आदि की भी स्थपनाऐं की गई हैं। जिन के साथ साधारण जन जीवन के शोषित प्रताड़ित तथा समाज के कठोर आघातों से चूरचूर आत्माओं के करूण क्रन्दन के तथ्य भी किसी न किसी रूप में जुड़े हैं।

फिर भी अन्याय के समक्ष किसी भी मूल्य पर न झुकने के स्थान पर आत्म बलिदान को ही श्रेयस्कर समझना हर एक ऐसी घटना की पृष्ठ भूमि रही है। यही आत्म वलिदानी आत्मायें लोक देवता के रूप में प्रतिष्ठित होती हैं।

लोक देवता डुग्गर संस्कृति का अभिन्न अंग हैं। हर वंश तथा परिवार का अपना-अपना कुल देवता य कुल देवी होती है।

कोई भी परिवार में शुभ कार्य आरम्भ करने से पहले कुल देवता का आर्शीवाद लेना आवश्यक होता है। जम्मू प्रदेश में एक विशेष जाति के लोग जो जोगी कहलाते हैं वह एक डोगरी बाद्य यंत्र किंग के साथ एक विशिष्ट गायन शैली में यह पूजा अर्चना गीत गाते हैं जिसे कारक कहा

जाता है।

यह कारकें परम्परागत ढंग से वंश कथायें तथा घटनाओं एवम् तिथिओं आदि की निर्विवाद प्रमाणिकता की धरोहर को पीढियों से पीढ़िओं तक पहुँचाने का मौखिक कर्त्तव्य निभाती हैं।

बाबा जित्तो, रियासी के पास ग्हार के जित्तमल्ल। वीरपुर के दातारणपत जैसे स्वाभिमानी तथा अन्याय के सम्मुख कभी न झुकने वाले बलिदानी चरित्रों के साथ सत्य और न्याय के लिये अपने आप को होम कर देने वाली डुग्गर नारियां भी बुआं तथा सत्यावतियाँ दाती नाम से लोक मानस में प्रतिष्ठित हैं।

ऐसी ही एक करूण तथा उग्र दो विरोधामासों को समेटती कारक हमारी वंश की माँ दाती की है। यह लोक बिधा कारकें उस समय की घटनाओं को न संजोये रखतीं तो आने वाली पीढ़ियों को यह दुर्लभ विरासत कभी भी न मिल पाती, क्योंकि इतिहास इन तथ्यों में बिलकुल मौन है। इतिहास की कोई प्रमाणिक तिथि मौजूद नहीं है सिवाये इसके कि दबुज्ज का वह कुआं नानक शाही ईटों से निर्मित है।

यह सब घटना क्रम उस आपराजी युग की है जब हन्ने हन्ने राज थे। 20-25 गाँवों का मालिक जागीर दार भी अपने आप को राजा कहलाने से अपने गर्व की तुष्टि मानता था। निरीह जनता की रूप रंग गुण युक्त किसी भी वस्तु को बल प्रयोग द्वारा छीन लेना, जैसे इन बाहुबलियों का जन्म सिद्ध अधिकार बन चुका था। दर्बुज के आसपास के इक्कीस गाँवों का मालिक राजा लालपाल दुष्ट दुराचारी और लोभी प्रकृति का व्यक्ति था। राजा लालपाल गढ़ सन्देहरी जो दबुज से कोई एक डेढ़ कोस की दूरी पर थी। वहीं निवास करता था। संभवत् आज का सलमेरी गाँव उसी गढ़ सन्देहरी का ही कोई बदला नाम हो, ऐसा सिर्फ अनुमान मात्र ही है, विश्वसनीयता का कोई आधार नहीं है।

इसी गढ़ सन्देहरी के अर्न्तगत दवुज गाँव में काली नाम की ब्राह्मण विधवा नारी अपनी दो अवोध पुत्रियों रूपड़ी सरूपड़ी (रूपा-स्वरूपा) तथा छोटे भाई लैहणा के साथ जैसे-तैसे जीवन यापन कर रही थी। लैहणा खूब वलिष्ठ था तथा छिंज (मल्लयुद्ध-कुश्ती) में प्रबीण था। निर्बाह के नाम पर गाँव के बागुल राजपूतों की यजमानी तथा इस परिवार के पास एक कपिला

नाम की हृष्ट-पुष्ट सुन्दर गाय थी जो पूरे इलाके में कामधेनु के नाम से प्रसिद्ध तथा पूज्यनीय थी।

राजा की आँख इसी कपिला गाय पर गड़ी थी। माँगने पर जब इनकार हुआ तो राजा के सिपाही ढलती साँझ में चरागाह से ही गाय चुरा कर ले गये। लैहणा अखनूर मे प्रतिवर्ष होने वाली छिंज (कुश्ती) प्रतियोगिता में भाग लेने गया था।

आगे के घटना क्रम से पहिले उस काली नाम की महिला का वंश परिचय अतीव आवश्यक है क्योंकि उसी के (दबुज की माँ दाती) कें ईदगिर्द पूरा घटना चक्र घूमता है।

जम्मू से वगुला बगुना राया मोड़ पर स्थित है जो इस समय राजिन्द्र पुरा नाम से प्रसिद्ध है। 1947 के विभाजन के पश्चात पाकिस्तान के आक्रमण को नाकाम करने वाले अमर शहीद परमवीर चक्र विजेता ब्रिगेडियर राजिन्द्र सिंह जी उसी बीर भूमि की संतान थे जिस की मिट्टी में सैंकड़ों वर्ष पहिले उस काली नाम की कन्या का रैणा जाति के एक साधारण से ब्राह्मण परिवार में कार्त्तिक पूर्णिमा के दिन जन्म हुआ था। तब किसने जाना था कि यही कन्या भविष्य में अत्याचारी राज सत्ता को ललकार कर उसको समूल जड़ से नष्ट कर के युगों युगों तक के लिये एक इतिहास रच जायेगी, अन्याय का विरोध करते हुऐ अपने निर्भीक अमर वलिदान से इस डुग्गर भूमि को धन्य कर जायेगी।

कारक में वर्णित कथानुसार,

राजा लाल पाल ने कपिला गाय हथियाने के सभी हथकंडे अपनाये जिन्हें काली ने ठुकरा दिया।

एक दिन गो धूलि बेला में जब जंगल से कपिला के स्थान पर चरवाले ने घवराये हुए रोते चीखते हुए काली को सूचित किया कि कुछ सिपाही जोर ज़वरस्ती गाय को हाँक कर गढ़ सन्देहरी की तरफ ले गये हैं तो काली का माथा ठनका। वह तत्काल सन्देहरी की ओर अकेली ही चल दी। साँझ ढल चुकी थी, राजा लालपाल दरबार खतम करके महल में संध्या पूजा के लिये जा रहा था।

अपनी गाय को वापिस लेने के लिये काली ने बहुत अनुनय विनय की परन्तु राजा सफेद झूठ बोलता रहा कि, उस के पास गाय है ही नहीं।

इस झूठ पर काली क्रोध में चीख पड़ी, उसकी आवाज़ को सुन कर "लोक कवि के शब्दों में"

सत्तमें भोरे बद्धी कपला, लोहे दे सौंगल पाई।
अरजां करदी माता सुनिये जोरै नैं रंभाई।

"अपनी पालन हारी माँ की आवाज़ सुन कर सातवें तहखाने में लोहे की सांकलों में जकड़ी कपिला ने जोर से रंभा कर अपने होने का पता जताया।" तब राजा ने दूसरा पैंतरा बदला कि, अभी तो मैं सांध्य पूजा करने जा रहा हूँ, अपनी गाय कल ले जाना।

वह असहाय निर्वल नारी कर भी क्या सकती थी। राजा के इस आश्वासन के पश्चात् घर में अकेली दोनों छोटी बेटियों की चिन्ता सता रही थी। वापिस दर्बुज लौट आने पर किसी पड़ोस में रहने वाली ने ताना कसा कि,

"कून्दी सुनी इस गुआंडनी ने, सिरा पर आन गलाई
गंगा गये फुल्ल फिरदे नांई, तुगी भेजेया राजे ने पत्याई।
बोल्ली लग्गीये सील बैन्ती की, गेई कलेजा खाई
मन्दी कीती भैन गुआंडनी, अग्ग बलदी पर पाई।"

वापिस दबुज आने पर दोनों वच्चियों के कुम्हलाये चेहरे देख कर माँ ने उन्हें गले से लगा लिया। उनकी बात चीत सुन कर व्यंग्य वाण चलाती हुई उसी पड़ोसन का कथन था कि, "राजे ने विलकुल झूठा आश्वासन (पतियाया) दिया है कि, गाय लौटा देगा। मृत्यु के पश्चात् फूल (अस्यियां) गंगा में प्रवाहित होने पर क्या कभी कोई जीवित वापिस लौटा है"?

इस बात नें काली का कलेजा छलनी कर दिया। इस कठोर सत्य ने हृदय में जलती ज्वाला पर तेल का काम किया। दूसरे दिन मुँह अंधेरे ही क्रोध से भरी काली ने महलों में जा कर चेतावनी दी कि, ओ राजा! यदि तुम अपना भला चाहते हो तो मेरी कपिला गाय को छोड़ दो नही तो अपनी कपिला के कारण (कटार) से मैं अपने आप को काट कर मृत्यु के हवाले कर दूंगी।

उस ब्राह्मण नारी की यह भंयकर प्रतिज्ञा देख कर रानियां भय से थर-थर काँप उठी। रानिवास के पर्दे की राजपूती प्रथा को तोड़ कर मण्डी

मे वैठे राजा के चरणों मे जाकर गिर गईं कि आप कपिला गाय को इसके हवाले कर दें। इस ब्राह्मणी के महापाप के भागी होने से हम सभी का सत्यानाश हो जायेगा।

परन्तु काल की गति विचित्र है। वही काल राजा के सिर पर भी मंडरा रहा था। हठ वश कपिला के स्थान पर एक सौ साठ गायें देने का प्रस्ताव रख दिया गया, तत्पश्चात सोनें की गाय देने का प्रलोभन भी उस निर्धन अवला के सम्मुख प्रस्तुत किया गया :-

इस कारक में लोक मानस का इतिहास सुरक्षित है, किसी लोक कवि द्वारा किस कुशलता से शौर्य्य और करूण रस को पिरोया गया है यह राजा और उस महिला के एक संवाद की झलक मात्र से स्पष्ट हो जाता है।

"काले दे बस राजे ने, माता गी बचन सुनाई
आखदा मरेयां नेई ब्राह्मणिये, तुगी दिन्ना सौ-सट्ठ गाँईं।

माँ का उत्तर था :-

"सौ सट्ठ गाँईं क्या करां राजा, मैं जट्टी गुज्जरी नांई,
एह् धन कुन कोई मँगु चारे, कुन्न करनी टंडुवाई

धूर्त्त राजा ने एक और पैतरा बदला :-

"बोल्लै राजा वचन करै, जिन्न माता गी गल्ल सनाई
मरेयां नेई ब्राह्मनिये, तुगी दिन्नेया सुन्ने दी गांई,"
ब्राह्मणी ने तत्काल पलट कर जबाव दिया कि,
"सुन्नें दी गांई क्या करां राजा, जेड़ी बद्धी दी घाऽ नेंई खाई
क्या करां राजा सुन्नें दी गाई, जेड़ी सिरे पर चुक घुमाई
ऐसा पवै कोई चोर उचक्का, जेहड़ा कपलां लै चुराई
कपलां लेई जा घर सन्यारे, अंग अंग लैग तड़ाई
कपलां लैगी उयै राजा, जेहड़ी डक्की मैहलें जाई।

राजा द्वारा एक सौ साठ गायें देने के प्रस्ताव पर उस स्वाभिमानी नारी का उत्तर था कि, "मैं कोई जाटनी य गूजरी (दूध के व्यवसायी) नहीं हूँ जो दूध दही बेचने का व्यवसाय करूंगी। मेरे यहाँ कौन देख भाल करेगा, कौन चरागाह् ले जायेगा। यह वार भी खाली जाता देख कर कुटिल राज ने कपिला के बदले सोने की गाय वनवा कर देने का पासा फेंका"।

संसारिक लोभ लालच से कोसों दूर माता के द्वारा दृढ़ता पूर्वक दिया गया उत्तर अपने आप में एक अनूठा व्यवहारिक तर्क था कि सोने की गाय मेरे किस काम की होगी, रसोई के पहले अन्न (आटे का पेड़ा) का भोग तथा हरा हरा घास नहीं खायेगी। धूप और छाँह में बांधने के लिये उसे सिर पर उठा कर ले जाऊगी। सोने की गाय को कोई चोर चुरा कर, सुनार के पास बेचेगा। सुनार उसके अंग अंग काट कर आग की भट्ठी में पिघलायेगा।

हे राजा! तुम मेरी कपिला वापिस दे दो। उधर कपिला जब से महलों के तहखानें में बंधी थी उसने तब से न तो एक बून्द पानी पिया था न घास का एक तिनका तक खाया था।

उधर भूखी प्यासी कपिला तड़प रही थी इधर माँ काली ने बिना कपिला के अन्न-जल त्याग रखा था।

भूखी प्यासी कपिला के तड़प तड़प कर मर जाने का पता लगते ही काली का आहत क्रोध रौद्र रूप धारण कर गया।

जन कवि ने उस समय का कैसा चित्रण किया है। धर वापिस आ कर :-

ध्रूड़ कटारा कड्डेया माता ने, नाग जिया शरनाई,
हत्थ कटारा घागरे आला, हाकां लान्दी आई"।

"पैने दाँतों वाला कटारा माँ के हाथों में ऐसा लहरा उठा मानों भयंकर नाग का फन लहरा रहा हो। चण्ड़ी जैसा रूप धारे ललकारती हुई वह पुनः गढ़ सन्देहरी जा पहुँची"।

क्रोध दे बिच आई माता, जिन्न टुम्ब कटारे दी लाई,
बड्डी मास हड्ड खाली करदी, मैहलें छापे लाई।

अर्थात :- "क्रोध में भरी उस रौद्र रूपा महिला ने अपने ही शरीर का माँस काट कर मैहलों में फेंकना शुरू किया तथा बहती रक्त धारा के छापे बाहर की दीवारों पर छाप दिये। इस दृश्य से त्रहि-त्रहि करते लोग बाग त्रस्त हो कर भाग निकले"।

तत्पश्चात् अब आत्म दाह ही का रास्ता शेष वच रहा था। वापिस दंबुज आ कर अपने ही घर को आग लगा कर दोनों बेटियों को गोद में लेकर उसी चिता अग्नि में भगवान का स्मरण करती हुई वह अवला नारी

धू-धू करती अग्नि में समा गई।

चिता की अग्नि से जब आकाश को छूती लपटें प्रज्जवलित हो उठीं तो कृतज्ञता वश आंगन के पेड़ों की चिड़ियाँ भी अग्नि में गिर गिर स्वाहा होने लगीं। इन चिड़ियों को नित्य दाना दुनका डालने वाली दयामयी माता की यह निरीह पक्षी और कैसे सहायता कर सकते थे। कपिला गाय के दूध का भागीदार नाग भी इस घटना से अनभिज्ञ नहीं रहा, धू-धू करती चिता की लपटों में नाग ने भी अपना आप होम कर दिया।

दंगल की माली जीत कर जब भाई लैहणा वापिस खुशी खुशी बहन के घर दबुज के पास पहुँचा, तो जंगल में फैली आग की तरह इस घटना की उसे सूचना मिली तो मानो उसके पैरों तले की धरती खिसक गई और आकाश टूट कर सर पर आन गिरा। धधकती चिता में भाई ने भी अपने आप को स्वाहा कर दिया।

इस प्रकार राजा लाल पाल के हठ से वह सारा ब्राह्मण परिवार काल के गाल में समा गया। इस भयानक काण्ड तथा अत्याचारी राजा के भय से उस समय दर्बुज मे रहने वाले सभी विलालोच ब्राह्मण परिवार रातों रात गाँव छोड़ कर भाग निकले। जिनमें हमारे पूर्वज भी थे जिन्होंने रावी पार करके पंजाव के भंगूड़ी नाम के कस्वे में जा कर शरण ली। जो हिमाचल की तरफ पलायन कर गये थे, उन्हीं के वंशज कवि मनोहर लाल सागर पालमपुरी थे। हमारे पूर्वज पुनः आज से सौ सवा सौ वर्ष पहिले बसोहली आ गये थे। हमारे बावू जी (ससुर) तथा उनके भाई बाँधव चाहे जम्मू तथा काश्मीर में कार्यरत रहे पर वसोहली वाले ही कहलाये।

कालान्तर में दर्बुज गाँव के उसी स्थान पर जहाँ चिता जली थी एक ठंडी निर्मल जल धारा फूट निकली। जो अब एक बावली के रूप में हमेशा ठंडे मीठे निर्मल जल से परिपूर्ण रहती है। यही वावली अब सब की आस्था का केन्द्र है जिसके ताखचों में माँ काली, दो बेटियाँ, भाई लैहणा, कपिला गाय, नाग तथा चिड़ियों के मोहरे (प्रस्तर शिल्प) स्थापित हैं। इस सम्पूर्ण माँ परिवार तथा उस बावली का नामकरण "माँ दाती की बावली" से प्रसिद्ध है। "चिताग्नि की धधकती लपटें" तथा स्वयमेव प्रस्फुटित "गंगाजल के समान शीतल जल" यह विरोधाभास अपने आप में एक रहस्य है, चमत्कार है।

प्रतिवर्ष आषाढ़पूर्णिमा के दिन असंख्य श्रद्धालु माँ दाती की बावली

में स्नान कर के अपनी श्रद्धा के फूल चरणों में अर्पित करते हैं। इस एकत्रित जन समूह को मेला न कह कर मेल का नाम दिया जाता है। यह मेल कार्त्तिक पूर्णिमा को बगुना स्थित माँ दाती के जन्म उपलक्ष्य में तथा आषाढ़ पूर्णिमा को पुण्यतिथि के रूप में दुर्बज गाँओ में संपन्न होती है। कालांतर में इस अकारण उत्पीड़न तथा आत्मदाह की कथा में कुछ चमत्कारिक घटनायें भी जुड़ गई है। पर लोक विश्वास मिथक दंतकथाओं का समावेश इन कारकों का स्वाभाविक गुण होता ही है।

पालम पुरी परिवार से माँ दाती के बंशज सन्तति का संबंध तो था ही सागर पालमपुरी से साहित्यिक मानसिकता का संबंध भी खूव जुड़ा था। वह भी प्रकृति सौन्दर्यचेता कलाकार थे। हिमाचली भाषा में उनकी एक कविता की बानगी :-

घरे ते मैं आया, प्यारां दी रूत्त थी
नमें जोवनां दे उभारां दी रूत्त थी।
हवाई च मिलेया था रंग होलिया दा
रंगोइयां रंगोइयां फुहारां दी रूत्त थी।

अर्थात : "जब मैं घर से चला था तो वह प्यार का मौसम था। प्रकृति के कण-कण में यौबन का उभार था। हवा में भी होली का रंग घुला था अर्थात् वासन्ती पवन हिलोरें ले रही थी। चर्तुदिक रंगीली फुहारों की वह ऋतु थी।

हसा दे थे फुल्ल, आरूयां-कुसुम्बली दे,
वणे-बागडुआँ न्हारा दी रूत्त थी।
थी फौगुनी ही धुप्प, चाननी चेत्तरे दी,
घरां अंगणां च तिहारां दी रूत्त थी।

अर्थात : "आड़ू और कुसुम्बली के फूल हंसी लुटा रहे थे, बन वागीचों में बहार छाई थी। आड़ू के रजत घवल शिगूफे चैत्र मास की चाँदनी की छटा विखेर रहे थे तो कुसम्बली के सुनहले पुष्प फागुन की मीठी धूप की आभा का आभास दे रहे थे। मौसमे बहार के आते ही पर्वतीय प्रदेश के रंग बिरंगे त्योहार भी घरों आँगनों में उल्लास के रंग भर देते हैं।

थे धारां च नच्चा दे, वद्धला दे खिन्दलु

कुदरती दे गूढ़े सिंगारा दी रूत्त थी
नीं औन्दा छलैपें दे जाला (जाल) च सागर
तेरे लारेयां पर तवारां दी रूत्त थी।

अर्थात : गगन चुम्बी पर्वत चोटियों से कुछ उपर (धारें) हल्के सफेद रूई जैसे बादल नृत्य कर रहे थे यह ऋतु थी प्रकृति के विभिन्न गहन रंगों के सौन्दर्य की। प्रकृति सुन्दरी के इस लुभावने माया जाल में फंसने वाला सागर कभी नही था। फिर भी "अये प्रेयसी" यह जानते हुए भी कि तुम्हारे सारे वायदे कसमें झूठे होने पर भी तुम पर इतवार (विश्वास) करने की ऋतु थी।

यहाँ पर प्रकृति के नैर्सीगक सौन्दर्य के पुरोधा सुमित्रानंदन पंत की उन पंक्तियों का स्मरण हो आता है। "बाले तेरे बाल जाल में कैसे उलझा दूं लोचन"। प्रकृति में जीवन के रूप दर्शन से ही संभवत् : जीवन सदैव रस मय प्राणवन्त रहा है।

सागर पालमपुरी की उर्दू गज़ले भी बहुत खूव सूरत थीं। जम्मू के अभिनव थियेटर में उनका अंतिम बार आना भी उर्दू मुशायरे के लि़ये ही था। "चिड़ियों के घोंसले" नाम की रचना वर्त्तमान के यर्थाथ पर एक करारा व्यंग्य था जिसकी फरमाइश जहाँ कहीं भी कवि सम्मेलन होता वहीं की जाती।

उनका जम्मू आने पर खुले मन से ठहाका लगाना "भाबो आई गेया दाती दे खूहे पर न्हाई करी पाप तुआरने जो" (भाभी आ गया हूँ दाती के कुयें पर नहा कर पाप उतारने के लिय)। मनोहर लाल सागर पालमपुरी मेरे पति (यश शर्मा) से डेढ़ दो वर्ष छोटे थे, इसी से इनको भाई जी कहते थे। इन दोनों की कविता को लेकर झड़पें भी खूव मज़ेदार होती। उनके गीत के इस मुखड़े पर "मिंजो हौले-हौले बाजां मारदा भावो पुत्त-पलमा दा (मुझे धीरे धीरे पालमपुर का छोकरा आवाज़े देता है भाभी)

इन का कहना था कि तूने यह नूरपुरी के गीत के मुखड़े का रंग चुराया है। "सभी मुख़डे सभी रंग अपने ही होते हैं", सागर के इस कहने पर दोनों में खूव वहस होती। तब, दाग़ के इस शेअर के एक मिसरे पर सारी बहस का अन्त होता :

"एक ही रंग है सब में यह तमाशा कैसा" कौन जानता था कि यह इस तमाशे का सच में ही अन्त ही था। उनके वापिस जाने के कुछ दिन ही

वाद उनके बेटे द्विज का फोन था कि पिता जी नही रहे। न रहना शरीर का धर्म है पर कालजयी शब्दों के शिल्पी तो रहेंगे ही।

यह सारे ज़िक्र इस लिये किये जा रहे हैं कि आकाशवाणी में कार्यरत होने से श्रीनगर और जम्मू में आने-जाने वाले प्रसिद्ध विद्वानों के दर्शनों का सौभाग्य मिलता रहा, तो जम्मू में पंजाबी कवि, गीतकारों के साथ भी इनकी काफी नज़दीकियाँ रहीं। क्योकि रेडियो जम्मू में हिन्दी, पंजाबी प्रोग्रामों य मुशायरों के सिलसिले में यह लोग जम्मू आते तो इन से मिले वगैर नहीं जाते थे, जैसे हिन्दी कवि दुष्यन्त कुमार उनकी पत्नी, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, वीरेन्द्र मिश्र, कन्हैया लाल नंदन, वीर सक्सेना। वीर सक्सेना कुछ समय जम्मू में कार्यरत थे।

इन सब से मिलने का माध्यम वीर सक्सेना ही थे। इन सब का हार्दिक स्वागत घर में करने का तथा रचनायें सुनने का अवसर भी मिलता रहा। यदि संगीत के लिये संगीतकारों के दर्शन तथा आतिथ्य का अवसर मिलता था तो अव दौर था गीत कवितायें सुनने का तथा सुनाने का भी।

सच कहा जाये तो मेरा धर्म चाहे य अनचाहे इन के साथ चलना ही रहा है। कचोट मन में रही तो यही कि स्वयं पंजाब की होते हुए भी शिव बटालवी की अवहेलना य फिर उन को पहिचानने में कितनी बड़ी भूल की थी मैंने। वीर सक्सेना ने जब दिल्ली के मावलंकर हाल में "राक्षस और राजे की बेटी" का मंचन हुआ था तो इस नाटक की सूचना को टेलिकास्ट तथा प्रसारित इन्ही नंदन जी के द्वारा करवाया गया था।

जम्मू मे उर्दू के प्रसिद्ध शायर श्री चन्द्रप्रकाश तालिव ऐमना वादी प्रोफेसर ललित मंगोत्रा के पिता श्री लोक नाथ जी जो उनके मित्र थे उन से मिलने जब भी लास्ट मोड़ गाँधी नगर में आते तो उनका रास्ता हमारी गली से ही हो कर जाता था।

डेढ दो घंटे घर में जरूर वैठते अपनी ताज़ा उर्दू गज़लें सुनाते। और इन्हें मंत्र मुग्ध कर देते। तालिव साहिब उर्दू के प्रसिद्ध शायर सीमाव अकवरा वादी से इस्लाह लेते थे। उनसे पहिला परिचय पचपन छप्पन वर्ष पहले धर्मशाला में सोम प्रदीप के घर में हुआ था, उन दिनो तालिव साहिव धर्मशाला के योल कैम्प में कार्यरत थे।

"हम कहाँ के ऐसे हैं, किसको याद आयेंगे,

लोग भूल जाते हैं, लोग भूल जायेंगे। ...तालिव एमनावादी

पर वह आज भी कहाँ भूले पाये हैं।

अर्श सहवाई जिनका पूरा नाम हंस राज अबरोल है प्राय हम दोनों को अपनी ग़ज़लें सुनाने के लिये महीनें में एक दो वार आते रहते हैं। विद्यारत्न आसी भी आते हैं तो उनका कलाम सुनना भी हमारा धर्म हो जाता है। रात अच्छा लगा चाँद तुम सा लगा (आसी)

यहाँ नेक, दानिशवर, डाक्टर असदुल्ला वानी का ज़िक्र जरूरी है, जिन्होंने इकबालियात पर डाक्टरेट की है। काश्मीरी, गोजरी, उर्दू के मौज़ुआत पर इनके साथ अक्सर बहस मुवाहिसा चलता ही रहता है। उनका एक शेअर देखियेगा -

रेत के दश्त में पानी न शजर कोई
मैं तो बंजारा हूँ, मंज़िल है न घर कोई।

इसके अतिरिक्त कठूआ की विदुषि, युवा कवियत्री "श्रीमति विजया ठाकुर" जब अपनी डोगरी, हिन्दी रचनाऐं घर में मीठे स्वर में गा कर सुनाती है तो जैसे कवि का अपना अतीत साकार हो उठता है।

डोगरी के युवा कवियों का आना जाना तो लगा ही रहता है। विशेषतया डाक्टर नसीव सिँह मन्हास, नरेन्द्र सिँह चिब, बिशन सिंह दर्दी, केवल कुमार केवल। इन सभी की रचनाओं की अपनी अपनी शैली के इन्द्रधनुषी रंगों की मनोहारी छटा से आत्म संतोषी हो उठता है, कवि यश का मन।

इस प्रकार घर में पंजावी, हिन्दी, उर्दू , डोगरी गीतों कविताओं के दीपक जगमगाते ही रहते हैं।

इन सब से परे हट कर, राधा कृष्ण के प्रेम रस में पगे उस व्यक्तित्त्व का नाम न लिया जाये तो बात अधूरी सी ही रह जायेगी। उस "बाउल" कवि गायक का नाम है "श्री पुरूषोत्तम पाँडव" इन के लिखे वैष्णव गीतों को कंठस्थ करके हृदयंगम कर रखा है उन्होंने। उनका आना जाना भी जैसे आँख मिचौनी का खेल हो कोई।

पुर्न जन्म एक कविता का :-

(सन्नासरे दी इक्क सन्झ)

(सन्नासर की एक साँझ)

इस कविता का जन्म तो 1972 के पहले का है परन्तु पुर्नजन्म 1972 का ही कहा जायेगा क्योंकि डोगरी साहित्य के दानिशवरों ने तो 1972 जुलाई में इसे लाल स्याही की नोक से काट पीट कर वैल्यु ज़ीरों मूल्यांकन द्वारा मृत घोषित कर दिया था। यहाँ पर पुनः जीवन दान मिलने की ही बात करना मुख्य ध्येय हैं अन्यथा यह कविता कोई ऐसी विशेष तो नहीं है कि जिसका ज़िक्र अलग से करने की आवश्यकता पड़ती। वैसे तो सभी रचनाओं की रचना प्रक्रिया में कोई न कोई इतिहास तो रहता ही है। तो प्रस्तुत है स्वयं रचनाकार के शब्दों में ही।

"आकाशवाणी जम्मू केन्द्र के निदेशक थे श्री बिद्या भूषण अग्रवाल। हिन्दी के प्रसिद्ध कवि श्री भारतभूषण अग्रवाल जी के अनुज! बी.बी अग्रवाल स्वयं भी साहित्य सेवी तथा कला पारखी थे। पच्चीस वर्ष पुरानी बात है, प्रोग्राम बना था पत्तनीटाप के सान्निध्य में सन्नासर का मनोरम स्थान देखने का।

तै हुआ कि, देहाती कार्यक्रम के प्रोडयूसर श्री बोधराज शर्मा किसान भाइयों से इंटरव्यू लेंगे और मुझे रेडियो के लिये एक रूपक लिखना होगा। दिसम्बर मास की एक उजली सुबह, हम तीनों ईशर दास ड्राईवर के साथ अपने गंतव्य स्थान की ओर चल पड़े। दिन बड़ा सुन्दर चमकीला था। सन्नासर में कोई सर तो है ही नहीं सभवतः कभी कोई रहा होगा, जभी तो नाम पड़ा होगा इस जगह का सन्नासर। कल्पना ही की जा सकती है कि मानसर झील की तरह यहाँ कोई सरोवर होगा, झील में कमल के फूल होंगे, नौकाऐं भी तैरती होंगी। आज कल तो एक हरा भरा ऊबड़ खाबड़ मैदान, उस में एक डाक बंगला, दो चार ईट-गारे से निर्मित कमरे यानि (हटस) थोड़ा नीचे जाकर सौ-पचास घरों का एक गाँव।

इन का कहना था कि एकाध बार मैं तो, पहले भी कुछ दोस्तों के साथ सन्नासर आ चुका था तब भी मौसम ठंडा था और इक्के-दुक्के ही सैलानी थे। पर डाक बंगले का चौकीदार रसिया नाम के अनुरूप ही रसीला बातूनी एवम् चाकचौबन्द था।

इत्तिफाकन अग्रवाल साहिव के साथ फिर दिसम्वर में ही आना

हुआ था। चारों और पर्वतों से घिरी इस घाटी में शहर के शोर शराबे से दूर, एक सुकून, एक सुख शान्ति निवास करती है। पहाड़ों पर हल्की हल्की बर्फबारी हो चुकी थी। घाटी में संध्या से पहिले ही संध्या का आगमन हो जाता है। नीड़ों मे दुबके पंख पखेरू, मौन स्तब्ध निश्चल तरूराजि- प्रकृति में महामौन का साम्राज्य, मौन की भी अपनी ही भाषा होती है, इस भाषा में अनसुने गीत, अनदेखे रूप और होती हैं मनोहारी दिव्य छटायें।

अग्रवाल साहिव उस मौन संवलाये साँध्य सौन्दर्य पर मुग्ध थे। सकौतुक सुहृदयता वश कह उठे कि यह सौन्दर्य दृष्टि में तो बाँधा जा सकता है पर शब्दों में बंध जाता तो जाती बार साथ ही ले जाता। "इस पर कोई गीत कोई कविता लिख सको तो लिखना यश"! तब मुझे बताना पड़ा कि वर्षो पहले मैंने सन्नासर पर एक कविता लिखी थी पर अपनी भाषा में। उस कविता को जम्मू चल कर सुनाने के उनके मृदुल आग्रह से वशीभूत मैंने वहीं उन्हें "सन्नासर दी इक्क संझ" सुनाई तथा उस का हिन्दी करण भी किया था।

"सन्नासरे दी इक्क सन्झ" कविता

"उदास सन्झ :-

सन्नासरे दे कटोरे च लगी पेई लूह्न (ढलने)
देव दारें ते चीड़ें दे रूक्ख / झुलान्दें न चंवर
दसम्बर महीने दी ठन्ड / खुबाई दिन्दी,
देई (देह) च हजारां सूइयां।
चुप नचूक / प्हाड़ें दा घेरा / शौरें दा नाच।
हेठग्रां/ उप्पर दब्बड़ / सरकारी हट्टाँ
उतरदी सन्झ / बद्दी कालख।
रसिया चौकीदार / ते इक डाक बंगला।
डाक बंगले च लोऽ ते बाह्र चवक्खे न्हेरा।
अन्दर गड़ाके, पर बाह्र सिसकदी बाओ,
असकें मेरी सीमा डुसकै करदी होऐ।
रसिया चौकीदार
पैह्ले मेरी बीड़ी बालदा,
फ्ही, बालदा अपनी।

बारियें दे म्हीन गुलाबी पड़दें पर,
किज शौरे जन लबदे न, ते फ्ही लोप होई जन्दे न।
तमाशा ऐ कठपुतलियें दा।
एह् जनानी दा सिर ऐ,
धड़ खबरै कुत्थें ?
रासिया चौकीदार / जोरें सूटा लाइये लगदा गलान -
"इत्थैं रोज परियां औन्दियां न।
औन्दियां रार्ती बेल्लै बो, लबदियां, कुसै-कुसै गी।
तुस लखारी ओ,
लिखो हां किश इन्दे पर"।
हन्गूरा भरदे होई। ठन्डू नै जकड़ोए दे मून्डें गी,।
मैं आपूं गै लगना घुट्टन।
हत्थ ते हत्थ, पैर बी सुन्न होई गेदे न।
फेफड़ें तुगर धूं खिच्ची ऐ, रसिया फ्ही गलान्दा।
नज़ारा सोये दी ब्ह्यारा,
स्याले च ते कोई गै, माई दा लाल
जां कोई ...
फक्कड़ फकीर इत्थैं औन्दा ऐ,
ते जां फ्ही ....
कोई शाह दिल सेठ
अज्ज जड़े आए दे न,
ओ मनिष्टर न।
साढ़े हन्सू दी नौकरी
इनें गै लोआनी ऐं।

अर्थात :- एक उदास सांझ,
सन्नासर की, (द्रोणी) घाटी में उतर रही है धीरे धीरे।
देवदार और चीड़ों के पेड़ झुलाते हैं चंबर। देह मे चुभो देती हैं,

हजारों सुइयाँ, दिसम्बर की सर्दी ।

खामोशी, पर्वतों का घेरा, नृत्य करते साये,
घाटी के नीचे गाँओं,
उपर खुला हरियाला मैदान
सरकारी हट्टें, ढलती साँझ,
गहराती कालिमा, रसिया चौकीदार
और एक डाक बंगला ।
डाक बंगले के अन्दर रोशनी,
बाहर चारों ओर गहन अंधकार
अन्दर हंसी के फब्बारे,
किन्तु बाहर सिसकती हवा,
ऐसा लगा जैसे सिसक रही हों सीमायें ।
रसिया चौकीदार, जलाता है, पहले मेरी बीड़ी,
फिर उसी तीली से अपनी ।
खिड़कियों के महीन गुलावी परदों पर,
दीख पड़ते हैं कुछ साये,
फिर लोप हो जाते हैं ।
तमाशा हो रहा है जैसे पुतलियों का ।
अरे । यह उभरा स्त्री का सिर,
किन्तु इसका धड़ कहाँ है ?

रसिया चौकी दार, ज़ोर से बीड़ी का कश खींचते हुए कहता है :

"यहाँ आती हैं, परियाँ हर रोज़,
दीख पड़ती हैं, रात के समय,
पर किसी-किसी को ।
आप तो लिखारी हो,
लिखिये न कुछ इन पर भी"
हुंकारा भरते हुए, सर्दी से जकड़े अपने कंधो को,
स्वयं ही दबाने का जतन करता हूँ ।
फेफड़ों तक, बीड़ी के कश से धुआं खींच कर
रसिया फिर कहता है,

नज़ारा बहार के मौसम में होता है
सर्दी के दिनों में तो कोई भाई का लाल,
य फिर फक्कड़ फकीर आ निकलता है
य कोई पैसे वाला धनी सेठ
अरे भाई! आज जो आये हुए हैं :
वह हैं मिनिस्टर, मंत्री
हमारे हंसू (हंसराज) की नौकरी इन्होंने ही लगवानी है।"

समाजिक वर्ग विसंगतियों में मुखौटा चढ़ाये पात्रों के चेहरे उघाड़ती इस मुक्त छन्द की कविता के जीवित सत्य को अग्रवाल जी पकड़ पाये थे, मेरे लिये यही बहुत था।

उनका कहना था कि "यश जो देखने मे साधारण प्रतीत होत है वही तुम्हारी कलम से असाधाण, अपूर्व हो जाता है"।

अग्रवाल जी ने कुछ रचनाओं के हिन्दी अनुवाद की इच्छा जताई थी। यहाँ से मथुरा जाने पर उन के द्वारा पाँच गीतों के अनुवाद हिन्दी की प्रतिष्ठित पत्रिकाओ में प्रकाशित हुए थे। गीत थे : "संझां धिरदियाँ चित्त कमलाई जन्दा" (साँझ के ढलते ही हृदय कुम्हला जाता है) "संझ सवेरे इक्कै चाह" (साँझ सवेरे यही एक मात्र चाह है कामना है) "एह् मोतियें दी माला मोइये, तूं कुत्थों लेई आई"(यह मोतियें की माला तुम कहाँ से ले आई हो)? "मेरा साथी चन्दरमा" (चाँद तुम मेरे साथी हो) पाँचवां गीत था "गोरी ते सौली" (गोरी और साँवली) यह गीत है नदी जल के रंग सौन्दर्य का।

झज्जर नदी की रंगत गोरी है जबकि तवी नदी साँवली सलोनी है। कवि दृष्टि में यह दो नदियाँ नहीं, अपितु डुग्गर धरतीवासिनी दो अल्हड़ युवा सखियाँ हैं। जैसे यमुना श्यामा है तो गंगा गौर वर्णा। प्रकृति का कण कण रंग भरा है। ऋतु रंग, उसी के अनुरूप परिवर्तित बनस्पति रंग, समय के रंगों में सुनहली साँझ, गुलावी प्रातः अर्थात् प्रातः काल से संध्या काल तक बदलते आकाशीय रंग, कोयल की कुहू में विरह का रंग, इन सब को कवि, हृदय की आँख भर कर देखता है।

प्रकृति के नाना रंग ही रचनाकार की रचनाओं में भरते हैं जाते हैं। इन गीतों का यह पहला हिन्दी अनुवाद था। कालांतर में स्कार्डन लीडर अनिल सहगल ने इंडियन लिट्रेचर में पाँच डोगरी कवितायें अंग्रेजी में

अनूदित कीं, जो 2005 कें 126 अंक में प्रकाशित हुई थीं ।

"बेड़ी पत्तन संझ मलाह"

1989 में रिटायर मेंट के पश्चात गीतकार यश शर्मा का दूसरा काव्य संग्रैह 2002 में प्रकाशित हुआ । अपने सहपाठी कवि, मित्र, वेद पाल दीप की स्मृति में अर्पित ।

ओह् डुग्गर दा शैली हा ।
बच्चन पंत निराला हा
गालिव दा शैदाई हा ।
मीरा दा मतवाला हा ।

इन उदात्त उपलब्धियों के वावजूद जीवन के युद्ध का वह निहत्था योद्धा इस कटी फटी दुनियां में लिखने को विवश हुआ :-

"फिरदे रेह् अस जिन्दड़ी भर लूर लूर" (वेदपाल दीप) अर्थात्: हम जीवन भर भटकते ही रहे" । उनके मन के इस अकेले पन के दर्द के साथ जो गहरा अवसाद ध्वनित है उसे सुना सिर्फ - हाँ - केवल समझा उनके मित्र यश शर्मा नें जभी तो दीप के जाने के कुछ वर्षों बाद जब ब्रिगेडियर राजिन्द्र सिंह सभागार (जम्मू युनिवर्सिटी) में दीप पर एक दो दिवसीय सैमिनार आयोजित किया गया था तो यश शर्मा अपनी भावनाओं की टीस को रोक नहीं पाये :-

चुपचाप कीऽ, चली गेया, गज़लें दा बादशाह
दुक्खें दी दिल खराश, दास्तां ऐ दोस्तों ......(यश शर्मा)

अर्थातः "इस बस्ती से वह गज़लों का शहनशाह क्यों चुपचाप विदा हो गया, सच पूछो तो, यह एक बहुत दुःखों भरी दास्तान है" । संभवत् इस साहित्यिक बस्ती के कुछ लोगों को अमान्य भी थी यह दास्तान-खैर ।

इस पुस्तक के श्रीगणेश से लेकर यदा-कदा वेद पाल दीप की स्मृति (चेते) मित्र हृदय में उमड़ती घुमड़ती ही रही । उसी कारण यह भी एक तथ्य था कि राज्य की ललित कला एवम् भाषा एकेडमी द्वारा प्रतिवर्ष श्रेष्ठ पुरस्कार चयानित पुस्तक पुरस्कार के लिये कदापि भी सोचा नहीं जा सकता था क्योंकि "वेदपाल दीप" नाम की नियति ही ऐसी है कि किसी पुरस्कार की

अपेक्षा करनी ही अर्थहीन है। वहीं साहित्यक मंडली वर्त्तमान में यह ढिंडोरा पीटते नही अधाती कि, दीप की गज़लों के एक एक शेअर पर थीसिस लिखा जा सकता है, एक एक गज़ल साहित्य एकेडमी पुरस्कार के योग्य है। किन्तु वकौल गालिवः-

की मेरे कत्ल के वाद उसने ज़फा से तौवा

हाय उस जूद पशेमां का पशेमां होना।

पुस्तक पुरस्कार चयन प्रक्रिया के दौरान एक एतराज, भरे फोन मिलने से पूर्णतया समझा जा चुका था कि, दीप के जाने के वाद यह अन्तिम प्रहार भी दीप के व्यक्तित्त्व पर कर दिया गया है।

'बेड़ी पत्तन संन्झ मलाह नाम की इस पुस्तक में गीत, गज़ल व्यंग्य, चेते, इक तपैश में बसोहली वैभव संकलित हैं। प्रथम रचना "प्रार्थना" है।

"प्रार्थना"

विन तेरे नेंई पार उतारा।

बाँह पकड़ी लै रस्ते पाई दे।

तूं सच्चा साँई ध्रुव तारा।

साध मेरी इय्यै जे अम्मी

इस धरती दे कारी आमा।

बाल बाल जिसदा करजाऊ

उस दा करज तोआरी आमां।

दे, देवा सरमत्थ समझ दे

दो अपने चरणें दा स्हारा।

विन तेरे नेई पार उतारा

एह रस्ता कोई सैहज सुगम नेंई

बित्त लौह्का गासे गी हाम्बां।

अनसम्भे एह् रूप छलैपै

कुस गी छोड़ां कुस गी साम्बां।

गां-मैहमा मैं इस डुग्गर दी

दे सुर ताल देआं इक तारा ।

बिन तेरे नेंई पार उतारा ।

अर्थात :- "हे मालिक! तुम्ही मेरे पथ प्रदर्शक हो । मेरे सहायक बनो । यही मन की साध है कि, मैं भी कुछ तो इस धरती के काम आऊँ, माँ का कुछ तो ऋण उतर जाये । हे देवः मुझे शक्ति दो । राह सुगम नहीं है । ठीक ऐसे ही है जैसे छोटे हाथों से आकाश को छू लेने की चाहत् । प्रकृति का सौन्दर्य चर्तुदिक इतना विखरा पड़ा है कि, समझ नहीं पा रहा हूँ कि, किसे किसे बटोरूं । हे दाता! यही याचना है कि, इस डुग्गर धरती की महिमा गाने के लिये स्वर-ताल इक तारा प्रदान करो" ।

डुग्गर धरती के प्रति गीतकार की इस श्रद्धा याचना में अपना ही एक गौरव है, समर्पण है । 1989 में प्रकाशित "जो तेरे मन चित्त लग्गी जा" काव्य संग्रह के पश्चात 2002 में *"बेड़ी पत्तन सन्झ मलाह"* नाम से दूसरी पुस्तक प्रकाशित हुई । इस बीच बहुत कुछ लिखा गया । अभिनीत हुआ, अप्रकाशित लेखन मौजूद है पर इस समय लिखित साहित्य की चर्चा के बजाये प्रकाशित रचना की बात करना अभीष्ट है, वह भी स्वयं यश शर्मा की अपनी लेखनी के माध्यम से ही ।

"बेडी पत्तन सन्झ मलाह" पुस्तक के पृष्ठ संख्या 49 से आगे कुछ गज़ले संग्रहीत है। पहली गज़ल में ही उनकी स्वीकारोक्ति कुछ तथ्य उद्घाटित करती है ।

गीतें दी इक कताब मेरे नां ऐ दोस्तो,
तुन्दे ते पोथियें दी घनी छाँह् ऐ दोस्तो ।
शुकर करो अजें कलम रवां ऐ दोस्तो,
लिखने गी मेरे सामने चन्हाँ ऐ दोस्तो ।
जदुवां दी उन्हें शैहरे च डौण्डी फराई ऐ,
ओदूं दा सच्च बोलंना मनाह् ऐ दोस्तो ।
उऐ अदब नवाज़ न उऐ- अदव शनास,
उन्दै गै हत्थ अदव दी गलांऽ (रस्सी) ऐ दोस्तो ।
चढ़दी कला च सूरजे गी हाम्बदा हा जो,

ढलदी उमर च उऐ, पशेमां ऐ दोस्तो ।
चुप-चाप कीऽ चली गेया, गज़ले दा वादशाह,
दुक्खें दी दिल खराश, दास्तां ऐ दोस्तो ।
ओह डोगरी दा मान न, सूरज न चन्न न,
मधुकर ते दीप दा बी कुतैं नां ऐ दोस्तो ।

अर्थात् :- "(यात्रा के आठवें दशक में भी) कवि का आत्म वल तथा कलम का उत्साह चिनाव दरिया की गहनता विशालता लिये, निरन्तर गतिशील है । चाहे अभी तक एक ही रचना संग्रह प्रकाशित है ।

इस साहित्यक बस्ती में यह ढिंढोरा पिटवा दिया गया है कि यहाँ सत्य बोलना गुनाह हो गया है । यही लोग कला पारखी और कला संरक्षक है । इन्हीं लोगों ने अपने हाथों में साहित्य (अदव) की बागडोर थाम रखी है ।

जवानी के दिनों में जो सूरज को अपनी वाँहों में थामने की आकांक्षा रखते थे, वही ढ़लती उमर में पशेमां हैं । गज़लों का बादशाह (दीप) क्यों इस बस्ती से चुपचाप विदा हो गया ? सच पूछो तो यह एक बहुत दुःख भरी दास्तान है ।

डोगरी के भाग्याकाश के वही लोग सूरज चाँद जैसी चमक रखने वाले हैं । साहित्य के नक्षत्रों की इस सूचि में कहीं मधुकर और दीप (कवियों) का नाम भी आता है ?"

यह एक तथ्य है कि, मानवीय अनुभूति की गरिमां और सात्विकता को "वाणी देने वाले कवियों के लेखन में कठोर बुद्धिबाद के स्थान पर हृदय के कोमल तत्त्व की प्रधानता रहती आई है । दत्तु, रामधन अलमस्त दीप यश मधुकर आदि ने अपने लेखन के शब्दों में आत्मा उंडेली है । यह सब देखते हुए कहीं बंगाल के वाउलों की सादृश्यता अनायास ही दीख जाती है ।

बाउल यानि कुछ-कुछ बावले, "लटकना कच्चिया तन्दा कन्ने" (कच्चे धागे से लटक जाना) जिनकी प्रीत की रीत की परिभाषा है, कच्चे धागे के सहारे लटक जाना (रामधन) "ओढनू रंगी दे ललारिया" अलमस्त का मस्ती में नाच नाच कर उस अनाम ललारी को अन्तस्तल से पुकारना, सभी का देखा है । जिन्दड़ी भर लूर-लूर (भटकने) वाला दीप बाऊल नहीं तो और क्या था । "कोल मेरे कोल इन्नी आ-मंझे दा नेई लंगी सके ब्हा" ।

इज्जर (नदी) की चाँदनी रात कवि के मन प्राणों में समाई है - "इतना निकट सान्निध्य कि मध्य में हवा के गुज़रने की राह भी न रहे"। प्रकृति से एकात्मकता अद्वैत भाव का ऐसा गीत यश ही गा सकता है। यह बाऊल भाव नहीं तो और क्या हैं। "अनदोसिया गी दोस दिन्दा बो जानी" (निर्दोष को जान बूझ कर दोष देना) इस एक पंक्ति में युवा डुग्गर नारी की व्यथा कथा स्पष्ट साकार करते कवि दत्तु, इस प्रदेश के चण्डी दास से कहाँ अलग हैं। मधुकर तो था ही बाऊलों का बादशाह। जैसा उलटा-पुलटा जीवन वैसा ही लेखन। पर तथ्य के जुगनुओं की चमक पाठकों को दूर से ही दिख जाती। कलकत्ता यात्रा के दौरान वीरभूमी में बंगाल की धरती का बाउल-इकतारे पर गा रहा था शान्तिनिकेतन एक्सप्रेस के डिब्बे में। उस बाऊल गीत को सुनने पर डुग्गर के वाउल कवि मूर्त्त हो उठे थे मन में।

चण्डीदास के पदों एवम् बाऊल गीतों से स्वयं रवीन्द्रनाथ टैगोर भी प्रभावित रहे थे, यह बात उन्होंने सहर्ष स्वीकारी है।

वारिस शाह की रावी नदी के किनारे, हीर रांझा की कल्पना के बगैर पंजाव कहाँ है ?

गेया भज्ज (टूटा) तकदीर दे नाल ठूठा। (मिट्टी का प्याला)
कीमत लै जा साथों (हमसे) मट्ट (मटका) दी वे
तकदीर अल्ला दी नूं कौन मोड़े,
तकदीर पहाड़ पलट्ट दी वे।

अर्थात :- "उसका लिखा कौन मेटन हारा। भाग्य पहाड़ पलट देता है"। हीर राँझा की पूरी प्रेम कथा का सार इन पंक्तियों में समेटने वाला वह बाऊल "वारिस शाह" लोक हृदयी कवि ही था जो लोक कंठ में प्रतिष्ठित है।

रेडियो जम्मू पर बंगाल के प्रसिद्ध बाउल पूरण दास और साथी मंच पर अपना कार्यक्रम प्रस्तुत करने आते थे तो उनके बाऊल गीतों का परिचय यश शर्मा अपने अंदाज़ में देते थे।

अंदाज़ की ही बात करें तो स्मृतिओं में जीवन तथ्यों को समोने का ढंग, शैली इस कवि (यश) की अपनी ही तरह की है इस निराले अन्दाज़ को "वेड़ी पत्तन सन्झ मलाह्"। पृष्ठ संख्या 115 में "चेते" शीर्षक से की कुछ पंक्तियों में देख जा सकता है।

सन्झ ढली पेई,

पूर लग्गी गेया पार ।

किज मेरे साथी न,

खड़ोते दे रूआर,

अक्खीं अग्गें फिरी गेईयाँ,

किन्नियाँ नुहारां, कियां मैं बसारां,

तुगी कियां बो वसारा ।

अर्थात् : "सांझ ढली, नाव मुसाफिरों को लेकर उस पार घाट पर जा लगी, इस पार के कुछ साथी मेरे सहित प्रतीक्षा रत हैं। आँखों के आगे जाने कितनी ही मुखाकृतियाँ झलक जाती हैं, विलीन हो जाती हैं। बताओं इन सुधियों को कैसे विसर्जित कर दूं, क्यों कर भूल जांऊ ?"

चेतें दा इक दीया बलदा

मन प्राणों दी देहरी .....(यश)

मन प्राणों की देहरी (दहलीज चौखट) पर स्मृतियों (चेते) का दीपक जलता रहता है। सर्व प्रथम चेते - यह व्यथा कथा है, उस साहित्यकार, पत्रकार और प्रगतिवादी कवि वेद पाल दीप की, जिसकी जीवन शैली "बंजारा" की तरह ही रही।

"बंजारा"

उसदा बणज न्यारा हा, गज़ले दा बंजारा हा।

सुन्दर रूप सरोखड़ हा, फब्दा चेहरा मोहरा हा।

कैसा सन्झ सवेरा हा, खुश्बूएं दा फेरा हा।

ओह् धरती दा जाया हा, धरती दे गुण गान्दा हा।

ओह् डुग्गर दी मिट्टी गी मत्थे कन्नें लान्दा हा।

ओह् ममता दा साथी हा, मानवता दा प्यारा हा।

"छोटी लड़की पंण्डित की", अमर गीत एह् रचेया हा।

उस नै "शल्या" गी दिक्खी, प्यारा नग़मा लिखेया हा।

प्ही अपनी रचनायें गी, कालिज आई सुनान्दा हा।

ओह् बी क्हानी चेते ऐ, जिस दा लौंग गुआचा हा।

ओह् सब बीते मौसम हे, देश गुलाम खुआन्दा हा ।
फुल्लैं सांही कोमल हा, परबत साहीं जिगरा हा
गालिव दा शैदाई हा, मीरां दा मतवाला हा ।
ओह् डुग्गर दा शैली हा, बच्चन पंत निराला हा ।
ओह्दे बारे केह् आखां, ओह् सब्भने शा आला (श्रेष्ठ) हा ।
फ्ही एक सुखद सुगंधि नै, शायर गी भरमाया हा ।
तार मनें दे छेड़े हे, सुखना इक सजाया हा ।
रूपे दी रूखनाई (रोशनी) च ज़ुल्फें घेरा पाया हा ।
बालू - बाह्में चूड़ा हा, सालू गूढ़ा रत्ता हा ।
अक्ख बड़ी मस्तानी ही, रूप बड़ा अलबेला हा ।
बाओ (हवा) फौगुनी झुलदी ही, पत्तर पत्तर नचदा हा ।
रसदा बसदा नित्त हसदा, ओह् बी घर इक चाहन्दा हा ।
ओह् रातीं दा सुखना हा, अत्त सुन्दर अत्त प्यारा हा ।
जां - फ्ही ब्हार बसन्ती दा, इक झोंका आवारा हा ।
चाननियां गल लाई बैठा, तकदीरें दा शारा हा ।
लूर-लूर ओह् फिरदा हा, दो नैणें दा मारा हा ।
जिन्ना बड्डा शायर हा, उन्ना गै बेसहारा हा ।
बिन पत्तन दे बेड़ी हा, ना कोई कूल किनारा हा ।
ओह्दी सोच बी अपनी ही, ओह् सब्भने शा न्यारा हा ।
गासे गी दिखदे दिखदे, कदें कदें ओह् पुच्छदा हा ।
"रज्जधानी दा आये ओ, साढा नांऽ कोई लैन्दा हा"?
अक्खीं च वीरानी ही, औठें फिक्का हासा हा ।
जिस शोषण दा बैरी हा, उस शोषण गी सैहन्दा हा ।
कदें सुनाह्का गबरू हा, हुन तां बस्स इस शौरा हा ।
समझो बूटा चन्नन दा, अनजांता, बेगौरा हा ।
जीवन भर नेई मिलने दा, उस दा उस नैं वादा हा ।
संग चले पर नेई बोले, बस्स इन्ना गै रिश्ता हा ।

ओह् पत्तझड़ दा मौसम हा, ओह् रूत्तें दा राजा हा ।
बस्ती गुप्प हनेरी ही, दिया इक्क नीं बलदा हा ।
चेतें दे मूण्डे उप्पर, सिर सुट्टी सई रौहन्दा हा ।
ओह् ता इक्क मुसाफिर हा, पल दो पल गै रूकदा हा ।
अपना घर आपूं फूकी, रोज तमाशा दिखदा हा ।
रंग बदलदी दुनियां गी, दिक्खी दिक्खी हसदा हा ।
ना रूकदा, नां झुकदा हा, बस इक्कला गै चलदा हा ।
उसदी अपनी मंजिल ही, उसदा अपना रस्ता हा ।
ममता माया हा बांज्झा, निर्मोही निर्लेपा हा ।
हर कोई एह् पुच्छदा हा, ओह् तुन्दा केह् लगदा हा ?

अर्थात :- "अजीब व्यापार था उस बंजारे का, जो गली गली बेचता फिरता था गज़लें । उसके व्यक्तित्त्व में एक विशिष्ट सम्मोहन था । उन दिनों इस शायर की सुवह शामें, महक भरी थीं । इस धरती का बेटा होने के नाते वह धरती के गुणगाता तथा डुग्गर धरती की माटी को माथे से लगा कर अपने जीवन को धन्य मानता था ।

समता का साथी होने के कारण समस्त मानवता भी उस पर जान छिड़कती थी । "छोटी लड़की पंडित की" शीर्षक से (कालिज के दिनों में, एक अमर कविता रची थी उस खिलंदड़े युवक ने । जब "शल्या" नाम की लड़की को देखा तो उस पर भी गीत लिख दिया । (जिसके कारण कुछ कठिनाइयों का भी सामना करना पड़ा) इन रचनाओं को सरस हृदय साथिओं को कालिज की पुली पर बैठ कर सुनाता था । (लेखक को) वह घटना भी याद है जब किसी एक की नाक का "लौंग" गुम हो गया था, तब उसकी वह परेशानी भी कविता में बंध गई थी ।

वह सब, बीतें मौसमों (अतीत) की कहानियां हैं ! तब हमारा देश गुलाम था । वह कवि पर्वत सरीखा हौंसला रखते हुए भी अंतस से फूलों जैसा कोमल था ।

जहाँ गालिव का शैदाई था वहाँ मीरा के विरह-प्रेम का मतवाला था । वह डुग्गर प्रदेश का शैलीं (अंग्रेज़ी कवि) था तो बच्चन पन्त निराला, जैसे गुणों का स्वामी भी था ।

उसके लिये मैं कहूँ भी तो क्या उसके लेखन का स्तर उच्च कोटि का था।

और फिर हुआ यूं कि, एक सुखद सुंगधि ने सहसा उसकी, जीवन बगिया को महका दिया। झंकृत हो उठे मन वीणा के तार। सज गया था उसकी आँखों में एक सुनहला स्वप्निल संसार। जहाँ रूप की चाँदनी छिटकी थी वहाँ काले केश पाश का बंधन भी था। नाक में बालु (नथ) बाँहों में लाल सुर्ख चूड़ा था। सुहाग सालु भी गूढ़ा रत्ता था। फागुनी व्यार क्या चली, पत्ता पत्ता नाच उठा था। अलबेले रूप और मदमाते नयनों में डूबे, उस के मन में भी एक रसते, बसते, हंसते घर की चाहत जाग उठी थी।

किन्तु वह सब रात के स्वपन सरीखा सिद्ध हुआ था य ऐसा भी कहा जा सकता है कि, बसन्त वहार का भूला भटका झोंका ही इधर आ निकला था।

चूक यहाँ हुई कि, वह किस्मत का मारा, चाननी को गले लगा बैठा था। परिणाम स्वरूप दो नयनों का घायल वह "लूर-लूर" हो कर रह गया।

जितना बड़ा शायर था। अब उतना ही बेसहारा हो गया। बिना घाट की नाव जैसा था, जो किसी कूल किनारे न लग सकी। उस निराले व्यक्ति की हर सोच अपने ही ढंग की अपनें ही रंग की थी।

आकाश की ओर निहारते निहारते कभी पूछ बैठता, राजधानी से आये हो, क्या कोई हमारा नाम भी लेता था ? आँखों की वीरानियाँ और भी गहन हो उठतीं, ओठों की फीकी हंसी और भी मद्धिम। जिस शोषण का दुःश्मन था उसी को सहन करने की आदत सी बना ली थी।

अपने समय का वह खूवरू नौजवान, अब एक धुंधला सा साया बन कर रह गया था। जैसे कोई चंदन का वृक्ष (बवूल के जंगल मे) अनचीन्हा सा हो जाये। जीवन भर न मिलने का उसका उससे वायदा था। भले ही कई बार साथ चलते रहे, पर मौन न टूट सका।

जो कभी ऋतुओं का राजा कहलाता था अब पतझड़ का मौसम बन चुका था। अब उसके मन की बस्ती में आशा की कोई नन्हीं सी किरण भी शेष नहीं थी। था तो सिर्फ अन्धकार।

स्मृतियों के कंधे पर सिर रख प्रायः सोया रहता था। वह एक ऐसा मुसाफिर था जो पल दो पल ही कहीं रूकता था। और तो और अपना ही

घर फूंक कर रोज तमाशा देखता था।

हंसता भी था तो केवल रंग बदलती दुनियां को देख कर। न वह कहीं, रूकता था, न झुकता था, अकेला ही चलता था। किसी भीं साथ सहारे पर से उसका विश्वास टूट चूका था। उसकी मंज़िले भी अपनी ही थीं तो रास्ता भी अलग थलग। मोह, माया, ममता से दूर-बड़ी दूर निर्मोही निरलेप हो चुका था। हर कोई (लेखक से) प्रश्न करता था कि इस आदमी से तुम्हारा क्या रिश्ता था ?

यहाँ पर शरत् की पंक्तियाँ स्मरण हो आती हैं।

"इस दुनिया में अपने पराये का नाता तुच्छ है। न जाने जीवन के इस महासागर में बहता हुआ कौन पास आ जाता है और कौन दूर"।

लगता है यह प्रश्न भविष्य में भी अनुत्तरित ही रह जायेगा।

यहाँ पर अपने मन की खलिश, का ज़िक्र कर ही दूं कि कुछ साहित्यिक मनीषिओं ने इस जीवन्त काव्य को "मर्सिया" का नाम दे डाला। सुधियों के मृदुल करूण संसार को ऐसा विशेषण देना उन लोगों की अपनी मानसिकता उजागर करता है। इन्हीं चेते (यादों) के क्रम में निर्दोष, सपोलिया एवम् नरेन्द्र खजूरिया, चरण सिंह, मधुकर दीनू भाई पन्त की संजोई सहेजी स्मृतियाँ भी प्रकाश में आयेंगी।

अपना एक सत्य और भी है कि कवि पति के रचना संसार में उनका साँध्य कवि रूप अधिक सम्मोहनीय है। संध्या अपने रूपाकर्षण से अतीव मोहक है। चाहे पचास के दशक के प्रारम्भ से ही जनता द्वारा दिया गया नाम "गीतों का राज कुमार" अपनी गीत यात्रा द्वारा नब्बे के दशक में स्वतः अलवेला गीतकार स्थापित हो चुका था।

एतवार 21 फरवरी 1992 को "जो तेरे मन चित्त लग्गी जा" पुरस्कृत कृति के सम्मान संमारोह में डोगरी संस्था के द्वारा जो निमंत्रण पत्र छपे थे उन पर (डोगरी दे अलवेले गीतकार) डोगरी का अलवेला गीतकार "यश शर्मा" ही छपा था। "यह अलग बात है कि, डोगरी संस्था द्वारा किये गये उस सम्मान समारोह में कवि की स्वयं की उपस्थिति क्यों नहीं थी ?

14 नवम्बर 2002। अभिनव समागार में राज्य कला, संस्कृति एवम् भाषा अकादमी द्वारा आयोजित गीतकार यश शर्मा के साथ एक मुलाकात का आयोजन किया गया था।

मंच पर आयोजित इस कार्यक्रम की संक्षिप्त रूप रेखा हिन्दी दैनिक जागरण 15 नवम्बर में इस प्रकार प्रकाशित थी।

"यह एक बहुमुखी प्रतिभा के मालिक यश शर्मा के जीवन के विभिन्न पहलुओं से रू-ब-रू होने का ऐसा क्षण था, जिसमें यादों की गलियों से गुज़रते और अतीत के झरोखों से झांकते हुए डोगरी के अलबेले गीतकार के व्यक्तित्त्व और कृतित्व के कई अनछुए पहलू उभर कर सामने आए। मौका राज्य कला संस्कृति एवम् भाषा अकादमी द्वारा आयोजित डोगरी के सुप्रसिद्ध "समकालीन गीतकार यश शर्मा के साथ एक मुलाकात का था"। यश शर्मा के मित्रों, रिश्तेदारों, प्रशंसकों और प्रमुख लोगों की उपस्थिति नें इस एक औपचारिक कार्यक्रम से परिवारिक कार्यक्रम बना दिया।

यश शर्मा की यशस्वी सुपुत्री सीमा अनिल सहगल ने उनके लिखे गीतों को "एक माला" के रूप में प्रस्तुत कर उनके पूरे लेखन सफर से साक्षात्कार करवा दिया। डोगरी के वरिष्ठ साहित्यकार पद्मश्री प्रो. रामनाथ शास्त्री नें जब अकादमी की ओर से यश शर्मा का अभिनंदन कर उन्हें अपेन गले से लगाया तो वह पूरी तरह भावुक हो उठे। अकादमी के सचिव बलवंन्त ठाकुर नें उन्हें दुशाला ओढ़ा कर उनका सम्मान किया। इस अवसर पर यश शर्मा की नवीनतम डोगरी कृति "बेड़ी, पत्तन संझ मलाह्" का भी लोर्कापण किया गया।

यश शर्मा के गीतों और गज़लों का यह दूसरा संग्रह है। इस से पूर्व उनके कविता संग्रह "जो तेरे मन चित्त लग्गी जा" के लिये 1992 में साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया है।

यश शर्मा की सुपुत्री सीमा अनिल सहगल, जो कि एक सुप्रसिद्ध गायिका हैं ने इस अवसर पर, अपने पिता के गीतों को पेश कर के उपस्थित लोगों में डोगरी के उन गीतों की यादें ताज़ा कर दीं, जिन्हें रेडियो पर सुनकर लोग आज भी मंत्रमुग्ध हो जाते हैं।

सीमा ने कहा कि उन्होंने यह गीत इस लिये नही गाये कि, यह मेरे पिता ने लिखे हैं वाल्कि यह मेरी रूह में समाये हुए हैं और मेरा इन गीतों का बार बार गाने को मन करता है।

उन्होंने इस मौके पर डोगरी गज़लों के बेताज बादशाह वेदपाल दीप, जो यश शर्मा के घनिष्ठ मित्र थे, को भी अपने श्रद्धा सुमन अर्पित

करते हुऐ कहा कि उनकी हार्दिक इच्छा है कि, वह वेदपाल दीप की गज़ले भी गायें। (कुछ समय के अनन्तर "ख्यालों में कोई आया" नाम की कैसेट में दीप की गज़लें, सीमा अनिल सहगल और बाम्बे के जसवन्त सिंह द्वारा गाई गई है) अपने बचपन की स्मृतियों को याद करते हुए सीमा ने कहा कि, जब वह छोटी थी तभी से कुछ कुछ स्वर मेरे कानों में पड़ते थे, क्योंकि मेरे पिता जब लिखते थे तो साथ ही साथ गुनगुनाया भी करते थे।

उस समय मैं यह नहीं जानती थी कि, वह क्या लिखते हैं लेकिन तभी से कुछ सुर मन में उतर चुके हैं जो अब समझ आने लगे हैं। सीमा ने अपने पिता के लेखन का श्रेय अपनी माँ रक्षा शर्मा को देते हुए कहा कि, पहले वह हम बच्चों को संवारती रहीं और आज हमारे पिता को संवार रही हैं। यश शर्मा ने भी अपने जीवन में मिली सफलता का पूरा-पूरा श्रेय अपनी धर्मपत्नी को दिया।

सीमा ने "संझा घिरदियाँ चित्त कमलाई जन्दा" (सांझ ढलते ही चित्त भी कुम्हला जाता है) गीत से जब यश शर्मा के लिखे गीतों को प्रस्तुत करना शुरू किया तो उस समय, अभिनव सभागार में उपस्थित कई लोगों की आँखें नम हो गई।

यश शर्मा को सांझ से विशेष लगाव है। "गोरिये हो मेरी रानिये हो" (युगल गीत) "आऊं तेरे द्वारे आई मेरे प्रभु जी" (भजन) "तेरे बाज परदेसिया कियां जीणा" (विरह गीत) ओ परदेसी तुम्हारे विना कैसे जिया जाये .... आदि गीतों से उन्होंने लोगों को पूरी तरह से मंत्रमुग्ध कर दिया।

यश शर्मा के समकालीन प्रोफेसर नीलाम्बर देव शर्मा ने उनके व्यक्तित्त्व और साहित्यिक कार्यों पर प्रकाश डालते हुए उनके जीवन के विभिन्न पहुलुओं के बारें में बताया।

"यश शर्मा न केवल एक गीतकार वल्कि एक अदाकार और एक अच्छे उद्घोषक भी हैं। उन्होंने रेडियो कश्मीर जम्मू और श्रीनगर दोनों पर कई सालों तक विभिन्न पदों पर काम किया। डोगरी में बनी पहली फीचर फिल्म "गल्लां होइयाँ बीतियाँ" में उन्होंने मधुर गीत लिखे" उपस्थित लोगों ने इस अवसर पर कार्यक्रम का भरपूर आनन्द उठाया और समारोह की तारीफ की। इस अवसर पर यश शर्मा ने उपस्थित लोगों के कई सवालों के जवाव विनोद पूर्ण शैली में देकर उनकी जिज्ञासा को भी शान्त किया।

अकादमी के अतिरिक्त सचिव ओम गोस्वामी ने धन्यवाद प्रस्ताव रखा। (साभार दैनिक जागरण जम्मू)"।

गीतकार के गीतों की बात चल रही हैं तो यह सभी जानते ही हैं कि, डोगरी की पहली फिल्म "गल्लां होइयाँ बीतियाँ" के गीत "संझा घिरदियाँ - गोरिये हो - नीं अड़िये कूंजड़िये" बहुत लोक प्रिय हुए थे जो आज इस वर्त्तमान में भी नये डोगरी संगीत कारों द्वारा नबीन धुनों से सज संवर कर पुनः नये कलेवर धारण करते चले जा रहे हैं। दूसरी डोगरी फ़िल्म "तुकी मेरी सोह्" (तुझे मेरी सौगंध) की शूटिंग चम्वा प्रदेश में संपन्न हुई थी। फिल्म की बात न करते हुए उस फ़िल्म का एक नृत्य गीत है :-

गद्धी गबरू ते गद्धना जुआन, चम्बे मेला मिंजरें दा।
असैं कड्डी लैनी तेरे नै पंछान, चम्बे मेला मिंजरें दा।।

अर्थात : गद्धी युवक "चम्बा प्रदेश के चरवाहे" तथा गद्धना "चम्बा प्रदेश की सौन्दर्य प्रतिमायें युवतियाँ" चम्बें के मिंजर मेले में सम्मिलित होने के लिये पहाड़ों से उतरकर चम्वे के चौगान में एकत्रित हैं। युवा जोड़े एक दूसरे से परिचय कर रहे हैं। भोले सरल पहाड़ी लोगों को आपस में परिचित करवाते इस सामूहिक नृत्य गीत को फिल्माया भी चम्बें के चौगान में लगने वाले मिंजर मेले के दौरान ही था। यह तो स्पष्ट ही है कि पूरे मेले में इस गीत की ऐसी धूम मची कि आज तक भी पर्व उत्सवों शादी ब्याह के अवसरों पर, यह गीत लोक नृत्य के ताल पर लोक गीत की तरह ही चम्बा प्रदेश के पूरे समाज में गाया जाता है। शायद कोई नहीं जानता होगा कि यह गीत किसने रचा है।

हीरा लाल कोहली द्वारा निर्मित टैलिफिल्म "बावा जित्तो" "दिल्ली दूरदर्शन के लिये बनी थी" उस का शीर्षक गीत हो य ठाकुर पुन्छी के उपन्यास "चाननी दे चोर" पर आधारित टैलिफिल्म के गीत हों, गीतकार का कर्म गीत लिखना ही रहता आया है। गीत भी इमानदारी से अपनी सार्थकता सिद्ध करते रहते हैं।

कवि के मानस पटल पर संध्या के नाना विध सौन्दर्य पूर्ण दृश्यों का उमड़ना कल्पना के सौन्दर्य लोक की वस्तु तो है पर प्रत्यक्ष यर्थाथ के कठोर जीवन के चित्रण में भी कवि यश एक सचेत कलाकार हैं। बौद्धिक और भावात्मक दृष्टिकोण अर्थात् बुद्धि और हृदय का एकीकरण ही संभवत्

काव्य की पूर्णता होती है।

इस तथ्य की सत्यता जानने के लिये उनकी प्रारम्भिक रचनाओं के अवलोकन के लिय काफी पीछे जाना पड़ेगा। परन्तु एक बात ध्यान देने योग्य है कि समय के सच को उधाड़ती कुरेदती उनकी ऐसी रचनायें, कभी भी किसी विषैली राजनीतिक शतंरजी चाल से बजूद में कदापि नहीं आई हैं। काल खंड कोई भी क्यों न रहा हो, हमेशा समसामयिक एक वैचारिक निर्दोषिता ने कविता में शब्दों का आकार ग्रहण किया है। और इस समूलची रचना प्रकिया में मानवीय संवेदनाओं की ध्वनि गूंजती रही है। कहा जाता है कि साहित्य समाज का दर्पण होता है। उसी दर्पण में दूर अतीत के डोगरी साहित्य तक तो नहीं पर 1947 के देश विभाजन की त्रासदी से उत्पन्न डुग्गर के साहित्य ने कैसे पैनी और व्यंग्यात्मक शैली में इस युगान्तर को ग्रहन किया इस की चर्चा अभीष्ट है।

डुग्गर की विभूति हरदत्त जी, फूट से उत्पन्न देश की बरबादी का, "फुट्ट इस देसे आली कालै दी नशानी ऐं," (आपसी फूट इस देश के लिय काल के समान है) इस कविता मे आपसी फूट के फल स्वरूप विनाश को देखते हुए गाँधी जी द्वारा दिये गये प्रेम भाईचारे की शिक्षा को समझ पाने की बात करते हैं। नही तो "किआं गुजारा तेरा होग? ओ डोगरेया देसा" (ओ डोगरे देस तुम्हारी गुजर बसर कैसे होगी) तो किश्न स्मैलपुरी जी की कविता में सच्ची जनवादी झलक का अपूर्व विकास और डुग्गर की भोले पन से सजी झाँकियाँ हैं।

"सुरगे दी गल्ल निं ला अड़ेया,
जस अपन देसा दा गा अड़ेया।

(स्वर्ग की बात करने के स्थान पर अपने देश का यशोगान करना श्रेयस्कर है) और फिर क्रोध में कवि कितना क्रान्तिमय हो उठा है।

असें एह् दिन पलटी सुट्टनें नीं।
(हम यह दिन पलट कर रख देंगे)

दीनू भाई पन्त भी रूढ़ियों के काँटे और फिरका परस्ती के ज़हर को समाज में व्याप्त देखते हैं तो :-

एह् दुनियां नेंई रौनें जोगी

उनके मतानुसार (इस दुनियां को बदलना ही होगा, एक नया

संसार बसाना ही होगा) तो प्रगतिशील विचार धारा के निर्भीक समर्थक गीतकार कवि अलमस्त, स्पष्ट वादिता के अग्रदूत धार्मिक आडम्बरों पर खीझते हैं "सुरग निं जान हुन्दा पित्तल खड़काये दे"। (पीतल के घण्टे बजा कर स्वर्ग नही जाया जा सकता) उनका मानना है कि, सच्चा धर्म है मानवता के लिये प्यार।

तो लाला बरकत राम जी "उट्ठो शेर जवानों, आया बेल्ला देस बचाने दा" का शंखनाद करते हुए, व्यक्तिगत स्वार्थो से उपर उठ कर (अपने देश को बचाने के लिये बीर बहादुर नौजवानों का आह्वान करते हैं।)

वहीं बाल कृष्ण जी के हृदय को आधुनिक युग की क्रान्ति ने झंकृत किया है तभी तो उन्हें लगता है कि,

"देसा आली बेड़ी अद्ध बश्कार अजे डोला करदी
कुत बक्खी जा, अपना भार पूरा तोला करदी,

(देश की नाव मंझधार में डोल रही है, संतुलन रखते हुअे लक्ष्य को तलाश रही है) परन्तु वेद पाल दीप की विचार धारा में उग्र राष्ट्रीयता है। दीप नमीं अजादी नाम की कविता में नव स्वतंत्रता को आदेश देते हैं कि :-

"नमियें अजादिये! इत्थुआं चल
सुन्ने दे जड़े दे देवतें गी छोड़ी दे
भुक्खे गरीबें, करसानें दे चल
पुञजां पर विछे दे खेतरे च ढल
नमियें अजादियें! ....

(ओ नई आज़ादी! धनवानों को छोड़ कर भूखे गरीव किसानों के खेतों में उतरो। अभागे शोषित वर्ग के लिये कवि के मन में आज़ादी की चाहत है)

श्री राम नाथ शास्त्री जी ने युग की पुकार को सुना समझा और नये युग के स्वागत के लिये सभी डुग्गर वासियों का आहवान करते हुऐ कहते हैं।

"नमां जुग आया आओ, आरती सजाचे अस,
डोगरें दे नां गी फिरी उज्जल बनाचै अस"

(नया युग आया है, आओ स्वागत के लिये आरती थाल सजा लें फिर से डोगरों का नाम हमे उज्जवल करना है।)

नव जागृति आंदोलन की इसी भाव भूमि की उपज यश शर्मा भी बड़े बड़े भव्य महल दुमहलों के निर्माण में अपना खून पसीना एक करनें वाले मज़दूर, सर्वहारा वर्ग के साथ खड़े दिखते हैं ।

"मड़ों, साड़ें बनाए दे मैहल, जित्थैं
राजा रानी अमीर बज़ीर रौन्दे
मड़ों साढें गै हत्थैं दी मैल, जित्थें
टस्स फस्स कढी लाटी कीन बौन्दे
साड़े सौने गी शिड़का ते चौक पेदे ?

(देखो ! जिन महलों में राजा रानियाँ अमीर बज़ीर रहते हैं जिन अट्टालिकाओं में सज धज कर धनाढय वर्ग निवास करता है, वह सब हमने अपनी मेहनत से बनाये हैं परन्तु हमारे सोने के लिये फुटपाथ और खुले आकाश तले नंगी धरती है)। (साभारः जागो डुग्गर पहला अंक 1950 प्रकाशक, डोगरी संस्था जम्मू)

"मैं कहता आँखिन की देखी" 1947 की त्रासदी के स्वयं भुक्त भोगी यश शर्मा उन दिनों श्रीनगर में ही थे जब कबायली हमला हुआ था । इस का ज़िक्र पहले भी हो चुका है । मृत्यु की विभीषिका से जूझती बेसहारा जनता को छोड़ कर महाराजा अपने दरवारियों समेत काश्मीर छोड़ गये थे । निःस्सहाय जनता के उस वर्त्तमान सच से जुड़ी एक कविता स्वयमेव फूट पड़ी थी ।

"छोड़ी राजे कश्मीर कियाँ" (राजा ने कैसे कश्मीर छोड़ी) यह कविता वयः संधि पर पहुँचे एक किशोर कवि के मन की मार्मिक पीड़ा की अभिव्यक्ति मात्र ही थी । तब गहरी सूझ-बूझ ही कहाँ थी । कवि के अपने कथनानुसार "बचपन में एक कहानी सुना करते थे कि, डूबते जहाज़ का कप्तान सब से अन्त में उस जहाज़ को छोड़ता है । जम्मू में आदरणीय रधुनाथ सिंह जी सम्याल की कविता "जित्ति उसें कश्मीर किआं" सुनी तो आवेश मे कुछ एक लोगों को यह अपनी कविता भी सुना दी । यह एक सीधा साधा सा भाव था किसी विषैली राजनीति से प्रेरित तो था नहीं । परन्तु जम्मू के कुछ गणयमान्य उच्च्व वर्ग के लोग इसे राजनीति का रंग दे कर अर्थ का अनर्थ करके अपनी स्वार्थ की रोटियाँ सेंकने के लिये तत्पर हो उठे । और तत्कालीन सत्ताधारियों को प्रसन्न करने का हथकण्डा बनाना

चाहा। इनका कहना था कि, "बहुत से प्रलोभन दिये जाने लगे, कि इस कविता को हमारे साथ चल कर "नये दरवार में सुनाओं"। तब समझ में बात आई। अपने जातीय गौरव पर, आँच आती देख कर उनके सामने ही उस कागज़ के टुकड़े टुकड़े कर फेंक दिये। वेद भसीन साहिव को कुछ पंक्तियाँ अवश्य याद रह गई थीं।

इस के साथ एक दूसरी कविता की भी बात जोड़ दी जानी चाहिये कि जिसके चलते जम्मू रेडियों स्टेशन से ही वर्षो तक मुझे (यश शर्मा) निर्वासित कर दिया गया था।

"कुन आखदा डोगरे डरी गेदे" (कौन कहता है कि डोगरे डर गये हैं) "यह दोनों कवितायें कहीं भी लिखित रूप में उपलब्ध नहीं थी) वर्त्तमान के सच से जुड़ी कोई कविता समकालीन भी होती है तथा सर्वकालीन भी। इन समकालीन कविताओं, गीतों में जाग ओ राधा के मतवाले नाम के उस गीत का भी ज़िक्र किया जा चुका है कि, एक द्रौपदी के वस्त्र हरण पर तो थानों के थान लुटा दिये थे पर आज की हज़ारों द्रौपदियों की सुध लेनी भूल गये। तो इस सच्चाई से जम्मू का धार्मिक समाज पूर्णतया क्षुब्ध हो उठा था। एक और कविता का एक बंद :-

न्हेरे बिच्चा किरण लोई दी फुट्टनी
साथिओं! साथ निभाने गी आओ
अपनी धाक बठाने गी आओ
अपना रंग जमाने गी आओ
आओ, आओ गीत गाने गी आओ
अज्ज गरीबें दे गीतें दी, विज्जली
बिज्ज बनी घर शाहें दे टुट्टनी।

अर्थात् :- अंधेरे में से रोशनी की किरणें फूटेंगी। साथिओं। आओ! सभी एक साथ मिल कर अपनी शक्ति बढ़ायें। हम सभी मिल कर अपना अधिकार प्राप्त करने का गीत गायेंगे। शोषितों का यह गीत शोषकों को समाप्त कर देगा।

देश आज़ाद तो हुआ था पर सूदखोरों और जमींदारी प्रथा का उन्मूलन अभी तक नहीं हो पाया था। मज़दूरों और खेतिहर किसानों को

अभी तक ज़मीदारों सूदखोरों के चंगुल से निजात नहीं मिल पाई थी।

डोगरी में प्रगतिशील उदारवादी धारा की सोच से प्रभावित अन्य कवियों की तरह इस किशोर कवि (यश) द्वारा की गई यह भविष्यवाणी ही तो थी।

"जड़ा राह् (बोये) ओह् खा नेंई इक्क दाना।
ओके दिन हुन कंदू दे टुरी गेदे"

अर्थात् :- "खेतों में फसल उगाने वाला एक भी दाना खाने का हकदार नहीं। वह दिन अव लद चुके हैं," लेखक के अनुसार यह समसामयिक लेखन एक लहर जैसा ही था, एक नारेबाजी जैसा। पर इस के साथ सरल भोलेपन की एक छोटी सी घटना भी जुड़ी है जिस से उन दिवंगत आत्माओं के प्रति एक श्रद्धा भाव आज भी जस का तस है। "गीतें दी बिजली, बिज्ज बनी घर शाहें दे टुट्टनी"। यह बचकानी सी कविता, डोगरी संस्था में सुनाई तो "गीतों की बिजली शाहों के घर टूट पड़ेगी"

यह सुन कर डोगरी संस्था के प्रधान जी, जो नगर के गण्यमान्य शाह थे और बहुत उदार मना थे, सभी सदस्यों के सम्मुख शिकायती लहज़े में कहा कि, इस लड़के को समझाओ, यह हद से ज्यादा आगे बढ़ता जा रहा है। यह हम शाहों के घरों पर बिजली गिराने की बातें करने लगा है अब। इस पर सभी हंस पड़े और उन्हें आदर पूर्वक समझाया कि बात "गीतों की विजली" की की गई है जो कविता की एक सांकेतिक विधा का रूप है। आसमानी विजली नहीं। कितने भले और भोले थे शाह जी।

परन्तु बदलते समय के संदर्भो को गहराई से पकड़ने और उससे उत्पन्न सामाजिक, आर्थिक विसंगतियों को हल्की फुल्की, सरल भाषा की शैली में कह पाने का कवि यश का अन्दाज़ आज भी अपना ही है। उनका अपना ही कहना है कि, साहित्यिक मापदंडों की प्रौढ़ता इन व्यंग्य रचनाओं में भले ही न हो पर आम आदमी के जीवन में जो हर रोज घटता है उसे सहज भाव से सोचने कहनें में हम क्यों संकीर्ण हो चुके हैं।

एक व्यंग्य देखिये :-

मौजूदा दौर की आपाधापी को खंगालते हुए अपने आप का ही विशलेषण करने का एक चित्र :-

"गज़ल"

जीना सैह्ल सुखल्ला नेंई, पर यारो मैं कल्ला नेंई
दिख़ना, सुनना, समझानां, अन्ना, बोला जल्ला नेंई
लैहरां लैन्दा सागर आं, बरसांती दा छलला नेंई
उस ने पार पुजाना केह्, जिस बेड़ी दा थल्ला नेंई
एह् मन किन्ना चंचल ऐ, बौह्न्दा बिन्द निचल्ला नेंई
चार चफेरे चुप्पी ऐ, शोर शराबा हल्ला नेंई
अज्ज सियासत कोठा ऐ, सोचो लीडर दल्ला नेंई

अर्थात : "जीवन की राहें इतनी आसान नहीं पर, इस राह पर चलने वाला मैं अकेला तो नहीं हूँ। मैं तो एक लहराता हुआ सागर हूँ। वर्षा ऋतु में उफान पर आके - उतर जानें वाला पानी का रेला नहीं। वह नाव हमें किस प्रकार दूसरे किनारे पर पहुँचा सकती है ? जिस नाव के पेंदे में छेद हों। सभी कुछ देखता, सुनता और समझता हूँ अंधा वहरा य गूंगा नही हूँ। कितना चंचल है यह मन। पल भर भी निश्चल नहीं रहता। चारों तरफ खामोशी है, कोई शोर शराबा, हल्ला गुल्ला नहीं (तुफान से पहले की स्थिति)। आज राजनीजि वेश्या का चकला बन चुकी है। क्या नेता इस धंधे में बिचौलिया नहीं हैं" ?

एक और गज़ल में अपने अनुभव की अभिव्यक्ति इस तरह से करते हैं।

झूटे नेंई झुटारे नेंई, चिड़िये फंग सुआरे नेंई।
सांढ़ी वण्डा न्हेरा ऐ, सूरज चन्न सितारे नेंई।

अर्थात् : "हमारे (जनता) लिये कोई भी सुख सुविधा का साधन नहीं। जन साधारण के भाग्य में केवल आज भी अंधेरा ही है। सूरज चाँन्द सितारों की रोशनी नहीं है। चिड़ियों जैसे हमारे भोले भाले निरीह बच्चों को विकास की उड़ान के लिये कोई आकाश ही सुलभ नहीं" (सभी जगह रिश्वत तथा भाई भतीजावाद का बोलवाला है)।

कवि का अत्यधिक संवेदनशील मन होने के कारण, उनका दृष्टिकोण सर्वत्र सामूहिक हित ही रहा है। आगे कहते हैं कि,

लोकें दा 'लऊ पी जन्दे, पापी नेंईं हत्यारे नेंईं ?

दुःष्ट दुराचारी हाकिम, क्या सारे दे सारे नेंईं ?

पढ़े लिखे दे विद्रोही, जागत बेरूजगारे नेंईं ?

अर्थात :- वह शोषणकारी जोंके जो दूसरों का लहू चूसने में आनन्द का अनुभव करती हैं, हत्यारा वर्ग नहीं तो और कौन हैं ? कवि को चिन्ता है कि, पढ़े लिखे योग्य बेरोजगार नौजुआनों को कार रोजगार ने मिले तो वह विद्रोही न हों तो और क्या होंगे ?

एक और व्यंग्य रचना की कुछ पंक्तियाँ देखनी पड़ेंगी।

"नाग निग्धे बरमियें, बीन नेंईं बजदी यरो"

अर्थात :- समाज के शोषण कर्त्ता (विषैले नाग) बरमियों (सुविधा संपन्न महलों, बंगलों) में सुख आनन्द का उपभोग कर रहे हैं। हैरानी की बात है कि, जनता रूपी संपेरे ने बीन बजा कर इन ज़हरीले साँपों को बाहर निकलने को बाध्य क्यों नहीं किया ?

"महल लाखू दे न पर अग्ग नेंई मकदी यरो"

अर्थात् :- इनके घर तो लाख के बनें है ताज्जुव है कि अभी तक अग्नि में स्वाहा क्यों नहीं हुए ? फिर स्वयं ही कहने को बिवश हैं कि,

"सामराजे दी अजें, लोथ नेंई हलदी यरो"

अर्थात् :- "साम्राज्य वाद चाहे मर चुका है पर शव दाह आज तक नही हो सका है"।

जो व्यक्ति प्रकृति को देख कर विमुग्ध हो उठता है, उसकी निश्च्छलता से आत्म विस्मृत हो कर रह जाता हो वही, मनुष्य द्वारा निर्मित समाज के विषले रूप को निकट से देख परख कर कहीं इतना आहत हो कर कह उठने को बिवश हो उठा कि,

साध सिद्धे सूलियें ते गद्धियाँ चोरे नैं अज्ज

तुलसियें दे थाहर थारां मल्लियां थोहरें नैं अज्ज।

चाननी नैं छू छोहाई खेडदा आयां ऐ तूं

सोची समझी ऐ दनां तूं खेडेयां लोरें नैं अज्ज।

अर्थात् :- सज्जन सदैव दण्डित होते हैं, गद्धियों पर विराजमान हैं दस्यु। जहाँ आंगन में पावन तुलसी के बिरवे थे, वहाँ आज कंटीले कैक्टस

सुशोभित हो रहे हैं। चाँदनी के साथ ही तुम लुका छिपी का खेल खेलते आये हो। विद्रोही आग्नि की लपटों से ज़रा सोच समझ कर खेलना"।

"हन्नें हन्नें राजे यारो हर जगह गुट्ट वन्दियाँ
यारियाँ अंन्नें नैं लाइयाँ पक्कियाँ डोरें नैं अज्ज।
धारा धारा गी सनोचै खेतरें दे पार जा
धुर चढ़ी मन्डी दा आला मारेयाँ जोरें नैं अज्ज।

अर्थात् :- देश भर में (सभी क्षेत्रों) माफियाँ डानों का बोलबाला है और गुटबन्दियों के जाल विछे हैं। ऐसा लगता है जेसे अन्धों और बहरों का पक्का गठबन्धन है। कवि की इच्छा है कि, उसका स्वर धारों पहाड़ों से गूंजता हुआ रावी नदी के पार (शेष भारत) भी पहुँच जाये। मन्डी के ऊंचे गुम्बद पर चढ़ कर उस के स्वर की गूंज सभी तक जा पहुँचे।

इन रचनाओं में कहीं कवि आत्मा में, विद्रोह की तपिश जरूर है पर करूणा और सहानुभूति से अभिभूत हैं। विद्रोही वाणी में भी सामाजिक चेतना की कल्याण कारी भावना सर्वत्र है।

इस प्रकार की दूसरी और रचनायें हैं, जिनको पढ़ने समझने पर मुझे ऐसा लगता रहा है कि कठोर सत्य की परतें उधाड़ने वाला व्यक्तित्त्व संभवत् आज की विसंगतियों के दौर में, कहीं भी फिट नहीं हो सकता। लेखक के अपने शब्दों में ही :-

दूरा पारा आले दम भरदे हे दोस्ती दा
दिक्खी लेइयाँ उन्दियां बी यारो दिलदारियाँ
सिद्धे साद्धे डोगरे आं, छल बल जानदे नेंई।
भुल्ल होई इन्दे कन्नें लाई बैठे यारियाँ।

अर्थात् :- "दोस्ती का दम भरनें बाले, जो पर्वत पार रहते हैं, उनसे याराना लगाकर भी हमने देख लिया कि, वह भी कितने दिलदार हैं। हम सीधे साधे डोगरे हैं। हेराफेरी नहीं जानते। भूल हो गई जो उनसे मित्रता कर बैठे"।

तो क्या इन व्यंग्य रचानाओं को समस्या मूलक के साथ साथ अनुभवजन्य कहना अधिक उचित होगा ? य फिर किसी भी सत्य को इस प्रकार व्यक्त किया गया हो कि पाठक अविलम्ब समझ जाये कि यह उसी के

मन का सत्य है। उसी की धड़कनों का स्पन्दन हैं ?

परन्तु गीतकार का प्रिय विषय तो सौन्दर्य बोध को शब्दों में बाँधना ही अधिक तर रहा है। सौन्दर्य प्रकृति का हो च मानवता का, सर्वत्र यह सौन्दर्य करूणा, सहजता और संवेदना के रंग रस से भीगा हुआ ही दिखता है। जड़ चेतन में नाना प्रकार के रंगों, स्वभाव के परिचय के लिये कुछ नदी गीत देखने पड़ेगे।

1 "झज्जर गोरी ते तौ बिन्द सांवली"

(मूल डोगरी/पृष्ठ संख्या 41)

'जो तेरे मन चित्त लग्गी जा *(भाख शैली)*

अर्थात् :- गौर वर्णा है "झज्जर नदी/ जब कि 'तवी' तनिक सांवली/ पर इन दोनों का रूप निखार/ऐ मेरी जान/मुझ पर जादू सा कर गया है/नयनों में समा गया है/कुछ दंश भी गया है/अजी ओ सुनो/झज्जर कमसिन है/तो तवी किशोरी/एक मोती है तो दूसरी सोन छड़ी/इन दोनों के रूप की/झलक क्या पड़ी/राही रास्ता भूल गये/मन छलक, छलक पड़ा/खुल गये मन के सारे भेद/अरे ओ/झज्जर चंचल मना है/तवी सरल/दोनो सहेलियों की परस्पर प्रगाढ़ प्रीत है। हल्की बरखा फुहार नें/इन नदियों के आस पास की पहाड़ियों को (धारों) धुंध नें आवेष्टित कर रखा है। अजब सी रंगीली रूत्त ने/बना लिया है/मन को बन्दी/झज्जर स्वभाव की मीठी है/तवी तनिक तुनक मिजाज़/पर पुरवैया दोनों की पक्की सहेली है/पर्वतों पर/चीड़ो से गुज़रती हवा/ जगा दती है अद्भूत संगीत/ऐ मेरी जान (प्रेयसी)/साँझ ढल गई। धूप चली गई/मन ठगा सा रह गया/ ए... जी... ओ...

यह तीन कविताएँ मुक्त छंद की हैं इनके सिर्फ हिन्दी रूपान्तर ही दिये है।

यश की कविता डोगरी भाषा में नवीन विषय एवम् निजि रंग की कविता है। पहाड़ी प्रदेश की नदियाँ अनन्य यौवना हैं। उनके चित्र शब्दों में उतरते जाते हैं। नये भाव नये चित्र, मस्ती भरे अनूठे रंग किसी स्नेहिल हृदय को ऐसे स्पर्श करते हैं मानों वासन्ती वयार फूलों के मुखड़े को चूम-चूम जाये।

2 "एह प्हाड़ें दियाँ नदियाँ"

(यह पहाड़ों की नदियाँ)

(मूल डोगरी/पृष्ठ संख्या 70) *'बेड़ी पत्तन संझ मलाह्'*

यह पहाड़ों की नदियाँ हैं। य उर्वशिया हैं/जिनका (निर्मल धवल) जल/धूप में ऐसा दमकता है/मानो गोटा, किनारी हो य सोने की झालरें। जिनमें सुच्चे मोती (जल कण) पिरोये गये हैं/अपनी मस्ती में बहती यह नदियाँ/बुरे मनुष्यों के साथ बुरी हैं/भले लोगों के साथ भली/इन का मन भावन रूप/चहूँ ओर उजास, शीतलता बिखेरता है। आस पास की हरी भरी पर्वत मालायें/उनकी प्रिय सखियाँ हैं। समझ नहीं आती कि, यह सूर्य्य की किरणें हैं/य चमचमाती हीरक कणियाँ/शैशव की देहली पार करते ही/इन पर मद मस्त यौवन ऋतु की मस्ती छा गई है। इसी रंगीली रूत्त में समय है, चिन्ता मुक्त होने का/जिस प्रिय की खोज में यह निकल पड़ी हैं/उसका कोई आदि अन्त (सागर) नहीं है/उसी से मिलने के लिये पर्वतों से उतर/मैदानी इलाके में बसे देशों की ओर जा रही हैं/भूल कर भी इनके विषय में बुरा भाव मन में मत लाना/यह बड़ी चतुर और सजग हैं/ओ राही/मानव मन के हावभाव को समझनें वाली इन नटखट बालाओं के चक्कर में मत पड़ जाना कहीं।

3 "तवी"

"जम्मू की पहिचान "तवी" नदी की आत्म कथा"

(मूल डोगरी/पृष्ठ संख्या 116) 'जो तेरै मन चित्त लग्गी जा'

न आदि न अन्त/बस चलना ही चलना/मेरा घर सुद्धि (शुद्धमहादेव तीर्थ) नहीं/ मेरा घर है वहाँ, जहाँ क्वांरी है वर्फ/कैलाश पर्वत के शिखर छूते हैं आकाश/पार्वती, तपस्या रत है शिव वरण हेतु/ सुद्धि ग्राम से आगे नहीं जा सकती तुम्हारी दृष्टि ?/ मेरी यात्रा अनंत है/अंतिम लक्ष्य तक पहुँच पाने के लिये/बिजन विश्राम किये/निरन्तर चलती रहती हूँ/समय के साथ-साथ/

ओ कवि :- कितना अच्छा होता/ यदिं समय के स्थान पर/ तुम मेरे साथी होते/तुम्हारे संन्निध्य में चलते चलते/देखती में बैसाखी मेला/दो चार बातें कर लेती/उन कुमारिकाओं के साथ/जो आर्ती राह्ड़े (वर्षा ऋतु में मनाया जाने वाला डुग्गर प्रदेश का त्योहार) प्रवाहित करने/मेरे तट पर/ जिनका रूप सौन्दर्य/ पार्वती से भी सात सवाया (अधिक) है । ओ कवि/यदि समय के स्थान पर तुम मेरे साथी होते/करती जंगल बेल्ले पार/सुन लेती भाखां गीत (डुग्गर के लोक गीतों की विशेष शैली) जिसे गाता कोई चरवाहा/ऊँचे टीले पर/वियोग में अपनी चंचलो के (कुंजुचंचलो-डुग्गर प्रदेश की लोक गाथा के नायक)

मेरी यह साघ/पार्वती के सुरत संभालने से भी/बहुत पहिले की है/कितना अच्छा होता/तुम मेरे साथी होते । त्रिकाल संध्या बेला में/ वक्ष पर युग बाहु बांधे/दूर घाट पर खड़े/तुम मुझे एक बिन्दु से दीखते हो/फिर वह बिन्दु/पलक झपकते ही/एक पीड़ा सी बन कर/व्याप्त हो जाती है मेरे मन प्राणों में/तुम मेरा रूख (रास्ता) उस ओर क्यों नहीं मोड़ लेते/जिस ओर कपिलाश पर्वत (श्रृंखला) तथा सुन्दर स्योज (धार) बाला जल के दर्पण में देखती है अपना सलोना मुखड़ा/ उठो/समय के रावण से टक्कर लो/झुका लो काल को अपने चरणों में/मैं पार्वती नहीं/ताप्ती हूँ ताप्ती (सूर्य पुत्री तविषि) जिसका पिता सूर्य/आवारा घूमने के लिये छोड़ गया है मुझे घरती पर/स्वयं जा बैठा है/ आकाश के उच्च स्वर्णिम सिंहासन पर/कवि ! काश तुम मेरे साथी होते/

(मुक्त छंद) की मूल डोगरी कवितायें, भाषा में एक नवीन और निजि स्थान रखती हैं । इन में मस्ती, स्नेह भरी छुअन है । पुरानी पद्धति का

पांडित्य न हो कर आधुनिक काल की सूक्ष्मता का सरल सौन्दर्यीकरण है।

देखा जाये तो जिस कविता में बिम्ब, प्रतीक, रूपक अपनी सार्थकता के साथ भाव जगत के साथ भी न्याय कर पाने में पूरे सक्षम हों, वही उत्तम कविता कही जा सकती है। इसी आधार पर संभवत् यह नदियाँ दूसरों को भी शैल पुत्रियाँ सरीखी लगें। उनके मन में भी आत्मीय भाव जग उठे,

कवि का जीवन के दोनों पक्ष-सुख दुःख से परिचय है पर लगता है कि, गुलाबी प्रातः से सुनहली साँझ अधिक प्रिय है। ऋतुओं में वर्षा और वसन्त अधिक सुहानी लगती ऋतुयें है जैसा कि कविता "फौगणें दी रूत्त" (फागुण की ऋतु) में :-

धरती ने कीता ऐ शंगार-फौगणें दी रूत्त आई ऐ
हसदी ऐ इक्क इक्कधार, फौगणें दी रूत्त आई ऐ।

अर्थात :- ऋतु राज बसन्त (प्रिय) के स्वाग्तार्थ धरती (प्रेयसी) ने सोलह सिंगार धारण कर लिये हैं। हरित बसना शैल मालायें हंसी से भरा मुखड़ा लिये निहार रही है प्रिय का पथ।

"बसन्त" नाम के गीत का एक बन्द :-

पीले पीले टल्ले, पीले गैहनें बंद्धे
फुल्ल गुट्टे दे गै दूरा स्हेई हुन्दे।
रौह्न हसदे-खेडदे गीत गान्दे,
फुल्ल कदें नीं ए कमलान गोरी।
चली अज्ज बसन्त मनान गोरी...

अर्थात् :- बसन्तोत्सव में पीले वस्त्रों और आभूषणें से सुसाज्जित नर- नारी दूर से ऐसे दीख रहे हैं जैसे गेंदे के अनगिनत पुष्प विकसित हो उठे हों। कवि प्रफुल्लित मन से यही कामना करता है कि यह मानव रूपी पुष्प सदैव हंसते, खेलते, गीत गाते और महक लुटाते रहें। इसी प्रकार के बहुत से इस बसन्त ऋतु के साथ जुडे होली गीत हैं जैसे राधा-कृष्ण की रास लीला की अभिव्यक्ति, शब्दों के मोर पंखी रंगों से की गई हो। एक बानगी देखनी होगी।

"गोरे रंगें दी शोभा तां, दिक्खों हाँ बिन्दक काले नैं।
एह् प्हाड़ी कलम बसोह्ली दी, एह् चित्तर कुसे चितेरे दा।।

अर्थात् : फाग की मस्ती में रंगों से सराबोर नर नारियाँ जैसे सोने के सी रंग वाली राधा तथा साँवले कृष्ण सदृश्य शोभायमान हैं। लगता है कि जैसे पहाड़ी कलम बसोहली के चित्रकारों द्वारा चितेरे गये चित्र ही साकार हो उठे हैं।

"रूत्त सुहानी"

इसी सुहानी रूत्त नाम के गीत में वसन्त के उद्दीपनों से विरह विदग्ध नायिका की विवशता का चित्र है।

अम्बें गी पेई गेया बूर, सुहानी रूत्त आई ऐ।

सज्जन गेदे दूर, सुहानी रूत्त आई ऐ।

रूक्खें ओह्लै कूकन कोयलां,

कोह्दे नैं लानियां मनें दियां गल्लां,

होआ कलेजा चूर, सुहानी रूत्त आई ऐ।

धारें धारें सुर अलबेले,

मह मह महके जंगल बेल्ले,

नदियें जल भरपूर, सुहानी रूत्त आई ऐ।

बन्झे (बाँस) दे जाड़ें चा ब्हाओ (हवा)

गीत सुनान्दी लंगी जा ओ,

सुनेयों कुतैं जरूर, सुहानी रूत्त आई ऐ।

निर्मल नाड़ू सीतल पानी,

हसदे मुखड़े मिठ्ठड़ी बानी,

एह् सब उस दा नूर, सुहानी रूत्त आई ऐ।

चढ़दा जोबन ठाठां मारे,

गासे पासे बाँह् पसारे,

होई गेईयां मजबूर, सुहानी रूत्त आई ऐ।

अम्बें गी पेई गेया बूर,
सुहानी रूत्त आई ऐ।

अर्थात् :-

सुहानी रूत्त आ गई है। आम के पेड़ बौरा उठे हैं पर साजन दूर चले गये हैं। आम्र बृक्षों के घने कुंजों की ओट में कोयलें कूक उठी हैं पर हम अपनी मनोव्यथा किस से कहें ? चूर-चूर हो रहा है कलेजा इस रूत्त में। धारों पर जाग उठे हैं अलबेले सुर बाँसुरी के। मह-मह महक उठे हैं जंगल बेल्ले। नदियाँ जल से परिपूर्ण हो उठी हैं।

बाँसों के घनें झुरमुटों से मस्त हवा गीत गाती हुई दूर चली जाती है। यदि हो सके तो उस संगीत को तुम भी सुनने का जतन करना।

निर्मल जल स्त्रोत हैं। शीतल पानी है। हंसते मुखड़े तथा मीठी वाणी हैं। पर्वतीय जीवन की यह सारी मनोहारी छवियाँ, उसी की कृपा दृष्टि हैं, आशीष हैं। परन्तु अकेली यौवन मत्ता विरहणि क्या करे ? अपने को कैसे संभाले इस मिलन की सुहावनी रूत्त में।

अब बात वर्षा ऋतु की। गीतकार का मानना है कि, इस ऋतु और ऋतु गीतों से मेरा प्रगाढ़ संबंध है। कुछ एक मूल डोगरी बर्षा गीत भाबार्थ सहित :-

"बरसांत"

बरसांत सुहानी के आई, बरखा दी रिम-झिम आई ऐ।
रंगें दी माया के छाई, पंजेबें रून-झुन लाई ऐ।
उत्त पासै इक्क गोरी बदली --
इत्त पासै डिग्गल काला ऐ।
ओ रूप राधकां दा समझो
ए अश्कें कोई गुआला ऐ।
ओ मान भरी हसदी नसदी दिन्दी निं अज्ज छुहाई ऐ।
बरसांत सुहानी के आई ....
इक्क नजर सवल्ली होई जा तां
सब हरा-भरा होई जन्दा ऐ।
जो कमलाया सो खिड़दा ऐ।
सुआसें दा फेरा रन्दा ऐ।
मैं उस नजरी दे बलहारी, जिस नैं ए रूत्त पलटाई ऐ।
बरसांत सुहानी के आई ....
धारें पर बदली नौन्दी ऐ --
चीडें दे जंगल हसदे न।
अम्बें दे बूटे बरखा च
किज होर बी सौले लगदे न।
कोई गीत बौंसरी पर छेड़ै, होई जन्दी पीड़ सुआई ऐ।।
बरसांत सुहानी के आई ....
बरखा दी रिम-झिम आई ऐ
रंगें दी माया के छाई पंजेबें रून-झुन लाई ऐ
बरसात सुहानी..........
मैं गीतकार ए बरखा ऐ,
साढ़ा सरबन्ध पुराना ऐ।
जो गीत असें हुन गाया ऐ।

ओ गीत असैं प्ही गाना ऐ ।
ए महामिलन साढ़ा दिक्खी, अम्बर बिजली मुस्काई ऐ ।।
बरसांत सुहानी के आई ....

अर्थात : बरसात सुहानी क्या आई, बरखा नें सरगम छेड़ दी है । रंगों की माया क्या छाई, बजने लगी है बून्दों की पाज़ेवों की झंकार ।

इस ओर एक कोमल गोरी बद्धली है तो दूसरी ओर है श्याम रंग का मेघ । यह शुभ्र वसना बद्धली मानों राधा-रानी है तो दूसरा है साँवला, सलोना, नटखट कान्हा, किन्तु यह गर्वीली मानिनी राधिका लाख जतन करने पर भी कान्हा को पकड़ाई नहीं दी रही है । "कवि की जल भरे मेघों से याचना है कि" यदि तुम्हारी कृपादृष्टि हो जायेगी तो चारों ओर छा जायेगी हरियाली । कुम्हलाई प्रकृति का कण-कण जीबन्त हो उठेगा ।

गीतकार का कहना है कि, मैं बलिहारी जाऊँ उस पर जो ऋतु परिवर्त्तन करता रहता है । हरी भरी पहाड़ियों पर बद्धली झुकती है तो चीड़ों के जंगलों के अधरों पर हंसी की हल्की रेखा झिलमिला उठती है । घने आम्रकुंज बरखा ऋतु में और भी अधिक संवला उठते हैं ।

ऐसे समय यदि कोई बाँसुरी पर गीत छेड़ देता है तो, विरह वेदना और भी गहरा जाती है ।

यह वर्षा ऋतु है, तो मैं गीतकार हूँ । हमारा संवंध तो पुरातन काल से ही चला आ रहा है । जो गीत हमने गाया है वह फिर भी गाते रहेंगे । हमारे युगों-युगों से चले आ रहे इस महा मिलन को देख कर, आकाश में बिजली भी विहंस उठी है ।

दृश्य से भी महत्त्वपूर्ण होती है, "दृष्टि" । इस दृष्टि से जड़ में चेतन के रूप दर्शन का अनुभव कोई सरस संवेदनशील हृदय ही कर पाता है ।

" झड़ियाँ "

झड़ियें रंग न लाये
धारें धारें सब्ज ओढनू
ओढी लैत्ते माये
झड़ियें रंग न लाये ।
टीने दे टप्परे पर टप टप
रली मिली बून्दां मारन गप्प शप्प
उऐ गुम सुम रस्ता दिखन, कन्त नि जिन्दे आये-
झड़ियें रंगे न लाये ।
नदियें दी भरपूर जोआनी
रारें पारें पानी पानी
ना बेड़ी न पत्तन बरखा, पल पल रूप बटाये -
झड़ियें रंग न लाये ।
रूक्खें पर बद्दल झुकी आया
सौलापन किश किश बदी आया
सन्झा शा पैहले सन्झा दे शौरे उतरी आये -
झडियें रंग न लाये ।
रिम झिम दा मौसम सौगातां
ए रूत्तां दाता दिया दात्तां
कुन जाने अग्गे कुन मौसम अपनी कत्थ सनाये -
झड़ियें रंग न लाये ।
चेतें दे किज जखम पुराने
मते चिरैं आये समझाने
ओठें पर हासा अक्खीं च की अत्थरू उठी आये -
झड़ियें रंग न लाये ।

अर्थात् : "कई दिनों तक बरसती वर्षा (झड़ियाँ) ने हर तरफ नये रंग बिखेर दिये हैं। (आश्चर्य है) पर्वतमालाओं ने ओढ़ ली है सब्ज़ चूनर/(गाँब में) टीन की छत्तों पर वर्षा की बून्दों की टप-टप ऐसे लगती है जैसे सखि सहेलियाँ गप-शप कर रही हों मिल बैठ कर। परन्तु वही निहार रही हैं बाट गुम सुम और उदास, जिनके पति नहीं आये हैं, इस मौसम में भी घर। आर पार पानी ही पानी दीख पड़ता है। पल पल रूप बदलती बरखा रूत्त में नहीं दिखता है नदी का तट- घाट और नाव।

पेड़ों पर बादल क्या झुक आये कि पेड़ और भी संबला उठे। हरीतिमा और भी गहन हो उठी। साँझ ढलने से पहिले ही क्यों साँझ के साये उतर आये हैं ? यह रिमझिम के मौसम उसकी दी हुई सौगातें हैं। सभी मौसम उसी दाता की देन हैं। कौन जाने, आगे आने वाला कौन सा मौसम कौन सी कथा कहेगा। स्मरण हो आती हैं कुछ विगत स्मृतिआं कवि को। कह उठता है कवि कि, यादो के पुराने ज़ख्म समझाने के लिये आये तो हैं किन्तु उस समय जब कि, बहुत देर (जीवन संध्या वेला) हो चुकी है। यह देख कर सहसा होठों पर हंसी और आँखों में अश्रुकण झलक उठे हैं"।

इन पंक्तियों में सहसा होठों पर करूण हंसी और अश्रुकण का झलक पड़ना, इसके लिये इस सत्य को आँख खोल कर देखना पड़ेगा कि, जहाँ संवेदना होगी जीवन के कटु मधुर अनुभव होंगे वहाँ अश्रुकण भी अवश्य होंगे।

साँझ के साये और आकाश में तैरते साँबले बादल आज भी कवि मन में सुधियों के दीये जला जाते हैं। यह सुधियाँ स्वतः एक गज़ल को जन्म देती हैं।

बादल छाये थोड़े थोड़े
याद वह आये थोड़े थोड़े
ऊँचे पर्वत के दामन में
उतरे साये थोड़े थोड़े।
कुदरत की पोथी के अक्षर
समझ में आये थोड़े थोड़े।
नयन कटोरो में दो आँसू
क्यों भर आये ? थोड़े थोड़े।

यदि फागुण के स्वागत में कवि मन में बासन्ती वन महक उठता है तो वरसात के आते ही आकाश से जल की फुहारें बरसें य झमाझम बून्दें। जिस हृदय में स्नेह नहीं, वात्सल्य नहीं, मादकता नहीं, वह क्यों कर सुन पायेगा वरसती बून्दों की टप-टप में गप-शप का संगीत। जिस ने कभी नील गगन के महां विस्तार को आँख भर देखा ही नहीं? उसे क्या मालूम, वर्षा ऋतु के धवल श्यामल मेघों की रास लीला में, दमकती दामिनी में राधा कृष्ण की छवियाँ कैसे दिप दिपाती हैं ?

गीतकार यश शर्मा की अपनी प्रकृति भी ऐश्वर्यमयी है उसी मन के ऐश्वर्य से प्रकृति भी सर्वत्र ऐश्र्वय भरी ही उनको दिखती है।

सुन्ने सांई धरती ते नीलमें दा गास ओ
उद्धमी न लोक भला देवते दा बास ओ।

अर्थातः धरती सोने जैसी है और आकाश है नीलम की तरह। लोग कर्मठ तथा उद्यमी हैं। इसी लिये तो इसे कहते हैं देवताओं की धरती।

चाँदी साँई नदियाँ ते बौलियें दी माला ओ
जम्मुआं ऐ वैष्णों बलौर सुकराला ओ
चीड़ें पिच्छें चन्न चढ़ी जा-छैल बड़ा छैल लगदा

नदियों का जल दमकता है चाँदी की तरह। स्वच्छ जल भरी बावड़ियों की माला पहन रखी है पर्वतों ने। इस देव भूमि में माँ वैष्णों का निवास स्थान है, जम्मू (कटड़ा) में। तथा माँ सुकराला बिराजती है बिलावर की पहाड़ियों में। ऐसे में यदि चीड़ों के जंगल के पीछे से धीरे-धीरे चन्द्रमा निकल आये तो वह स्वर्गिक छटा कितनी सौन्दर्य परिपूर्ण है।

अब जिस कविता का ज़िक्र है उसका नाम है जम्मू यर्थाथ के ध
ारातल पर जन्म लेने वाली इस कविता को चाहे कवि मन के नितान्त निजि आधात से ही उत्पन्न मान लिया जा सकता है पर यह व्यथा पूरे समाज की सम्बेदना को झकझोरती है। माँ के बिना जगत कहाँ ? जीवन कहाँ ?

"जम्मू"

धारा पर बस्सी दी नगरी जम्मू दी,
दूरा दा जित बेलै नजरी पेई जन्दी,
उत बेले ऐ नगरी इंयां लगदी ऐ --
मां होए पुत्तरै गी जियां बलगै दी।

होर कोई सोचै जां भामें नेई सोचै,
अऊं चलदी गड्डी च इयै सोचा दां,
उद्धदर तूं दीयें गी बाली बलगै नीं,
इद्धर मैं ममता दे धागें बज्झे दां।

जन्मे दी जे मां मरी जा तां के ऐ,
तेरी छाती नैं लग्गियै रोई लैन्ना,
जिन्दू च औने आले हर घाटे गी,
चुप-चपाते अत्थरूएं नै धोई लैन्ना।

ए जिऊड़ा मिलने गी कैसी ब्याकल ऐ,
अक्खीं च कुत्थों दा आया पानी ऐ,
हिरखे दा नाता बी कैसा नाता ऐ,
ममता दी क्हानी बी कैसी कहानी ऐ,

मां ममता दी मूरत बक्शन हारी मां,
अस तेरे बच्चे आं भुल्लन हारे आं,
दुख दिन्नें तेरे नैं रूस्सी जन्ने आं,
फी बी अस तेरीं अक्खीं दे तारे आं।

दीयें गी बालियै बलगन हारी मां,
उच्चे मैह्ल-मनारे बाह्वे आली मां,
तेरे हुन्दे दुक्ख, दुक्ख नेईं सह्ई हुन्दे,
प्राणें हा बी बद्ध मिगी तूं प्यारी मां।

अर्थात् :- "(धार) छोटी पहाड़ी पर बसी नगरी जम्मू (वस द्वारा विजली की रोशनी से सात आठ किलो मीटर दूर से ही साँझ ढलने पर) जब दूर से दिखाई देने लगती है तो लगता है जैसे माँ, अपने पुत्र की प्रतीक्षा कर रही हो। और कोई दूसरा इस भाव से सोचे य न सोचे पर मैं तो चलती बस की खिड़की के पास बैठा यही सोच रहा हूँ। उस तरफ तुम (जम्मू नगरी) दीये जला कर प्रतीक्षा रत हो इधर मैं भी ममता की डोरी में बंधा हूँ। यदि जन्म देने वाली माँ न रहे तो उस अभाव की पूर्त्ति में हम तुम्हारी छाती से लग कर रो लेते हैं। जीवन में मिलने वाले हर अभाव को मौन रह कर अश्रुओं से धो लेंगे। मन इतना व्याकुल क्यों हो उठा है ? आँखें भर भर कर क्यों आ रही हैं ?

कवि स्वयं ही कहता है कि, स्नेह का नाता भी कैसा है। ममता की कहानी भी कैसी कहानी है। फिर माँ रूपी जम्मू नगरी को संबोधित करते हुए उसका कहना है कि, माँ! तुम तो ममता की मूरत हो। मेरी सारी भूलें तुम क्षमा कर देती हो। ऐ ममता मयी माँ। हम सभी तुम्हारे बच्चे हैं। भूलें करते हैं। तुम्हे दुःख देते हैं, रूठ जाते हैं। फिर भी तुम्हारी आँखों के तारे हैं। दीपक जलाये तुम हमेशा पुत्रों की प्रतीक्षा करती हो। ऊचे महल मनारे और बाहू किले में निवास करने वाली माँ! तुम्हारे होते हुए तुम्हारी संतान को कोई दुःख नही मिल सकता। हे माँ! मैं तुम्हें प्राणों से भी अधिक प्यार करता हूँ।"

अपनी जन्म भूमि से लगाव भी माँ की तरह ही होता है। मनुष्य के जीवन की सार्थकता किसमे है ? भौतिक उपलब्धियों में य सच्चे स्नेह और सत्य की आराधना में।

धरती सब किश़ जरदी ऐ

धरती सब किश जरदी ऐ,
चुप-चुपाती अम्बर हेरै, मुंह्आं सी नेई करदी ऐ।
धरती सब किश जरदी ऐ।
ए ममता दी मूरत माह्नू पर सरबस लुटान्दी,
अन्न-धन्न दिन्दी माह्नू गी, जीवन जोत जगान्दी,
ढट्ठें गी छातीं नैं लान्दी रूस्सें गी पतेआन्दी,
मन्दे बोल, बुरे बचने गी, ए नेईं मन-चित्त लान्दी,
सभनें दा सुख मंगने आ'ली,
ए सबनें दी दरदी ऐ।
धरती सब किश जरदी ऐ..........
केईं बारी एदी छाती पर कुरूक्षेत्र होए,
किन्नें बारी एदे टल्ले लहुए रंग रंगोए,
कदें सिकन्दर हल्ला बोल्लै कदें हलाकू आया,
एदी सन्तानें गै इसदा, रूप करूप बनाया,
फ्ही बी ए माह्नू दी पीड़ा-
ओदी बेदन हरदी ऐ।
धरती सब किश..........
ए धरती दी क्हानी कूंजे तूं कैह्दे लेई रोई,
ओ केह्ड़ा दिन-बार के जिस दिन तूं नेई कदें लटोई,
की भरी आइयां अक्खीं दस्सां की, बैठी मन हारी,
दिल दरिया ममता दी मूरत, ए धरती तूं नारी,
दुंए गी लो देने आली जोत सदा गै बलदी ऐ
धरती सब किश जरदी ऐ
चुप-चपाती अम्बर हेरै, मुह्आं सी नेई करदी ऐ

धरती सब किश ....

अर्थात् : सभी कुछ सहन कर लेती है धरती/चुपचाप निहारती है आकाश/नहीं करती है कोई शिकवा शिकायत/मूर्त्तिमति स्नेह मयी माँ सरीखी मानव पर परिपूर्ण करती है अन्न-धन से ओर जगा देती है जीवन ज्योति/गिरने बालों को सहारा देकर लगा लेती है हृदय से। मना लेती है रूठने वालों को। नही मानती बुरा, कड़वे वचनों का। सभी के सुख की कामना करने वाली। सभी के दुःख दर्द को महसूसती है।

अनेकों बार इस की छाती पर कुरूक्षेत्र हुए। कितनी बार इसके वस्त्र लहू से सने गये। कभी सिकन्दर तो कभी हलाकू ने धावा बोला। धरा की संतानों ने ही इस के रूप को कुरूप बनाया, विकृत किया। फिर भी धरतीं माँ अपनी संतान की पीड़ा और वेदना का हरण करती है। अब कवि का कहना है कि, यह कथा व्यथा है धरती माँ की। अरी ओ हंसनी! (नारी) तुम्हारी आँखों में अश्रु क्यों ? वह कौन सा दिन बार (कालखंड) था जब तुम्हें लूटा खसोटा नहीं गया। क्यों भर आई हैं तुम्हारी आँखें ? क्यों हो इतनी हताश और निराश?

ए ममता की मूरत! तुम्हारा हृदय तो दरिया सरीखा है। धरती और नारी तुम दोनों ही सहनशील हो। जो दूसरों का अंधेरा दूर करते हैं। उनकी नियति निरन्तर दीपक की तरह जलते रहना ही है।

लगदी ऐ माँ जम्मुआं
मैं तां सच्चो-सच्च दिन्नी आं गलाई,
लगदी ऐ मां जम्मुआं।
मैं तां इक्कै गल्ल जाननी आं भाई,
जियां ते मरां जम्मुआं।।
इक्क बाह्वे आली धार,
दूआ तविये दा प्यार,
मिगी सददा ऐ सारतां कराई,
कियां नीं मैं जां जम्मुआं,
मैं तां सच्चो ....
त्रिकुटा दी लिटें थमां,
संझ जदूं ढलदी

सांवली सलोनी मोई, बड़ी शैल लगदी,
होई जन्दे लोक शदाई-
ठंडी-ठंडी छां जम्मुआं
मैं तां सच्चो ....
चीड़ें ते देयारूऐं दी,
ठंडी-ठंडी बा ओ।
मिट्ठी-मिटठी मरी जानी,
बौंसरी बजा ओ,
चन्नै आली भाख कुसै लाई,
कैसा ए समां जम्मुआं।
मैं तां सच्चो-सच्च दिन्नी आं गलाई,
लगदी ऐ मां जम्मुआं।
मैं तां इक्को गल्ल जाननी आं भाई,
जियां ते मरां जम्मुआं।

अर्थात : "लगती है माँ जम्मू नगरी" मैं तो सच्ची बात कहती हूँ कि, जम्मू नगरी मुझे लगती है माँ सरीखी। अरे भाई! मेरी तो हर समय यही कामना रहती है कि यदि मैं मरूं तो मेरा पुर्नजन्म इसी नगरी में हो।

एक तो बाहू (बाहवे) की धार (पहाड़ी) दूसरा तवी का प्यार मुझे संकेतों द्वारा अपनी ओर बुलाते हैं तो फिर मैं क्योंकर न जम्मू जाँऊ। मैं अपने मन की सच्ची बात कहती हूँ।

त्रिकुटा (वैष्णवी देवी की पहाड़ी) की अलकों से जब उतरती है साँझ। वह मुई साँवली सलोनी वड़ी मन मोहक सी लगती है। जिसके साँवले सौंदर्य का जादू देखने वाले को कर देता है सौदाई। यही संवलाई अद्‌भुत ठंडी शीतल छाया है मेरी जम्मू की। यही सच्च है। चीड़ों और देवदारों के पेड़ों से गुज़रने वाली वह मरजानी (स्नेह संबोधन) हवा, बाँसुरी की सी कोई रसीली धुन छेड़ जाती है और दूर गाता है कोई चन्न, मीठी भाख शैली में। उस समय सुहाना समय और भी सुहावना बना देता है जम्मू नगरी को।

अब तुम्हीं कहो ? मैं जम्मू क्यों कर न जाऊं। मेरे मन का सच्च यही है कि मेरा जन्म मरण जम्मू नगरी में ही हो।

यह यश शर्मा के गीत कवितायें, कल्पना के ही दिवा स्वपन मात्र नहीं हैं। उन के मन में जम्मू प्रदेश के प्रति जो आस्था कृतज्ञता स्नेह है उसी के चलते इस प्रदेश की शान्त अंचचल प्रकृति के सुन्दर दृश्य पटल मोहित भाव से स्वयमेव उपस्थित होते चले जाते हैं गीतकार की दृष्टि में।

नोट :- देस य परदेस में बसी जम्मू की बेटियों को समर्पित है यह भाव प्रवणता।

"आरती"

(जो तेरे मन चित्त लग्गी जा, पृष्ठ संख्या 95)

मैं दो-चार गीतें-कबित्तें दे कन्ने,
तेरी आरती बी उतारां तां कियां।
तेरा रूप तेरे छलैपे न जादूं,
मैं तेकी बसारां, बसारां तां कियां।
ए मिट्टी दे घर जिन्दे आलै-दोआलै,
घनें रूक्ख अम्बें दे, छाओं न करदे।
जे चीड़ें दे जंगल च बा सूंकदी ऐ,
तां नाड़ू कुतें गीत गान्दे न बगदे।
कुतें उच्ची धारा दी गोदा च बसदे,
ग्राएं च रार्ती ओ दीयें दा बलना।
बड़ें जोरें जोरें कोई गीत गान्दे,
कुसै मौजिये दा ओ झिक्के गी ढलना।
मेरी प्रीत जिन्दू दे अन्तिम खिनें तक,
तेरा साथ देनें शा हुट्टी निं सकदी।
तेरे चेतें नैं मेरे साहें दी डोरी,
बझोई दी ऐसी जे त्रुट्टी निं सकदी।
मैं प्रीता दा मारे दा जोगी आं तद्दें,
तेरे नां दी धूनी रमाइयै बैठां।
मैं हिरखी बजोगी आं तां तेरे रस्ते च,
ए रूप अपना बनाइयै बैठां।

सरींह् ते करीरें दी भीनी सुगंधी,
जो जंगल ते जाड़ें बतोई दी फिरदी।
मेरे सोआसें अन्दर, मेरी आतमां च,
ए-इय्यै सुगंधी ऐ जो बास करदी।
कदें ए बी होआ जे परदेसे अन्दर,
तेरे चेते आए, बो नींदर निं आई।
बिजन पानियां मच्छी आंगू तरसदे,
तड़फदे-असें रात सारी बिहाई।
बो इन्नी खुशी ऐ जे सब किश गोआचा,
पर एक तेरा चेता हा सो नेई गोआया।
निराशा च डुब्बे दे भलखोए दें गी,
मते बारी इन्नैं गले कन्नैं लाया।

अर्थात : आरती नाम की इस कविता में कवि का कहना है कि, यह कैसे संभव है कि मात्र दो चार गीत कविताओं द्वारा तेरे आरती उतारूं भी तो कैसे। जादू सरीखा है तुम्हारा रूप सौन्दर्य। मैं भूलना भी चाहूँ तो कैसे भुला दूं। मिट्टी के घरों वाले वह छोटे छोटे गाँव, जिन्हें घेर रखा है सधन अमराइयों नें।

एक ओर तो चीड़ों के जंगल में हवा गुनगुनाती है तो दूसरी ओर झरनें मस्ती में डूबे गीत गाते निरन्तर बहते हैं। किसी ऊँचे पहाड़ के दामन में रसते बसते गाँवों में दीयों का जल उठना तथा ऊँचे मीठे सुरों में गीत गाते हुए किसी मनमौजी का पर्वतीय ढलान से धीरे-धीरे उतरना कितना भला लगता है सब। सच कहता हूँ मेरी मुहब्बत ज़िन्दगी के आखिरी लम्हों तक तुम्हारा साथ देने में तनिक नहीं थक सकती। तुम्हारी यादों से मेरी सांसों की डोर ऐसे बंध गई है कि यदि तोड़ना भी चाहूँ नहीं टूट सकती। मैं तुम्हारी मुहब्बत का मारा वियोगी हूँ तभी तो तेरे दर पर धूनी रमायें बैठा हूँ। तभी तो तुम्हारी राह में यह रूप बना कर बैठा हूँ।

शिरीष और करीर (जंगली गुलाव) के फूलों की भीनी भीनी सुगंधि। जो इस झाड़ झंखाड़ भरे जंगलों में बावले की नाँई घूमती फिरती है। यही सुगंधि मेरी आत्मा, मन प्राणों में बसेरा बसा कर बैठ गई है। कभी कभी परदेस में ऐसा भी हुआ कि, तुम बहुत याद आई, रात रात भर नींद नहीं आई और बिन पानी मछली की तरह तड़पते समय गुज़रा। पर फिर भी

इतनी साँत्वना तो थी कि सब कुछ गंवाने (दूर बसने) के पश्चात भी तुम्हारी याद को संज़ोये रखा। तुम्हारी स्मृति ने निराशा में डूबे और कर्त्तव्य बिमूढ़ अवस्था में हमें अपने गले से लगाये रखा।

अपनी जन्म भूमि की मधुर स्मृतियों के प्रति इस प्रकार कृतज्ञ भावना भरी अनुभूति को संजोया गया है इस कविता में।

अम्बड़ियां धारां

गलै आई धूड़ां लग्गियां, गलै लग्गियां अम्बड़ियें धारें।
मेरी अक्खियें नै दिक्खेओ, कोई दिक्खेओ इनें दऊं नारें।।
सौणें दा म्हीना, धियां आइयां न प्योकड़ै।
सालुए दी चूह्क फड़ी लैती बीरे लौह्कड़ै।
चीड़े देआ घनें जंगला, राणों अपनी तूं कैत्त निं कोआलें
गलै आइ धूड़ां लग्गियां.........
नदियें नै कोल खिच्ची हस्सी-हस्सी पुच्छेआ।
बौलियें नै बांह् फड़ी, अक्खियें च दिक्खेआ।
बिस्सरे दे चेते आई गे, ठंडे साह् भरे मरी जाने नालें
गलैं आई धूड़ा लग्गियां ....
अक्खियें च सत्त-रंगी सुखनें संजोइयै।
पैह्ले बारी आई सौह्रें घरा परतोइयै।
तत्तड़ियें धुप्पें मिलना, अजै मिलना ऐ ठंडियें फुहारें।।
गलै आई धूड़ा लग्गियां, गलै लग्गियां अम्बड़ियें धारें।
मेरी अक्खियें नै दिक्खेओ, कोई दिक्खेओ, इनें दऊं नारें
गलै आई धूड़ां ।।.........

कोआलना - बुलाना

“माँ सरीखी छोटी पहाड़ियाँ”

यहाँ पर जिस रचना का ज़िक्र किया जा रहा है उस का नाम है “अम्बड़ियाँ धारां, अर्थात् माँ सरीखी छोटी पहाड़ियाँ। यश शर्मा की रचनाओं में कल्पना का सौन्दर्य इसी में है कि, प्रकृति और मानव भाव को अलग अलग कर पाना सरल नहीं होता है। गीतकार के अपने मन की सारी सौन्दर्य निधि प्रकृति के मानवीकरण को ही समर्पित है। यहाँ पर “मगधूलि पृष्ठ संख्या (4)” में की गई टिप्पणी को पुनः उदधृत करना होगा। “यश शर्मा अपने गीतों में धनिष्ठ व्यक्तित्त्व तथा पारिवारिक समस्याओं का निरूपण करते हैं और गेयता के गुण से युक्त यही घनिष्ठता उन्हें डोगरी काव्य में एक वैशिष्टय प्रदान करती है”।

अर्थात् : गलबहियाँ डाल कर बेटी स्वरूपा धुंध शैल श्रृंखला माँ के गले मिल रही है। कवि का यहाँ कहना है कि इन दो नारियों का अर्थात् माँ बेटी का मिलन मेरी दृष्टि से देखा जा सकता है। सावन का महीना है। बिवाह के पश्चात् प्रथम वार ससुराल से बेटी मायके आई है। आकाश पर एक बादल का टुकड़ा छोटे भाई जैसा है, जिसने पकड़ लिया है अपनी बहिन के आँचल का छोर। चीड़ का घना जंगल पिता जैसा है जिसने लज्जा वश, अपनी दृष्टि नीचे झुका रखी है (लाडली पुत्री, पत्नी बन लौटी है मायके) यहाँ यह देख कर कवि का प्रश्न है कि ओ चीड़ के घने जंगल! तुम झुक कर अपनी विटिया को गले से लगा कर कुशल क्षेम क्यों नहीं पूछ रहे हो ?

सहलियों रूपी नदियों, बावड़ियों ने उमग उमग कर उस नई ब्याहता को अपनी ओर खींच खींच कर हंसते हुऐ उसकी आँखों में झाँक झाँक कर बहुत से प्रश्न पूछ डाले हैं (प्रथम मिलन के) उधर गाँव के बारहमासी जल स्त्रोत झरने और नालों रूपी मनचले छैलों ने उसे पुनः देख कर ठंडी आहें भरनी शुरू कर दी हैं क्योंकि बचपन की भूली बिसरी स्मृतियाँ पुनः सजग हो उठी हैं।

परन्तु कवि, स्वयं दूर खड़ा आँखों में इन्द्रधनुषी सातों रंगों के सपने संजाये ससुराल से पहली वारी मायके आई। उस नई व्याहता से कहता है कि, अरी ओ नववधु! तुम्हारे जीवन की इस नई यात्रा में आयेंगे कभी तो

प्रखर धूप जैसे उत्ताप भरे मौसम और आयेंगी बरखा रूत्त की शीतल ठंडी फुहारें क्योंकि भविष्च अदृश्य है ।

रूपकों का एक समृद्ध भंडार है इस गीत में । भारतीय संस्कृति का पारम्परिक पारिवरिक चित्रण तथा पर्वतीय प्रकृति के प्राकृत रूप दर्शन की मनोरम छटा का एकाकार होना ही यहां कवि कर्म की महत्तर उपलव्धि है ।

पिप्पले दा बूटा

(जो तेरे मन चित्त लग्गी जा, पृष्ठ संख्या 12)

ढक्किये दे सिरे पर, पिप्पले दा बूटा
बावले दा चेता करा
नां मेरी अम्बड़ी, ना मेरा बावल
कुण सांझो[1] गले कन्ने ला
ते भरी-भरी औन अक्खियां
मारियै मडूका लंघियां,
भाबियां बी मड़ो सक्कियां ।।
कालजे कटारां लग्गियां ।।

मंझ साढ़े आंगनै, आरनी[2] दा बूटा
अम्बड़ी दा चेत्ता कराऽ,
औन्नियां-शताबी, कोल पुज्जनी तां लगदां-
अम्मां बैठा चरखा चला
ते भरी-भरी औन अक्खियां,
सालुए समेत सिज्जियां,
ममता दी डोर बज्जियां,
मत्थे दियां कु'न्न मेटियां ।।

झाँबडियाँ[3] पाई मिला घरे दियें 'थम्मियें गी'
बचपुना सारतां कराऽ

---

1. मडूका - उपेक्षा 2. साँझो - हमें 3. झांवड़ियाँ - गलबहियाँ

अंगन पसार, नित्त-नर्मी खेढ खेढनी,
झूर मुट चिड़ियें दा-
ते भरी-भरी औन अक्खियां,
माए धीयां कैत जम्मियां,
बावले नै दूर दित्तियां,
अनसद्दे आई पुज्जियां ।।
ढक्किये दे सिरे पर ....

"पीपल का पेड़"

विषाद युक्त अनुभूति उकेरते इस गीत का नाम है "पीपल का पेड़" । सच है कि जव आप (लेखक) अत्यंत वेदनामय विषयों पर भी लिखते हैं तो उस रचना के चित्रण में ऐसा गुण आ जाता है जो हृदय की पीड़ा को भी सम्मोहनीय वस्तु बना देता है । विषय के निर्वाह तथा सार्थकता सिद्ध करने के लिये गम्भीर अध्ययन, सूक्ष्म चिंतन तथा युग धर्म अनुरूप बदलते मानवीय रिश्तों का मूल्यांकन मुख्य स्वर है इस गीत का ।

अर्थात : ढक्की की चढ़ाई के अन्तिम छोर पर खड़ा है पीपल का पेड़ । मायके आने वाली इस बेटी को लगता है जैसे उसका पिता ही उसके आने की प्रतीक्षा कर रहा हो । पर सहसा उसकी आँखों मे यह सत्य कौंध जाता है कि इस घर में उसके माता-पिता तो हैं ही नहीं ।

कौन मुझे गले से लगा कर आशीष देगा । यह सोच कर बरबस भर आती हैं आँखें । जब कि कठोर सच यह भी है कि इस घर में उसकी सगी भाभियाँ उपेक्षा दर्शाती कंधे उचका कर पास से गुज़र जाती हैं, विना स्वाग्त सत्कार के कोई शब्द बोले ।

इस तिरस्कार ने जैसे उसके कलेजे में कितनी तीक्ष्ण कटारें भोंक दी हैं । घर के आँगन के बीचों बीच सफेद नीम गुलावी फूलों से भरा आरनी (आड़ू) का पेड़ है । लगता है जैसे वहाँ माँ बैठी चरखा कात रही है । आँखें भर भर आती हैं । भीग जाता है आँसुओं से आँचल । इस घर के प्रति ममता की डोरी खींच लाई है । परन्तु माथे (भाग्य) की रेखाओं को कौन

मेटन हारा है। माँ के घर आई बेटी घर के दालान के थम्मों (खम्भों) से ही गलवहियाँ डालती है। लिपट जाती है। मानों उसका यहाँ बीता बचपन ही उसे संकेतों से बीते परिवेष में ले आया हो। यहीं पर वह अपनी सखी सहेलियों के साथ नित नये खेल खेला करती थी। जैसे चिड़ियों का झुरमट ही **कलरव** करता हो। सभी कुछ याद आ रहा है। आँखें आँसुओं से भर गई हैं। तब स्वतः ही मुँह से निकल पड़ता है। ओ माँ। तुमने क्यों बेटियों को जन्म दिया और बाबुल ने दूर परदेस में व्याह दिया। क्षमा करना माँ। किसी के भी बुलाये बिना ही यहाँ चली आई हूँ।"

किसी भी बेटी के हृदय के यह उद्गार जैसे दुःख, कातरता उपेक्षा, तिरस्कार से निचुड़ कर आँसू बन आँखों से बरस गये हैं। इस गीत में।

अपनी डोगरी भाषा में विभिन्न बानगियों का एकीकरण करना यश शर्मा को अभीष्ट है। भाषा अधिक से अधिक समृद्ध करने में आवश्यकतानुसार कुछ अन्य शब्द प्रयोग करने से उन्हें कोई परहेज़ नहीं रहता। बसोहली, चम्बा, भद्रवाह, हिन्दी, उर्दू, गोजरी य और भी कोई तत्सम शब्द जो इस भाषा के शब्द श्रृंगार में सहायक हों, अधिक निखार लायें उन्हें उन्मुक्तता से अपन लेते हैं। जैसे :-

सांजों (हमें)/झांबड़ियाँ (गले मिलना)/शताबी (शीध्र)/सुन्ने केड़ी (सोने जैसी)/हेरना (देखना)/म्हेलां (गले का आभूषण)/धामां (किरणें)/सोन रंगी (सोने के से रंग की)/तेकी (तुझे)/मंझ (मध्य)/कैह्जो (क्यों)/ विहाणी (गुज़ारी)/अदमे तआवन (असहयोग)/सीना वसीना (एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक)/नादर (अद्भुत)/पुरजमाल (अति सुन्दर)/नवा (आवाज़)/रिन्द (पियक्कड़) आदि।

परन्तु कुछ आम प्रचलित शब्द भी (मुझे)/फ्ही (फिर)/संञ्ज (साँझ) शब्दों से कभी मित्रता नहीं कर पाये। संज्ज की अपेक्षा (संझ-सन्झ) का प्रयोग संञ्झ के लिये अधिक प्रीतिकर रहा है। इस सुन्दर विश्व के प्रति मधुर जिज्ञासा का भाव जो "मौन" नाम की कविता में निहित है। वहीं प्रकृति के उपकरणों के प्रति अगाध स्नेह, अपनी धरती अपने लोगों के लिये कारूणिक मोह, साधारण जन जीवन में व्याप्त दुःख दैन्य उत्पीड़न के चित्र। इन सब से परे हट कर बसोहली में चिरकाल से बहती चली आ रही पावन वैष्णव धारा के अनुरूप राधा कृष्ण के स्नेह पगे श्रृंगार के वियोग पक्ष की

इस धारा से सिंचित गीत, जैसे चित्र शैली के स्थान पर गीत शैली में पुनः साकार हो उठे हैं। पर वह प्रसंग फिर कभी। इस समय तो जीवन के संध या काल में लम्बी यात्रा से थके मन पर जीवन के आठवें दशक मे ढलती सांझ के साये गहराते जा रहे हैं।

अब वह संध्या यौवन की अलस उन्माद भरी कोमल रंगीन संध्या नहीं, जो कभी :-

जोवन मत्ती होई दी सूई घुटट सलगदी सन्झ

य फिर

लाल सिन्दूरी गुलनारी अम्बर टल्ली लान्दी सन्झ

अर्थात : यौवन से मदमाती साँझ अपनी ही लालिमा से दहक उठी है जो आकाश के फलक पर लाल सिन्दूरी गुलनारी रंग छिटका जाती है। कहाँ है वह साँध्य का सलोना रूप। साँझ के कवि की सहचरी साँझ भी अब -

"रोज मेरे कश आइ बौन्दी हारी छुट्टी थक्की संझ"। अर्थात् : प्रतिदिन थक हार कर साँझ मेरे पास आ कर चुप चाप बैठ जाती है।

"सन्झ घिरी आई ऐ"

हुन ते सन्झ घिरी आई ऐ- एह जीवन दी सच्चाई ऐ

इक्क इक्क करदे झड़दे जन्दे

देह बूटे दे पील पत्तर

ठण्डी बाओ चलै पर कुदरै

न कोई सर सर न कोई मर मर

लगदा ऐ मेरी मौरी (माँ) ने मौन सुरें लोरी गाई ऐ।

हुन ते सन्झ घिरी आई ऐ।

ओह बीते दिन, बीते मौसम

राती दा सुखना जन होए

साथे साथें साथ चले जो,

सब खिण्डी गे नेंई परतोये

चेतें दी बद्धली छाई ऐ - सैहबन अक्ख भरी आई ऐ।

बडे बड़े दावे करदे हे,

जोगी जंगम सन्त स्याने

पर उसदे एह् खेड तमाशे

कोई निं समझे कोई निं जाने

आये हे तां माँ ममता ही, जान लगे तां परछाँई ऐ

हुन ते सन्झ घिरी आई ऐ, एह जीवन दी सच्चाई ऐ।

आज जब कवि के जीवन में सचमुच साँझ ढल चुकी है तो कवि की स्वीकारोक्ति देखिये कि उनकी दृष्टि में अव साँध्य रूप कैसा है :-

हिन्दी रूपान्तर :-

अत तो साँझ उतर आई है, यह जीवन की सच्चाई है।

झड़ते जाते देह तरूवर के-सूखे पत्ते एक एक कर

ठंडी हवा चले पर देखो- न कोई सर सर न कोई मर-मर

मानों माँ ने मौन सुरों में इक मीठी लोरी गाई है।

अव तो साँझ उतर आई है।

वह बीते दिन, बीते मौसम - स्वप्न सरीखे से लगते हैं

संग संघाती साथ सहारे - बारी बारी बिछुड़ गये हैं।

यादों की बद्धली छाई है - आँख अचानक भर आई है।

अव तो साँझ उतर आई है।

बड़े बड़े दावे करते थे जोगी जंगम सन्त सयाने

पर उसके यह खेल तमाशे-कोई न समझे कोई न जाने।

आये थे तो माँ ममता थी - विदा समय एक परछाँई हैं

अव तो साँझ उतर आई है।

अर्थात् :- बीता समय स्वप्नवत् लग रहा है। देह रूपी वृक्ष के पत्ते एक एक कर झरते जा रहे है। प्रकृति अब भी वैसी की वैसी ही है। शीतल पवन की मर्मर ध्वनि से अब कोई सिहरन नही उपजती है बल्कि ऐसे लगता है कि दूर से कहीं माँ ने फिर कोई लोरी चुपचाप मेरे लिये गाई है। उसकी शान्तिदायिनी गोद ही अवलम्ब है।

गीतकार का कथन है कि इस जीवन यात्रा में जो साथी साथ चले थे तो वह सब समय समय पर साथ छोड़ कर जा चुके हैं फिर भी स्मृतियों

में वह चेहरे झांकते हैं तो आँखे भर आती हैं। कुदरत के इन खेल तमाशों का रहस्य कोई भी तो नहीं जान पाया है। जन्म के समय की माँ की ममता ही इस समय छाया सी बनकर विदाई दे रही है।

इस संध्या काल की विदाई बेला की प्रतीक्षा से पहले ही कवि इस सत्य को जान चुके हैं कि, आवागमन का खेल जीवन के मंच पर चलता ही रहेगा। उनके शब्दों में ही इस यथार्थ को देखेंगे।

मिलन बछोड़े पक्खरूयें जन-डाली डाली बौह्न्दे न
एह् मौसम न बेईतबारे-औन्दे जन्दे रौंहन्दे न
दुःख निं लाना-दुख निं लाना हे मन दुःख निं लाना ओ
चाँदी भरेया रूप कटोरा - इक दिन छलकी जाना ओ।

अर्थात् :- मिलन और विछोह का यह खेल अविराम चलता रहता है। जैसे मौसम बदलते हैं ऐसे ही जीवन यात्रा के मौसमों का भी रंग बदलता है। एक दिन ऐसा भी आता है कि रूप यौवन भरा चाँदी का कटोरा छलक जाता है। फिर दुःख किस बात का - ओ मेरे मन ! फिर दुःख किस बात का।

पत्तन

(वेड़ी पत्तन सन्झ मलाह)

इस पत्तनें पर मेरिये जिन्दे, किन्नां होर बसोना
न्हेरे पौन लगे।

पार गये छुट मेरिये जानें, लम्मा गेड़ा पैना
न्हेरे पौन लगे।

बिजन मलाह् दे बेड़ी आई पूर उतेरया सारा
चल-बेड़ी पर जाई बौह्चै हुन - लेई करमें दा खारा।
न्हेरे पौन लगे।

खेबन हारा कुतै निं लब्मदा - बेड़ी तरदी जाए
किज चली गे उस पार ते दिक्खो - किज इद्दर उठि आए।
औना जाना लग्गे दा ऐ, रूकदा कदें परौह्नां ?

न्हेरे पौन लगे ।

इन्नी मोह ममता बी कैह्दी - कुस गी बलगै करना
ओ दुनियां तां पिच्छैं रेई गेई - हुन की हौके भरना ।
सब किश तूं दिक्खी सुनी बैठां, हुन केह् इत्थैं रौह्ना ।

न्हेरे पौन लगे ।

ओह्! नगरी दाता दी नगरी - एह्का शैहर बगाना
पल दो पल दा रौंनक मेला - फ्ही खामोश वीराना ।
मोह ममता दे शौरें दे छुट - किश वी हत्थ निं औना ।

न्हेरे पौन लगे ।

अर्थात :- जीवन के इस घाट पर और कितनी प्रतीक्षा करूं । सांझ ढल चुकी है । अंधेरे और भी गहरा चुके हैं । नदी के उस पार न पहुँच पाये तो यह यात्रा और भी लम्बी और दुरूह हो जायेगी । अंधेरा वढ़ रहा है, नाव तो इस पार आई है । यात्री भी उतर चुके हैं किन्तु नाव का खेवनहारा नहीं दीख पड़ रहा है । ओ मेरे मन! चलो इस नाव पर हम भी सवार हो जायें अपने कर्मों की गठरी उठा कर ।

देखं रे! जब हम पार उतेंरगे तो इस कर्मों के बोझे को एक बारगी ही सिर से उतार कर विश्राम करेंगे । आश्चर्य की बात है कि, नाव तो चल पड़ी है पर नाविक कहीं दिखाई नहीं दे रहा है । और भी आश्चर्य है कि दोनों छोर के यात्री आ जा रहे हैं ।

कवि स्वयं को ही उत्तर देता है कि इस आने जाने में अचरज की कौन सी बात है । इस संसार रूपी सराये में कभी कोई पाहुन रूका है ? स्थायी रूप से रहा है ? फिर इतनी मोह ममता किस बात की । इस घाट पर खड़े हो कर किसकी प्रतीक्षा कर रहे हो ? वह मोह ममता का मायावी संसार पीछे छूट गया है । ठंडी उसाँसे भरने का क्या अर्थ है । सभी कुछ तो देख सुन लिया अब और यहाँ रहने का क्या प्रयोजन हैं? वह नगरी तो दाता की नगरी है । जिसे छोड़ कर जा रहे हैं वह बेगानी है, फिर दावेदारी कैसी ? घड़ी दो घड़ी का मेला देख तो लिया । संध्या समय तो मेला खत्म होने पर बीरानी छा गई है । यहाँ की मोह ममता तो केवल परछाईयाँ ही थीं । परछाँई को कभी कोई बन्दी बना सका है ? देखो! अंधकार और गहन हो गया है ।

इस गीत में गीतकार ने बीत राग हो कर निर्वेद रस की रचना की है।

" पार "

(वेड़ी पत्तन सन्झ मलाह)

वेड़ी आई नेई मैं पार किआं जां
पत्तन खड़ोती बलगां।
धुप्पां चली गेईयां अपने ग्रां
पत्तन खड़ोती बलगां।
इत्थुं तोड़ी पुज्जदेयां - केस रूपा होई गे
किज साथी खिन्डी गे - किज परतोई गे
कुतें बिन्द भर कीता निं बसां
पत्तन खड़ोती बलगां।
ढली गेई सन्झ ते चबक्खे न्हेरे पेई गे
पार पुज्जने दे सारे चाऽ मेरे रेई गे
डूग्गी नदिया दे पार किआं जा।
पत्तन खड़ोती बलगां।
मस्सेया दी रात आई, कोल गै खड़ोई गेई
इक्कली ही, अम्मी, मिगी रोह्ल इदी थोई गई
आखै, लगनी आं धरमें दी माँ
पत्तन खड़ोती बलगां।
धुप्पां चली गेईयां अपने ग्रां।
पत्तन खड़ोती बलगां।

इस गीत में गीतकार की आत्मा का ही आत्म निवेदन है जैसे कि :-

अर्थात् :- नाव तो घाट पर आकर लगी ही नही, पार कैसे जाना होगा। मै तो कब से खड़ी प्रतीक्षा रत हूँ। देखो-धूप अपने गाँव लौट गई है (यौवन बेला बीत गई है) यहाँ तक पहुँचते पहुँचते केश रूपा (धवल) हो गये हैं। कुछ साथी विछुड़ गये हैं, कुछ एक वापिस लौट गये हैं। इस घाट पर पहुँचनें

के लिये मैंने कहीं रूक कर एक पल भी तो विश्राम नहीं किया है।

सांझ ढल गई - सर्वत्र अंधकार छा गया है। नदी के उस पार जाने के मेरे सारे चाव मन में ही रह गये हैं। इस गहरी नदिया के पार जाऊँ भी तो कैसे ? इस गहन अंधकार में मुझे अकेली खड़ी देख कर अमावस की रात्रि मेरे पास आ कर खड़ी हो गई। उसका साथ सहारा मिलने से अकेलेपन को राहत मिल गई। फिर अमावस की रात्रि ने मुझ से कहा कि पगली! मैं तो तुम्हारी धर्म की माँ हूँ। चिन्ता काहे की। यहाँ पर अमावस की रात्रि, प्रतीक है मृत्यु की देवी का। उसका माँ जैसे स्नेह से कवि आत्मा को दुलारना, कवि कल्पना का एक अनूठा रंग है। मृत्यु की देवी से कोई भय नहीं अपितु उसकी गोद तो आश्रय की शान्तिस्थली है।

इस सहयात्रा में चलते चलते जीवन में जो भी घटा उसकी रूप रेखा की डोर किन्हीं अदृश्य हाथों में रहती आई है। वह अदृश्य तो अबूझ रहस्यों से भरा है। अब यह सह यात्रा शनैः शनैः अपने लक्ष्य की ओर वढ़ती जा रही है। इस चिरन्तन सत्य को कैसे भुलाया जा सकता है कि नाव की प्रतीक्षा में खड़े हैं घाट पर। कौन जायेगा, कौन रहेगा, कौन जाने ?

अविस्मरणीय क्षण

आर्ट गैलरी के उद्‌घाटन समारोह के शुभ अवसर पर भारत के प्रथम राष्ट्रपति महामहिम डॉक्टर राजेन्द्र प्रसाद जी। साथ में यश शर्मा तथा डॉ. कर्ण सिंह जी।

दिल्ली में साहित्य एकैडमी पुरस्कार प्राप्त करते यश शर्मा, ज्ञानपीठ अवार्ड विजेता डॉक्टर अनन्त मूर्ति पुरस्कार प्रदान करते हुए।
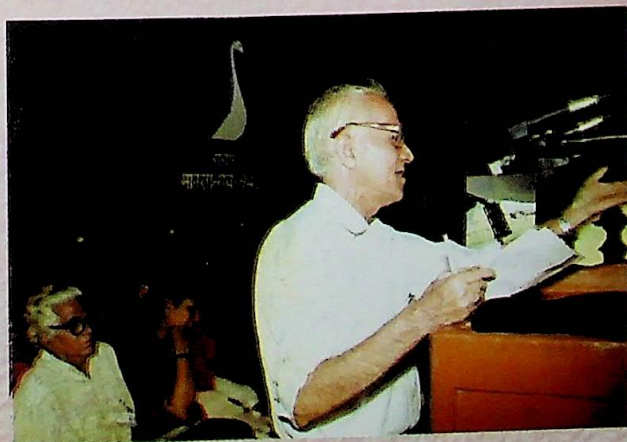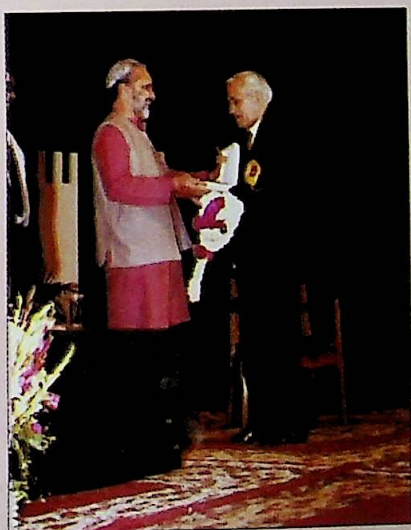
केरल प्रदेश में अल्बी नाम की नगरी के निकट पूर्णिमा नदी के किनारे "सुरभि" संस्था द्वारा मानसोत्सव उत्सव में भारतीय सर्व भाषा सम्मेलन में अपनी डोगरी रचना 'बद्दली' का सस्वर पाठ करते यश शर्मा - 1994.

अविस्मर्णीय क्षण
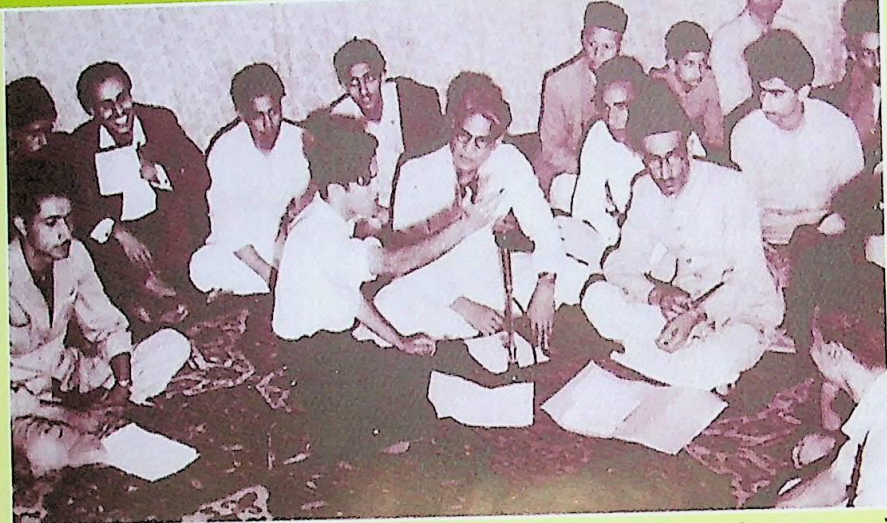
रेडियो काश्मीर श्रीनगर के स्टूडियो में आयोजित सर्व भाषा कवि सम्मेलन में 'अमन' कविता का पाठ करते ''यश शर्मा''।
दायें से बायें-सर्व श्री गुलाम मुहम्मद रा, नूर मोहम्मद रोशन, प्रगतिशील कवि दीनानाथ नादिम, उर्दू के महान् कवि ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता अली सर्दार जाफरी, काश्मीरी कवि पदम श्री ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता श्री रहमान राही, कवि सम्मलेन के अध्यक्ष डॉक्टर अशरफ, उनके साथ काश्मीर के दानिशवर कवि जनाब गुलाम रसूल नाज़की, उनके पीछे दिखाई दे रहे हैं-पशतो भाषा के कवि हरभगवान दास मल्होत्रा, उनके ठीक पीछे काली चोपी पहने काश्मीरी कवि मास्यर जिन्द कौल, बच्चे के साथ कराकुली टोपी पहने काश्मीरी कवि शहज़ोर काश्मीरी, सफेद कमीज़ पहने हास्य व्यंग्य रचनाकार श्री पुष्कर भान तथा अन्य।
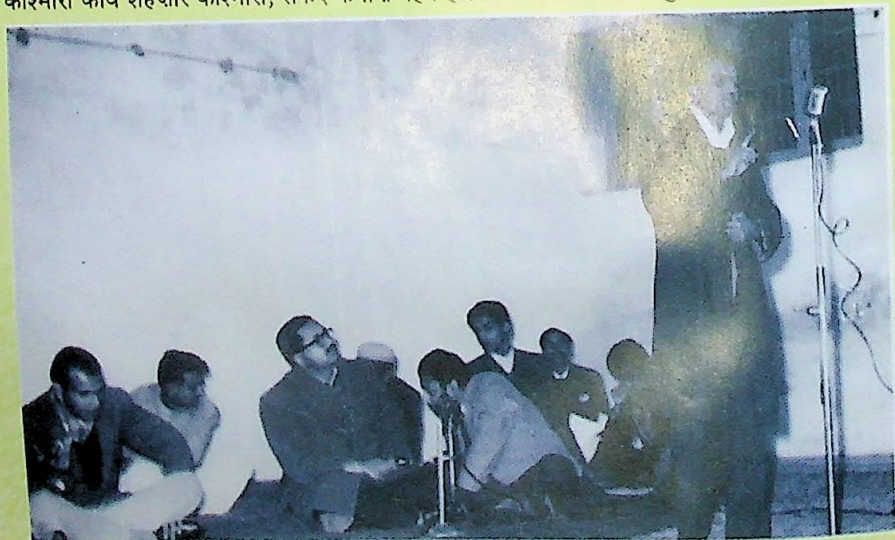
छठे दशक का दुर्लभ चित्र। परेड ग्राऊँड, महिला कालिज में आयोजित अक कवि गोष्ठी में दायें से बायें-श्री मोहन लाल सपोलिया, उनके शिष्य मुशायरे के अध्यक्ष पूर्व सांसद श्री अयूब खान, संचालक राम कुमार अबरोल, पीछे बैठे हैं, कवि चरण सिंह, बशीर अहमद बशीर तथा वेदपाल दीप। संभवत् इन में से आज कोई भी नहीं है। माईक के सामने कविता पढ़ते ''यश शर्मा''।

रविवार

अजे बी मारा दा कोई आले

आशा:—साहित्य अकादमी पुरस्कारों के बारे में आपके क्या विचार हैं! आपने इसके लिए कभी प्रयास नहीं किया ?

दीप:—मेरा डोगरी ग़ज़ल संग्रह काफ़ी चर्चित हुआ था 1968 में इसे पुरस्कृत करने की बात भी चल पड़ी थी पर पद्मा मैदान में आई ~६ । उन दिनों झगड़ा भी था। यहां से कुछ विद्वानों ने पद्मा को समझाया भी कि अगले वर्ष तुम्हें मिल आएगा पर वह अड़िग रही 'नहीं' मुझे इसी वर्ष चाहिए—दीप से पहले। पद्मा ने खूब पैसा बहाया—दिनकर जिनसे प्रस्तावना लिखवाई, हर ओर पहुँच की और अन्तत: सफल हुई। पर मुझे कोई मलाल नहीं—जब जज ही ऐसे हों कि अन्तर न ढूंढ सकें और व्यक्ति, न कि उसके लेखन से, प्रभावित हो जाएं तो कोई दूसरा क्या करे। उन दिनों नीलाम्बर शर्मा साहित्य अकैडमी में डोगरी के कर्त्तादर्ता थे जब मैंने उनसे पूछा कि कहां पर कमी रह गई तो वे बोले केवल ग़ज़लों पर अकादमी पुरस्कार नहीं देती। अब नीलाम्बर शर्मा क्या कहेंगे जबकि दो ग़ज़लों के संग्रहों और दो 'कतों' के संग्रहों को पुरस्कृत किया गया है—इतिहास में ये सब लिखा जाएगा और इन्हें अपना मुंह धोना पड़ेगा।

दैनिक कश्मीर टाईम्स में रविवार, 25 फरवरी, 1990 को डोगरी साहित्य के मूर्धन्य लेखक तथा चर्चित ग़ज़लकार श्री वेद पाल दीप से की गई भेंटवार्ता के कुछ चुनिन्दा अँश।

Prajapati Prasad [illegible]

August 2,1968.

I knew Sri Yash Sharma as my collaborator in the production of his plays by the Post-Graduate students of the University of Jammu and Kashmir, Jammu. His two one act plays - one, in Punjabi," Chalti Gaddi " and the other, " Ghar Mera, Kahani Apki," were sponsored under my over-all supervision by the Cultural Association of the Jammu Division of our University. They were presented on two occasions during the academic year 1966-1967. The post-graduate students staged the Punjabi drama to collect money for the Bihar Famine Relief Fund. In the next place, the Hindi drama was presented on the occasion of the University Convocation before the distinguished guests in March 1967. Both plays were success in the sense that they helped in enhancing the image of our growing University.

For this success, we sincerely thank Sri Yash Sharma. We had promised him to pay Rs [illegible] for his each play, but owing to the shortage of funds, we did not pay him a penny. And he graciously accepted it. Besides, he devoted a good deal of his time in training the students as how to enact the finer nuances of feelings and experiences as well as shades of pronunciation in Punjabi and Hindi. Such a type of training created a sophisticated interest in dramatics among our students.

With these qualities of head and heart, if the talents of Sri Yash Sharma be recognised by some institution or cultural body, it will be what he deserves.

Prajapati Prasad
(Prajapati Prasad)

1968 में प्रजापति प्रसाद का (पत्र)। 1968 में जम्मू-कश्मीर यूनिवर्सिटी में पोस्ट ग्रैजुएट स्टूडेंट द्वारा लिखित दो नाटक संचित किये गये। नाटक थे चलदी गड्डी (पंजाबी) तथा घर मेरा, कहानी आपकी (हिन्दी)। सहयोगी थे स्व. कमल मल्होत्रा, सम्भवत: आज के जम्मू विश्वविद्यालय के रंगमंच का श्रीगणेश उन्हीं दिनों हुआ होगा।

उर्दू के प्रसिद्ध लेखक, अभिनेता तथा निर्भीक पत्रकार 'स्वर्गीय श्री विजय सूरी।' साथ ही 'उजाला' का उर्दू पृष्ठ तथा एकेडमी का भेजा पत्र।

اُجالا

کلچرل اکیڈمی کا کرشمہ

[illegible]

JAMMU AND KASHMIR
ACADEMY OF ART, CULTURE AND LANGUAGES
JAMMU.

NO:
DATED:-

Shri Yash Sharma.
24-P Gandhinagar
JAMMU.

Sub:- Grant of Subsidy

Dear Sir,

This is in reference to your application submitting thereunder manuscript entitled "[illegible]" The manuscript has not been approved for the grant of subsidy. A copy of the manuscript alongwith the reviewer remarks is enclosed herewith. This however does not reflect on the merits of your writing.

Yours faithfully
[signature]
(DEPUTY SECRETARY)

Encl:- 1. Manuscript in Original Containing ______ pages.
2. Reviewer's Remarks.

अविस्मर्णीय क्षण

'यश शर्मा' कुशीनगर में महात्मा बुद्ध की निर्वाण स्थली में।

चम्बल घाटी (मध्य प्रदेश के जौरा क्षेत्र में 'श्री सुब्बाराव' जी के साथ यश शर्मा तथा विद्यार्थी।

यश शर्मा तथा रक्षा शर्मा पौत्र सुयश के साथ।